श्रीपञ्चप्रतिक्रमणसूत्र

तथा

नवस्मरण

प्रबोधटीकानुसारी

शब्दार्थ, अर्थसङ्कलना तथा सूत्र-परिचयसहित

प्रकाशक :

जैन साहित्य-विकास-मण्डल

इरला, वीलेपारले, बम्बई-५६ [A.S.]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपञ्चप्रतिक्रमणसूत्र

तथा

नवस्मरण

प्रबोधटीकानुसारी

शब्दार्थ, अर्थसङ्कलना तथा सूत्र–परिचयसहित

प्रकाशक :

जैन साहित्य–विकास–मण्डल

इरला, वीलेपारले, बम्बई ५६ [A.S.]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
सुबोधचन्द्र नानालाल शाह
मन्त्री
जैन साहित्य-विकास-मण्डल
११२, स्वामी विवेकानन्द रोड,
इरला, वीलेपारले :: बम्बई ५६ [A. S.]

द्वितीयावृत्ति
२०००
मूल्य पाँच रुपये

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
महावीर प्रेस, भेलूपुर,
वाराणसी-१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय-निवेदन

आजसे १३ साल पहले जैन साहित्य विकास मण्डलने प्रतिक्रमणसूत्र बोध टीका भा० १-२-३ का संक्षिप्त रूपान्तर हिन्दी एवं गुजराती इन .ानों भाषाओंमें समाजके समक्ष प्रस्तुत किया।

इन प्रकाशनोंकी हजारो प्रतियाँ देखते देखते ही बिक गई। और उनकी माँग सतत चालू रही।

फलस्वरूप हिन्दी पंचप्रतिक्रमणसूत्रकी दूसरी आवृत्ति आज वाचकोंके समक्ष रखी गयी है। इसमें प्रत्येक सूत्रका मूलनाम उसके शीर्षस्थानपर बड़े अक्षरोंमें दिया गया है, और प्रचलित नाम नीचे कोष्ठकमें दिखलाया गया है। इसके पश्चात् मूलपाठ दिया गया है, जिसमें पद्योंके छन्दका नाम-निर्देश भी है। **'संसार-दावानल-थुई', 'वर्धमान-स्तुति', 'प्राभातिक-स्तुति', 'पासनाह-जिण-थुई',** आदि सूत्र देखनेसे जिसका स्पष्टरूप सामने ए। तदनन्तर दो विभागोंमें शब्दार्थ है, जिसमें प्रथम शब्दका मूल अर्थ दिया गया है और जहाँ उसका लाक्षणिक अथवा तात्पर्यार्थ दिखलानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई, वहाँ दूसरा अर्थ भी दिया गया है। जैसे कि—

मत्थएण—मस्तकसे, मस्तक झुकाकर।

अयरामरं ठाणं—अजरामर स्थानको, मोक्षको।

यदि शब्द सामासिक हो, तो ऐसा अर्थ दिखलानेके पश्चात् पृथक्-पृथक् शब्दोंके अर्थ भी बतलाये हैं। जैसे—

नवविह-बंभचेर-गुत्ति-धरो—नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्तिको धारण करनेवाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवविह-नवविध, नव प्रकारकी। बंभचेर-गुत्ति-ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ब्रह्मचर्य पालन सम्बन्धी नियम। धरो-धारण करनेवाला।

इसके बाद शुद्ध हिन्दीमें अर्थसङ्कलना दी गयी है और अन्तमें सूत्र-परिचय दिया गया है। जिसमें प्रस्तुत-सूत्र कब किस हेतुसे बोला जाता है इसका निर्देश किया गया है और साथ ही तत्सम्बन्धी जो सम्प्रदाय अथवा किंवदन्ती प्रचलित है, उसका वहाँ वैसे ही स्वरूपमें निदर्शन करा दिया है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थलोंपर सूत्र-परिचयके बाद सरलभाषामें संक्षिप्त **प्रश्नोत्तरी** दी गयी है, जो सूत्रका विषय स्पष्ट करनेमें अत्यन्त उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तकमें पाठकोंकी अनुकूलताके लिए **गुजराती अतिचार**के उपरान्त **हिन्दी अतिचार** तथा **नवस्मरण** भी दिये गये हैं जो प्रथमावृत्ति-में नहीं थे। तथा **सामायिक लेनेको** तथा **पूर्ण करनेकी विधि, चैत्य-वन्दनकी विधि, दैवसिक-रात्रिक-पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण विधि, पोषध-विधि, छींक आये तो करनेकी विधि** तथा **पच्चक्खाण पारनेकी विधि** दी गयी हैं। और उनके हेतु भी विस्तारपूर्वक दिये हैं, जिससे पाठक उन-उन विधियोंका रहस्य समझ सके और उसके अनुशीलनका आनन्द भी प्राप्त कर सके।

साथ ही उक्त पुस्तकमें मङ्गलभावना, प्रभुके सम्मुख बोलनेके दोहे, शत्रुंजयको प्रणिपात करते समय बोलनेके दोहे, नवाङ्गपूजाके दोहे, अष्ट-प्रकारी पूजाके दोहे, ४ प्रभुस्तुति, १६ चैत्यवन्दन, २५ स्तवन, १५ स्तुतियाँ, ५ सज्झाय, ६ छन्द तथा पद, २ आरती, २ मङ्गलदीपक, छूटे बोल तथा श्रावकके प्रतिदिन धारने योग्य चौदह नियम एवं सत्रह प्रमार्जना दी गयी है।

यह हिन्दी अनुवाद पाठकोंके करकमलोंमें समर्पित करते हुए हम आशा करते हैं कि सूत्रोंका शुद्ध पाठ कण्ठस्थ किया जाय तथा उनका वास्तविक अर्थ समझा जाय; इस दृष्टिसे सुज्ञ श्रावक-श्राविका-समुदाय इसी पुस्तकका उपयोग करनेकी भावना रखेंगे तथा इसका उचित सत्कार करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम संस्करणमें जो अशुद्धियाँ छपनेमें रह गयीं थीं उनका संशोधन एवं अन्य आवश्यक त्रुटियोंका शोधन भी इस संस्करणमें किया गया है। इतना होने पर भी प्रमादादि दोषसे कोई त्रुटि रह गयी हो तो विद्वज्जन क्षमा करते हुए हमें सूचित करें। जिससे अगली आवृत्तिमें संशोधन किया जा सके।

दिनांक
वि० सं० २०२५
मार्गशीर्ष शुक्ल–१ गुरुवार
२१–११–६८

निवेदक—
सुबोधचन्द्र नानालाल शाह
मंत्री
जैन साहित्य विकास मण्डल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

१	नमुक्कारो [नमस्कार–मन्त्र]	१
२	पंचिंदिय–सुत्तं [गुरु–स्थापना सूत्र]	७
३	थोभवंदण–सुत्तं [खमासमण–सूत्र]	११
४	सुगुरु–सुखशाता–पृच्छा [गुरु–निमन्त्रण–सूत्र]	१४
५	इरियावहिया–सुत्तं [इरियावहियं–सूत्र]	१६
६	उत्तरीकरण–सुत्तं ['तस्स उत्तरी' सूत्र]	२०
७	काउस्सग्ग–सुत्तं ['अन्नत्थ' सूत्र]	२२
८	चउवीसत्थय–सुत्तं ['लोगस्स'-सूत्र]	२६
९	सामाइय–सुत्तं ['करेमि भंते' सूत्र]	३४
१०	सामाइय–पारण सुत्तं [सामायिक पारनेका सूत्र]	३८
११	जगचिंतामणि–सुत्तं ['जगचिंतामणि' चैत्यवन्दन]	४२
१२	तित्थवंदण–सुत्तं ['जं किंचि' सूत्र]	४७
१३	सक्कत्थय–सुत्तं ['नमो त्थु णं' सूत्र]	४८
१४	सव्व–चेइयवंदण–सुत्तं ['जावंति चेइयाइं' सूत्र]	५८
१५	सव्वसाहु–वंदण–सुत्तं ['जावंत के वि साहू' सूत्र]	५९
१६	पञ्चपरमेष्ठि–नमस्कार–सूत्रम् ['नमोऽर्हत्' सूत्र]	६०
१७	उवसग्गहर–थोत्तं [उपसर्गहर–स्तोत्र]	६१
१८	पणिहाण–सुत्तं ['जय वीयराय' सूत्र]	६६
१९	चेइयथय–सुत्तं ['अरिहंत–चेइयाणं' सूत्र]	७०
२०	'कल्लाण–कंदं' थुई [पञ्चजिन–स्तुति]	७३
२१	संसारदावानल–थुई [श्रीमहावीर-स्तुति]	८०
२२	सुयधम्म–थुई ['पुक्खरवर'–सूत्र]	८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३ सिद्ध–थुई ['सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र] ९१
२४ वेयावच्चगर–सुत्तं ['वेयावच्चगराणं' सूत्र] ९६
२५ भगवदादिवन्दनसूत्रम् ['भगवान हं' सूत्र] ९७
२६ पडिक्कमण–ठवणा–सुत्तं ['सव्वस्स वि' सूत्र] ९८
२७ अइयारालोअण–सुत्तं [अतिचार–आलोचना–सूत्र] ९९
२८ अइयार–वियारण–गाहा [अतिचार विचारनेके लिए गाथाएँ] १०२
२९ सुगुरु–वंदण–सुत्तं [सुगुरु–वन्दन–सूत्र] ११०
३० जीवहिंसा–आलोयणा ['सात लाख' सूत्र] ११६
३१ अट्ठारस पाव– ठाणाणि [अठारह पापस्थानक] ११८
३२ सावग–पडिक्कमण–सुत्तं ['वंदित्तु' सूत्र] १२०
३३ गुरुखामणा–सुत्तं ['अब्भुट्ठिओ' सूत्र] १६८
३४ आयरियाइ–खामणा–सुत्तं ['आयरिय–उवज्झाए' सूत्र] १७३
३५ सुअदेवया–थुई [श्रुतदेवताकी स्तुति] १७५
३६ खित्तदेवया–थुई [क्षेत्रदेवता–स्तुति] १७६
३७ श्रुतदेवता–स्तुतिः ['कमल–दल' स्तुति] १७७
३८ वर्धमान–स्तुतिः ['नमोऽस्तु वर्धमानाय' सूत्र] १७८
३९ प्राभातिक–स्तुतिः ['विशाल लोचन–दलं' सूत्र] १८१
४० साहुवंदण–सुत्तं ['अढ्ढाइज्जेसु' सूत्र] १८४
४१ सप्तति–शत–जिनवन्दनम् ['वरकनक' स्तुति] १८७
४२ शान्ति–स्तवः ['लघु–शान्ति'] १८९
४३ पासनाह–जिण–थुई ['चउक्कसाय'–सूत्र] २०८
४४ भरहेसर–सज्झाओ ['भरहेसर–बाहुबली'–सज्झाय] २१०
४५ सड्ढ–निच्च–किच्च–सज्झाओ ['मन्नह जिणाणं'–सज्झाय] २४२
४६ सकल तीर्थ–वंदना ['सकल–तीर्थ–वन्दना'] २४६
४७ पोसह–सुत्तं ['पोसह लेनेका' सूत्र] २५०
४८ पोसह–पारण–सुत्तं ['पोसह पारनेका'–सूत्र] २५४
४९ संथारा–पोरिसी [संस्तारक–पौरुषी] २५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५० पच्चक्खाणके सूत्र २७३
५१ श्रीवर्धमानजिन–स्तुतिः ['स्नातस्या'–स्तुति] २९१
५२ भुवनदेवता–स्तुतिः [भुवनदेवताकी स्तुति] २९७
५३ क्षेत्रदेवता–स्तुतिः [क्षेत्रदेवताकी स्तुति] २९८
५४ चतुर्विंशति–जिन–नमस्कारः ['सकलार्हत्'–स्तोत्र] २९९
५५ अजिय–संति–थओ [अजित–शान्ति–स्तव] ३२६
५६ बृहच्छान्तिः [बड़ी शान्ति] ३७१

नवस्मरणानि

५७ संतिनाह सम्मदिट्ठिय रक्खा [संतिकरं-स्तवन'] [तृतीयं स्मरणम्] ३९२
[1]तिजयपहुत्त स्तोत्रम् [चतुर्थं स्मरणम्] ४०९
नमिऊण स्तोत्रम् [पञ्चमं स्मरणम्] ४०२
अजितशान्ति स्तोत्रम् [षष्ठं स्मरणम्] ४०४
भक्तामर स्तोत्रम् [सप्तमं स्मरणम्] ४१०
कल्याणमन्दिर स्तोत्रम् [अष्टमं स्मरणम्] ४१५
५८ पाक्षिकादि अतिचार [गुजराती सार्थ] ४२२
हिन्दी पाक्षिक अतिचार ४५०

उपयोगी विषयोंका संग्रह

[१] मुहपत्तीके पचास बोल ४६८
[२] प्रतिक्रमण सम्बन्धी उपयोगी सूचनाएँ ४७७
[३] दैवसिक प्रतिक्रमणकी विधि ४८०
[४] रात्रिक प्रतिक्रमणकी विधि ४८८
[५] पाक्षिक प्रतिक्रमणकी विधि ४९३
[६] चातुर्मासिक–प्रतिक्रमणकी विधि ४९७

---

१. प्रथम, द्वितीय, तथा नवम स्मरणके लिए देखिये क्रमशः पृष्ठ १, ६१, ३ तथा ३७१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७] सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधि ४९७
[८] छींक आये तो करनेकी विधि ४९७
[९] पच्चक्खाण पारनेकी विधि ४९८
[१०] पोषध विधि ४९९
[११] सामायिक लेनेकी विधिके हेतु ५१४
[१२] सामायिक पारनेकी विधिके हेतु ५२१
[१३] चैत्यवन्दनकी विधिके हेतु ५२३
[१४] दैवसिक प्रतिक्रमणकी विधिके हेतु ५२६
[१५] रात्रिक प्रतिक्रमणकी विधिके हेतु ५३६
[१६] पाक्षिक चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधिके हेतु ५४१
[१७] मङ्गल–भावना ५४४
[१८] प्रभुके सम्मुख बोलनेके दोहे ५४५
[१९] शत्रुञ्जयको प्रणिपात करते समय बोलनेके दोहे ५४६
[२०] नवाङ्गपूजाके दोहे ५४६
[२१] अष्टप्रकारी पूजाके दोहे ५४७
[२२] प्रभुस्तुति—
(१) छे प्रतिमा मनोहारिणी, ५४९
(२) आव्यो शरणे तुमारा, ५४९
(३) त्हाराथी न समर्थ अन्य दीननो, ५४९
(४) सकल-कर्मवारी, ५५०
[२३] चैत्यवन्दन—
(१) पद्मप्रभु ने वासुपूज्य, ५५०
(२) बारगुण अरिहंतदेव, ५५०
(३) शान्ति जिनेश्वर सोलमा, ५५१
(४) ऋषभ-लंछन ऋषभदेव, ५५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) विमल–केवलज्ञान, ५५२
(६) श्रीशत्रुञ्जय सिद्धक्षेत्र, ५५३
(७) आदिदेव अलवेसरू, ५५३
(८) श्रीसीमन्धर ! जगधणी, ५५४
(९) श्रीसीमन्धर वीतराग ५५४
(१०) सीमन्धर परमातमा, ५५५
(११) सकल–मङ्गल–परम–कमला, ५५५
(१२) विध धर्म जेणे उपदिश्यो, ५५६
(१३) त्रिगडे बेठा वीर जिन, ५५७
(१४) महा सुदि आठम दिने, ५५८
(१५) शासननायक वीरजी ! ५५८
(१६) पर्व पर्युषण गुण नीलो, ५५९

[२४] स्तवन—

(१) प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए, ५६०
(२) माता मरुदेवीना नन्द ! ५६१
(३) ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम ! ५६२
(४) पंथडो निहालुं रे ! ५६३
(५) प्रीतलड़ी बंधाणी रे ! ५६३
(६) सम्भवदेव ते धुर सेवो, ५६४
(७) अभिनन्दन जिन ! दरिसण, ५६५
(८) दुःख दोहग दूरे टल्यां रे ! ५६६
(९) धार तरवारनी सोहिली, ५६७
(१०) शान्तिजिन एक मुझ विनति, ५६८
(११) शान्ति जिनेश्वर साचो साहिब ५६९
(१२) मनडुं किमहि न बाजे हो, ५७०
(१३) अन्तरजामी सुण अलवेसर ५७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१४) सिद्धारथना रे ! नन्दन, ५७२
(१५) सुणो चन्दाजी ! सीमन्धर, ५७२
(१६) पुक्खलवइ–विजये जयो रे ! ५७३
(१७) विमलाचल नितु वन्दीए, ५७४
(१८) सरस वचन रस वरसती, ५७५
(१९) सुत सिद्धारथ भूपनो रे ! ५७८
(२०) श्रीराजगृही शुभठाम, ५७९
(२१) श्रीऋषभनुं जन्म–कल्याण रे ! ५८०
(२२) मारे दीवाली थई आज, ५८१

[२५] स्तुतियाँ—

(१) आदि–जिनवर राया, ५८१
(२) वन्दो जिन शान्ति ! ५८२
(३) संखेश्वर पासजी पूजीए, ५८३
(४) जय ! जय ! भवि हितकर, ५८३
(५) श्रीसीमन्धर जिनवर, ५८४
(६) महाविदेह क्षेत्रमां सीमन्धर, ५८४
(७) जिनशासन–वांछित–पूरण, ५८५
(८) पुण्डरीक गिरि महिमा, ५८५
(९) श्रीशत्रुञ्जय तीरथ सार, ५८६
(१०) दिन सकल मनोहर, ५८७
(११) श्रावण सुदि दिन पंचमीए, ५८८
(१२) मङ्गल आठ करी जस आगल, ५८९
(१३) एकादशी अति रूअडी, ५८९
(१४) वरस दिवसमां अषाढ–चोमासुं, ५९०
(१५) पुण्यनुं पोषण पापनुं शोषण, ५९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२६] सज्झाय—

(१) कडवां फल छे क्रोधनां, ५९२
(२) रे जीव ! मान न कीजिए, ५९३
(३) समकितनुं मूल जाणीएजी, ५९३
(४) तुमे लक्षण जो जो लोभनां रे ! ५९४
(५) मद आठ महामुनि वारिये, ५९५

[२७] छन्द तथा पद—

(१) नित जपिये नवकार, ५९७
(२) समरो मन्त्र भलो नवकार, ५९७
(३) वीर जिणेसर केरो शिष्य, ५९८
(४) आदिनाथ आदे जिनवर वन्दी, ५९९
(५) पूरव पुण्य–उदय करी चेतन ! ६०१
(६) आशा औरनकी क्या कीजे, ६०२

[२८] आरतियाँ—

(१) जय ! जय ! आरती आदि जिणंदा ! ६०२
(२) अपसरा करती आरती जिन आगे, ६०३

[२९] मङ्गल–दीपक—

(१) दीवो रे ! दीवो मंगलिक दीवो, ६०४
(२) चारो मंगल चार आज, ६०५

[३०] छूटे बोल— ६०५

[३१] श्रावकके प्रतिदिन धारने योग्य १४ नियम. ६०९

[३२] सत्रह प्रमार्जना ६१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्य विकास मण्डल के प्रकाशनों की सूची

[१] प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोधटीका (भाग १ लो)
आवृत्ति बीजी-मूल्य रु० ५.००

❀ [२] प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोध टीका (भाग २ जो)
मूल्य रु० ५.००

[३] प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोध टीका (भाग ३ जो)
मूल्य रु० ५.००

❀ [४] प्रतिक्रमणनी पवित्रता आवृत्ति २ जी
मूल्य ०.६२

❀ [५] पंचप्रतिक्रमणसूत्र (प्रबोधटीकानुसारी)
गुजराती आवृत्ति मूल्य २.००

[६] पंचप्रतिक्रमणसूत्र तथा नवस्मरण (प्रबोधटीकानुसारी)
हिन्दी आवृत्ति मूल्य रु० ५.००

[७] सचित्र सार्थ सामायिक चैत्यवन्दन
आवृत्ति २जी मूल्य रु० १.२५

[८] योगप्रदीप गुजराती भाषान्तर सहित
मूल्य रु० १.५०

❀ [९] ध्यानविचार सचित्र अमूल्य

[१०] तत्त्वानुशासन गुजराती भाषान्तर सहित
मूल्य १.००

[११] नमस्कार स्वाध्याय [सचित्र] (प्राकृतविभाग)
मूल्य रु० २०.००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१२] ऋषिमंडलस्तवयन्त्रालेखन

मूल्य रु० ३.००

[१३] ऋषिमंडल यन्त्र (त्रिरंगी आर्ट पेपर पर)

मूल्य रु० १.००

[१४] नमस्कार स्वाध्याय (सचित्र) [संस्कृत विभाग]

मूल्य रु० १५.००

[१५] A COMPARATIVE STUDY OF THE JAINA THEORIES OF REALITY AND KNOWLEDGE
BY Y. J. PADMARAJIAH Rs. 15.00

[१६] सर्वसिद्धान्त प्रवेशक मूल्य १.००

[१७] जिनस्नात्रविधि तथा अर्हदभिषेक विधि
गुजराती भाषान्तर सहित मूल्य २.००

❀ [१८] लोगस्ससूत्र स्वाध्याय मूल्य ७.००

[१९] योगसार गुजराती अनुवाद सहित मूल्य २.००

[२०] PRAMANA–NAYA–TATTUALOKALANKAR WITH ENGLISH TRANSLATION
Rs. 20.00

❀ चिन्हवाले ग्रन्थ अभी अप्राप्य हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश्य ग्रन्थों

[१] सूरिमन्त्र कल्प समुच्चय भाग—१
[२] सूरिमन्त्र कल्प समुच्चय भाग—२
[३] योगशास्त्र अष्टम प्रकाशनुं सविस्तर विवरण
[4] NYAYAVATAR AND NAYAKARNIKA WITH ENGLISH TRANSLATION
[५] शत्रुंजय धातु प्रतिमा लेख संग्रह
[६] योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति सहित
[७] साम्यशतक तथा समताशतक
[८] समाधितन्त्र
[९] 'उवसग्गहरं' स्तोत्र स्वाध्याय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

१ नमुक्कारो

[नमस्कार–मन्त्र]

मूल—

नमो अरिहंताणं ।
नमो सिद्धाणं ।
नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं ।
नमो लोए सव्व–साहूणं ।

(सिलोगो)

एसो पंच–नमुक्कारो, सव्व–पाव–प्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—

नमो–नमस्कार हो ।
अरिहंताणं–अरिहन्त भगवान्‌को ।
सिद्धाणं–सिद्ध भगवान्‌को ।
आयरियाणं–आचार्य महाराजको ।
उवज्झायाणं-उपाध्याय महाराजको ।
लोए–लोकमें, ढाई द्वीपमें रहनेवाले ।
सव्व–साहूणं–सब साधुओंको ।
एसो–यह ।
पंच–नमुक्कारो–पञ्च–नमस्कार, पाँचोंको किया हुआ नमस्कार ।
सव्व–पाव-प्पणासणो–सब पापोंका विनाश करनेवाला । सव्व–सब । पाव–अशुभ-कर्म (पाप) प्पणासण–विनाश करनेवाला ।
मंगलाणं–मङ्गलोंका, मङ्गलोंमें ।
च–और,
सव्वेसिं–सभी ।
पढमं–प्रथम, उत्कृष्ट ।
हवइ–है ।
मंगलं–मङ्गल ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

अरिहन्त भगवन्तको नमस्कार हो।
सिद्ध भगवन्तको नमस्कार हो।
आचार्य महाराजको नमस्कार हो।
उपाध्याय महाराजको नमस्कार हो।
ढाई द्वीपमें रहनेवाले सब साधुओंको नमस्कार हो।

यह पञ्च-नमस्कार सर्व अशुभ-कर्मोंका विनाश करनेवाला तथा सर्व मङ्गलोंमें उत्कृष्ट मङ्गल है॥ १॥

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रके द्वारा अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु इन पञ्च-परमेष्ठीको नमस्कार किया जाता है, अत एव यह 'पञ्च-परमेष्ठि-नमस्कार' अथवा 'नमस्कार-मन्त्र'के नामसे पहचाना जाता है। शास्त्रोंमें इस सूत्रका 'पञ्च-मङ्गल' एवं 'पञ्च-मङ्गल-महा-श्रुतस्कन्ध' नामसे भी परिचय कराया है।

नमनकी क्रियाको नमस्कार कहते हैं। यह क्रिया द्रव्यसे भी होती है और भावसे भी होती है, अतः नमस्कारके द्रव्य-नमस्कार और भाव-नमस्कार ऐसे दो प्रकार होते हैं। मस्तक नमाना, हाथ जोड़ना, घुटने झुकाना आदि द्रव्य-नमस्कार कहलाता है और मनको विषय तथा कषायसे मुक्तकर उसमें नम्रताके भाव लाना, यह भाव-नमस्कार कहलाता है। द्रव्य-नमस्कार तथा भाव-नमस्कारसे नमस्कारकी क्रिया पूर्ण हुई मानी जाती है।

नमस्कार-मन्त्रका स्मरण करनेसे सर्व अशुभ-कर्मोंका नाश होता है तथा सर्वश्रेष्ठ मङ्गल हुआ ऐसा माना जाता है, इसलिये शास्त्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास करना हो, शास्त्रका उपदेश देना हो, धार्मिक-क्रिया करनी हो, धार्मिक-उत्सव करना हो अथवा कोई भी शुभ-कार्य करना हो, तो प्रारम्भमें इसका स्मरण करना चाहिए। इतना ही नहीं सोते, जागते, भोजन करते, प्रवासके लिये प्रस्थान करते एवं मरण निकट आनेपर भी इसका शरण लेना चाहिये।

इस सूत्रमें ६८ अक्षर हैं, ८ सम्पदाएँ हैं तथा ९ पद हैं, जिनकी गणना इस प्रकार है:—

सूत्र	अक्षर	सम्पदा	पद
नमो अरिहंताणं	७	पहली	पहला
नमो सिद्धाणं	५	दूसरी	दूसरा
नमो आयरियाणं	७	तीसरी	तीसरा
नमो उवज्झायाणं	७	चौथी	चौथा
नमो लोए सव्व-साहूणं	९	पाँचवीं	पाँचवाँ
एसो पंच-नमुक्कारो	८	छठी	छठा
सव्व-पाव-प्पणासणो	८	सातवीं	सातवाँ
मंगलाणं च सव्वेसिं	८	आठवीं	आठवाँ
पढमं हवइ मंगलं	९	,,	नौवाँ
	६८		

पञ्च-परमेष्ठी

प्रश्न—परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो '**परमे**' अर्थात् परमपदमें—ऊँचे स्थानमें '**ष्ठिन्**' अर्थात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे हुए हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु गृहस्थोंकी अपेक्षा उच्च स्थानमें रहे हुए हैं, अत एव इन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न—पञ्च-परमेष्ठीमें देव कितने और गुरु कितने ?

उत्तर—पञ्च-परमेष्ठीमें अरिहन्त और सिद्ध ये दोनों देव हैं तथा आचार्य, उपाध्याय एवं साधु ये तीन गुरु हैं।

प्रश्न—अरिहन्तका अर्थ क्या है ?

उत्तर—राजा-महाराजा तथा देवादिकोंके पूज्य वीतराग महापुरुष।

प्रश्न—अरिहन्तका दूसरा अर्थ क्या है ?

उत्तर—**अरि** अर्थात् शत्रु और **हन्त** अर्थात् हनन करनेवाला। जिस परम-पुरुषने कर्मरूपी शत्रुका हनन किया है, वह अरिहन्त।

प्रश्न—अरिहन्त भगवान् कैसे पहचाने जाते हैं ?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् बारह गुणोंसे पहचाने जाते हैं।

प्रश्न—वे किस प्रकार ?

उत्तर—(१) जहाँ अरिहन्त भगवान्का समवसरण होता है, वहाँ देवगण उनके शरीरसे बारह गुना ऊँचा **अशोकवृक्ष** रचते हैं, (२) **पुष्पोंकी वृष्टि** करते हैं, (३) **दिव्य-ध्वनि**से उनकी देशनामें स्वर भरते हैं, (४) **चँवर** डुलाते हैं, (५) बैठनेके लिये रत्न-जटित स्वर्णका **सिंहासन** बनाते हैं, (६) मस्तकके पीछे तेजका संवरण करनेवाला **भामण्डल** रचते हैं (नहीं तो अतितेजके कारण भगवान्का मुख-दर्शन नहीं हो सके) (७) **दुन्दुभि** बजाते हैं और (८) मस्तकके ऊपर तीन मनोहर **छत्र** रचते हैं। इन आठ गुणोंको अष्ट-प्रातिहार्य कहते हैं, क्यों कि ये प्रतिहारी (राजसेवक)के समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ रहते हैं, (९) वे अपायापगम नामक अतिशयसे युक्त होते हैं, अर्थात् वे जहाँ जहाँ विचरण करते हैं, वहाँसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि (दुष्काल), रोग, महामारी आदि अपायों (अनिष्टों)का नाश हो जाता है, (१०) वे ज्ञानातिशयवाले होते हैं, अतः समस्त विश्वका सम्पूर्ण-स्वरूप जानते हैं, (११) वे पूजातिशयवाले होते हैं, अतः बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि बड़े-बड़े राजा तथा इन्द्रादिक भी उनकी पूजा करते हैं और (१२) वे वचनातिशयवाले होते हैं, अतः उनके कथनका अभिप्राय देव, मनुष्य और पशु (तिर्यञ्च) भी समझ जाते हैं।

प्रश्न—सिद्धका अर्थ क्या है।

उत्तर—जिसने सर्वथा कर्मनाश द्वारा अपना शुद्ध-स्वरूप प्रकट किया है, ऐसी आत्मा।

प्रश्न—सिद्ध भगवान् कैसे पहचाने जाते हैं ?

उत्तर—सिद्ध भगवान् आठ गुणोंसे पहचाने जाते हैं:—(१) अनन्तज्ञान-(२) अनन्तदर्शन, (३) अनन्त-अव्याबाध सुख, (४) अनन्तचारित्र, (५) अक्षय–स्थिति, (६) अरूपित्व, (७) अगुरुलघु (जिसमें उच्चता अथवा निम्नताका व्यवहार नहीं हो सके) तथा (८) अनन्तवीर्य।

प्रश्न—आचार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो साधु गच्छके अधिपति हों, आचारका भले प्रकारसे पालन करते हों तथा दूसरोंको आचारपालनका उपदेश करते हों, उनको आचार्य कहते हैं। वे पाँच इन्द्रियके विषयोंको जीतनेवाले होते हैं, ब्रह्मचर्यकी नव गुप्तियोंका पालनकरनेवाले होते हैं, चार प्रकारके कषायोंसे रहित होते हैं, पञ्चमहाव्रतका पालन करनेवाले होते हैं तथा पाँच समिति एवं तीन गुप्तियोंके पालन करनेवाले होते हैं। इस प्रकार छत्तीस गुणोंसे युक्त आचार्य पहचाने जाते हैं।×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—उपाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो साधु ज्ञान और क्रियाका अभ्यास कराएँ उन्हें उपाध्याय कहते हैं। उनकी पहचान नीचेके पच्चीस गुणोंसे होती है :—ग्यारह अङ्ग-शास्त्र[११] तथा बारह उपाङ्गशास्त्र[१२] पढ़ाना, एवं चरित्र[१] तथा क्रियामें[१] कुशल होकर अन्य साधुओंको उसमें कुशल बनाना।

प्रश्न—साधु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो निर्वाण अथवा मोक्षमार्गकी साधना करते हों उन्हें साधु कहते हैं। उनकी पहचान सत्ताईस गुणोंसे होती है:—वे पाँच महाव्रतोंका पालन करते हैं[५], रात्रि-भोजनका त्याग करते हैं[१], छः-कायके जीवोंकी रक्षा करते हैं[६], पाँच इन्द्रियोंपर संयम रखते हैं[५], तीन गुप्तियोंका पालन करते हैं[३], लोभ रखते नहीं[१], क्षमा धारण करते हैं[१], मनको निर्मल रखते हैं[१], वस्त्रादिकी शुद्ध प्रतिलेखना (पडिलेहणा) करते हैं[१], प्रेक्षा-उपेक्षादि संयमका पालन करते हैं[१], तथा परीषहों[१] एवं उपसर्गोंको सहन करते हैं[१]।

प्रश्न—इस प्रकार पञ्च-परमेष्ठीमें कितने गुण हुए ?

उत्तर—एक सौ आठ–१२ + ८ + ३६ + २५ + २७ = १०८।

× इन गुणोंकी गणना अन्य रीतिसे भी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ पंचिंदिय–सुत्तं

[गुरु–स्थापना–सूत्र]

मूल—

[गाहा]

पंचिंदिय–संवरणो, तह नवविह–बंभचेर–गुत्ति–धरो ।
चउविह–कसाय–मुक्को, इअ अट्ठारसगुणेहिं संजुत्तो ॥१॥

पंच–महव्वय–जुत्तो, पंचविहायार–पालण–समत्थो ।
पंच–समिओ ति–गुत्तो, छत्तीसगुणो गुरू मज्झ ॥२॥

शब्दार्थ—

पंचिंदिय–संवरणो–पाँच इन्द्रियों-को वशमें रखनेवाला ।
पंचिंदिय–पाँच इन्द्रियाँ । संवरणो–वशमें रखनेवाला ।

तह–तथा ।

नवविह–बंभचेर–गुत्ति–धरो–नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्तिको धारण करनेवाला ।
नवविह–नवविध, नव प्रकारकी । बंभचेर – गुत्ति – ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ब्रह्मचर्य–पालन सम्बन्धी नियम । धरो–धारण करने-वाला ।

चउविह–कसाय–मुक्को–क्रोधादि चार प्रकारकी कषायोंसे मुक्त ।
चउविह चार प्रकारके । कसाय–आत्माको संसारमें परिभ्रमण करानेवाली मलिन भावना । उनसे–

मुक्को–मुक्त ।

इअ–इस प्रकार ।

अट्ठारसगुणेहिं–अठारह गुणोंसे ।

संजुत्तो–युक्त, सहित ।

पंच-महव्वय-जुत्तो–पाँच महाव्रतों-से युक्त ।
पंच–पाँच । महव्वय–महाव्रत, साधुओंके व्रत । जुत्त–युक्त ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचविहायार-पालण-समत्थो–पाँच तरहके आचारोंको पालन करनेमें समर्थ ।

पंचविह–पाँच तरहके । आयार–आचार, मर्यादा–पूर्वक वर्तन करनेकी क्रिया । पालण–समत्थ–पालन करनेमें समर्थ ।

पंच–समिओ–पाँच समितियोंसे युक्त ।

ति–गुत्तो–तीन गुप्तियोंसे युक्त ।

छत्तीसगुणो–छत्तीसगुणोंवाले ।

गुरू–गुरु ।

मज्झ–मेरे ।

अर्थ–सङ्कलना—

पाँच इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले,

नवविध–ब्रह्मचर्यकी गुप्तिको धारण करनेवाले,

क्रोधादि चार प्रकारकी कषायोंसे मुक्त,

इस प्रकार अठारह गुणोंसे युक्त तथा

पाँच महाव्रतोंसे युक्त,

पाँच प्रकारके आचारोंके पालन करनेमें समर्थ,

पाँच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त,

इस प्रकार छत्तीस गुणोंसे युक्त मेरे गुरु हैं ।

सूत्र–परिचय—

समस्त धार्मिक क्रियाएँ गुरुकी आज्ञा ग्रहणकर उनके समक्ष करनी चाहिये, परन्तु जब ऐसा सम्भव (योग) न हो और धार्मिक क्रिया करनी हो, तब ज्ञान, दर्शन और चारित्रके उपकरणोंमें गुरुकी स्थापना करके काम चलाया जाता है । ऐसी स्थापना करते समय इस सूत्रका उपयोग होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु

प्रश्न—गुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अज्ञानको दूर करे उसे गुरु कहते हैं ।

प्रश्न—गुरुके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—गुरुके दो प्रकार हैं, सद्गुरु और कुगुरु ।

प्रश्न—सद्गुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं तिरे और अन्योंको तिराए उसे सद्गुरु कहते हैं ।

प्रश्न—कुगुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं डूबे और दूसरोंको भी डुबोए उसे कुगुरु कहते हैं ।

प्रश्न—सद्गुरुके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—सद्गुरु स्पर्शनेन्द्रिय (चर्म), रसनेन्द्रिय (जिह्वा), घ्राणेन्द्रिय (नासिका), चक्षुरिन्द्रिय (नेत्र) और श्रोत्रेन्द्रिय (कर्ण) इन पाँच इन्द्रियोंके विषयोंको वशमें रखनेवाले होते हैं ।

प्रश्न—और अन्य लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—सद्गुरु नौ नियम-पूर्वक ब्रह्मचर्यका शुद्ध पालन करे । जैसे कि:—

(१) स्त्री, पशु और नपुंसकसे रहित स्थानमें रहे ।

(२) स्त्रीसम्बन्धी बातें न करे ।

(३) स्त्री जिस आसनपर बैठी हो उस आसनपर दो घटिका (घड़ी) तक न बैठे ।

(४) स्त्रियोंके अङ्गोपाङ्गोंको आसक्ति-पूर्वक न देखे ।

(५) दीवारकी आड़में स्त्री-पुरुषका जोड़ा रहता हो ऐसे स्थानपर न रहे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) पूर्वकालमें स्त्रीके साथ जो क्रीडा की हो, उसका स्मरण न करे।

(७) मादक आहार-पानी उपयोगमें न ले ।

(८) प्रमाणसे अधिक आहार न करे। पुरुषके आहारका प्रमाण ३२ कवल (ग्रास) है ।

(९) शरीरका श्रृंगार नहीं करे ।

प्रश्न—और अन्य लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—सद्गुरु चार प्रकारके कषायोंका सेवन न करे । जैसे कि:—

(१) क्रोध न करे ।

(२) मान न रखे ।

(३) माया (कपट) का सेवन न करे ।

(४) लोभ-लोलुप न बने ।

प्रश्न—और अन्य लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—सद्गुरु पाँच महाव्रतोंका यथार्थरीतिसे पालन करे । जैसे कि:—

(१) मन, वचन,कायसे किसी प्राणीको हिंसा न करे ।

(२) मन, वचन, कायसे असत्य न बोले ।

(३) मन, वचन, कायसे अदत्त न लेवे ।

(४) मन, वचन,कायसे मैथुन-सेवन न करे ।

(५) मन, वचन, कायसे परिग्रह न रखे ।

प्रश्न—और अन्य लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—सद्गुरु पाँच प्रकारके आचारोंका पालन करे । जैसे कि:—

(१) ज्ञानाचारका पालन करे ।

(२) दर्शनाचारका पालन करे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) चारित्राचारका पालन करे।

(४) तपाचारका पालन करे।

(५) वीर्याचारका पालन करे।

प्रश्न—और अन्य लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—सद्गुरु पाँच समिति और तीन गुप्तिका पालन करे। जैसे कि :—

(१) चलनेमें सावधानी रखे।

(२) बोलनेमें सावधानी रखे।

(३) आहार–पानी लेनेमें सावधानी रखे।

(४) वस्त्र, पात्र लेने–रखनेमें सावधानी रखे।

(५) मल, मूत्र आदि परठवने (परिष्ठापन) में सावधानी रखे।

(१) मनको पूर्णतया वशमें रखे।

(२) वचनको पूर्णतया वशमें रखे।

(३) कायको पूर्णतया वशमें रखे।

इस प्रकारके ३६ गुणोंसे गुरु परखे जाते हैं तथा उनके चरणोंकी सेवा करनेसे जन्म सफल होता है।

---

३ थोभवंदण–सुत्तं

[खमासमण–सूत्र]

मूल—

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं,
जावणिज्जाए निसीहिआए,
मत्थएण वंदामि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

इच्छामि–मैं चाहता हूँ।
खमासमणो !–हे क्षमा आदि गुण-वाले साधु महाराज !
वंदिउं–वन्दन करनेको।
जावणिज्जाए–शक्ति सहित अथवा सुखसाता पूछकर।
निसीहिआए–पाप-प्रवृत्तिका परित्याग करके अथवा अविनय-आशातनाकी क्षमा माँगकर।
मत्थएण–मस्तकसे, मस्तक झुकाकर।
वंदामि–मैं वन्दन करता हूँ।

अर्थ सङ्कलना—

हे क्षमाशील साधु महाराज ! आपकी मैं सुखसाता पूछकर तथा अविनय—(आशातना) के लिए क्षमा माँगकर वन्दन करना चाहता हूँ।

मस्तक आदि पाँचों अङ्ग झुकाकर मैं वन्दन करता हूँ।

सूत्र-परिचय—

गुरुवन्दनके तीन प्रकार हैं :—(१) फिट्टावन्दन, (२) थोभवन्दन और (३) द्वादशावर्त्तवन्दन। मार्गमें चलते हुए केवल मस्तक झुकाकर जो वन्दन किया जाता है, वह फिट्टावन्दन कहाता है; रुककर शरीरके पाँच अङ्ग नमाकर जो वन्दन किया जाता है, वह थोभ (स्तोभ) वन्दन कहाता है; और प्रातः तथा सायं बारह आवर्त्त–पूर्वक जो वन्दन किया जाता है, वह द्वादशावर्त्तवन्दन कहाता है।

यह सूत्र थोभ (स्तोभ) वन्दन करते समय बोला जाता है और 'खमासमणो' शब्द पहले आनेसे 'खमासमण–सूत्र' के नामसे प्रसिद्ध है।

क्षमाश्रमण

प्रश्न—खमासमणो शब्दका अर्थ क्या है ?

उत्तर—हे क्षमासमण ! अथवा हे क्षमाश्रमण !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—क्षमासमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो समण क्षमा आदि दस प्रकारके यतिधर्मोंका पालन करता हो वह क्षमासमण कहाता है ।

प्रश्न—समण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो साधु सभी जीवोंके साथ समभावसे वर्तन करे, वह समण कहाता है ।

प्रश्न—श्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो साधु पाँच इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये श्रम करे, वह श्रमण कहाता है । अथवा जो साधु आत्मशुद्धिके लिये श्रम अर्थात् तपश्चर्या करे, वह श्रमण कहाता है ।

प्रश्न—यतिधर्मके दस प्रकार कौनसे हैं ?

उत्तर—(१) क्षमा रखना, (२) मृदुता रखना, (३) सरलता रखना, (४) पवित्रता रखना, (५) सत्य बोलना, (६) संयमका पालन करना, (७) तप करना, (८) त्यागवृत्ति रखना, (९) अपने पास रुपये–पैसे आदि नहीं रखना और (१०) ब्रह्मचर्यका पालन करना ।

प्रश्न—पञ्चाङ्ग-प्रणिपात किसे कहते हैं ?

उत्तर—दो हाथ, दोनों घुटने और मस्तक इन पाँचों अङ्गोंको संकुचित करके जो प्रणाम किया जाय उसे पञ्चाङ्ग–प्रणिपात कहते हैं । थोभवन्दन करते समय ऐसा ही प्रणिपात किया जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ सुगुरु-सुखसाता-पच्छा

[गुरु-निमन्त्रण-सूत्र]

मूल—

इच्छाकार ! सुह-राइ ? (सुह-देवसि ?) सुख-तप ? शरीर-निराबाध ? सुख-संजम-यात्रा निर्वहते हो जी ? स्वामिन् ! साता है जी ?

[यहाँ गुरु उत्तर देवें कि—'देव—गुरु-पसाय' यह सुनकर शिष्य कहे :—]

भात पानी का लाभ देना जी ॥

शब्दार्थ—

इच्छाकार !—हे गुरो ! आपकी इच्छा हो तो मैं पूछूँ ।

सुह—राइ ?—गतरात्रि सुख—पूर्वक व्यतीत हुई ?

(**सुह—देवसि ?**—गतदिवस सुख—पूर्वक व्यतीत हुआ ?)

सुख—तप ?—तपश्चर्या सुख—पूर्वक होती है ?

शरीर—निराबाध ?—शरीर पीडा रहित है ?

सुख—संयम—यात्रा निर्वहते हो जी ?—आप चारित्रका पालन सुख—पूर्वक कर सकते हो ?, आपकी संयम—यात्राका निर्वाह सुख—पूर्वक होता है ?

स्वामिन् !०—शेष अर्थ स्पष्ट है ।

अर्थ—सङ्कलना—

[शिष्य गुरुको सुख-साता पूछता है, वह इस प्रकारः—] हे गुरो ! आपकी इच्छा हो तो पूछूँ ? गत रात्रि आपकी इच्छा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अनुकूल सुख—पूर्वक व्यतीत हुई ? (अथवा गत दिवस आपकी इच्छाके अनुकूल व्यतीत हुआ ?) आपकी तपश्चर्या सुख—पूर्वक होती है ? आपका शरीर पीड़ारहित है ? तथा हे गुरो ! आपकी संयम—यात्राका निर्वाह सुख—पूर्वक होता है ? हे स्वामिन् ! आपके सर्व प्रकारकी साता है ?

[गुरु कहते हैं—'देव और गुरुकी कृपासे सब वैसा ही है;' अर्थात् सुख—साता है। शिष्य इस समय अपनी हार्दिक अभिलाषा व्यक्त करता है :—]

'मेरे यहाँसे आहार—पानी ग्रहणकर मुझको धर्मलाभ देनेकी कृपा करें।'

[गुरु इस आमन्त्रणको स्वीकार अथवा अस्वीकार न करके कहते हैं कि—]

'वर्तमान योग'—जैसी उस समयकी अनुकूलता।

सूत्र-परिचय—

गुरुकी सुख-साता पूछनेके लिये इस सूत्रका उपयोग होता है। उसमें प्रथम यह पूछा जाता है कि हे गुरो ! रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत हुई ? अर्थात् आपने जो रात्रि बिताई, उसमें किसी प्रकारकी अशान्ति तो नहीं हुई ? यदि वन्दन दिनके बारह बजेके पश्चात् किया हो तो रात्रिके स्थानपर दिवस बोला जाता है, जिसका अर्थ यह है कि आपने जो दिवस बिताया उसमें किसी प्रकारकी अशान्ति तो नहीं हुई ? दूसरा प्रश्न यह पूछा जाता है कि आप जो तपश्चर्या कर रहे हैं, उसमें किसी प्रकारका विघ्न तो नहीं आता ? तीसरा प्रश्न यह पूछा जाता है कि आपका शरीर पीड़ा-रहित तो है ? अर्थात् छोटी-बड़ी कोई व्याधि पीड़ा तो उत्पन्न नहीं करती ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और चौथा प्रश्न यह पूछा जाता है कि आप चारित्रका पालन सुख–पूर्वक कर सकते हैं ? इन प्रश्नोंको पूछनेका कारण यह है कि गुरुको तप–संयम आदिकी आराधना करनेमें किसी भी प्रकारकी कठिनता होती हो तो उपयोगी होना । तदनन्तर गुरुको आहार–पानीके लिये निमन्त्रण देते हैं, किन्तु गुरु अपना साधु–धर्म विचारकर 'वर्तमान योग' अर्थात् 'जैसा उस समयका संयोग' ऐसा उत्तर देते हैं ।

---

५ इरियावहिया–सुत्तं

[इरियावहियं–सूत्र]

पीठिका

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि ? इच्छं ।

मूल

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए ।

गमणागमणे ।

पाण–क्कमणे, बीय–क्कमणे, हरिय–क्कमणे, ओसा–उत्तिंग–पणग–दगमट्टी–मक्कडा–संताणा–संकमणे ।

जे मे जीवा विराहिया ।

एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ।

अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

इच्छाकारेण—स्वेच्छासे ।

संदिसह—आज्ञा दीजिये ।

भगवन् !—हे भगवन् !

इरियावहियं पडिक्कमामि—
मैं ईर्यापथिकी—क्रियाका प्रतिक्रमण करता हूँ ।
ईर्यापथ सम्बन्धी जो क्रिया वह ईर्यापथिकी । ईर्यापथ—जाने—आनेका मार्ग । प्रतिक्रमण—वापस लौटनेकी (परावर्तनकी) क्रिया ।

इच्छं—चाहता हूँ, आपकी यह आज्ञा स्वीकृत करता हूँ ।

इच्छामि—चाहता हूँ, अन्तःकरणकी भावनापूर्वक प्रारम्भ करता हूँ ।

पडिक्कमिउं—प्रतिक्रमण करनेको ।

इरियावहियाए विराहणाए—
ईर्यापथिकी—क्रियाके प्रसङ्गमें लगे हुए अतिचारसे, मार्गमें चलते समय हुई जीवविराधनाका । विराहणा—विकृत हुई आराधना, दोष ।

गमणागमणे—कार्य-प्रयोजनमें जाते और वहाँसे वापस लौटते, जाते—आते ।

पाण—क्कमणे-प्राणियोंको दबानेसे ।

बीय—क्कमणे—बीजको दबानेसे ।

हरिय-क्कमणे—हरी वनस्पतिको दबानेसे ।

ओसा—उत्तिंग—पणग—जल मट्टी—मक्कडा—संताणा—संकमणे—ओस, चींटियोंके बिल, पाँच वर्णकी काई (नीलफूल), पानी वाली मिट्टी और मकड़ीका जाला आदिको दबानेसे ।
ओसा—ओसकी बूँदें । उत्तिंग-चीटियोंका बिल । पणग—पाँच वर्णकी काई (फूलन) । दगमट्टी—कीचड़ । मक्कडा—संताणा—मकड़ीका जाला ।

जे जीवा—जो प्राणी, जो जीव ।

मे विराहिया—मुझसे दुःखित हुए हों ।

एगिंदिया—एक इन्द्रियवाले जीव ।

बेइंदिया—दो इन्द्रियवाले जीव ।

तेइंदिया—तीन इन्द्रियवाले जीव ।

चउरिंदिया-चार इन्द्रियवाले जीव ।

पंचिंदिया-पाँच इन्द्रियवाले जीव ।

अभिहया—पाँवसे मरे हों, ठोकरसे मरे हों ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत्तिया–धूलसे ढके हों।
लेसिया-भूमिके साथ कुचले गये हों।
संघाइया–परस्पर शरीर द्वारा टकराये हों।
संघट्टिया–स्पर्श हुआ हो।
परियाविया–कष्ट पहुँचाया हो।
किलामिया–खेद पहुँचाया हो।
उद्दविया–डराये (भयभीत किये) गये हों।
ठाणाओ ठाणं–एक स्थानसे दूसरे स्थानपर।
संकामिया=फिराये हों।
जीवियाओ ववरोविया–प्राणसे रहित किये हों।
तस्स–उन सर्व-अतिचारोंका।
मिच्छा–मिथ्या।
मि–मेरा।
दुक्कडं–दुष्कृत।

अर्थ-सङ्कलना—

हे भगवन्! स्वेच्छासे ईर्यापथिकी-प्रतिक्रमण करनेकी मुझे आज्ञा दीजिये। [गुरु इसके प्रत्युत्तरमें–' पडिक्कमेह' –' प्रतिक्रमण करो ' ऐसा कहे तब] शिष्य कहे कि–मैं चाहता हूँ–आपकी यह आज्ञा स्वीकृत करता हूँ। अब मैं मार्गमें चलते समय हुई जीव-विराधनाका प्रतिक्रमण अन्तःकरणकी भावनापूर्वक प्रारम्भ करता हूँ।

जाते–आते मुझसे प्राणी, बीज, हरी वनस्पति, ओसकी बूँदें, चीटियोंके बिल, पाँच वर्णकी काई, कच्चा पानी, कीचड़, तथा मकड़ीका जाला–आदि दबानेसे;

जाते-आते मुझसे जो कोई एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय अथवा पाँच इन्द्रियवाले जीव विराधित (दुःखित) हुए हों;

जाते आते मुझसे कोई जीव ठोकरसे मरे हों, धूलसे ढके हों, भूमिके साथ कुचले गये हों, परस्पर शरीरद्वारा टकरा गये हों,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श हुआ हो, कष्ट पहुँचाया हो, खेद पहुँचाया हो, भयभीत किये गये हों, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर फिराये हों अथवा प्राणसे रहित किये हों, और उससे जो विराधना हुई हो तत्सम्बन्धी मेरे सब दुष्कृत मिथ्या हों।

सूत्र–परिचय—

इस सूत्रका उपयोग सामायिक, प्रतिक्रमण, चैत्यवन्दन तथा देववन्दन आदिमें होता है।

चलनेकी क्रिया नीचे देखकर पूर्ण सावधानीसे करनी चाहिये और उसमें कोई जीव कुचल न जाय इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा करनेपर भी यदि भूल–चूकसे अथवा उपयोगकी न्यूनतासे जाते–आते कोई भी जीव दब गया हो और उसे किसी भी प्रकारका दुःख पहुँचाया हो, तो इस सूत्रसे उसका प्रतिक्रमण किया जाता है। छोटी–से–छोटी जीव–विराधनाको भी दुष्कृत समझना और तदर्थ अप्रसन्न होना, यह इस सूत्रका प्रधान–स्वर है। 'मिच्छा मि दुक्कडं' ये तीनों पद प्रतिक्रमणके बीज माने जाते हैं।

इरियावही पडिक्कमणके १८२४१२० भेद हैं। वे इस प्रकार हैं :— जीवके ५६३ भेद हैं उनकी विराधना दस प्रकारसे होती है। उसको राग–द्वेष, तीन करण, × तीन योग, + तीन काल, ÷ और अरिहन्त आदि छःकी★ साक्षीसे गुणन करनेपर क्रमशः ५६३ × १० × २ × ३ × ३ × ३ × ६ = १८२४१२० भेद होते हैं।

× करना, कराना और अनुमोदन करना।

+ मन, वचन और काय।

÷ भूत, वर्तमान और भविष्य।

★ अरिहन्त, सिद्ध, साधु, देव, गुरु और आत्मा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६ उत्तरीकरण–सुत्तं

['तस्स उत्तरी'–सूत्र]

मूल—

तस्स–

उत्तरी–करणेणं, पायच्छित्त–करणेणं, विसोही-करणेणं, विसल्ली–करणेणं,

पावाणं कम्माण निग्घायणट्ठाए

ठामि काउस्सग्गं ॥

शब्दार्थ—

तस्स–उसका ।
जिस जीव-विराधनाका प्रतिक्रमण किया उसका अनुसन्धान करके यह सूत्र कहते हैं ।

उत्तरी–करणेणं–विशेष–आलोचना और निन्दा करनेके लिये ।

पायच्छित्त–करणेणं–प्रायश्चित्त करनेके लिये ।

विसोही–करणेणं–विशेष चित्तशुद्धि करनेके लिये ।

विसल्ली–करणेणं–चित्तको शल्य (कण्टक) रहित करनेके लिये ।

पावाणं–कम्माणं–पापकर्मोंका ।

निग्घायणट्ठाए–सर्वथा नाश करनेके लिये ।

ठामि काउस्सग्गं–मैं कायोत्सर्ग करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

जीव-विराधनाका मैंने जो प्रतिक्रमण किया उसका अनुसन्धान करके यह सूत्र कहता हूँ । विशेष–आलोचना और निन्दा करनेके लिये, प्रायश्चित्त करनेके लिये, विशेष चित्तशुद्धि करनेके लिये, चित्तको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शल्य रहित करनेके लिये, पापकर्मोंका सर्वथा—नाश करनेके लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

सूत्र–परिचय—

प्रतिक्रमणसे सामान्य–शुद्धि होती है और कायोत्सर्गसे विशेष–शुद्धि होती है, अत एव 'मिच्छा मि दुक्कडं' रूप प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् कायोत्सर्ग किया जाता है। इस कायोत्सर्गमें चार क्रियाएँ की जाती हैं। पहली क्रिया किये हुए अतिचारकी विशेष–आलोचना और निन्दा करनेके लिये होती है। दूसरी क्रिया तदर्थ शास्त्रोंद्वारा कथित प्रायश्चित्त ग्रहण करनेके लिये होती है। ईरियावहिय अतिचारके लिये २५ उच्छ्वासका कायोत्सर्ग करनेसे प्रायश्चित्त होता है। तीसरी क्रिया चित्तकी विशेष–शुद्धि करनेके लिये होती है और चौथी क्रिया मानसके अन्तर्गत गहरे छिपे हुए शल्योंको दूर करनेके लिये होती है।

शल्यके तीन भेद हैं :—मिथ्यात्वशल्य, मायाशल्य और निदानशल्य। इनमें सत्य वस्तुको मिथ्या समझना और मिथ्या वस्तुको सत्य समझना ये मिथ्यात्व कहलाता है। कपट करना, दम्भ करना ये माया कहलाती है और धर्म करनेमें फल–प्राप्ति स्वरूप सांसारिक सुख–भोगकी इच्छा करना, ये निदान कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७ काउस्सग्ग-सुत्तं

['अन्नत्थ'–सूत्र]

मूल—

अन्नत्थ—

ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वाय–निसग्गेणं,

भमलीए पित्त–मुच्छाए,

सुहुमेहिं अंग–संचालेहिं सुहुमेहिं खेल–संचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठि–संचालेहिं,

एवमाइएहिं आगारेहिं,

अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो ।

जाव अरिहंताण भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि, ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—

अन्नत्थ–अधो लिखित अपवाद–पूर्वक ।

ऊससिएणं–श्वास लेनेसे ।

नीससिएणं–श्वास छोड़नेसे ।

खासिएणं–खाँसी आनेसे ।

छीएणं–छींक आनेसे ।

जंभाइएणं–जम्हाई आनेसे ।

उड्डुएणं–डकार आनेसे ।

वाय–निसग्गेणं–अधोवायु छूटनेसे, अपान–वायु सरनेसे ।

भमलीए–चक्कर आनेसे ।

पित्त–मुच्छाए–पित्त–विकारके कारण मूर्च्छा आनेसे ।

सुहुमेहिं अंग–संचालेहिं–सूक्ष्म अङ्ग–सञ्चार होनेसे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं–सूक्ष्म रीतिसे शरीरमें कफ तथा वायुका सञ्चार होनेसे।

सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं–सूक्ष्म दृष्टि–सञ्चार होनेसे।

एवमाइएहिं आगारेहिं–इत्यादि (अपवादके) प्रकारोंसे।

अभग्गो–भग्न न हो ऐसा।

अविराहिओ–खण्डित न हो ऐसा।

हुज्ज–हो।

मे–मेरा।

काउस्सग्गो–कायोत्सर्ग।

जाव–जहाँतक, जबतक।

अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं–अरिहंत भगवान्को नमस्कार करके, अर्थात् 'नमो अरिहंताणं' पदसे।

न पारेमि–पूर्ण न करूँ।

ताव–तबतक।

कायं–शरीरको, कायको।

ठाणेणं–स्थान द्वारा।

मोणेणं–वाणी-व्यापार सर्वथा बन्द करके।

झाणेणं–ध्यान द्वारा।

अप्पाणं–अपनी।

वोसिरामि–सर्वथा त्याग करता हूँ।

अर्थ–सङ्कलना—

श्वास लेनेसे, श्वास छोड़नेसे, खाँसी आनेसे, छींक आनेसे, जम्हाई आनेसे, डकार आनेसे, अपानवायु सरनेसे, चक्कर आनेसे, पित्त—विकारके कारण मूर्च्छा आनेसे, सूक्ष्म अङ्ग–सञ्चार होनेसे, सूक्ष्म रीतिसे शरीरमें कफ तथा वायुका सञ्चार होनेसे, सूक्ष्म दृष्टि–सञ्चार (नेत्र–स्फुरण आदि) होनेसे, अग्नि–स्पर्श, शरीर–छेदन अथवा सम्मुख होता हुआ पञ्चेन्द्रिय वध, चौर अथवा राजाके कारण और सर्प–दंश इन कारणोंके उपस्थित होनेपर जो काय-व्यापार हो, उससे मेरा कायोत्सर्ग भग्न न हो अथवा विराधित न हो, ऐसे ज्ञानके साथ खड़ा रहकर वाणी–व्यापार सर्वथा बन्द करता हूँ तथा चित्तको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानमें जोड़ता हूँ और जबतक ' नमो अरिहंताणं ' यह पद बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूँ, तबतक अपनी कायका सर्वथा त्याग करता हूँ।

सूत्र-परिचय—

प्रस्तुत सूत्रमें कायोत्सर्गके आगारोंकी गणना की है तथा कायोत्सर्गका समय, स्वरूप और प्रतिज्ञा प्रदर्शित की है। उसमें ' अन्नत्थ ऊससिएणं' से ' हुज्ज मे काउस्सग्गो ' तकके भागमें कायोत्सर्गके आगार हैं, ' जाव अरिहंताणं 'से ' न पारेमि ताव ' पर्यन्तके भागमें कायोत्सर्गका समय है, ' कायं 'से ' झाणेणं ' पर्यन्तके भागमें कायोत्सर्गका स्वरूप है और 'अप्पाणं वोसिरामि ' इन शब्दोंमें कायोत्सर्गकी प्रतिज्ञा।

कायोत्सर्ग

प्रश्न—कायोत्सर्गका अर्थ क्या है ?

उत्तर—कायका उत्सर्ग।

प्रश्न—काय अर्थात् ?

उत्तर—देह अथवा शरीर। परन्तु यहाँ इसका अर्थ प्रवृत्तिवाला शरीर ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न—उत्सर्ग अर्थात् ?

उत्तर—त्याग।

प्रश्न—इस प्रकार कायोत्सर्गका अर्थ क्या हुआ ?

उत्तर—प्रवृत्तिवाले शरीरका त्याग करना, अर्थात् शरीरद्वारा प्रवृत्ति करना छोड़ देना।

प्रश्न—क्या कायोत्सर्गमें शरीरद्वारा किसी प्रकारकी प्रवृत्ति नहीं की जाती है ?

उत्तर—कायोत्सर्गमें शरीरद्वारा उतनी ही प्रवृत्ति की जाती है जो ध्यानमें स्थिर रहनेके लिये उपयोगी हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—उदाहरण के लिये ?

उत्तर—एक आसनपर स्थिर रहना और वाणीके प्रवाहको रोक लेना, यह ऐसी प्र ा है।

प्रश्न—इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रवृत्ति हो सकती है ?

उत्तर—नहीं। इसके अतिरिक्त इच्छा-पूर्वक कोई प्रवृत्ति नहीं हो सकती, किन्तु शरीरकी कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं कि, जो इच्छाके बिना भी होती रहती हैं, अर्थात् ऐसी प्रवृत्तियोंका कायोत्सर्गमें अपवाद रखा जाता है। ऐसे अपवादको शास्त्रीय-भाषामें आगार कहते हैं।

प्रश्न—कायोत्सर्गमें कितने आगार रखे जाते हैं ?

उत्तर—सोलह। उनमें बारहके नाम तो स्पष्ट दिये हैं और चारके नाम 'एवमाइएहिं' पदसे समझने चाहिये।

प्रश्न—सोलह आगारोंके नाम गिनाइये।

उत्तर—(१) श्वास लेना, (२) श्वास छोड़ना, (३) खाँसी आना, (४) छींक आना, (५) जम्हाई आना, (६) डकार आना, (७) अपान-वायु सरना, (८) चक्कर आना, (९) पित्तका उभरना, (१०) सूक्ष्म रीतिसे अङ्ग हिलना, (११) सूक्ष्म रीतिसे कफ बलगमका आना (हिलना), (१२) सूक्ष्म रीतिसे दृष्टिका हिलना तथा, (१३) अग्निका फैल जाना, (१४) कोई हिंसक प्राणी समक्ष आजाये अथवा पञ्चेन्द्रिय प्राणीका छेदन-भेदन करने लगे, (१५) कोई चोर अथवा राजा वहाँ आकर कुकर्म करने लगे और (१६) सर्पदंश हो अथवा सर्पदंश होने-की सम्भावना उत्पन्न हो, तो वह स्थान छोड़ देना। तात्पर्य यह कि इतनी वस्तुओंसे कायोत्सर्गकी प्रतिज्ञाका भङ्ग होना नहीं गिना जाता।

प्रश्न—कायोत्सर्गमें क्या किया जाता है ?

उत्तर—धर्मध्यान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ चउवीसत्थय–सुत्तं

['लोगस्स'–सूत्र]

मूल—

[सिलोगो]

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥ १ ॥

[गाहा]

उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ २ ॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल–सिज्जंस–वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ३ ॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४ ॥
एवं मए अभिथुआ, विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ५ ॥
कित्तिय–वंदिय–महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग–बोहि–लाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥ ६ ॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

लोगस्स–लोकका, चौदह राज-लोकोंमें ।

उज्जोअगरे–प्रकाश करनेवालोंकी ।

धम्म–तित्थयरे–धर्मरूपी तीर्थ-का प्रवर्तन करनेवालोंकी ।

जिणे–जिनोंकी, राग–द्वेष विजेता-ओंकी ।

अरिहंते-अर्हतोंकी, त्रिलोकपूज्योंकी ।

कित्तिइस्सं–मैं स्तुति करता हूँ ।

चउवीसं पि–चौबीसों ।

केवली–केवलज्ञान प्राप्त करने-वालोंकी, केवली भगवानोंकी ।

उसभं–श्रीऋषभदेव नामके प्रथम तीर्थङ्करको ।

अजिअं–श्रीअजितनाथ नामके दूसरे तीर्थङ्करको ।

च–और ।

वंदे–वन्दन करता हूँ ।

संभवं–श्रीसम्भवनाथ नामके तीसरे तीर्थङ्करको ।

अभिणंदणं–श्रीअभिनन्दन नामके चौथे तीर्थङ्करको ।

च–और ।

सुमइं–श्रीसुमतिनाथ नामके पाँचवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

पउमप्पहं–श्रीपद्मप्रभ नामके छठे तीर्थङ्करको ।

सुपासं-श्रीसुपार्श्वनाथ नामके सातवें तीर्थङ्करको ।

जिणं–जिनको ।

च–और ।

चंदप्पहं–श्रीचन्द्रप्रभ नामके आ-ठवें तीर्थङ्करको ।

वंदे–वंदन करता हूँ ।

सुविहिं–श्रीसुविधिनाथ नामके नौवें तीर्थङ्करको ।

च–अथवा ।

पुप्फदंतं–पुष्पदन्तको (श्रीसुविधि-नाथका यह दूसरा नाम है) ।

सीअल–सिज्जंस–वासुपुज्जं– श्रीशीतलनाथ नामके दसवें तीर्थङ्करको, श्रीश्रेयांसनाथ नामके ग्यारहवें तीर्थङ्करको तथा श्रीवासुपूज्य नामके बारहवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

विमलं–श्रीविमलनाथ नामके तेरहवें तीर्थङ्करको ।

अणंतं–श्रीअनन्तनाथ नामके चौद-हवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

जिणं–जिनको ।

धम्मं–श्रीधर्मनाथ नामके पन्द्रहवें तीर्थङ्करको ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतिं–श्रीशान्तिनाथ नामके सोलहवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

वंदामि–वन्दन करता हूँ ।

कुंथुं–श्रीकुन्थुनाथ नामके सत्तरहवें तीर्थङ्करको ।

अरं–श्रीअरनाथ नामके अठारहवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

मल्लिं–श्रीमल्लिनाथ नामके उन्नीसवें तीर्थङ्करको ।

वंदे–वन्दन करता हूँ ।

मुणिसुव्वयं–श्रीमुनिसुव्रतस्वामी नामके बीसवें तीर्थङ्करको ।

नमिजिणं–श्रीनमिनाथ नामके इक्कीसवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

वंदामि–वन्दन करता हूँ ।

रिट्ठनेमिं–श्रीअरिष्टनेमि अथवा नेमिनाथ नामके बाईसवें तीर्थङ्करको ।

पासं–श्रीपार्श्वनाथ नामके तेईसवें तीर्थङ्करको ।

तह–तथा ।

वद्धमाणं–श्रीवर्द्धमानस्वामी अथवा महावीरस्वामी नामके चौबीसवें तीर्थङ्करको ।

च–और ।

एवं–इस प्रकार ।

मए–मेरे द्वारा ।

अभिथुआ–नामपूर्वक स्तुति किये गये ।

विहुय-रय-मला–रज और मलरूपी कमको दूर करनेवाले ।
विहुय–दूर किये हुए । रय–बँधनेवाले कर्म । मल–पहले बँधे हुए कर्म ।

पहीण-जर-मरणा–जरा और मरणसे मुक्त ।
जरा–बुढ़ापा, वृद्धावस्था ।
मरण–मृत्यु ।

चउवीसं पि–चौबीसों ।

जिणवरा–जिनवर ।

तित्थयरा–तीर्थङ्कर ।

मे–मुझपर

पसीयंतु–प्रसन्न हों ।

कित्तिय-वंदिय-महिया–कीर्तन, वन्दन और पूजन किये हुए, मन, वचन और कायसे स्तुति किये हुए ।
कित्तिय-वाचक स्तुति किये हुए ।
वंदिय–कायिक स्तुति किये हुए ।
महिय–मानसिक स्तुति किये हुए ।

जे ए–जो ये ।

लोगस्स–लोकके सम्बन्धमें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तमा–उत्तम ।

सिद्धा–सिद्ध ।

आरुग्ग–बोहि–लाभं–कर्मक्षय तथा जिन–धर्मकी प्राप्तिको । आरुग्ग–रोग न हों ऐसी स्थिति अर्थात् कर्मक्षय । बोहि–लाभ–जिन–धर्मकी प्राप्ति ।

समाहिवरं–भावसमाधि ।

उत्तमं–श्रेष्ठ, उत्तम ।

दिंतु–दें, प्रदान करें ।

चंदेसु–चन्द्रोंसे ।

निम्मलयरा–अधिक निर्मल, स्वच्छ ।

आइच्चेसु–सूर्योंसे ।

अहियं–अधिक

पयासयरा–प्रकाश (उजाला) करनेवाले ।

सागर–वर–गंभीरा–श्रेष्ठ सागर अर्थात् स्वयंम्भूरमण समुद्रसे अधिक गम्भीर ।

सिद्धा–सिद्धावस्था प्राप्त किये हुए, सिद्ध भगवान् ।

सिद्धिं–सिद्धि ।

मम–मुझे ।

दिसंतु–प्रदान करें ।

अर्थ–सङ्कलना—

चौदह राजलोकोंमें स्थित सम्पूर्ण वस्तुओंके स्वरूपको यथार्थरूपमें प्रकाशित करनेवाले, धर्मरूपी तीर्थका प्रवर्त्तन करनेवाले, राग–द्वेषके विजेता तथा त्रिलोकपूज्य ऐसे चौबीसों केवली भगवानोंकी मैं स्तुति करता हूँ ।। १ ।।

श्रीऋषभदेव, श्रीअजितनाथ, श्रीसम्भवनाथ, श्रीअभिनन्दनस्वामी, श्रीसुमतिनाथ, श्रीपद्मप्रभ, श्रीसुपार्श्वनाथ और श्रीचन्द्रप्रभजिनको मैं वन्दन करता हूँ ।। २ ।।

श्रीसुविधिनाथ अथवा पुष्पदन्त, श्रीशीतलनाथ, श्रीश्रेयांसनाथ, श्रीवासुपूज्य, श्रीविमलनाथ, श्रीअनन्तनाथ, श्रीधर्मनाथ तथा श्रीशान्तिनाथजिनको मैं वन्दन करता हूँ ।। ३ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीकुन्थुनाथ, श्रीअरनाथ, श्रीमल्लिनाथ, श्रीमुनिसुव्रतस्वामी, श्रीनमिनाथ, श्रीअरिष्टनेमि, श्रीपार्श्वनाथ तथा श्रीवर्द्धमानजिन (श्रीमहावीरस्वामी)को मैं वन्दन करता हूँ ॥ ४ ॥

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किये गये, कर्मरूपी मलसे रहित और (जन्म), जरा एवं मरणसे मुक्त, चौबीसों जिनवर तीर्थङ्कर मुझपर प्रसन्न हों ॥ ५ ॥

जो लोकोत्तम हैं, सिद्ध हैं और मन-वचन-कायसे स्तुति किये हुए हैं, वे मेरे कर्मका क्षय करें, मुझे जिन—धर्मकी प्राप्ति कराएँ तथा उत्तम भाव—समाधि प्रदान करें ॥ ६ ॥

चन्द्रोंसे अधिक निर्मल, सूर्योंसे अधिक प्रकाश करनेवाले, स्वयम्भूरमण समुद्रसे अधिक गम्भीर ऐसे सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ ७ ॥

सूत्र-परिचय—

उक्त सूत्रमें चौबीस तीर्थङ्करोंकी स्तुति की गयी है, इसलिये यह सूत्र 'चउवीसत्थय–सुत्त' अथवा 'चतुर्विंशति–जिन–स्तव' के नामसे प्रसिद्ध है ।

सूत्रकी पहली गाथामें बताया है कि मैं चौबीसों केवली भगवानोंकी स्तुति करता हूँ, वे लोकके प्रकाशक हैं अर्थात् विश्वके समस्त पदार्थोंका वास्तविक स्वरूप जाननेवाले हैं, धर्मरूपी तीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, जिन हैं और अर्हत् हैं ।

सूत्रकी दूसरी, तीसरी और चौथी गाथामें चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम लेकर वन्दना की गयी है और पाँचवीं, छठी तथा सातवीं गाथामें उनसे प्रार्थना की गयी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रार्थनामें प्रथम उनका प्रसाद (कृपा) माँगा है, तदनन्तर आरोग्य अर्थात् कर्मक्षय, बोधिलाभ अर्थात् जैनधर्मकी प्राप्ति और उत्तम भाव–समाधि माँगी है तथा अन्तमें सिद्धिकी इच्छा प्रकट की है ।

अरिहन्त भगवान्का स्तवन करनेसे सम्यक्त्वकी शुद्धि होती है एवं श्रद्धा, संवेग आदि गुणोंका सत्त्वर विकास होता है ।

कायोत्सर्गमें इस सूत्रके प्रत्येक शब्दका अर्थ विचारनेसे भावका उल्लास होता है, चित्तकी शुद्धि होती है तथा ध्यान-सम्बन्धी योग्यता प्राप्त होती है !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४ तीर्थङ्करोंके

क्रमाङ्क	तीर्थङ्कर का नाम	पिता	माता	जन्म–स्थान
१	श्रीऋषभदेव	नाभि	मरुदेवी	अयोध्या
२	श्रीअजितनाथ	जितशत्रु	विजया	,,
३	श्रीसम्भवनाथ	जितारि	सेना	श्रावस्ती
४	श्रीअभिनन्दन	संवर	सिद्धार्था	अयोध्या
५	श्रीसुमतिनाथ	मेघरथ	सुमङ्गला	,,
६	श्रीपद्मप्रभ	श्रीधर	सुसीमा	कौशाम्बी
७	श्रीसुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	काशी
८	श्रीचन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	चन्द्रपुरी
९	श्रीसुविधिनाथ	सुग्रीव	रामा	काकन्दी
१०	श्रीशीतलनाथ	दृढरथ	नन्दा	भद्दिलपुर
११	श्रीश्रेयांसनाथ	विष्णुराज	विष्णु	सिंहपुर
१२	श्रीवासुपूज्य	वसुपूज्य	जया	चम्पा
१३	श्रीविमलनाथ	कृतवर्मा	श्यामा	काम्पिल्यपुर
१४	श्रीअनन्तनाथ	सिंहसेन	सुयशा	अयोध्या
१५	श्रीधर्मनाथ	भानु	सुव्रता	रत्नपुर
१६	श्रीशान्तिनाथ	विश्वसेन	अचिरा	हस्तिनापुर
१७	श्रीकुन्थुनाथ	सूर	श्री	,,
१८	श्रीअरनाथ	सुदर्शन	देवी	,,
१९	श्रीमल्लिनाथ	कुम्भ	प्रभावती	मिथिला
२०	श्रीमुनिसुव्रत	सुमित्र	पद्मा	राजगृह
२१	श्रीनमिनाथ	विजय	वप्रा	मिथिला
२२	श्रीनेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवा	शौरिपुर
२३	श्रीपार्श्वनाथ	अश्वसेन	वामा	काशी
२४	श्रीवर्धमानस्वामी	सिद्धार्थ	त्रिशला	क्षत्रियकुण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मातापितादिका कोष्ठक

लाञ्छन	शरीर–प्रमाण	वर्ण	आयु
वृषभ	५०० धनुष	स्वर्ण	८४ लाख पूर्व
हस्ती	४५० ,,	,,	७२ ,, ,,
अश्व	४०० ,,	,,	६० ,, ,,
वानर	३५० ,,	,,	५० ,, ,,
क्रौञ्च	३०० ,,	,,	४० ,, ,,
पद्म	२५० ,,	रक्त	३० ,, ,,
स्वस्तिक	२०० ,,	स्वर्ण	२० ,, ,,
चन्द्र	१५० ,,	श्वेत	१० ,, ,,
मकर	१०० ,,	,,	२ ,, ,,
श्रीवत्स	९० ,,	स्वर्ण	१ ,, ,,
गेंडा	८० ,,	,,	८४ लाख वर्ष
महिष	७० ,,	रक्त	७२ ,, ,,
वराह	६० ,,	स्वर्ण	६० ,, ,,
बाज	५० ,,	,,	३० ,, ,,
वज्र	४५ ,,	,,	१० ,, ,,
मृग	४० ,,	,,	१ ,, ,,
[अज] बकरा	३५ ,,	,,	९५ हजार वर्ष
नन्द्यावर्त्त	३० ,,	,,	८४ ,, ,,
कुम्भ	२५ ,,	नील	५५ ,, ,,
कच्छप	२० ,,	श्याम	३० ,, ,,
नीलकमल	१५ ,,	स्वर्ण	१० ,, ,,
शंख	१० ,,	श्याम	१ ,, ,,
सर्प	९ हस्त	नील	१०० वर्ष
सिंह	७ ,,	स्वर्ण	७२ ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९ सामाइय–सुत्तं

['करेमि भंते'–सूत्र]

मूल—

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि । जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि, न कारवेमि ।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

शब्दार्थ—

करेमि–करता हूँ ।
भंते !–हे भगवन् ! हे पूज्य !
सामाइयं–सामायिक ।
सावज्जं जोगं–पापवाली प्रवृत्तिको ।
पच्चक्खामि–प्रतिज्ञा–पूर्वक छोड़ देता हूँ ।
जाव–जबतक ।
नियमं–नियमका ।
पज्जुवासामि–सेवन करूं ।
दुविहं–करने और करानेरूपी दो प्रकारसे ।
तिविहेणं–मन, वचन और काय, इन तीन प्रकारोंसे ।
मणेणं–मनसे ।
वायाए–वाणीसे ।
काएणं–शरीरसे ।
न करेमि–न करूँ ।
न कारवेमि–न कराऊँ ।
तस्स–उस पापवाली प्रवृत्तिका ।
भंते !–हे भगवन् !
पडिक्कमामि–प्रतिक्रमण करता हूँ,–से निवृत्त होता हूँ ।
निंदामि–निन्दा करता हूँ, बुरी मानता हूँ ।
गरिहामि–गुरुकी साक्षीमें निन्दा करता हूँ ।
अप्पाणं–पापवाली मलिन आत्माको ।
वोसिरामि–छोड़ देता हूँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-संकलना—

हे पूज्य ! मैं सामायिक करता हूँ। अतः पापवाली प्रवृत्तिको प्रतिज्ञापूर्वक छोड़ देता हूँ। जबतक मैं इस नियमका सेवन करूँ, तबतक, मन, वचन और कायसे पापवाली प्रवृत्ति न करूँगा और न कराऊँगा। और हे पूज्य ! अभी तक उस प्रकारकी जो पापवाली प्रवृत्ति की हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ, उस पापवाली प्रवृत्तिको मैं बुरी मानता हूँ और उसके सम्बन्धमें आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ। अब मैं पापमय-प्रवृत्ति करनेवाली मलिन आत्माको छोड़ देता हूँ।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रसे सामायिक करनेकी प्रतिज्ञा ली जाती है।

सामायिक (१)

प्रश्न—सामायिक क्या है ?

उत्तर—एक धार्मिक क्रिया।

प्रश्न—सामायिक शब्दका अर्थ क्या है ?

उत्तर—समायकी क्रिया।

प्रश्न—समाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें **सम** अर्थात् राग-द्वेषरहित स्थितिका **आय** अर्थात् लाभ हो, उसको समाय कहते हैं।

प्रश्न—सामायिककी क्रिया कौन कर सकता है ?

उत्तर—कोई भी स्त्री-पुरुष कर सकता है।

प्रश्न—उसके लिए क्या करना पड़ता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—शुद्ध वस्त्र पहनकर कटासन, मुहपत्ती, चरवला, नवकारवाली एवं कोई भी धार्मिक पुस्तक लेकर गुरुके समक्ष जाना पड़ता है और वहाँ विधिपूर्वक सामायिककी प्रतिज्ञा ग्रहण करनी पड़ती है।

प्रश्न—सामायिककी प्रतिज्ञा किस प्रकार ली जाती है ?

उत्तर—उसमें प्रथम गुरुको उद्देश करके कहना पड़ता है कि 'करेमि भंते ! सामाइयं' अर्थात् 'हे पूज्य ! मैं सामायिक करता हूँ,' तदनन्तर कहना पड़ता है कि 'सावज्जं जोगं पच्चक्खामि' अर्थात् 'मैं पापमयी-प्रवृत्तिका प्रतिज्ञापूर्वक परित्याग करता हूँ'।

प्रश्न—पापमयी-प्रवृत्ति कितने समयके लिये छोड़ी जाती है ?

उत्तर—इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये 'जाव नियमं पज्जुवासामि' ऐसा पाठ बोला जाता है। जिसका अर्थ यह है कि जहाँतक मैं इस नियमका सेवन करूँ, वहाँतक पापवाली प्रवृत्ति नहीं करूँगा। एक सामायिकका नियम दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनिट तकका होता है, अतः पापवाली प्रवृत्ति ४८ मिनिटतक छोड़ दी जाती है।

प्रश्न—सामायिकमें पापवाली प्रवृत्ति कितने प्रकारसे छोड़ी जाती है ?

उत्तर—सामायिकमें पापवाली प्रवृत्ति छः-कोटियोंसे अर्थात् छः प्रकारसे छोड़ी जाती है।

(१) पापवाली प्रवृत्ति मैं मनसे करूँ नहीं।

(२) पापवाली प्रवृत्ति मैं मनसे कराऊँ नहीं।

(३) पापवाली प्रवृत्ति मैं वचनसे करूँ नहीं।

(४) पापवाली प्रवृत्ति मैं वचनसे कराऊँ नहीं।

(५) पापवाली प्रवृत्ति मैं कायासे करूँ नहीं।

(६) पापवाली प्रवृत्ति मैं कायासे कराऊँ नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—पापवाली प्रवृत्ति कुल कितनी कोटियोंसे छोड़ी जा सकती है ?

उत्तर—नौ कोटियोंसे ।

प्रश्न—उनमें कौन तीन कोटियाँ उक्त प्रतिज्ञाओंमें नहीं आतीं ?

उत्तर—(१) कोई पापवाली प्रवृत्ति करता हो तो उसका मनसे अनुमोदन न करूँ ।

(२) कोई पापवाली प्रवृत्ति करता हो तो उसका वचनसे अनुमोदन न करूँ ।

(३) कोई पापवाली प्रवृत्ति करता हो तो उसका कायासे अनुमोदन न करूँ ।

जो गृहस्थदशामें हैं, वे इन तीन कोटियोंसे–प्रतिज्ञा नहीं कर सकते ।

प्रश्न—इसके पश्चात् क्या किया जाता है ?

उत्तर—इसके पश्चात् ' तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ' यह पाठ बोलकर अभीतक जो पापवाली प्रवृत्तियाँ की हों, उनका प्रतिक्रमण किया जाता है । पुनः पापवाली प्रवृत्ति करनेका मन न हो इसके लिये ऐसा प्रतिक्रमण आवश्यक है ।

प्रश्न—साधु किस तरह सामायिक करता है ?

उत्तर—साधु दीक्षा लेते समय जीवनभर सामायिक करनेकी प्रतिज्ञा लेता है, अतः वह हर समय सामायिकमें ही होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० सामाइय–पारण–सुत्तं

[सामायिक पारनेका सूत्र]

मूल—

[गाहा]

सामाइयवय–जुत्तो, जाव मणे होइ नियम–संजुत्तो ।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥१॥
सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥२॥

मैंने सामायिकव्रत विधिसे लिया, विधिसे पूर्ण किया, विधिमें कोई अविधि हुई हो तो मिच्छामि दुक्कडं ।

दस मनके, दस वचनके, बारह कायाके कुल बत्तीस दोषोंमेंसे कोई दोष लगा हो तो मिच्छामि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ—

सामाइयवय–जुत्तो–सामायिक व्रतसे युक्त ।
जाव–जहाँतक ।
मणे–मनमें ।
होइ–होता है, करता है ।
नियम–संजुत्तो–नियमसे युक्त, नियम रखकर ।
छिन्नइ–काटता है, नाश करता है ।
असुहं–अशुभ ।
कम्मं–कर्मका ।
सामाइय–सामायिक ।
जत्तिया वारा–जितनी बार ।
सामाइयम्मि–सामायिक ।
उ–तो ।
कए–करनेपर ।
समणो–साधु ।
इव–जैसा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सावओ–श्रावक ।
हवइ–होता है ।
जम्हा–जिस कारणसे ।
एएण कारणेणं–इस कारणसे, इसलिये ।
बहुसो–अनेक बार ।
सामाइयं–सामायिक ।
कुज्जा–करना चाहिये ।
विधि–निश्चित पद्धति ।
शेष स्पष्ट है ।

अर्थ–सङ्कलना—

सामायिक–व्रतधारी जहाँतक और जितनी बार मनमें नियम रखकर सामायिक करता है, वहाँतक और उतनी बार वह अशुभ-कर्मका नाश करता है ।। १ ।।

सामायिक करनेपर तो श्रावक साधु जैसा होता है; इसलिये उसे सामायिक अनेक बार करना चाहिये ।। २ ।।

शेषका अर्थ स्पष्ट है ।

सूत्र–परिचय—

इस सूत्रद्वारा सामायिक पूर्ण की जाती है और शेषका अर्थ स्पष्ट है । आगे भी सामायिक करनेकी भावना हो, इसलिये इसमें सामायिकके लाभ प्रदर्शित किये गये हैं । साथ ही सामायिक ३२ दोषोंसे रहित होकर करनी चाहिये, यह बात भी इसमें बतलाई है ।

सामायिक (२)

प्रश्न—सामायिकसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—सामायिकसे अशुभ कर्मका नाश होता है ।

प्रश्न—दूसरा लाभ क्या होता है ?

उत्तर—सामायिकसे दूसरा लाभ यह होता है कि साधुके समान पवित्र जीवन बिताया जा सकता है, अर्थात् चारित्रमें सुधार होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—श्रावकको एक अहोरात्रमें कितनी बार सामायिक करनी चाहिए ?

उत्तर—अनेक बार । यदि परिस्थिति अनुकूल न हो, तो कम-से-कम एक बार सामायिक करनी चाहिए ।

प्रश्न—प्रतिदिन सामायिक करनेसे जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर—प्रतिदिन सामायिक करनेसे जीवन शान्त और पवित्र बनता है ।

प्रश्न—सामायिकमें कितने दोषोंका परित्याग करना चाहिये ?

उत्तर—बत्तीस ।

प्रश्न—उनमें मनके कितने ? वचनके कितने ? और कायके कितने ?

उत्तर—मनके दस, वचनके दस, और कायके बारह ।

प्रश्न—मनके दस दोषोंको दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(१) आत्महितके अतिरिक्त अन्य विचार न करे ।

(२) लोक प्रशंसा करे, साधुवाद दे, ऐसी अभिलाषा न रखे ।

(३) सामायिकद्वारा धनलाभकी इच्छा न रखे ।

(४) दूसरोंसे अच्छी सामायिक करता हूँ, इसलिये मैं उच्च हूँ ऐसा अभिमान न रखे ।

(५) भयका सेवन न करे ।

(६) सामायिकके फलका बन्धन न करे ।

(७) सामायिकके फलमें संशय न रखे ।

(८) रोष रखकर सामायिक न करे ।

(९) अविनयसे सामायिक न करे ।

(१०) अबहुमानसे सामायिक न करे ।

प्रश्न—वचनके दस दोषोंको दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(१) कटु, अप्रिय अथवा असत्य वचन न बोले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) बिना विचारे न बोले ।
(३) शास्त्रके विरुद्ध न बोले ।
(४) सूत्रसिद्धान्तके पाठ छोटे करके न बोले ।
(५) किसीके साथ कलहकारी वचन न बोले ।
(६) विकथा न करे । स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा एवं राजकथा ये चारों विकथा कहलाती हैं ।
(७) किसीकी हँसी करनेवाला वचन न कहे ।
(८) सामायिकका सूत्रपाठ अशुद्ध न बोले ।
(९) अपेक्षारहित न बोले ।
(१०) गुनगुनाते हुए न बोले ।

प्रश्न—कायाके बारह दोषोंको दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(१) पाँवपर पाँव चढ़ाकर न बैठे ।
(२) डगमगाते आसनपर न बैठे अथवा जहाँसे उठना पड़े ऐसे आसनपर न बैठे ।
(३) चारों तरफ दृष्टि फिराकर देखता न रहे ।
(४) घरके कार्य अथवा व्यापार-व्यवहारसे सम्बन्धित बातका संज्ञासे इशारा न करे ।
(५) दीवार अथवा खम्भेका सहारा न ले ।
(६) हाथ–पैरोंको समेटता–फैलाता न रहे ।
(७) आलस्यसे शरीरको न मरोड़े ।
(८) हाथ–पैरकी अँगुलियोंको न चटकाए ।
(९) शरीरके ऊपरसे मैल न उतारे ।
(१०) आलसीकी तरह बैठा न रहे ।
(११) ऊँघे नहीं ।
(१२) वस्त्रोंको न सिकोड़े ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११ जगचिंतामणि–सुत्तं

['जगचिन्तामणि' चैत्यवन्दन]

मूल—

[रोलाछन्द]

जगचिंतामणि ! जगहनाह ! जग–गुरू ! जग–रक्खण !
जग–बंधव ! जग–सत्थवाह ! जग–भाव–विअक्खण ! ।
अट्ठावय–संठविय–रूव ! कम्मट्ठ–विणासण !
चउवीस वि जिणवर ! जयतु अप्पडिहय–सासण ! ॥१॥

[वस्तुछन्द]

कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं पढमसंघयणि,
उक्कोसय सत्तरिसय, जिणवराण विहरंत लब्भइ;
नवकोडिहिं केवलीण कोडिसहस्स नव साहु गम्मइ ।
संपइ जिणवर वीस मुणि, विहुं (हिं) कोडिहिं वरनाणि,
समणह कोडि–सहस्स दुइ, थुणिज्जइ निच्च विहाणि ॥२॥

जयउ सामिय ! जयउ सामिय ! रिसह ! सत्तुंजि,
उज्जिंति पहु–नेमिजिण ! जयउ वीर ! सच्चउर-मंडण !;
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय ! महुरि पास ! दुह-दुरिअ-खंडण ! ।
अवर विदेहि तित्थयरा, चिहुं दिसि विदिसि जि के वि,
तीआणागय–संपइय, वंदउं जिण सव्वे वि ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गाहा]

सत्ताणवइ–सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडीओ ।
बत्तीस–सय–बासीयाइं, तिअलोए चेइए वंदे ॥४॥
पन्नरस–कोडि–सयाइं, कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना ।
छत्तीस सहस असीइं, सासय–बिंबाइं पणमामि ॥५॥

शब्दार्थ—

जगचिंतामणि !–जगत्में चिन्तामणि--रत्न समान !

जगन नाह !–जगत्के स्वामी !

जग–गुरू !–समस्त जगत्के गुरु !

जग–रक्खण !–जगत्का रक्षण करनेवाले !

जग–बंधव !–जगत्के बन्धु !

जग–सत्थवाह !–जगत्को इष्ट-स्थलपर (मोक्षमें) पहुँचानेवाले ! जगत्के उत्तम सार्थवाह !

जग–भाव–विअक्खण !–जगत्के सर्वभावोंको जाननेमें तथा प्रकाशित करनेमें निपुण ।

अट्ठावय–संठविय–रूव !–अष्टापद पर्वतपर जिनकी प्रतिमाएँ स्थापित की हुई हैं ऐसे !

कम्मट्ठ–विणासण !–आठों कर्मोंका नाश करनेवाले !

चउवीस वि–चौबीसों ।

जिणवर !–हे जिनवरों ! ऋषभादि तीर्थङ्करों !

जयंतु–आपकी जय हो ।

अप्पडिहय–सासण !–अखण्डित शासनवाले !, अबाधित उपदेश देनेवाले !

कम्मभूमिहिं–कर्मभूमियोंमें ।

पढमसंघयणि–प्रथम संहननवाले, वज्र–ऋषभ–नाराच–संघननवाले ।
संघयण–हड्डियोंकी विशिष्ट रचना ।

उक्कोसय–अधिक–से–अधिक ।

सत्तरिसय–एकसौ सत्तर ।

जिणवराण–जिनेश्वरोंकी, जिनोंकी (संख्या) ।

विहरंत–विचरण करते हुए ।

लब्भइ–प्राप्त होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवकोडिहिं–नौ करोड़ ।
केवलीण–केवलियोंकी, सामान्य केवलियोंकी (संख्या) ।
कोडिसहस्स–हजार करोड़ (दस अरब) ।
नव–नौ ।
साहु–साधु, साधुओंकी (संख्या) ।
गम्मइ–जाने जाते हैं, होती है ।
संपइ–वर्तमानकालमें ।
जिणवर–जिनेश्वर, तीर्थङ्कर ।
वीस–बीस ।
मुणि–मुनि ।
बिहुं (हिं)–दो ।
कोडिहिं–करोड़ ।
वरनाणि–केवलज्ञानी ।
समणह–श्रमणोंकी (संख्या) ।
कोडि–सहस्स दुइ–दो हजार करोड़ (बीस अरब) ।
थुणिज्जइ–स्तवन किया जाता है ।
निच्च–नित्य ।
विहाणि–प्रातःकालमें ।
जयउ–जय हो ।
सामिय !–हे स्वामिन् !
रिसह !–श्रीऋषभदेव !
सत्तुंजि–शत्रुञ्जय गिरिपर ।
उज्जिंति–गिरनार पर्वतपर ।
पहु नेमिजिण !–हे प्रभो नेमिजिन !
जयउ–आपकी जय हो ।
वीर !–हे महावीर स्वामिन् ! हे वीर !
सच्चउर–मंडण !–सत्यपुर (साँचोर)के शृङ्गाररूप ।
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय !–भृगुकच्छ (भरुच)में विराजित मुनिसुव्रतस्वामिन् !
महुरि पास ! × –मथुरामें विराजित हे पार्श्वनाथ !
दुह-दुरिअ – खंडण !–दुःख और पापका नाश करनेवाले !
अवर–अन्य (तीर्थङ्कर) ।
विदेहि–विदेहमें–महाविदेह क्षेत्रमें ।
तित्थयरा–तीर्थङ्कर ।
चिहुं–चारों ।
दिसि विदिसि–दिशाओं और विदिशाओंमें ।
जि–जो ।
के वि–कोई भी ।

× प्राचीन प्रतियोंमें यही पाठ मिलता है । विशेषके लिये देखो-प्र. टी. भा. १. (द्वितीय आवृत्ति) पृ. ३०० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीआणागय-संपइय–अतीत, अनागत और साम्प्रतिक, भूत, भविष्य और वर्तमानकालमें प्रादुर्भूत ।

वंदउं–मैं वन्दना करता हूँ ।

जिण–जिनोंको ।

सव्वे वि–सभीको ।

सत्ताणवइ-सहस्सा–सत्ताणवे हजार (९७०००) ।

लक्खा छप्पन्न–छप्पन लाख (५६०००००) ।

अट्ठकोडीओ–आठ करोड़ (८०००००००) ।

बत्तीस-सय–बत्तीस सौ (३२००) ।

बासीयाइं–बयासी (८२) ।

तिअलोए–तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) में ।

चेइए–जिन प्रासादोंको ।

वंदे–मैं वन्दन करता हूँ ।

पन्नरस-कोडि-सयाइं–पन्द्रहसौ करो (१५०००००००) ।

कोडी बायाल–बयालीस करोड़ । (४२०००००००)

लक्ख अडवन्ना–अट्ठावन लाख (५८०००००) ।

छत्तीस-सहस–छत्तीस हजार (३६०००) ।

असीइं–अस्सी (८०) ।

सासय-बिंबाइं-शाश्वत बिम्बोंको ।

पणमामि–मैं प्रणाम करता हूँ ।

अर्थ-संकलना—

जगत्में चिन्तामणि–रत्नके समान ! जगत्के स्वामी ! जगत्के गुरु ! जगत्का रक्षण करनेवाले ! जगत्के निष्कारण बन्धु ! जगत्के उत्तम सार्थवाह ! जगत्के सर्व भावोंको जाननेमें तथा प्रकाशित करनेमें निपुण ! अष्टापद पर्वतपर (भरत चक्रवर्तीद्वारा) जिनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयी हैं ऐसे ! आठों कर्मोंका नाश करनेवाले ! तथा अबाधित (धारा–प्रवाहसे) उपदेश देनेवाले ! ऋषभादि चौबीसों तीर्थङ्करों ! आपकी जय हो ।। १ ।।

कर्मभूमियोंमें—पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच महाविदेहमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचरण करते हुए वज्र–ऋषभनाराच संघननवाले जिनोंकी संख्या अधिक-से-अधिक एकसौ सत्तरकी होती है, सामान्य केवलियोंकी संख्या अधिक-से-अधिक नौ करोड़की होती है और साधुओंकी संख्या अधिक-से-अधिक नौ हजार करोड़ अर्थात् नब्बे अरबकी होती है। वर्तमान कालमें तीर्थङ्कर बीस हैं, केवलज्ञानी मुनि दो करोड़ हैं और श्रमणोंकी संख्या दो हजार करोड़ अर्थात् बीस अरब हैं जिनका कि नित्य प्रातःकालमें स्तवन किया जाता है ॥२॥

हे स्वामिन् ! आपकी जय हो ! जय हो ! शत्रुञ्जयपर स्थित हे ऋषभदेव ! उज्जयन्त (गिरनार) पर विराजमान हे प्रभो नेमिजिन ! साँचोरके शृङ्गाररूप हे वीर ! भरुचमें विराजित हे मुनिसुव्रत ! मथुरामें विराजमान, दुःख और पापका नाश करनेवाले हे पार्श्व-नाथ ! आपकी जय हो; तथा महाविदेह और ऐरावत आदि क्षेत्रोंमें एवं चार दिशाओं और विदिशाओंमें जो कोई तीर्थङ्कर भूतकालमें हो गये हों; वर्तमानकालमें विचरण करते हों और भविष्यमें इसके पश्चात् होनेवाले हों, उन सभीको मैं वन्दन करता हूँ ॥३॥

तीन लोकमें स्थित आठ करोड़ सत्तावन लाख, दोसौ बयासी–(८,५७,००,२८२) शाश्वत चैत्योंको मैं वन्दन करता हूँ ॥४॥

तीन लोकमें विराजमान पन्द्रह अरब, बयालीस करोड़, अट्ठावन लाख, छत्तीस हजार अस्सी–(१५,४२,५८,३६०८०) शाश्वत-बिम्बोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रका उपयोग भिन्न-भिन्न समयपर किये जानेवाले चैत्यवन्दनके प्रसङ्गपर होता है। इसकी पहली गाथामें चौबीस जिनवरोंकी स्तुति की गयी है, दूसरी गाथामें तीर्थङ्कर किस भूमिमें पैदा होते हैं, उनका संघनन (शरीररचना) कैसा होता है, उनकी उत्कृष्ट और जघन्य संख्या कितनी होती है तथा उस समय केवलज्ञानी और साधु कितने होते हैं, इसका वर्णन किया है। तीसरी गाथामें पाँच सुप्रसिद्ध तीर्थोंके मूल-नायकोंका वन्दन किया गया है। उसमें पहला नाम श्रीशत्रुञ्जयगिरिका है जहाँ श्रीआदिनाथ भगवान् विराजते हैं। दूसरा नाम श्रीउज्जयन्तगिरि अर्थात् गिरनारका है जहाँ श्रीनेमिनाथप्रभु विराजमान हैं। तीसरा नाम सत्यपुर अर्थात् साँचोरका है, जहाँपर श्रीमहावीर-जिनेश्वर विराजित हैं। चौथा नाम भृगुकच्छ अर्थात् भरुचका है जहाँ श्रीमुनिसुव्रतस्वामी विराजमान हैं और पाँचवाँ नाम मथुराका है कि जहाँपर एक समय श्रीपार्श्वनाथ-प्रभुकी भव्य चमत्कारिक मूर्ति विराजमान थी। चौथी गाथामें शाश्वत चैत्योंकी संख्या गिनकर उनकी वन्दना की गयी है तथा पाँचवीं गाथामें शाश्वत बिम्बोंकी संख्या गिनकर उनकी वन्दना की है।

यह चैत्यवन्दन छन्दोबद्ध होनेसे सुन्दर-पद्धतिसे गाया जाता है। इसकी भाषा अपभ्रंश है।

---

१२ तित्थवंदण-सुत्तं

['जं किंचि'-सूत्र]

मूल—

[गाहा]

जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए।
जाइं जिणबिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जं–जो ।
किंचि–कोई ।
नाम–यह पद वाक्यका अलङ्कार है ।
तित्थं–तीर्थ ।
सग्गे–देवलोकमें, स्वर्गमें ।
पायालि–पातालमें !
माणुसे लोए–तिर्यग्लोकमें, मनुष्यलोकमें ।
जाइं–जितने ।
जिणबिंबाइं–जिनबिम्ब ।
ताइं–उन ।
सव्वाइं–सबको ।
वंदामि–मैं वन्दन करता हूँ !

अर्थ–सङ्कलना—

स्वर्ग, पाताल और मनुष्यलोकमें जो कोई तीर्थ हों और जितने जिनबिम्ब हों, उन सबको मैं वन्दन करता हूँ ।

सूत्र–परिचय—

यह सूत्र तीनों लोकमें स्थित सर्वतीर्थ और सर्व जिनबिम्बोंकी वन्दना करनेके लिये उपयोगी है ।

---

१३ सक्कत्थय–सुत्तं

['नमोत्थु णं'–सूत्र]

मूल—

नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं ॥१॥
आइगराणं तित्थयराणं सयं–संबुद्धाणं ॥२॥
पुरिसुत्तमाणं पुरिस–सीहाणं पुरिस–वरपुंडरीआणं पुरिस–वरगंधहत्थीणं ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगुत्तमाणं लोग–नाहाणं लोग–हिआणं लोग–पईवाणं लोग–पज्जोअगराणं ॥४॥

अभय–दयाणं चक्खु–दयाणं मग्ग–दयाणं सरण–दयाणं बोहि–दयाणं ॥५॥

धम्म–दयाणं धम्म–देसयाणं धम्म–नायगाणं धम्म-सारहीण धम्म–वर–चाउरंत–चक्कवट्टीणं ॥६॥

अप्पडिहय–वर–नाण–दंसण–धराणं वियट्ट–छउमाणं ॥७॥

जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताण मोअगाणं ॥८॥

सव्वन्नूणं सव्व–दरिसीणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइ–नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअ–भयाणं ॥९॥

[गाहा]

जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले ।
संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥१०॥

शब्दार्थ—

नमोत्थु–नमस्कार हो ।
णं–वाक्यालङ्कारके रूपमें प्रयुक्त शब्द ।
अरिहंताणं–अरिहन्तोंको ।
भगवंताणं–भगवानोंको ।
आइगराणं–आदिकरोंको, श्रुत-धर्मकी आदि करनेवालोंको ।
तित्थयराणं–तीर्थङ्करोंको, चतुर्विध श्रमणसङ्घरूपी तीर्थकी स्थापना करनेवालोंको ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयं–संबुद्धाणं–स्वयं सम्बुद्धोंको, स्वयं बोध प्राप्त किये हुओंको ।

पुरिसुत्तमाणं–पुरुषोत्तमोंको, पुरुषोंमें ज्ञानादि गुणोंसे उत्तमोंको ।

पुरिस-सीहाणं–पुरुषोंमें सिंह–समान निर्भयोंको ।

पुरिस–वरपुंडरीआणं – पुरुषोंमें उत्तम श्वेतकमलके समान लेप रहितोंको (निर्लेपोंको) ।

पुरिस-वरगंधहत्थीणं – पुरुषोंमें सात प्रकारकी ईतियाँ दूर करनेमें गन्धहस्ती–सदृशोंको ।

लोगुत्तमाणं–जो लोकमें उत्तम हैं उनको ।

लोग–नाहाणं–लोकनाथोंको ।

लोग–हिआणं–लोकका हित करनेवालोंको ।

लोग–पईवाणं–लोकके दीपोंको ।

लोग-पज्जोअगराणं–लोकमें प्रकाश करनेवालोंको ।

अभय–दयाणं–अभय प्रदान करनेवालोंको ।

चक्खु–दयाणं–नेत्र प्रदान करनेवालोंको, श्रद्धारूपी नेत्रोंका दान करनेवालोंको ।

मग्ग–दयाणं–मार्ग दिखानेवालोंको ।

सरण–दयाणं–शरण देनेवालोंको ।

बोहि–दयाणं–बोधिका लाभ देनेवालोंको ।

जिन–प्रणीत धर्मकी प्राप्तिको 'बोधि' कहते हैं ।

धम्म–दयाणं–धर्म समझानेवालोंको ।

धम्म–देसयाणं–धर्मकी देशना देनेवालोंको ।

धम्म-नायगाणं–धर्मके सच्चे नायकोंको ।

धम्म-सारहीणं–धर्मके सारथियोंको, धर्मरूपी रथको चलानेमें निष्णात सारथियोंको ।

धम्म– वर –चाउरंत– चक्कवट्टीणं–धर्मरूपी चतुरन्तचक्र धारण करनेवालोंको, चार गतिका नाश करनेवाले तथा धर्मचक्रके प्रवर्त्तक चक्रवर्तियोंको ।

वर–श्रेष्ठ। चाउरंत–चक्कवट्टी–चार गतिका नाश करनेवाले, धर्मचक्रके प्रवर्तक चक्रवर्ती ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पडिहय- वर-नाण - दंसण-धराणं–जो नष्ट नहीं हो ऐसे श्रेष्ठ केवलज्ञान तथा केवलदर्शनको धारण करनेवाले हैं उनको। अप्पडिहय–नष्ट नहीं हो ऐसा। नाण-ज्ञान। दंसण–दर्शन।

वियट्ट–छउमाणं–जिनकी छद्मस्थता चली गयी है उनको, छद्मस्थतासे रहितोंको।

जिणाणं जावयाणं–जीतनेवालोंको तथा जितानेवालोंको, जो स्वयं जिन बने हुए हैं तथा दूसरोंको भी जिन बनानेवाले हैं उनको।

तिन्नाणं तारयाणं–जो संसार-समुद्रसे पार होगये हैं, तथा दूसरोंको भी पार पहुँचानेवाले हैं उनको।

बुद्धाणं बोहयाणं–जो स्वयं बुद्ध हैं तथा दूसरोंको भी बोध देनेवाले हैं उनको।

मुत्ताणं-मोअगाणं–जो मुक्त हैं और दूसरोंको मुक्ति दिलानेवाले हैं, उनको।

सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं–सर्वज्ञोंको, सर्वदर्शियोंको।

सिवमयलमरुयमणंतमक्खयम-व्वाबाहमपुणरावित्ति–शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति।

शिव–उपद्रवोंसे रहित। अयल-स्थिर। अरुय–व्याधि और वेदनासे रहित। अणंत–अन्त–रहित। अक्खय–क्षयरहित। अव्वाबाह-कर्म-जन्य पीडाओंसे रहित। अपुणरावित्ति-जहाँ जानेके बाद वापस आना नहीं रहता ऐसा।

सिद्धिगइ-नामधेयं–सिद्ध गति नामवाले।

ठाणं–स्थानको।

संपत्ताणं–प्राप्त किये हुओंको।

नमो–नमस्कार हो।

जिणाणं–जिनोंको।

जिअ-भयाणं–भय जीतनेवालोंको।

जे–जो।

अ–और।

अईआ सिद्धा–भूतकालमें सिद्ध हुए हैं।

भविस्संति–होंगे।

(अ)णागए काले–भविष्यकालमें।

संपइ–वर्तमानकालमें।

अ–तथा।

वट्टमाणा–वर्तमान।

सव्वे–सबको।

तिविहेण–मन, वचन और कायसे।

वंदामि–मैं वन्दन करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

नमस्कार हो अरिहन्त भगवानोंको ॥१॥

जो श्रुतधर्मकी आदि करनेवाले हैं, चतुर्विध श्रमणसङ्घरूपी तीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं और स्वयं बोध प्राप्त किए हुए हैं ॥२॥

जो पुरुषोंमें ज्ञानादि गुणोंसे उत्तम हैं, सिंह—समान निर्भय हैं, उत्तम श्वेत-कमलके समान निर्लेप हैं, तथा सात प्रकारकी ईतियाँ दूर करनेमें गन्धहस्ती-सदृश प्रभावशाली हैं ॥३॥

जो लोकमें उत्तम हैं, लोकमें नाथ हैं, लोकके हितकारी हैं, लोकके प्रदीप हैं, और लोकमें प्रकाश करनेवाले हैं ॥४॥

जो अभय देनेवाले हैं, श्रद्धारूपी नेत्रोंका दान करनेवाले हैं, मार्ग दिखानेवाले हैं, शरण देनेवाले हैं और बोधिका लाभ देनेवाले हैं ॥५॥

जो धर्मको समझानेवाले हैं, धर्मकी देशना देनेवाले हैं, धर्मके सच्चे स्वामी हैं, धर्मरूपी रथको चलानेमें निष्णात सारथी हैं तथा चार गतिका नाश करनेवाले धर्मचक्रके प्रवर्त्तक चक्रवर्ती हैं ॥६॥

जो नष्ट नहीं हो ऐसे केवलज्ञान एवं केवलदर्शनको धारण करनेवाले हैं तथा छद्मस्थतासे रहित हैं ॥७॥

जो स्वयं जिन बने हुए हैं और दूसरोंको भी जिन बनानेवाले हैं; जो संसार-समुद्रसे पार होगये हैं और दूसरोंको भी पार पहुँचानेवाले हैं; जो स्वयं बुद्ध हैं तथा दूसरोंको भी बोध देनेवाले हैं; जो मुक्त हैं तथा दूसरोंको मुक्ति दिलानेवाले हैं ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा शिव, स्थिर, व्याधि और वेदनासे रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति अर्थात् जहाँ जानेके बाद संसारमें वापस आना नहीं रहता, ऐसे सिद्धगति नामक स्थानको प्राप्त किये हुए हैं, उन जिनोंको–भय जीतनेवालोंको नमस्कार हो ॥९॥

जो भूतकालमें सिद्ध होगये हैं, जो भविष्यकालमें सिद्ध होनेवाले हैं तथा जो वर्तमानकालमें अरिहन्तरूपमें विद्यमान हैं, उन सबको मन, वचन और कायसे मैं वन्दन करता हूँ ॥१०॥

सूत्र–परिचय—

जब जिनदेव अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् देवलोकसे च्युत होकर माताके गर्भमें आते हैं, तब शक्र (इन्द्र) महाराज इस सूत्रके द्वारा उनका स्तवन करते हैं, इसीसे यह सूत्र ' शक्रस्तव ' कहाता है । इस सूत्रका दूसरा नाम ' प्रणिपात–दण्डक ' है ।

जिनदेव (अरिहन्त)का स्वरूप

प्रश्न—जिन कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर—चार प्रकारके :–नामजिन, स्थापनाजिन, द्रव्यजिन और भावजिन ।

प्रश्न—नामजिन किसे कहते हैं ?

उत्तर—ऋषभ, अजित आदि जिनके नाम हों, उनको नामजिन कहते हैं ।

प्रश्न—स्थापनाजिन किसे कहते हैं ?

उत्तर—सुवर्ण, रत्न, पाषाण आदिकी जिनप्रतिमाओंको स्थापनाजिन कहते हैं ।

प्रश्न—द्रव्यजिन किसे कहते हैं ?

उत्तर—भविष्यमें होनेवाले श्रेणिक आदिके जीवोंको द्रव्यजिन कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—भावजिन किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो केवलज्ञान प्राप्त-करके, अर्हत् बनकर समवसरणमें विराजित हों, उनको भावजिन कहते हैं ।

प्रश्न—शक्रस्तवमें कौनसे जिनोंकी वन्दना की गयी है ?

उत्तर—भावजिनोंकी । इसकी अन्तिम गाथामें द्रव्यजिनोंकी भी वन्दना-स्तुति की गयी है ।

प्रश्न—ये भावजिन कैसे हैं ?

उत्तर—अरिहन्त (अर्हत्) हैं, भगवान् हैं ।

प्रश्न—अरिहन्त (अर्हत्) किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो महापुरुष मनुष्यों, राजाओं तथा देवोंसे पूजे जाने योग्य हों उनको अर्हत् कहते हैं ।

प्रश्न—भगवान् किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो भगवाले हों उनको भगवान् कहते हैं । भग-अर्थात् ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री, धर्म और प्रयत्न (पुरुषार्थ) की सम्पूर्णता ।

प्रश्न—अरिहन्त भगवानोंकी वन्दना-स्तुति करनेका कारण क्या है ?

उत्तर—कारण यह है कि वे आदिकर हैं, तीर्थङ्कर हैं तथा स्वयंसम्बुद्ध हैं ।

प्रश्न—आदिकर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो आदि करें उन्हें आदिकर कहते हैं । अरिहन्त भगवान् केवल-ज्ञानकी प्राप्तिके पश्चात्-'**उपपन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा-** (उत्पन्न होता है, नष्ट होता है और फिर भी स्थिर रहता है । जगत्के स्वभावका यह वर्णन है) इस त्रिपदीद्वारा नवीन द्वादशाङ्गी अथवा नवीन शास्त्रोंकी आदि करते हैं, इसलिए उन्हें आदिकर कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—तीर्थङ्कर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो तीर्थकी स्थापना करें उन्हें तीर्थङ्कर कहते हैं। तीर्थ दो प्रकार-के हैं :—द्रव्यतीर्थ और भावतीर्थ। इनमें द्रव्यतीर्थसे नदियाँ आदि पार की जा सकती हैं और भावतीर्थसे संसार–सागर पार हो सकते हैं। अरिहन्त ऐसे ही भावतीर्थकी स्थापना करते हैं, इसलिये उन्हें तीर्थङ्कर कहते हैं। भावतीर्थ अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाका बना हुआ चतुर्विधसङ्घ, प्रवचन अथवा प्रथम गणधर।

प्रश्न—स्वयंसम्बुद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो गुरूपदेशके बिना अपने आप ही सम्पूर्ण बोध प्राप्त किये हुए हों, उन्हें स्वयंसम्बुद्ध कहते हैं।

प्रश्न—अरिहन्त भगवानोंकी वन्दना–स्तुति करनेका विशेष कारण क्या है ?

उत्तर—अरिहन्त भगवानोंकी वन्दना–स्तुति करनेका विशेष कारण यह है कि वे पुरुषोत्तम हैं, पुरुष–सिंह हैं, पुरुष–वरपुण्डरीक हैं तथा पुरुष–वरगन्धहस्ती हैं।

प्रश्न—पुरुषोत्तम किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पुरुषोंमें उत्तम हों। अरिहन्त ज्ञानादि–गुणोंसे सब पुरुषोंमें उत्तम होते हैं।

प्रश्न—पुरुष–सिंह किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पुरुषोंमें सिंहके समान निर्भय हो। अरिहन्त भगवान् सिंहके समान निर्भय होकर सत्य धर्मकी गर्जना करते हैं।

प्रश्न—पुरुष–वरपुण्डरीक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ–कमलके समान निर्लेप हो। अरिहन्त भगवान् संसारमें उत्पन्न होनेपर भी संसारके भोगोंमें आसक्त न हो कमल-पत्रके समान निर्लिप्त रहकर पवित्र–जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रश्न—पुरुष–वरगन्धहस्ती किसे कहते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—जो पुरुषोंमें उत्तम गन्धहस्तीके सदृश प्रभावशाली हो। जैसे गन्धहस्तीका आगमन होते ही उस प्रदेशसे छोटे हाथी भग जाते हैं, वैसे ही अरिहन्त भगवानोंका विहार होते ही उस प्रदेशसे अतिवृष्टि, दुष्काल, महामारी आदि सात प्रकारकी ईतियाँ भग जाती हैं।

प्रश्न—अरिहन्त भगवान् लोकके लिए किस तरह उपयोगी होते हैं ?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् लोकोत्तम होते हैं, अतः अनेक रीतिसे उपयोगी होते हैं।

प्रश्न—उनके कुछ उदाहरण देंगे ?

उत्तर—अवश्य। अरिहन्त भगवान् लोकके नाथ बनते हैं अर्थात् रक्षण करने योग्य सर्व–प्राणियोंका योग–क्षेम करते हैं (योग अर्थात् अप्राप्यवस्तु प्राप्त करा देना और क्षेम अर्थात् प्राप्तवस्तुका संरक्षण करना।) और वे लोकहितकारी बनते हैं, अर्थात् सम्यक्प्ररूपणा द्वारा व्यवहारराशिमें आगत सर्वजीवोंका हित करते हैं। तथा वे लोकप्रदीप होते हैं, अर्थात् सर्व संज्ञी प्राणियोंके हृदयसे मोहका गाढ़ अन्धकार दूर करके उन्हें सम्यक्त्व प्रदान करते हैं और वे लोकप्रद्योतकर भी होते हैं, अर्थात् चौदह पूर्वधरोंके भी सूक्ष्म सन्देहोंको दूर करके, उन्हें विशेष बोध देकर ज्ञानका प्रकाश करते हैं। इस प्रकार अरिहन्त भगवान् लोकके लिये अनेक प्रकारसे उपयोगी होते हैं।

प्रश्न—अरिहन्त भगवानोंकी उपयोगिता कितने हेतुओंसे सिद्ध होती है ?

उत्तर—पाँच हेतुओंसे।

प्रश्न—वह किस प्रकार ?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् अभयदान देते हैं; अर्थात् प्राणियोंको सात प्रकारके भयोंसे मुक्त करते हैं। चक्षुदान देते हैं; अर्थात् आध्यात्मिक-जीवके लिये आवश्यक श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। मार्गका दर्शन कराते हैं; अर्थात् कर्मका विशिष्ट क्षयोपशम हो ऐसा मार्ग बताते हैं। शरण प्रदान करते हैं ; अर्थात् तत्त्वचिन्तनरूप सच्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरण प्रदान करते हैं। और बोधि प्राप्त कराते हैं। ऐसे पाँच हेतुओंसे अरिहन्त भगवान्‌की उपयोगिता सिद्ध होती है।

प्रश्न—अरिहन्त भगवानोंकी विशिष्ट उपयोगिता कितने हेतुओंसे सिद्ध होती है?

उत्तर—पाँच हेतुओंसे।

प्रश्न—वह किस प्रकार?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् धर्मका दान करते हैं; अर्थात् सर्वविरति और देशविरतिरूप चारित्र-धर्म प्रदान करते हैं। धर्मकी देशना देते हैं; अर्थात् प्रौढ प्रभाववाली चमत्कारिक वाणीद्वारा धर्मका रहस्य समझाते हैं। धर्मके नायक बनते हैं; अर्थात् चारित्र-धर्मको प्राप्त होते हैं, उसका निरतिचार पालन करते हैं और उसका अन्योंको दान देते हैं। धर्मके सारथी बनते हैं, अर्थात् धर्मसङ्घका कुशलतापूर्वक सञ्चालन करते हैं; और धर्मके चतुरन्त चक्रवर्ती बनते हैं। अर्थात् चार गतिको नष्ट करनेवाले धर्मचक्रका प्रवर्त्तन करते हैं। इस प्रकार इन पाँच हेतुओंसे अरिहन्त भगवानोंकी विशिष्ट उपयोगिता सिद्ध होती है।

प्रश्न—अरिहन्त भगवानोंका स्वरूप कैसा है?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् कभी नष्ट न हो, ऐसे केवलज्ञान और केवलदर्शनवाले होते हैं तथा छद्मस्थतासे रहित होते हैं। जिनके ज्ञानादिगुणोंके आगे घातिकर्मका आवरण हो, वे छद्मस्थ कहलाते हैं।

प्रश्न—अरिहन्त भगवान् मुमुक्षुओंका विकास किस सीमातक करते हैं?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् रागादि दोषोंको जीतकर जिन बने हुए हैं, अतः मुमुक्षुओंको भी रागादिदोषसे जिता देते हैं; वे संसार-समुद्र तिरकर तीर्ण बने हुए हैं, अतः मुमुक्षुओंको भी संसार-सागरसे तिरा देते हैं; वे अज्ञानका नाशकर बुद्ध बने हुए हैं, अतः मुमुक्षुओंको भी बोध प्राप्त कराते हैं; तथा घातिकर्मका नाशकर मुक्त बने हुए हैं, अतः मुमुक्षुओंको भी घातिकर्मसे मुक्त बनाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—अरिहन्त भगवान् चरमदेह (अन्तिम शरीर) छोड़नेके बाद कौनसा स्थान प्राप्त करते हैं ?

उत्तर—अरिहन्त भगवान् चरमदेह छोड़नेके बाद जहाँ किसी प्रकारका उपद्रव नहीं, जहाँ किसी प्रकारकी अस्थिरता नहीं, जहाँ किसी तरहका रोग नहीं, जहाँ अन्त आनेकी कोई शक्यता नहीं, जहाँ थोड़ा-सा भी क्षय नहीं, जहाँ किसी भी प्रकारकी पीड़ा नहीं और जहाँ जानेके पश्चात् संसारमें पुनः वापस आना नहीं पड़ता, ऐसा सिद्धिगति नामका स्थान प्राप्त करते हैं।

प्रश्न—द्रव्यजिनोंकी किस रीतिसे वन्दना-स्तुति की हुई है ?

उत्तर—अतीत कालमें जो जिन हो गये हों, भविष्यकालमें जो जिन होनेवाले हों और वर्तमानकालमें जो विद्यमान हों, उन सबकी मन, वचन और कायसे वन्दना-स्तुति की हुई है।

प्रश्न—इस तरह भावजिन तथा द्रव्यजिनोंकी वन्दना-स्तुति करनेका फल क्या है ?

उत्तर—दर्शन-गुणकी शुद्धि और उससे उत्तरोत्तर आत्माका विकास।

---

१४ सव्व–चेइयवंदण–सुत्तं

['जावंति चेइयाइं'–सूत्र]

मूल—

[गाहा]

जावंति चेइयाइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जावंति–जितने ।
चेइयाइं–चैत्य, जिनबिम्ब ।
उड्ढे–ऊर्ध्वलोकमें ।
अ–और ।
अहे–अधोलोकमें ।
अ–तथा ।
तिरिअलोए–तिर्यग्लोकमें, मनुष्यलोकमें ।
अ–भी ।
सव्वाइं ताइं–उन सबको ।
वंदे–मैं वन्दन करता हूँ ।
इह–यहाँ ।
संतो–रहते हुए ।
तत्थ–वहाँ ।
संताइं–रहे हुओंको ।

अर्थ–सङ्कलना—

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मनुष्यलोकमें जितने भी चैत्य—जिनबिम्ब हों, उन सबको यहाँ रहते हुए और वहाँ रहते हुओंको मैं वन्दन करता हूँ ।

सूत्र–परिचय—

यह सूत्र तीनों लोकोंमें स्थित जिनचैत्योंको वन्दन करनेके लिये उपयोगी है और आशयकी शुद्धि करनेवाला होनेसे इसने प्रणिधानत्रिकमें स्थान प्राप्त किया है ।

---

१५ सव्वसाहु–वंदण–सुत्तं

['जावंत केवि साहू'–सूत्र]

मूल—

[गाहा]

जावंत केवि साहू, भरहेरवय–महाविदेहे अ ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड-विरयाणं ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जावंत केवि–जो कोई भी ।
साहू–साधु ।
भरहेरवय-महाविदेहे – भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रमें ।
अ–और ।
सव्वेसिं तेसिं–उन सबको ।
पणओ–नमन करता हूँ ।
तिविहेण–करना, कराना और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारोंसे ।
तिदंड-विरयाणं–जो तीन दण्डसे विराम पाये हुए हैं, उनको ।

तिदंड–मनसे पाप करना वह मनोदण्ड, वचनसे पाप करना वह वचनदण्ड और कायसे पाप करना वह कायदण्ड ।

अर्थ-सङ्कलना—

भरत—ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रमें स्थित जो कोई भी साधु मन, वचन और कायसे पाप-प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं, साथ ही करते हुएका अनुमोदन नहीं करते, उनको मैं नमन करता हूँ ।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रका उपयोग सर्व साधुओंको वन्दन करनेके लिये होता है और आशयकी शुद्धि करनेवाला होनेसे इसने प्रणिधानत्रिकमें स्थान प्राप्त किया है ।

---

१६ पञ्चपरमेष्ठि–नमस्कार–सूत्रम्

['नमोऽर्हत्'–सूत्र]

मूल—

नमोऽर्हत्–सिद्धाचार्योपाध्याय–सर्वसाधुभ्यः ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

नमो–नमस्कार हो ।
अर्हत्–सिद्धाचार्योपाध्याय–सर्वसाधुभ्यः–अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व-साधुओंको ।

अर्थ-सङ्कलना—

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व–साधुओंको नमस्कार हो ।

सूत्र–परिचय—

इस सूत्रसे पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार किया जाता है ।

---

१७ उवसग्गहर–थोत्तं

[उपसर्गहर–स्तोत्र]

मूल—

[गाहा]

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्म--घण--मुक्कं ।
विसहर-विस-निन्नासं, मंगल-कल्लाण--आवासं ॥१॥
विसहर--फुलिंग--मंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।
तस्स गह-रोग-मारी-दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥२॥
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।
नर--तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्ख--दोगच्चं ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि-कप्पपायव-ब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥
इअ संथुओ महायस ! भत्ति-भर-निब्भरेण हिअएण ।
ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास-जिणचंद ! ॥५॥

शब्दार्थ—

उवसग्गहरं—उपद्रवोंको दूर करनेवाले ।

पासं—समीप, भक्तजनोंके समीप ।

पासं—तेईसवें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌को ।

वंदामि—मैं वन्दन करता हूँ ।

कम्म-घण-मुक्कं—कर्म-समूहसे मुक्त बने हुए ।
कम्म—आत्माकी शक्तियोंका आवरण करनेवाली एक प्रकारके पुद्‌गलकी वर्गणा । घण—समूह । मुक्क—छूटे हुए, रहित ।

विसहर-विस-निन्नासं – सर्पके विषका नाश करनेवाले, मिथ्यात्व आदि दोषोंको दूर करनेवाले ।

मंगल-कल्लाण-आवासं—मङ्गल और कल्याणके गृहरूप ।

विसहर-फुलिंग-मंतं—'विसहर-फुलिंग' नामक मन्त्रको ।

कंठे धारेइ—कण्ठमें धारण करता है, स्मरण करता है ।

जो—जो ।

सया—नित्य ।

मणुओ—मनुष्य ।

तस्स—उसके ।

गह-रोग-मारी-दुट्ठजरा—ग्रहचार, महारोग, मारण-प्रयोग अथवा महामारी आदि उत्पात तथा विषमज्वर ।
गह—ग्रहचार, ग्रहोंका अनुचित प्रभाव । रोग—सोलह महारोग । मारी—अभिचार या मारण—प्रयोगसे सहसा फूट निकलनेवाले रोग अथवा महामारी । दुट्ठजरा—दुष्टज्वर, कफज्वर, विषमज्वर, सन्निपात आदि ।

जंति—हो जाते हैं ।

उवसामं—शान्त ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिट्ठउ–रहे ।
दूरे–दूर ।
मंतो–(यह) मन्त्र ।
तुज्झ–आपको किया हुआ ।
पणामो–प्रणाम ।
वि–ही ।
बहुफलो–बहुत फल देनेवाला ।
होइ–होता है ।
नर-तिरिएसु–मनुष्य (गति) और तिर्यञ्चगतिमें ।
वि–भी ।
जीवा–जीव ।
पावंति–प्राप्त करते हैं ।
न–नहीं ।
दुक्ख - दोगच्चं – दुःख तथा दुर्दशाको ।
तुह–आपका ।
सम्मत्ते लद्धे–सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर ।
चिंतामणि-कप्पपायव-ब्भहिए–चिन्तामणि रत्न और कल्प-वृक्षसे भी अधिक ।
पावंति–प्राप्त करते हैं ।
अविग्घेणं–सरलतासे ।
जीवा–जीव ।
अयरामरं ठाणं–अजरामर-स्थानको, मुक्तिपदको ।
इअ–इस प्रकार ।
संथुओ–स्तुति की है ।
महायस !–हे महायशस्विन् !
भत्ति– भर– निब्भरेण – भक्तिसे भरपूर ।
भत्ति–भक्ति । भर–समूह । निब्भर–भरा हुआ ।
हिअएण–हृदयसे ।
ता–अत एव ।
देव !–हे देव !
दिज्ज–प्रदान करो ।
बोहिं–बोधि, सम्यक्त्व ।
भवे भवे–प्रत्येक भवमें ।
पास जिणचंद !–हे पार्श्वजिन-चन्द्र ! जिनेश्वरोंमें चन्द्र–समान पार्श्वनाथ !

अर्थ–सङ्कलना—

जो सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूर करनेवाले हैं, भक्तजनोंके समीप हैं, कर्म—समूहसे मुक्त बने हुए हैं, जिनका नाम—स्मरण सर्पके विषका नाश करता है, तथा मिथ्यात्व आदि दोषोंको दूर करता है और जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मङ्गल और कल्याणके गृहरूप हैं, ऐसे श्रीपार्श्वनाथको मैं वन्दन करता हूँ ।।१।।

[श्रीपार्श्वनाथ प्रभुके नामसे युक्त] विसहर—फुलिंग नामक मन्त्रका जो मनुष्य नित्य स्मरण करता है, उसके दुष्टग्रह, महारोग, मारण—प्रयोग अथवा महामारी आदि उत्पात और दुष्टज्वर शान्त हो जाते हैं ।।२।।

यह मन्त्र तो दूर रहे, हे पार्श्वनाथ ! आपको किया हुआ प्रणाम ही बहुत फल देनेवाला होता है । उसके द्वारा मनुष्य और तिर्यञ्च—गतिमें स्थित जीव किसी भी प्रकारके दुःख तथा दुर्दशा-को नहीं प्राप्त करते हैं ।।३।।

चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्षसे भी अधिक शक्ति धारण करनेवाले आपके सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेपर जीव सरलतासे मुक्ति-पदको प्राप्त करते हैं ।।४।।

मैंने इस प्रकार भक्तिसे भरपूर हृदयसे आपकी स्तुति की है, अतएव हे देव ! हे महायशस्विन् ! हे पार्श्वजिनचन्द्र ! मुझे प्रत्येक भवमें अपनी बोधि—अपना सम्यक्त्व प्रदान करो ।।५।।

सूत्र-परिचय—

इस स्तोत्रमें श्रीपार्श्वनाथ भगवान्के गुणोंकी स्तुति बहुत सुन्दर रीतिसे की गयी है और इसका उपयोग चैत्यवन्दनमें स्तवनके रूपमें होता है । नव-स्मरणमें इसकी संख्या दूसरी है ।

इस स्तोत्रकी रचनाके विषयमें निम्न कथा प्रचलित है—भद्रबाहु-स्वामीके वराहमिहिर नामका एक भाई था । उसने भी जैन-दीक्षा ली थी;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु किसी कारणवश बादमें वह त्याग दी और ज्योतिष शास्त्र के द्वारा अपनी महत्ता प्रदर्शित कर जैन–साधुओंकी निन्दा करने लगा। एक समय उसने राजाके पुत्रकी जन्मकुण्डली बनायी और उसमें लिखा कि 'पुत्र सौ वर्षका होगा !' राजाको यह बात सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ और वराहमिहिरका बहुत सम्मान किया। इस प्रसङ्गका लाभ लेकर वराहमिहिरने राजाके कान भर दिये कि महाराज ! आपके यहाँ कुँवरका जन्म होनेसे सभी प्रसन्न होकर आपसे मिलने आये किन्तु जैनोंके आचार्य भद्रबाहु नहीं आये, उसका कारण तो जानिये ? राजाने उस सम्बन्धमें खोज की तो श्रीभद्रबाहुस्वामीने उत्तर दिया कि निष्कारण दो बार क्यों जाना–आना ? यह पुत्र तो सातवें दिन बिल्लीके द्वारा मृत्युको प्राप्त होनेवाला है। राजाने यह सुनकर पुत्ररक्षाके लिये चौकी–पहरे रखे और गाँवकी सभी बिल्लियाँ दूर भेज दीं। परन्तु हुआ ऐसा कि सातवें दिन धात्री (धाय) दरवाजेमें बैठी हुई पुत्रको दूध पिला रही थी, इतनेमें बालकपर अकस्मात् लकड़ीकी अर्गला (आगल) गिर पड़ी और वह मरणको प्राप्त हुआ। वराहमिहिर तो इससे बहुत ही लज्जित हुआ। श्रीभद्रबाहु इस समय राजासे मिलने गये और संसारका स्वरूप समझाकर धैर्य दिया। राजाने उनके ज्योतिष–ज्ञानकी प्रशंसा की और साथ–ही यह भी पूछा कि बिल्लीसे मरण होगा यह बात सत्य क्यों नहीं हुई ? इसी समय सूरिजीने लकड़ीकी आगल मँगायी तो उसके सिरेपर बिल्लीका मुँह खुदा हुआ था।

इस प्रसङ्गसे वराहमिहिरका द्वेष बढ़ा और वह मरकर व्यन्तरदेव बनकर जैनसङ्घमें महामारी–प्लेग जैसे रोग फैलाने लगा। परन्तु श्रीभद्रबाहुस्वामीने 'उवसग्गहरं' स्तोत्र बनाकर सङ्घको कण्ठस्थ करनेके लिये कहा, उससे वह उपद्रव दूर हुआ, तबसे यह स्तोत्र प्रचलित है।

इस स्तोत्रमें अनेक चमत्कारी मन्त्र–यन्त्र छिपे हुए हैं, जो इसपर रचित विविध टीकाओंसे जाने जा सकते हैं। इस स्तोत्रकी मूल गाथाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच ही हैं, इसलिये अधिक गाथावाले जो स्तोत्र मिलते हैं, वे बादमें बने हुए हैं। +

---

१८ परिहारण--सुत्तं

['जय वीयराय'--सूत्र]

मूल—

[गाहा]

जय वीयराय ! जग–गुरु !, होउ ममं तुह पभावओ भयवं ! ।
भव–निव्वेओ मग्गाणुसारिआ इट्ठफल–सिद्धी ॥ १ ॥

लोग–विरुद्ध–च्चाओ, गुरुजण–पूआ परत्थकरणं च ।
सुहगुरु–जोगो तव्वयण–सेवणा आभवमखंडा ॥ २ ॥

वारिज्जइ जइ वि नियाण–बंधणं वीयराय ! तुह समये ।
तह वि मम हुज्ज सेवा, भवे भवे तुम्ह चलणाणं ॥ ३ ॥

दुक्ख–खओ कम्म–खओ, समाहि–मरणं च बोहि–लाभो अ ।
संपज्जउ मह एअं, तुह नाह ! पणाम–करणेणं ॥ ४ ॥

[अनुष्टुप्]

सर्व–मङ्गल–माङ्गल्यं, सर्व–कल्याण–कारणम् ।
प्रधानं सर्व–धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥ ५ ॥

+ 'उवसग्गहरं' स्तोत्रका विशेष रहस्य जाननेके लिये देखिये– प्रबोधटीका भाग पहला, सूत्र १७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जय—आपकी जय हो ।
वीयराय !—हे वीतराग प्रभो !
जग—गुरु !—हे जगद्गुरो !
होउ—हो ।
ममं—मुझे ।
तुह—आपके ।
प्रभावओ—प्रभावसे, सामर्थ्यसे ।
भयवं !—हे भगवन् !
भव—निव्वेओ—संसारके प्रति वैराग्य ।
मग्गाणुसारिआ – मोक्षमार्गमें चलनेकी शक्ति ।
इट्ठफल-सिद्धी—इष्टफलकी सिद्धि ।
लोग—विरुद्ध—च्चाओ—लोक-निन्दा हो ऐसी प्रवृत्तिका त्याग, लोकनिन्दा हो ऐसा कोई भी कार्य करनेके लिये प्रवृत्त न होना ।
गुरुजण—पूआ—धर्माचार्य तथा मातापितादि बड़े व्यक्तियोंके प्रति परिपूर्ण आदर—भाव ।
परत्थकरणं—दूसरोंका भला करने-की तत्परता ।
च—और ।
सुहगुरु—जोगो—सद्गुरुका योग ।
तव्वयण—सेवणा—उनकी आज्ञा-नुसार चलनेकी शक्ति ।
आभवं—जहाँतक संसारमें परि-भ्रमण करना पड़े वहाँतक ।
अखंडा—अखण्ड रीतिसे ।
वारिज्जइ—निषेध किया है ।
जइ वि—यद्यपि ।
नियाण—बंधणं – निदान –बन्धन, फलकी याचना ।
वीयराय !—हे वीतराग !
तुह—आपके ।
समये—शास्त्रमें, प्रवचनमे ।
तह वि—तथापि ।
मम—मुझे ।
हुज्ज—प्राप्त हो ।
सेवा—उपासना ।
भवे भवे—प्रत्येक भवमें ।
तुम्ह—आपके ।
चलणाणं—चरणोंकी ।
दुक्ख—खओ—दुःखका नाश ।
कम्म—खओ—कर्मका नाश ।
समाहि-मरणं—शान्तिपूर्वक मरण ।
च—और ।
बोहि—लाभो—बोधि—लाभ, सम्य-क्त्वकी प्राप्ति ।
अ—और ।
संपज्जउ—उत्पन्न हो ।
मह—मुझे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एअं–ऐसी परिस्थिति ।
तुह–आपको ।
नाह !--हे नाथ !
पणाम–करणेणं–प्रणाम करनेसे ।
सर्व--मङ्गल--माङ्गल्यं–सर्व मङ्गलोंका मङ्गलरूप ।
सर्व--कल्याण–कारणम्–सर्व कल्याणोंका कारणरूप ।
प्रधानं–श्रेष्ठ ।
सर्व--धर्माणां–सर्व धर्मोंमें ।
जैनं–जैन ।
जयति--विजयी है, जयको प्राप्त हो रहा है ।
शासनम्--शासन ।

अर्थ--सङ्कलना—

हे वीतराग प्रभो ! हे जगद्गुरो ! आपकी जय हो । हे भगवन् ! आपके सामर्थ्यसे मुझे संसारके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो, मोक्षमार्गमें चलनेकी शक्ति प्राप्त हो और इष्टफलकी सिद्धि हो (जिससे मैं धर्मका आराधन सरलतासे कर सकूँ) ॥ १ ॥

हे प्रभो ! (मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे) मेरा मन लोकनिन्दा हो ऐसा कोई भी कार्य करनेको प्रवृत्त न हो, धर्माचार्य तथा मातापितादि बड़े व्यक्तियोंके प्रति परिपूर्ण आदर—भावका अनुभव करे और दूसरोंका भला करनेको तत्पर बने । और हे प्रभो! मुझे सद्गुरुका योग मिले, तथा उनकी आज्ञानुसार चलनेको शक्ति प्राप्त हो । यह सब जहाँतक मुझे संसारमें परिभ्रमण करना पड़े, वहाँ तक अखण्ड रीतिसे प्राप्त हो ॥ २ ॥

हे वीतराग ! आपके प्रवचनमें यद्यपि निदान—बन्धन अर्थात् फलकी याचनाका निषेध है, तथापि मैं ऐसी इच्छा करता हूँ कि प्रत्येक भवमें आपके—चरणोंकी उपासना करनेका योग मुझे प्राप्त हो ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे नाथ ! आपको प्रणाम करनेसे दुःखका नाश हो, कर्मका नाश हो, सम्यक्त्व मिले और शान्तिपूर्वक मरण हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो ॥ ४ ॥

सर्व मङ्गलोंका मङ्गलरूप, सर्व कल्याणोंका कारणरूप और सर्व धर्मोंमें श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन जयको प्राप्त हो रहा है ॥ ५ ॥

सूत्र-परिचय—

श्रावक और साधु दिन एवं रात्रिके भागमें जो चैत्यवन्दन करते हैं, उसमें यह सूत्र बोला जाता है । मनका प्रणिधान करनेमें यह सूत्र उपयोगी है, इसलिये यह 'पणिहाण-सूत्र' कहलाता है । इसमें वीतरागके समक्ष निम्न वस्तुओंकी प्रार्थना की जाती है:—

(१) भवनिर्वेद—फिर-फिरकर जन्म लेनेकी अरुचि ।

(२) मार्गानुसारिता—ज्ञानियोंद्वारा प्रदर्शित मोक्षमार्गमें चलनेकी शक्ति ।

(३) इष्टफल-सिद्धि—इच्छित फलकी प्राप्ति ।

(४) लोक-विरुद्ध-त्याग—अधिक मनुष्य निन्दा करें, ऐसे कार्योंका त्याग ।

(५) गुरुजनोंकी पूजा—धर्मगुरु, विद्यागुरु, बड़े व्यक्ति आदिकी पूजा ।

(६) परार्थकरण—परोपकार करनेकी वृत्ति ।

(७) सद्गुरुका योग ।

(८) सद्गुरुके वचनानुसार चलनेकी शक्ति ।

(९) वीतरागके चरणोंकी सेवा ।

(१०) दुःखका नाश ।

(११) कर्मका नाश ।

(१२) समाधि-मरण—शान्तिपूर्वक मृत्यु ।

(१३) बोधि-लाभ—सम्यक्त्वकी (जैन धर्मकी) प्राप्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९ चेइयथय-सुत्तं

['अरिहंत-चेइयाणं'-सूत्र]

मूल—

अरिहंत-चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं ।

वंदण-वत्तियाए पूअण-वत्तियाए सक्कार-वत्तियाए सम्माणवत्तियाए बोहिलाभ-वत्तियाए निरुवसग्ग-वत्तियाए,

सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं ॥

शब्दार्थ—

अरिहंत-चेइयाणं—अर्हत्-चैत्योंके, अर्हत् प्रतिमाओंके ।

चैत्य—बिम्ब, मूर्ति अथवा प्रतिमा।

करेमि—करता हूँ, करना चाहता हूँ।

काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग ।

वंदण-वत्तियाए—वन्दनके निमित्तसे, वन्दनका निमित्त लेकर ।

पूअण-वत्तियाए—पूजनके निमित्तसे, पूजनका निमित्त लेकर ।

सक्कार - वत्तियाए – सत्कारके निमित्तसे, सत्कारका निमित्त लेकर ।

सम्माण - वत्तियाए – सम्मानके निमित्तसे, सम्मानका निमित्त लेकर ।

बोहिलाभ-वत्तियाए—बोधिलाभके निमित्तसे, बोधिलाभका निमित्त लेकर ।

निरवसग्ग - वत्तियाए – मोक्षके निमित्तसे, मोक्षका निमित्त लेकर ।

सद्धाए—श्रद्धासे, इच्छासे ।

मेहाए—मेधासे, प्रज्ञासे ।

धिईए—धृतिसे, चित्तकी स्वस्थतासे।

धारणाए—ध्येयका स्मरण करनेसे, धारणासे ।

अणुप्पेहाए – बार बार चिन्तन करनेसे, अनुप्रेक्षासे ।

वड्ढमाणीए – वृद्धि पाती हुई, बढ़ती हुई ।

ठामि काउस्सग्गं – मैं कायोत्सर्ग करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

अर्हत् प्रतिमाओंके आलम्बनसे कायोत्सर्ग करनेकी इच्छा करता हूँ। वन्दनका निमित्त लेकर, पूजनका निमित्त लेकर, सत्कारका निमित्त लेकर, सम्मानका निमित्त लेकर, बोधिलाभका निमित्त लेकर, तथा मोक्षका निमित्त लेकर बढ़ती हुई इच्छासे, बढ़ती हुई प्रज्ञासे, बढ़ती हुई चित्तकी स्वस्थतासे, बढ़ती हुई धारणासे और बढ़ती हुई अनुप्रेक्षासे मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें अरिहन्तके चैत्योंको (स्थापनाजिनोंको) कायोत्सर्गद्वारा वन्दनादि करनेकी विधि बतलायी है, इसीसे यह 'चैत्यस्तव' कहाता है।

चैत्यस्तव

प्रश्न—चैत्य किसको कहते हैं ?

उत्तर—बिम्ब, मूर्ति अथवा प्रतिमाको। जिनमन्दिरको भी चैत्य कहा जाता है।

प्रश्न—चैत्य किसके बनाये जाते हैं ?

उत्तर—चैत्य अरिहन्त भगवान्‌के बनाये जाते हैं, क्योंकि मुख्य उपासना-आराधना उनकी ही की जाती है।

प्रश्न—अरिहन्तके चैत्य किस वस्तुके बनाये जाते हैं ?

उत्तर—अरिहन्तके चैत्य रत्न, स्वर्ण, पाषाण आदिके बनाये जाते हैं। वे देखनेमें बहुत ही सुन्दर होते हैं।

प्रश्न—अरिहन्तके चैत्यमें क्या विशेषता होती है ?

उत्तर—अरिहन्तके चैत्यमें विशेषता यह होती है कि उनका मुख-कमल प्रसन्न होता है, उनके नेत्रोंमें शान्तरस भरा हुआ होता है, उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथमें किसी प्रकारके अस्त्र–शस्त्र नहीं होते हैं, अतः वीतरागका अपूर्व दृश्य उपस्थित करता है ।

प्रश्न—अरिहन्तके चैत्योंकी उपासना किस रीतिसे की जाती है ?

उत्तर—अरिहन्तके चैत्योंकी उपासना अङ्गपूजा, अग्रपूजा और भावपूजा-द्वारा की जाती है ।

प्रश्न—अङ्गपूजा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जल, चन्दन, पुष्पादिसे अरिहन्तके अङ्गोंका पूजन करना, उसे अङ्गपूजा कहते हैं ।

प्रश्न—अग्रपूजा किसे कहते हैं ?

उत्तर—अरिहन्तके चैत्यके समक्ष अक्षत, फल, नैवेद्य, धूप, दीपादि रखना, उसे अग्रपूजा कहते हैं ?

प्रश्न—भावपूजा किसे कहते हैं ।

उत्तर—अरिहन्त भगवान्की स्तुति–प्रार्थना करना तथा उनका ध्यान धरना, उसे भावपूजा कहते हैं ।

प्रश्न—अरिहन्त भगवान्का ध्यान कैसे धरते हैं ?

उत्तर—उसके लिये प्रधानतया कायोत्सर्ग किया जाता है और उसमें अरिहन्त भगवान्के चैत्यका आलम्बन (सहारा) लिया जाता है ।

प्रश्न—आलम्बन लेनेका कारण क्या है ?

उत्तर—आलम्बन लेनेसे मन उनपर स्थिर होता है । यदि आलम्बन नहीं लें तो मन उनपर स्थिर नहीं होता ।

प्रश्न—अरिहन्त भगवान्के चैत्यका आलम्बन लेनेके पश्चात् क्या किया जाता है ?

उत्तर—प्रथम उनके वन्दनका निमित्त लेकर चित्तको एकाग्र किया जाता है । तदनन्तर उनके पूजनका निमित्त लेकर चित्तको एकाग्र किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। इस प्रकार सत्कारका निमित्त लेकर, सम्मानका निमित्त लेकर, बोधिलाभका निमित्त लेकर तथा मोक्षका निमित्त लेकर चित्त एकाग्र किया जाता है और उसके द्वारा वन्दनादिकसे जो लाभ मिलते हैं, वे मिलें, ऐसी इच्छा की जाती हैं।

प्रश्न—पृथक् पृथक् विषयोंमें भ्रमण करनेवाला चित्त एकाग्र किस तरह हो सकता है ?

उत्तर—यदि श्रद्धा धारण की जाय, प्रज्ञा (मेधा) विकसित की जाय, धृति (चित्तकी स्वस्थता) रखी जाय, धारणाका अभ्यास किया जाय और अनुप्रेक्षा (बार बार चिन्तन) का फिर-फिरकर आश्रय लिया जाय, तो चित्त एक विषयमें एकाग्र हो सकता है।

---

२० 'कल्लाण कंदं' थुई

[पञ्चजिन-स्तुति]

मूल—

[उपेन्द्रवज्रा]

कल्लाण-कंदं पढमं जिणिंदं,
संतिं तओ नेमिजिणं मुणिंदं।
पासं पयासं सुगुणिक्क-ठाणं,
भत्तीइ वंदे सिरिवद्धमाणं ॥ १ ॥

[उपजाति]

अपार-संसार-समुद्द-पारं,
पत्ता सिवं दिंतु सुइक्क-सारं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वे जिणिंदा सुर--विंद--वंदा,
कल्लाण--वल्लीण विसाल--कंदा ॥ २ ॥
निव्वाण--मग्गे वर--जाण--कप्पं,
पणासियासेस--कुवाइ--दप्पं ।
मयं जिणाणं सरणं बुहाणं,
नमामि निच्चं तिजग--प्पहाणं ॥ ३ ॥
कुंदिंदु--गोखीर--तुसार--वन्ना,
सरोज--हत्था कमले निसन्ना ।
वाईसरी--पुत्थय--वग्ग--हत्था,
सुहाय सा अम्ह सया पसत्था ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—

कल्लाण--कंदं—कल्याणरूपी वृक्षके मूलको, कल्याणके कारणरूपको।
पढमं—पहले, प्रथम ।
जिणिंदं—जिनेन्द्रको, तीर्थङ्कर श्री-ऋषभदेवको ।
संतिं—श्रीशान्तिनाथको ।
तओ—तदनन्तर ।
नेमिजिणं—नेमिजिनको, श्रीनेमि-नाथको ।
मुणिंदं—मुनियोंमें श्रेष्ठ ।
पासं—श्रीपार्श्वनाथको ।
पयासं—प्रकाश-स्वरूप ।
सुगुणिक्क--ठाणं—सभी सद्गुण जहाँ एकत्रित हुए हैं ऐसे, सर्व सद्गुणोंके स्थानरूप ।
भत्तीइ—भक्ति-पूर्वक ।
वंदे—मैं वन्दन करता हूँ ।
सिरिवद्धमाणं – श्रीवर्धमानको, श्रीमहावीर स्वामीको ।
अपार – संसार – समुद्द – पारं—जिसका पार पाना कठिन है; ऐसे संसार-समुद्रके किनारेको ।
पत्ता—प्राप्त किये हुए ।
सिवं—कल्याण, मोक्षसुख ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिंतु–प्रदान करो ।

सुइक्क-सारं–शास्त्रका अनन्य साररूप अथवा पूर्ण–पवित्र ।

सव्वे–सभी ।

जिणिंदा–जिनेन्द्र ।

सुर–विंद–वंदा–देवसमूहसे भी वन्दनीय ।

कल्लाण–वल्लीण–कल्याणरूपी लताके ।

विसाल–कंदा–विशाल कन्दके समान ।

निव्वाण–मग्गे–निर्वाण–प्राप्तिके मार्गमें ।

वर–जाण–कप्पं–श्रेष्ठ वाहनके समान ।

पणासियासेस–कुवाइ–दप्पं–जिसने कुवादियोंका अभिमान सर्वथा नष्ट किया है, जिसने एकान्तवादियोंके सिद्धान्तोंको असत्य प्रमाणित किया है ।

मयं–मत, श्रुतज्ञान ।

जिणाणं–जिनोंका, श्रीजिनेश्वर-देव प्ररूपित ।

सरणं–शरणरूप, शरण लेने योग्य ।

बुहाणं–विद्वानोंके ।

नमामि–मैं नमस्कार करता हूँ ।

निच्चं–नित्य ।

तिजग–प्पहाणं–तीनों लोकमें श्रेष्ठ ।

कुंदिंदु–गोखीर–तुसार–वन्ना–मुचुकुन्द–पुष्प (मोगरा), चन्द्रमा, गायका दूध और हिम-समूह जैसी श्वेत कायावाली ।
कुंद–मोगरा । इंदु–चन्द्रमा ।
गोखीर–गायका दूध ।
तुसार–हिम (बर्फ) ।
वन्ना–वर्णवाली ।

सरोज–हत्था–हाथमें कमल धारण करनेवाली ।

कमले–कमलपर ।

निसन्ना–बैठी हुई ।

वाईसरी–वागीश्वरी (सरस्वतीदेवी)

पुत्थय–वग्ग–हत्था–पुस्तकके समूह को हाथमें धारण करनेवाली ।

सुहाय–सुखके लिये, सुख देनेवाली ।

सा–वह ।

अम्ह–हमें ।

सया–सदा ।

पसत्था–प्रशस्त, सर्व प्रकारसे प्रशस्त ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ सङ्कलना—

कल्याणके कारणरूप प्रथम–तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेवको, श्रीशान्ति नाथको, तदनन्तर मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे श्रीनेमिनाथको, प्रकाशस्वरूप एवं सर्व सद्गुणोंके स्थानरूप श्रीपार्श्वनाथको तथा श्रीमहावीर स्वामीको मैं भक्तिपूर्वक वन्दन करता हूँ ।। १ ।।

जिसका पार पाना कठिन है, ऐसे संसार–समुद्रके किनारेको प्राप्त किये हुए, देवसमूहसे भी वन्दनीय, कल्याणरूपी लताके विशाल कन्दके समान ऐसे सभी जिनेन्द्र मुझे शास्त्रका अनन्य साररूप अथवा परम–पवित्र मोक्षसुख प्रदान करें ।। २ ।।

श्रीजिनेश्वरदेवद्वारा प्ररूपित श्रुतज्ञान जो निर्वाण–प्राप्तिके मार्गमें श्रेष्ठ–वाहनके समान है, जिसने एकान्त–वादियोंके सिद्धान्तोंको असत्य प्रमाणित किया है, जो विद्वानोंके भी शरण लेने योग्य है तथा जो तीनों लोकमें श्रेष्ठ है, उसको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ।। ३ ।।

मुचुकुन्द(मोगरा)के पुष्प जैसी, पूर्णिमाके चन्द्रमा जैसी, गायके दूध जैसी अथवा हिमके समूह जैसी श्वेत कायावाली, एक हाथमें कमल और दूसरे हाथमें पुस्तकके समूहको धारण करनेवाली, कमलपर बैठी हुई सर्व प्रकारसे प्रशस्त ऐसी वागीश्वरी (सरस्वती देवी), हमें सदा सुख देनेवाली हो ।। ४ ।।

सूत्र–परिचय—

प्रस्तुत सूत्रमें चार स्तुतियाँ हैं । उनमेंसे पहली स्तुतिमें श्रीऋषभदेव, श्रीशान्तिनाथ, श्रीनेमिनाथ (अरिष्टनेमि), श्रीपार्श्वनाथ एवं श्रीमहावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामीको स्तुतिपूर्वक नमस्कार किया गया है। दूसरी स्तुतिमें सर्व तीर्थङ्करोंकी स्तुति की गयी है। तीसरी स्तुतिमें श्रुतज्ञान (द्वादशाङ्गी) की स्तुति की गयी है और चौथी स्तुतिमें वागीश्वरी अथवा सरस्वतीकी स्तुति की गयी है। चैत्यवन्दन—देववन्दनमें यह स्तुति बोली जाती है।

सामायिक लेनेकी विधि

सामायिकके उपयुक्त वस्तुएँ :—

१ शुद्ध वस्त्र, २ कटासन, ३ मुहपत्ती, ४ साँपडा, ५ धार्मिक पुस्तक, ६ चरवला, ७ घड़ी, ८ नवकारवाली।

१ प्रथम शुद्ध वस्त्र पहिनना। उसके पश्चात्—

२ चरवलासे भूमि प्रमार्जन कर शुद्ध करनी।

३ गुरुका योग न हो तो एक उच्च आसन पर धार्मिक पुस्तक, मुहपत्ती अथवा नवकारवाली स्थापित करनी। तदनन्तर—

४ मुहपत्ती बाएँ हाथमें रखकर दाहिना हाथ उसके सम्मुख रखना फिर—

५ नमस्कार—मन्त्र तथा पंचिदिय–सूत्र कहकर उसमें आचार्यकी स्थापना करना। अर्थात् सारी क्रिया आचार्यके सम्मुख उनकी सम्मति से होती है, ऐसा समझना। उसके बाद—

६ एक 'खमासमण' देकर 'इरियावही' सूत्र कहना।

७ इसके बाद 'तस्स उत्तरी' तथा 'अन्नत्थ' सूत्र कहकर 'चंदेसु निम्मलयरा' तक एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना। 'लोगस्स' नहीं आता हो तो चार बार 'नमस्कार–मन्त्र' बोलना।

८ काउस्सग्ग पूर्णकर प्रकटमें 'लोगस्स' बोलकर एक 'खमासमण' देना। बादमें—

९ इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सामायिक मुहपत्ती पडिलेहुं?' 'इच्छं' ऐसा कहकर पचास बोलसे मुहपत्ती पडिलेहनी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० फिर एक 'खमासमण' देकर इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक संदिसाहुं ?' 'इच्छं' ऐसा कहकर—

११ एक 'खमासमण' देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक ठाउं ?' 'इच्छं' ऐसा कहना ।

१२ फिर दोनों हाथ मस्तकपर जोड़कर एक बार 'नमस्कार–मन्त्र' गिनना ।

१३ फिर 'इच्छकारी भगवन् ! पसायकरी सामायिक दंडक उच्चरावोजी ?' ऐसा कहना । तब गुरु अथवा पूज्य–व्यक्ति 'करेमि भंते !' सूत्र बुलवाये ! यदि गुरु अथवा पूज्य–व्यक्ति न हो तो सामायिक लेने-वालेको स्वयं यह सूत्र बोलना चाहिये ।

१४ फिर एक 'खमासमण' देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे संदिसाहुं ?' 'इच्छं' कहकर एक 'खमासमण' देकर—

१५ 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ? बेसणे ठाउं ?' 'इच्छं' कह कर एक 'खमासमण' देकर—

१६ 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय संदिसाहुं ?' 'इच्छं' कह-कर दोनों हाथ जोड़ तीन बार 'नमस्कार–मन्त्र' बोलकर दो घड़ी अर्थात् अड़तालीस मिनिट तक धर्मध्यान करना । शास्त्रका पाठ लेना, उसका अर्थ सीखना, तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर करना, धर्मकथा श्रवण करनी, अनानुपूर्वी गिननी, माला फिरानी, अरिहन्तका जप करना अथवा धर्मध्यानका अभ्यास करना, ये धर्मध्यान कहलाते हैं ।

सामायिक पारनेकी विधि

१ प्रथम एक 'खमासमण' देकर 'इरियावही सूत्र' कहना ।

२ फिर 'तस्स उत्तरी०' 'अन्नत्थ०' कहकर 'चंदेसु निम्मलयरा' तक एक 'लोगस्स'का अथवा चार नमस्कारका 'काउस्सग्ग' करना । बादमें 'काउस्सग्ग' पूर्ण करके—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ प्रकट 'लोगस्स' कहकर एक 'खमासमण' देना। तदनन्तर—

४ 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! मुहपत्ती पडिलेहुं ?' 'इच्छं' ऐसा कहकर मुहपत्ती पडिलेहना।

५ बादमें एक 'खमासमण' देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पारुं ?' 'यथाशक्ति' ऐसा कहकर—

६ 'खमासमण' देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पार्युं ?' 'तहत्ति' ऐसा कहकर—

७ दाहिना हाथ चरवला अथवा कटासण पर रखकर एक नमस्कार गिनकर 'सामाइय–वय–जुत्तो' सूत्र कहना।

८ फिर दाहिना हाथ सीधा रख कर, एक नमस्कार गिन स्थापनाचार्यको योग्य स्थानपर स्थापित करना।

९ एक साथ दो या तीन सामायिक कर सकते हैं, उसमें हरसमय सामायिक लेनेकी विधि करना, परन्तु उसमें 'सज्झाय करूँ' के स्थानपर 'सज्झायमें हूँ' ऐसा कहना, और प्रत्येक समय सामायिक पारना नहीं। दो सामायिक करने हों तो दो पूरे होने पर और तीन करने हो तो तीन पूरे होने पर, एक बार पारना। यदि एक ही साथ आठ–दस सामायिक करने हों तो भी तीन तीन सामायिक पूरे होने पर पारना चाहिये।

चैत्यवंदनकी विधि

१ प्रथम तीन 'खमासमण' देना, फिर बाँया घुटना खड़ा रखकर उत्तरासन डालकर दोनों हाथ जोड़, 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! चेइयवंदणं करेमि' 'इच्छं' कहकर—

२ 'जगचिंतामणि' चैत्यवन्दन कहना, अथवा 'सकल–कुशलवल्ली' स्तुति × कहकर कोई भी पूर्वाचार्य–कृत चैत्यवन्दन कहना।

× सकलकुशलवल्ली पुष्करावर्तमेघो,
दुरिततिमिरभानुः कल्पवृक्षोपमानः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ बादमें 'जं किंचि' कहकर 'नमो त्थु णं' सूत्र कहना ।
४ फिर 'जावंति चेइयाइं' सूत्र कहकर एक 'खमासमण' देना ।
५ इसके बाद 'जावंत के वि साहू' तथा 'नमोऽर्हत्' सूत्र कहना ।
६ तदनन्तर स्तवन कहना अथवा 'उवसग्गहरं' स्तोत्र कहना ।
७ फिर दोनों हाथ मस्तकपर रख 'जय वीयराय' सूत्र 'आभवमखंडा' तक कहना, फिर दोनों हाथ नीचे उतारकर 'जय वीयराय' सूत्र कहना ।
८ फिर खड़े होकर 'अरिहन्त चेइयाणं' सूत्र कह 'अन्नत्थ०' सूत्र कहकर एक नमस्कारका 'काउस्सग्ग' करना ।
९ बादमें 'काउस्सग्ग' पूर्ण कर 'नमोऽर्हत्' सूत्र कह थुई (स्तुति) कहना । फिर एक 'खमासमण' देना ।

---

२१ संसारदावानल–थुई

[श्रीमहावीर--स्तुति]

मूल—

[उपजाति]

संसार--दावानल--दाह--नीरं,
संमोह--धूली--हरणे--समीरं ॥
माया--रसा--दारण--सार--सीरं,
नमामि वीरं गिरि-सार-धीरं ॥ १ ॥

भवनिधिजलपोतः सर्वसम्पत्तिहेतुः,
स भवतु सततं वः श्रेयसे शान्तिनाथः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[वसन्ततिलका]

भावावनाम–सुर–दानव–मानवेन—
चूला–विलोल–कमलावलि–मालितानि ।
संपूरिताभिनत–लोक–समीहितानि,
कामं नमामि जिनराज–पदानि तानि ॥२॥

[मन्दाक्रान्ता]

बोधागाधं सुपद–पदवी–नीर–पूराभिरामं,
जीवाहिंसाविरल–लहरी–संगमागाह–देहं ।
चूला–वेलं गुरुगम–मणी–संकुलं दूरपारं,
सारं वीरागम–जलनिधिं सादरं साधु सेवे ॥३॥

[स्रग्धरा]

आमूलालोल-धूली-बहुल-परिमलाऽऽलीढ-लोलालिमाला–
झंकाराराव-सारामलदल-कमलागार-भूमी–निवासे ! ।
छाया–संभार-सारे ! वरकमल-करे ! तार-हाराभिरामे !,
वाणी-संदोह-देहे ! भव-विरह-वरं देहि मे देवि ! सारं॥४॥

शब्दार्थ—

संसार–दावानल–दाहनीरं– संसाररूपी दावानलके तापको शान्त करनेमें जलके समान । दावानल–जङ्गलमें प्रकट हुई अग्नि । दाह–ताप । नीर–जल ।

संमोह–धूली–हरणे – अज्ञानरूपी धूलको दूर करनेमें । संमोह–अज्ञान ।

समीरं–पवन, वायु ।

माया – रसा – दारण – सार – सीरं – मायारूपी पृथ्वीको चीरनेमें तीक्ष्ण हलके समान ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसा–पृथ्वी। दारण–चीरनेकी क्रिया। सार–तीक्ष्ण। सीर–हल।

नमामि–मैं नमस्कार करता हूँ, मैं वन्दन करता हूँ।

वीरं–श्रीमहावीर प्रभुको।

गिरि–सार–धीरं–मेरु–पर्वत जैसे स्थिर।

भावावनाम– सुर– दानव –मानवेन – चूला – विलोल-कमलावलि – मालितानि– भक्तिपूर्वक नमन करनेवाले सुरेन्द्र, दानवेन्द्र और नरेन्द्रोंके मुकुटमें स्थित चपल कमलश्रेणिसे पूजित।

भाव–सद्भाव अथवा भक्ति। अवनाम–नमन। इन – स्वामी। चूला–सिर अथवा शिखा। विलोल – चपल। आवलि – श्रेणि। मालित – पूजित। यह पद 'जिनराज–पदानि' का विशेषण है।

संपूरिताभिनत – लोक – समोहितानि–जिनके प्रभावसे नमन करनेवाले लोगोंके मनोवाञ्छित अच्छी तरह पूर्ण हुए हैं।

संपूरित–अच्छी तरह पूर्ण। अभिनत-अच्छी तरह नमा हुआ। समीहित-अच्छी तरहसे इच्छित, मनोवाञ्छित।

कामं–बहुत, अत्यन्त।

नमामि–मैं नमन करता हूँ।

जिनराज – पदानि – जिनेश्वरके चरणोंको।

तानि–उन।

बोधागाधं–ज्ञानद्वारा गम्भीर।

बोध-ज्ञान। अगाध-गम्भीर।

सुपद – पदवी – नीर – पूराभिरामं–सुन्दर पद–रचनारूप जलके समूहसे मनोहर।

सुपद–अच्छा पद। पदवी–योग्य रचना। पूर–समूह, अभिराम–सुन्दर।

जीवाहिंसाविरल – लहरी – संगमागाह-देहं – जीवदयाके सिद्धान्तोंकी अविरल लहरियोंके सङ्गमसे जिसका देह अतिगहन है।

अहिंसा–हिंसासे विरति। अविरल–संगम–मेल, सङ्गम। निरन्तर। लहरी–तरङ्ग।

चूला–वेलं–चूलिकारूप ज्वारवाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूला–चूलिका । शास्त्रका परिशिष्ट भाग । वेल-ज्वार ।

गुरुगम – मणी – संकुलं – उत्तम आलापकरूपी रत्नोंसे भरपूर । गुरु–श्रेष्ठ । गम–समान पाठवाले आलापक । संकुल–व्याप्त ।

दूर–पारं – जिसका सम्पूर्ण पार पाना अतिकठिन है ।

सारं–उत्तम, श्रेष्ठ ।

वीरागम – जलनिधिं – श्रीवीर-प्रभुके आगमरूपी समुद्रकी । आगम–आप्त–वचनोंका संग्रह ।

सादरं–आदरपूर्वक ।

साधु–अच्छी तरह ।

सेवे–मैं उपासना करता हूँ, मैं सेवा करता हूँ ।

आमूलालोल – धूली – बहुल – परिमलाऽऽलीढ – लोलालिमाला–झंकाराराव–सारा–मलदल – कमलागार – भूमी–निवासे ! –मूलपर्यन्त कुछ डोलनेसे गिरे हुए मकरन्दकी अत्यन्त सुगन्धमें मग्न बने हुए चपल भ्रमर–वृन्दके झङ्कार शब्दसे युक्त उत्तम निर्मल पँखुड़ीवाले कमल-गृहकी भूमिमें निवास करनेवाले ।

आमूल–मूलपर्यन्त । आलोल–कुछ डोलता हुआ । धूली–रज अथवा पराग । बहुल–बहुत । परिमल – सुगन्ध । आलीढ – आसक्त, मग्न अथवा चिपके हुए । लोल–चपल । अलिमाला–भ्रमर–समूह । आगार–भूमी–रहनेकी जगह ।

छाया–संभार–सारे ! – कान्ति–पुञ्जसे उत्तम । अत्यन्त तेजस्विताके कारण रमणीय । संभार–समूह, पुञ्ज अथवा जत्था ।

वरकमल–करे ! – सुन्दर कमल-युक्त हाथवाली ।

तार–हाराभिरामे !–दैदीप्यमान हारसे सुशोभित । तार–स्वच्छ । दैदीप्यमान, चमकीला–दमकता ।

वाणी – संदोह – देहे ! – वाणीके समूहरूप देहवाली । संदोह–समूह या जत्था ।

भव – विरह – वरं – मोक्षका वरदान ।

देहि–दो ।

मे–मुझे ।

देवि !–हे श्रुतदेवि !, हे देवि !

सारं–श्रेष्ठ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

संसाररूपी दावानलके तापको शान्त करनेमें जलके समान, अज्ञानरूपी धूलको दूर हटानेमें वायुके समान, माया-रूपी पृथ्वीको चीरनेमें तीक्ष्ण हलके समान और मेरु-पर्वत जैसे स्थिर श्रीमहावीर प्रभुको मैं वन्दन करता हूँ ।। १ ।।

भक्तिपूर्वक नमन करनेवाले सुरेन्द्र, दानवेन्द्र और नरेन्द्रोंके मुकुटमें स्थित चपल कमल-श्रेणि द्वारा जो पूजित हैं, जिनके प्रभावसे नमन करनेवाले लोगोंके मनोवाञ्छित अच्छी तरह पूर्ण हुए हैं, उन प्रभावशाली जिनेश्वरके चरणोंको मैं अत्यन्त श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ ।। २ ।।

यह आगम—समुद्र (अपरिमित) ज्ञानद्वारा गम्भीर है, सुन्दर पद-रचनारूप जलके समूहसे मनोहर है, जीवदयाके सिद्धान्तोंकी अविरल लहरियोंके संगमसे जिसका देह अति गहन है, चूलिकारूप ज्वारवाला है, उत्तम आलापकरूपी रत्नोंसे भरपूर है और जिसका सम्पूर्ण पार पाना अतिकठिन है, ऐसे श्रेष्ठ श्रीवीरप्रभुके आगमरूपी समुद्रकी मैं आदरपूर्वक अच्छी तरह सेवा करता हूँ ।। ३ ।।

मूलपर्यन्त कुछ डोलनेसे गिरे हुए मकरन्दकी अत्यन्त सुगन्धमें मग्न बने हुए चपल भ्रमर-वृन्दके झङ्कार शब्दसे युक्त उत्तम निर्मल पँखुड़ीवाले कमल-गृहकी भूमिमें वास करनेवाली, अत्यन्त तेजस्विताके कारण रमणीय, सुंदर कमल-युक्त हाथवाली, दैदीप्यमान हारसे सुशोभित वाणीके-समूहरूप देहवाली हे देवि ! मुझे मोक्षका वरदान दो ।। ४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें चार स्तुतियाँ हैं। उनमें पहली स्तुति महावीर स्वामीकी है, दूसरी स्तुति सर्व जिनोंकी है, तीसरी स्तुति श्रुतसागर अर्थात् द्वादशाङ्गकी है और चौथी स्तुति श्रुतदेवीकी है।

इनमेंसे पूर्वकी तीन स्तुतियाँ अनेक शास्त्रोंके निर्माता श्रीहरिभद्रसूरिने बनायी हैं और चौथी स्तुतिका केवल पहला चरण ही उन्होंने बनाया है। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने १४४४ ग्रन्थ बनानेकी प्रतिज्ञा की थी, उनमें यह रचना अन्तिम थी और उन्होंने इसका पहला चरण बनाया कि उनकी वाणी बन्द हो गयी, अतः शेष तीन चरण उनकी इच्छानुसार श्रीसङ्घने पूर्ण किये हैं और इसीसे ये तीनों चरण आज भी श्रीसङ्घद्वारा उच्चस्वरसे बोले जाते हैं।

इस स्तुतिको संस्कृत–भाषाकी रचना भी कह सकते हैं और प्राकृत–भाषाकी रचना भी, क्यों कि इसमें व्यवहृत–शब्द दोनों भाषाओंमें समान हैं।

---

२२ सुयधम्म–थुई

['पुक्खरवर'–सूत्र]

मूल—

[गाहा]

पुक्खरवर–दीवड्ढे, धायइखंडे य जंबुदीवे य।
भरहेरवय–विदेहे, धम्माइगरे नमंसामि ॥ १ ॥
तम–तिमिर–पडल–विद्धंसणस्स सुरगण–नरिंद–महियस्स।
सीमाधरस्स वंदे, पप्फोडिय–मोहजालस्स ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[वसन्ततिलका]

जाई–जरा–मरण–सोग पणासणस्स,
कल्लाण–पुक्खल–विसाल–सुहावहस्स ।
को देव–दाणव–नरिंद–गणच्चियस्स,
धम्मस्स सारमुवलब्भ करे पमायं ॥ ३ ॥

[शार्दूलविक्रीडित]

सिद्धे भो ! पयओ णमो जिणमए नंदी सया संजमे,
देवं–नाग–सुवन्न–किन्नर–गण–स्सब्भूअ–भावच्चिए ।
लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्क–मच्चासुरं,
धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वड्ढउ ॥ ४ ॥

सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं, वंदण-वत्तियाए०॥

शब्दार्थ—

पुक्खरवर–दीवड्ढे–अर्ध पुष्करवर द्वीपमें ।

धायइखंडे–धातकीखण्डमें ।

य–और ।

जंबुदीवे–जम्बूद्वीपमें ।

य–तथा ।

भरहेरवय–विदेहे–भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रोंमें ।

धम्माइगरे–धर्मकी आदि करनेवालोंको ।

नमंसामि–मैं नमस्कार करता हूँ ।

तम-तिमिर-पडल–विद्धंसणस्स–अज्ञानरूपी अन्धकारके समूहका नाश करनेवालोंको ।

सुरगण–नरिंद–महियस्स–देव–समूह तथा राजाओंके समूहसे पूजित ।

सीमाधरस्स–सीमा धारण करनेवालेको, मर्यादायुक्त । सीमा–मर्यादा ।

वंदे–मैं वन्दन करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पप्फोडिय–मोहजालस्स–
मोहजालको बिलकुल तोड़नेवालेको ।

जाई–जरा–मरण–सोग–पणासणस्स–जन्म, जरा, मृत्यु तथा शोकका नाश करनेवाला ।
जाई–जन्म । जरा–वृद्धावस्था ।
मरण–मृत्यु । प्राण–नाश ।
सोग–मानसिक दुःख, समवेदना ।

कल्लाण – पुक्खल – विसाल – सुहावहस्स–पूर्ण कल्याण और बड़े सुखको देनेवाला ।
कल्लाण – आत्माका भला ।
पुक्खल – पुष्कल, बहुत ।
विसाल–बड़ा ।

को–कौन ? कौन मनुष्य ?

देव–दाणव – नरिंद – गणच्चियस्स–देवेन्द्रों, दानवेन्द्रों और नरेन्द्रोंके समूहसे पूजित ।

धम्मस्स–धर्मका, श्रुतधर्मका ।

सारमुवलब्भ–सार प्राप्त करके ।

करे–करे ।

पमायं–प्रमाद ।

सिद्धे–सिद्ध ।

भो !–हे सुज्ञजनों !, हे मनुष्यों !

पयओ–प्रयत्नपूर्वक, आदरपूर्वक ।

णमो–मैं नमस्कार करता हूँ ।

जिणमए–जिनमतको, जैनदर्शनको ।

नंदी–वृद्धि ।

सया–सदा ।

संजमे–संयममें, संयम–मार्गकी ।

देवं–नाग–सुवन्न–किन्नर–गण–स्सब्भूअ–भावच्चिए–
देव, नागकुमार, सुपर्णकुमार, किन्नर आदिसे सच्चे भावपूर्वक पूजित ।
देव–वैमानिक देव । नाग–नागकुमार । यह भवनपति देवका एक प्रकार है । सुवन्न–सुपर्णकुमार । यह भी भवनपति देवका एक प्रकार है । किन्नर–यह व्यन्तर जातिके देवका एक प्रकार है । सब्भूअ–भाव–सच्चा भाव, हृदयका सच्चा उल्लास । अच्चिअ–पूजित ।

लोगो–लोक, सकल पदार्थ ।

जत्थ–जहाँ ।

पइट्ठिओ–प्रतिष्ठित है, वर्णित है ।

जगमिणं–यह जगत् ।

तेलुक्क–मच्चासुरं–तीनों लोकके मनुष्य तथा (सुर)–असुरादिकको आधाररूप ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मो–धर्म, जैनधर्म ।
वड्ढउ–वृद्धिको प्राप्त हो ।
सासओ–शाश्वत ।
विजयओ–विजयसे, विजयकी ।
धम्मुत्तरं–धर्मोत्तर, चारित्रधर्म ।
वड्ढउ–वृद्धिको प्राप्त हो ।
सुअस्स–भगवओ– श्रुत– भगवान्‌की (आराधनाके निमित्त) ।
करेमि काउस्सग्गं– कायोत्सर्ग करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

अर्ध पुष्करवरद्वीप, धातकीखण्ड और जम्बूद्वीप (मिलकर ढाई द्वीप) में आये हुए भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रोंमें (श्रुत) धर्मकी आदि करनेवालोंको मैं नमस्कार करता हूँ ।। १ ।।

अज्ञानरूपी अन्धकारके समूहका नाश करनेवाले, देव—समूह तथा राजाओंके समूहसे पूजित और मोहजालको बिलकुल तोड़नेवाले, मर्यादायुक्त (श्रुतधर्म) को मैं वन्दन करता हूँ ।। २ ।।

जन्म, जरा, मृत्यु तथा शोकका नाश करनेवाला, पूर्ण कल्याण और बड़े सुखको देनेवाला, देवेन्द्रों, दानवेन्द्रों और नरेन्द्रोंके समूहसे पूजित ऐसे श्रुतधर्मका सार प्राप्तकरके कौन मनुष्य धर्मकी आराधना करनेमें प्रमाद करे ? ।। ३ ।।

हे मनुष्यों ! (नय—निक्षेपसे सिद्ध) ऐसे जैनदर्शनको मैं आदरपूर्वक नमस्कार करता हूँ जो देव, नागकुमार, सुपर्णकुमार, किन्नर, आदिसे सच्चे भावपूर्वक पूजित है, तथा जो संयम—मार्गकी सदा वृद्धि करनेवाला है और जिसमें सकल पदार्थ तथा तीनों लोकके मनुष्य एवं (सुर) असुरादिकका आधाररूप—जगत् वर्णित है । ऐसा (संयम–पोषक और ज्ञान–समृद्ध दर्शन द्वारा प्रवृत्त) शाश्वत जैनधर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृद्धिको प्राप्त हो और विजयकी परम्परासे चरित्र धर्म भी नित्य वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

श्रुत—भगवानकी आराधनाके निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। 'वंदण—वत्तियाए०' आदि।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें श्रुतधर्म-श्रुतज्ञानकी स्तुति की गयी है, इसलिये वह 'सुयधम्म-थुई' कहाती है। इसका दूसरा नाम 'श्रुतस्तव' है।

श्रुतज्ञान

(द्वादशाङ्गी)

प्रश्न—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीर्थङ्कर देवोंके पासमें गणधर भगवान्ने सुनकर जो ज्ञान प्राप्त किया हो उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। श्रुत अर्थात् सुना हुआ।

प्रश्न—गणधर भगवान् श्रुतज्ञान प्राप्त करके क्या करते हैं ?

उत्तर—शास्त्रोंकी रचना करते हैं।

प्रश्न—कितने शास्त्रोंकी रचना करते हैं ?

उत्तर—बारह शास्त्रोंकी रचना करते हैं। इस प्रत्येक शास्त्रको अङ्ग कहा जाता है, अर्थात् बारह शास्त्रोंके समूहको द्वादशाङ्गी कहते हैं।

प्रश्न—द्वादशाङ्गीमें कौनसे बारह शास्त्र होते हैं ?

उत्तर—(१) आचार, (२) सुयगड, (३) ठाण, (४) समवाय, (५) विवाहपण्णत्ति, (६) नायाधम्मकहा, (७) उवासगदसा, (८) अंतगडदसा, (९) अणुत्तरोववाइयदसा, (१०) पण्हावागरण, (११) विवागसुय और (१२) दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—क्या अभी द्वादशाङ्गी सम्पूर्ण मिलती है ?

उत्तर—नहीं, अभी द्वादशाङ्गीके पहले ग्यारह शास्त्र मिलते हैं किन्तु बारहवाँ दिट्ठिवाय नामका शास्त्र नहीं मिलता। क्योंकि उसका दीर्घकाल-पूर्व ही विच्छेद हो गया है।

प्रश्न—अभी जो द्वादशाङ्गी मिलती है, वह कौनसे गणधर भगवान्‌ने रची है ?

उत्तर—सुधर्मास्वामीने, परन्तु इसकी तीन वाचनाएँ हुई हैं।

प्रश्न—वाचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—आचार्य तथा गीतार्थ सम्मिलित होकर जो शास्त्रका सङ्ग्रह करते हैं उसे वाचना कहते हैं।

प्रश्न—पहली वाचना कब हुई ?

उत्तर—पहली वाचना श्रीमहावीरस्वामीके छठे पाट पर आये हुये श्रुत-केवली श्रीभद्रबाहुस्वामीके समयमें हुई। उस समय बारह वर्षका दुष्काल पड़ा था, इसलिये साधुगण पाटलीपुत्र और उसके आस-पासका प्रदेश छोड़कर दूर-दूर चले गये थे और उनमेंसे बहुतसे अनशन करके कालधर्मको प्राप्त हो गये थे। जो साधु शेष रहे थे, वे शनैः शनैः पाटलीपुत्र वापस आये, किन्तु दुष्कालमें शास्त्रोंका स्वाध्याय उचितरूपमें नहीं होनेसे कुछ सूत्र सर्वथा विस्मृत हो गये, जिससे पाटलीपुत्रमें श्रमणसङ्घ एकत्रित हुआ और सूत्रोंकी वाचना हुई थी।

प्रश्न—दूसरी वाचना कब हुई ?

उत्तर—विक्रमके द्वितीय शतकमें पुनः बारह वर्षका दुष्काल पड़ा, जिससे श्रुत पुनः अव्यवस्थित हो गया, इसलिये वि. सं. १५३ में आर्य-स्कन्दिलाचार्यने मथुरामें श्रमणसङ्घको एकत्रित कर दूसरी वाचना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—तीसरी वाचना कब हुई ?

उत्तर—तीसरी वाचना सम्भवतः इसी समयमें सौराष्ट्रके वल्लभीपुर नगर-में स्थविर नागार्जुनकी प्रधानतामें हुई। इतना स्मरण रहे कि प्राचीन कालमें जैनसाधु सूत्रोंको गुरुमुखसे धारण करते थे और उनकी बारम्बार आवृत्ति करके स्मरण रखते थे, परन्तु इसके लिये कोई पुस्तक-पत्रादिका उपयोग नहीं करते थे।

प्रश्न—तो जैन-सूत्र कब लिखे गये ?

उत्तर—वीरनिर्वाणके पश्चात् ९८० वें वर्षमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमणने वल्लभी-पुरमें श्रमणसङ्घको एकत्रित करके जैन-सूत्र लिखा लेनेका निर्णय किया, तबसे जैन-सूत्र लिखाये गये और उनकी प्रतियाँ अलग अलग भण्डारोंमें सुरक्षित रहने लगीं। इन भण्डारोंके प्रतापसे ही वर्तमान द्वादशाङ्गी हम तक पहुँची है।

---

२३ सिद्ध-थुई

['सिद्धाणं बुद्धाणं'-सूत्र]

[गाहा]

सिद्धाणं बुद्धाणं, पार--गयाणं परंपर-गयाणं।
लोअग्गमुवगयाणं, नमो सया सव्व--सिद्धाणं ॥१॥
जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजली नमंसंति।
तं देवदेव--महिअं, सिरसा वंदे महावीरं ॥२॥
इक्को वि नमुक्कारो, जिणवर--वसहस्स वद्धमाणस्स।
संसार-सागराओ, तारेइ नरं व ना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जितसेल--सिहरे, दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स।
तं धम्म--चक्कवट्टिं, अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥ ४ ॥
चत्तारि अट्ठ दस दो, अ वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं।
परमट्ठ--निट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥५॥

शब्दार्थ—

सिद्धाणं-सिद्धोंके लिए, सिद्धिपद प्राप्त करनेवालोंके लिये।

बुद्धाणं–सर्वज्ञोंके लिये।

पार–गयाणं–पारङ्गतोंके लिये, संसारका पार प्राप्त करनेवालोंके लिये।

परंपर–गयाणं–परम्परासे सिद्ध होनेवालोंके लिये।

लोअग्गमुवगयाणं–लोकके अग्रभागपर गये हुओंके लिये।

नमो–नमस्कार हो।

सया–सदा।

सव्व–सिद्धाणं–सर्व सिद्ध–भगवन्तोंको।

जो–जो।

देवाण–देवोंके।

वि–भी।

देवो–देव।

जं–जिनको।

देवा–देव।

पंजली–अञ्जलि पूर्वक।

नमंसंति–नमन करते हैं।

तं–उनको।

देवदेव–महिअं–इन्द्रोंद्वारा पूजितको।

सिरसा–मस्तक झुकाकर।

वंदे–मैं वन्दन करता हूँ।

महावीरं-श्रीमहावीरस्वामीको।

इक्को–एक।

वि–भी।

नमुक्कारो–नमस्कार।

जिणवर – वसहस्स – जिनेश्वरोंमें उत्तम।

वद्धमाणस्स-श्रीमहावीरप्रभुको।

संसार – सागराओ – संसाररूप सागरसे।

तारेइ–तिरा देता है।

नरं–पुरुषको।

व–अथवा।

नारिं–नारीको।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा–अथवा ।
उज्जिंतसेल-सिहरे–गिरनार पर्वतके शिखरपर ।
दिक्खा–दीक्षा ।
नाणं–केवलज्ञान ।
निसीहिआ–निर्वाण ।
जस्स -जिनका ।
तं–उन ।
धम्मचक्कवट्टि–धर्मचक्रवर्ती ।
अरिट्ठनेमिं–श्रीअरिष्टनेमि भगवान्‌के लिये ।
नमंसामि–मैं नमस्कार करता हूँ ।
चत्तारि–चार ।
अट्ठ–आठ ।
दस–दस ।
दो–दो ।
अ–और ।
वंदिआ–वन्दन किये हुए ।
जिणवरा–जिनेश्वर ।
चउव्वीसं–चौबीसों ।
परमट्ठ-निट्ठिअट्ठा–परमार्थसे कृत-कृत्य, मोक्ष-सुखको प्राप्त किये हुए ।
सिद्धा-सिद्ध ।
सिद्धिं–सिद्धि ।
मम–मुझे ।
दिसंतु–प्रदान करें ।

अर्थ–सङ्कलना—

सिद्धिपदको प्राप्त किये हुए, सर्वज्ञ, संसारका पार प्राप्त किये हुए, परम्परासे सिद्ध बने हुए और लोकके अग्रभागपर गये हुए, ऐसे सर्व सिद्ध भगवन्तोंके लिये सदा नमस्कार हो ।। १ ।।

जो देवोंके भी देव हैं, जिनको देव अञ्जलि—पूर्वक नमन करते हैं, तथा जो इन्द्रोंसे भी पूजित हैं, उन श्रीमहावीर–स्वामीको मैं मस्तक झुकाकर वन्दन करता हूँ ।। २ ।।

जिनेश्वरोंमें उत्तम ऐसे श्रीमहावीर प्रभुको किया हुआ एक भी नमस्कार पुरुष अथवा नारीको संसाररूप सागरसे तिरा देता है।। ३।।

जिनके दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण गिरनार–पर्वतके शिखर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर हुए हैं, उन धर्मचक्रवर्ती श्रीअरिष्टनेमि भगवान्‌के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

चार, आठ, दस, और दो ऐसे क्रमसे वन्दन किये हुए चौबीसों जिनेश्वर तथा जो मोक्ष-सुखको प्राप्त किये हुए हैं, ऐसे सिद्ध मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ ५ ॥

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें सिद्ध भगवन्तोंकी स्तुति की गयी है, इसलिये यह 'सिद्ध-थुई' कहाती है।

सिद्ध भगवन्त

प्रश्न—सिद्ध भगवन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो आत्माएँ कर्मके सम्पूर्ण नाशद्वारा अपना शुद्ध स्वरूप प्रकट करें वे सिद्ध भगवन्त कहाते हैं।

प्रश्न—सिद्ध भगवन्त कैसे होते हैं ?

उत्तर—जो सिद्ध हों, बुद्ध हों, पारङ्गत हों, परम्परागत हों और लोकके अग्रभागपर विराजित हों।

प्रश्न—सिद्ध अर्थात् ?

उत्तर—कृतकृत्य। जिनको अब कुछ करना शेष नहीं रहा, वे कृतकृत्य कहाते हैं।

प्रश्न—बुद्ध अर्थात् ?

उत्तर—सर्वज्ञ और सर्वदर्शी। जो केवलज्ञानसे सर्व वस्तुओंको जानते हैं वे सर्वज्ञ और जो केवलदर्शनसे सर्व वस्तुओंको देख सकते हैं, वे सर्वदर्शी।

प्रश्न—पारङ्गत अर्थात् ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—संसारका पार प्राप्त किये हुए। जिनको नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य या देवगतिमेंसे एक भी गतिमें जाना नहीं पड़े वे संसारका पार प्राप्त किये हुए–पारङ्गत कहाते हैं।

प्रश्न—परम्परागत अर्थात् ?

उत्तर—परम्परासे मोक्ष प्राप्त किये हुए। जिनकी अनादिकालसे मोक्षमें जानेकी परम्परा चालू है, अर्थात् प्रत्येक सिद्ध भगवन्त परम्परासे मोक्षमें जाते हैं।

प्रश्न—सिद्ध भगवन्त लोकके अग्रभागपर किसलिये विराजते हैं ?

उत्तर—आत्माकी मूल गति सीधी रेखासे ऊपर जानेकी है, इसलिए सर्व-कर्मोंका नाश होनेपर वह सीधी रेखासे ऊपर गति करती है और जहाँ लोकका अग्रभाग आये, वहाँ जाकर रुकती है। लोकके अग्रभागको सिद्धशिला कहते हैं, क्योंकि सिद्ध बने हुए सभी जीव वहाँ स्थिर होते हैं।

प्रश्न—लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—विश्व, ब्रह्माण्ड अथवा जगत्को लोक कहते हैं। वह अनन्त आकाशके एक भागमें आया है। चेतन तथा जड़ पदार्थोंकी गति और स्थिरता उसमें ही होती है। जिस आकाशमें लोक न हो, उसको अलोक कहते हैं। अलोकमें कोई आत्मा अथवा जड़ पदार्थ नहीं जा सकता, क्योंकि ऐसा करनेके लिए जिन तत्त्वोंकी सहायता चाहिए, वे वहाँ नहीं हैं।

प्रश्न—सिद्ध भगवन्त कितने होंगे ?

उत्तर—अनन्त।

प्रश्न—वे सब आत्माएँ एक ही स्थान पर कैसे रहती होंगी ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर —जैसे अनेक दीपकोंका प्रकाश एक कमरेमें एक साथ रह सकता है, वैसे ही अनन्त आत्माएँ सिद्धशिलामें एक साथ रह सकती हैं।

---

२४ वेयावच्चगर–सुत्तं

['वेयावच्चगराणं'–सूत्र]

मूल—

वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मद्दिट्ठि–समाहिगराणं करेमि काउस्सग्गं। [अन्नत्थ० इत्यादि]

शब्दार्थ—

वेयावच्चगराणं–वैयावृत्त्य करनेवालोंके निमित्तसे।

संतिगराणं–उपद्रवों अथवा उपसर्गोंकी शान्ति करनेवालोंके निमित्तसे।

सम्मद्दिट्ठि-समाहिगराणं–सम्यग्दृष्टियोंके लिए समाधि उत्पन्न करनेवालोंके निमित्तसे।

करेमि काउस्सग्गं–मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

[**अन्नत्थ० इत्यादि** – अन्नत्थ० आदि पद-पूर्वक।]

अर्थ-सङ्कलना—

वैयावृत्त्य करनेवालोंके निमित्तसे, उपद्रवों अथवा उपसर्गोंकी शान्ति करनेवालोंके निमित्तसे और सम्यग्—दृष्टियोंके लिए समाधि उत्पन्न करनेवालोंके निमित्तसे मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

सूत्र–परिचय—

यह सूत्र वैयावृत्त्य करनेवाले देवोंका कायोत्सर्ग करनेके लिए बोला जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५ भगवदादिवन्दनसूत्रम्

['भगवानहं–सूत्र]

मूल—

भगवानहं, आचार्यहं, उपाध्यायहं, सर्वसाधुहं ॥

शब्दार्थ—

भगवानहं–भगवन्तोंको ।
आचार्यहं–आचार्योंको ।
उपाध्यायहं–उपाध्यायोंको ।
सर्वसाधुहं–सर्व साधुओंको ।

अर्थ-सङ्कलना—

भगवन्तोंको वन्दन हो, आचार्योंको वन्दन हो, उपाध्यायोंको वन्दन हो, सर्व साधुओंको वन्दन हो ।

सूत्र-परिचय—

भगवान्, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको थोभवन्दन करनेके लिये इस सूत्रका उपयोग होता है । इस सूत्रके चारों पदोंमें अपभ्रंश-भाषाके नियमानुसार षष्ठीके बहुवचनका हं प्रत्यय लगा हुआ है और वन्दन हो अर्थ अध्याहारसे लिया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६ पडिक्कमण–ठवणा--सुत्तं

['सव्वस्स वि'–सूत्र]

मूल—

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! देवसिअ–पडिक्कमणे ठाउं ?* इच्छं ।

सव्वस्स वि देवसिअ दुच्चिंतिअ दुब्भासिअ दुच्चिट्ठिअ मिच्छा मि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ—

इच्छाकारेण–स्वेच्छासे ।

संदिसह–आज्ञा प्रदान करो ।

भगवन् !–हे भगवन् !

देवसिअ-पडिक्कमणे–दैवसिक प्रतिक्रमणमें ।

ठाउं–स्थिर होनेकी ।

इच्छं–मैं भगवन्तके इस वचनको चाहता हूँ ।

सव्वस्स–सबका ।

वि–भी ।

देवसिअ–दिवस सम्बन्धी, दिनके मध्यमें ।

दुच्चिंतिअ–दुष्ट–चिन्तन–सम्बन्धी ।

दुब्भासिअ–दुष्ट–भाषण–सम्बन्धी ।

दुच्चिट्ठिअ–दुष्ट–चेष्टा–सम्बन्धी ।

मिच्छा मि दुक्कडं–मेरा दुष्टकृत मिथ्या हो ।

× यहाँ गुरु आज्ञा देते हैं कि '**ठाएह**'—प्रतिक्रमणमें स्थिर बनो । तब शिष्य कहे कि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

हे भगवन् ! स्वेच्छासे मुझे दैवसिक प्रतिक्रमणमें स्थिर होनेकी आज्ञा प्रदान करो। मैं भगवन्तके इस वचनको चाहता हूँ।

दिनके मध्यमें दुष्ट-चिन्तन-सम्बन्धी, दुष्ट-भाषण-सम्बन्धी, दुष्ट-चेष्टा-सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

सूत्र-परिचय—

यह सूत्र प्रतिक्रमणका बीज माना जाता है, क्योंकि इसमें मन, वचन और काय से किये हुए पापोंका मिथ्या दुष्कृतद्वारा प्रतिक्रमण किया जाता है।

---

२७ अइयारालोअण-सुत्तं

[अतिचार-आलोचना-सूत्र]

मूल—

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! देवसिअं आलोउं ?

[गुरु-'आलोएह']

इच्छं।

आलोएमि—

जो मे देवसिओ अयियारो कओ,

काइओ वाइओ माणसिओ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो,
दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ,
अणायारो अणिच्छिअव्वो असावग–पाउग्गो,
नाणे दंसणे चरित्ताचरित्ते सुए सामाइए ॥
तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं,
पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं,
बारसविहस्स सावगधम्मस्स जं खंडिअं, जं विराहिअं, तस्य मिच्छा मि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ—

इच्छाकारेण–इच्छा–पूर्वक ।
संदिसह–आज्ञा प्रदान करो ।
भगवन् !–हे भगवन् !
देवसिअं–दिवस सम्बन्धी ।
आलोउं–आलोचना करूँ ?
[**आलोएह**–आलोचना करो ।]
इच्छं–चाहता हूँ । (इसी प्रकार) ।
आलोएमि–आलोचना करता हूँ ।
जो–जो ।
मे–मेरेद्वारा ।
देवसिओ–दिवस–सम्बन्धी ।
अइयारो–अतिचार ।
कओ–किया हो–हुआ हो ।
काइओ – कायिक, कायद्वारा हुआ हो ।
वाइओ–वाचिक, वाणीद्वारा हुआ हो ।
माणसिओ–मानसिक, मनद्वारा हुआ हो ।
उस्सुत्तो–उत्सूत्र, सूत्रके विरुद्ध भाषण करनेसे हुआ हो ।
उम्मग्गो–उन्मार्ग, मार्गसे विरुद्ध वर्तन करनेसे हुआ हो ।
अकप्पो–अकल्प, कल्पसे विरुद्ध वर्तन करनेसे हुआ हो ।
अकरणिज्जो–नहीं करने योग्य कर्तव्य करनेसे हुआ हो ।
दुज्झाओ–दुर्ध्यानसे हुआ हो ।
दुव्विचिंतिओ – दुष्ट – चिन्तनसे हुआ हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणायारो—अनाचारसे हुआ हो।
अणिच्छिअव्वो—अनिच्छित वर्तनसे हुआ हो।
असावग-पाउग्गो—श्रावकके लिये सर्वथा अनुचित हो, ऐसे व्यवहारसे हुआ हो।
नाणे—ज्ञानाराधनके विषयमें।
दंसणे—दर्शनाराधनके विषयमें।
चरित्ताचरित्ते—देशविरति चारित्राराधनके विषयमें।
सुए—श्रुतज्ञान ग्रहणके विषयमें।
सामाइए—सामायिकके विषयमें।
तिण्हं गुत्तीणं—तीन गुप्तियोंका।
चउण्हं कसायाणं—चार कषायोंसे।
पंचण्हं अणुव्वयाणं—पाँच अणुव्रतोंका।
तिण्हं गुणव्वयाणं—तीन गुणव्रतोंका।
चउण्हं सिक्खावयाणं—चार शिक्षाव्रतोंका।
बारसविहस्स—बारह प्रकारके।
सावगधम्मस्स—श्रावकधर्मका।
जं—जो।
खंडिअं—खण्डित हुआ हो।
विराहिअं—विराधित हुआ हो।
तस्स—तत्सम्बन्धी।
मिच्छा मि दुक्कडं—मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

अर्थ-सङ्कलना—

इच्छा—पूर्वक आज्ञा प्रदान करो, हे भगवन्! मैं दिवस सम्बन्धी आलोचना करूँ?

[गुरु कहें—आलोचना करो।]

[शिष्य]—इसी प्रकार चाहता हूँ।

दिवस—सम्बन्धी मुझसे जो अतिचार हुआ हो उसकी आलोचना करता हूँ। (यह अतिचार—)

कायाद्वारा हुआ हो, वाणीद्वारा हुआ हो या मनद्वारा हुआ हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रसे विरुद्ध, मार्गसे विरुद्ध, कल्पसे विरुद्ध या कर्तव्यसे विरुद्ध (चलनेके कारण हुआ हो ।)

दुष्ट—ध्यानसे हुआ हो अथवा दुष्ट—चिन्तनसे हुआ हो ।

अनाचारसे हुआ हो, नहीं चाहने योग्य वर्तनसे हुआ हो या श्रावकके लिये सर्वथा अनुचित ऐसे व्यवहारसे हुआ हो ।

ज्ञानाराधनके विषयमें, दर्शनाराधनके विषयमें, देशविरति चारित्राराधनके विषयमें, श्रुतज्ञान—ग्रहणके विषयमें अथवा सामायिकके विषयमें हुआ हो ।।

तीन गुप्तियोंका, पाँच अणुव्रतोंका, चार शिक्षाव्रतोंका, बारह प्रकारके श्रावक धर्मका चार कषायोंसे जो खण्डित हुआ हो, विराधित हुआ हो, तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ।

सूत्र-परिचय—

दिनके मध्यमें हुए अतिचारोंको गुरुके समक्ष प्रकट करनेके लिये इस सूत्रकी योजना की गयी है ।

---

२८ अइयार-वियारण-गाहा

[अतिचार विचारनेके लिए गाथाएँ]

मूल—

[गाहा]

नाणम्मि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तह य वीरियम्मि ।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ।।१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

नाणम्मि–ज्ञानके विषयमें ।
दंसणम्मि–दर्शनके विषयमें ।
अ–और ।
चरणम्मि–चारित्रके विषयमें ।
तवम्मि–तपके विषयमें ।
तह य–और ।
वीरयम्मि–वीर्यके विषयमें ।
आयरणं–आचरण करना ।
आयारो–आचार ।
इअ–यह ।
पंचहा–पाँच प्रकारका ।
भणिओ–कहा गया है ।

अर्थ–संकलना—

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यके विषयमें जो आचरण करना आचार कहा गया है । यह आचार पाँच प्रकारका है :—(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार, (३) चारित्राचार, (४) तपाचार और (५) वीर्याचार ।।१।।

मूल—

काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे ।
वंजण--अत्थ–तदुभये, अट्ठविहो नाणमायारो ।।२।।

शब्दार्थ—

काले–कालके विषयमें ।
विणए–विनयके विषयमें ।
बहुमाणे–बहुमानके विषयमें ।
उवहाणे–उपधानके विषयमें ।
तह–तथा ।
अनिण्हवणे–अनिह्नवताके विषयमें । अनिण्हवण–गुरु, ज्ञान और सिद्धान्त आदिके विषयमें अपलाप करना ।
वंजण–अत्थ– तदुभये –व्यञ्जन, अर्थ और तदुभयके विषयमें ।
अट्ठविहो–आठ प्रकारका ।
नाणमायारो–ज्ञानाचार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ–सङ्कलना—

ज्ञानाचार आठ प्रकारका है :—(१) काल, (२) विनय, (३) बहुमान, (४) उपधान, (५) अनिह्नवता, (६) व्यञ्जन, (७) अर्थ और (८) तदुभय ॥२॥

मूल—

निस्संकिअ निक्कंखिअ, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी अ ।
उववूह–थिरीकरणे, वच्छल्ल–पभावणे अट्ठ ॥३॥

शब्दार्थ—

निस्संकिअ–किसी प्रकारकी शङ्का न करना, निःशङ्कता ।

निक्कंखिअ–किसी प्रकारकी इच्छा न करना, निष्कांक्षता ।

निव्वितिगिच्छा–मतिविभ्रमसे रहित अवस्था, निर्विचिकित्सा ।

अमूढदिट्ठी–जिस दृष्टिमें मूढता न हो, अमूढदृष्टिता ।

अ–और ।

उववूह – थिरीकरणे – उपबृंहणा और स्थिरीकरण ।

वच्छल्ल–पभावणे–वात्सल्य और प्रभावना ।

अट्ठ–आठ ।

अर्थ–सङ्कलना—

दर्शनाचारके आठ प्रकार हैं :—(१) निःशङ्कता, (२) निष्काङ्क्षता, (३) निर्विचिकित्सा, (४) अमूढदृष्टिता (५) उपबृंहणा, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना ॥३॥

मूल—

पणिहाण–जोग–जुत्तो, पंचहिं समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ नायव्वो ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

पणिहाण– जोग– जुत्तो– चित्त-की समाधि–पूर्वक ।

पंचहिं समिईहिं–पाँच समितियोंका ।

तीहिं गुत्तीहिं–तीन गुप्तियोंका (पालन) ।

एस–यह, इस तरह ।

चरित्तायारो–चारित्राचार ।

अट्ठविहो–आठ प्रकारका ।

होइ–होता है ।

नायव्वो–जानने योग्य ।

अर्थ–सङ्कलना—

चित्तकी समाधि—पूर्वक पाँच समिति और तीन गुप्तियोंका पालन, इस तरह चारित्राचार आठ प्रकारका जानने योग्य होता है।।४।।

मूल—

बारसविहम्मि वि तवे, सब्भिंतरे–बाहिरे कुसल–दिट्ठे ।
अगिलाइ अणाजीवी, नायव्वो सो तवायारो ।।५।।

शब्दार्थ—

बारसविहम्मि–बारह प्रकारका ।

वि–भी ।

तवे–तपके विषयमें, तप ।

सब्भिंतर – बाहिरे – अभ्यन्तर सहित बाह्य, बाह्य और अभ्यन्तर ।

कुसल – दिट्ठे – जिनेश्वरोंद्वारा कथित ।

अगिलाइ अणाजीवी – ग्लानि–रहित और आजीविकाके हेतु विना ।

नायव्वो–जानना ।

सो–वह ।

तवायारो–तपाचार ।

अर्थ–सङ्कलना—

जिनेश्वरोंद्वारा कथित बाह्य और अभ्यन्तर तप बारह प्रकारका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। वह जब ग्लानि–रहित और आजीविकाके हेतु विना होता हो, तब उसे तपाचार जानना ॥५॥

मूल—

अणसणमूणोअरिआ, वित्ती–संखेवणं रस–च्चाओ।
काय–किलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥६॥

शब्दार्थ—

अणसणमूणोअरिआ–अनशन और ऊनोदरिका–ऊनोदरता।
वित्ती–संखेवणं–वृत्ति संक्षेप।
रस–च्चाओ–रस–त्याग।
काय – किलेसो – कष्ट – सहन करना–तितिक्षा, काय–क्लेश।
संलीणया–शरीरादिकका सङ्कोपन, संलीनता।
य–और।
बज्झो–बाह्य।
तवो–तप।
होइ–होता है, है।

अर्थ–सङ्कलना—

(१) अनशन, (२) ऊनोदरता, (३) वृत्ति—संक्षेप, (४) रस—त्याग, (५) काय—क्लेश और (६) संलीनता ये बाह्य तप हैं ॥६॥

मूल—

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होई ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—

पायच्छित्तं–प्रायश्चित
विणओ–विनय।
वेयावच्चं–वैयावृत्त्य (शुश्रूषा)।
तहेव–वैसे ही।
सज्झाओ–स्वाध्याय।
झाणं–ध्यान।
उस्सग्गो–त्याग।
वि अ–और फिर।
अब्भिंतरओ–अभ्यन्तर।
तवो–तप।
होइ–होता है, हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ–सङ्कलना—

(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान और (६) उत्सर्ग, (त्याग) ये अभ्यन्यर तप हैं ॥७॥

मूल—

अणिगूहिअ-बल-वीरिओ, परक्कमइ जो जहुत्तमाउत्तो ।
जुंजइ अ जहाथामं, नायव्वो वीरिआयारो ॥८॥

शब्दार्थ—

अणिगूहिअ–बल–वीरिओ– बाह्य-और अभ्यन्तर सामर्थ्यको न छिपाते हुए ।
परक्कमइ–पराक्रम करता है ।
जो–जो ।
जहुत्तं–उपर्युक्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके छत्तीस आचारोंके विषयमें ।
आउत्तो–उसके पालनमें ।
जुंजइ–जोड़ता है ।
अ–और ।
जहाथामं–यथाशक्ति अपनी आत्माको ।
नायव्वो–जानना ।
वीरिआयारो–वीर्याचार ।

अर्थ–सङ्कलना—

उपर्युक्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके छत्तीस आचारोंके विषयमें जो बाह्य और अभ्यन्तर सामर्थ्यको न छिपाकर पराक्रम करता है और उसके पालनमें अपनी आत्माको यथाशक्ति जोड़ता है, ऐसे आचारवान्का आचार वीर्याचार जानना ॥८॥

सूत्र-परिचय—

कायोत्सर्गमें अतिचार विचारनेके लिये इन गाथाओंका उपयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। इनमें प्रत्येक आचारके जो प्रकार दिखाये हैं, उनमें लगे हुए अतिचारोंका चिन्तन किया जाता है।

पञ्चाचार

प्रश्न—आचार किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यसम्बन्धी जो आचरण, वह आचार कहलाता है।

प्रश्न—ये आचार कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—पाँच प्रकारके। ज्ञानसम्बन्धी ज्ञानाचार, दर्शनसम्बन्धी दर्शनाचार, चारित्रसम्बन्धी चारित्राचार, तपसम्बन्धी तपाचार, और वीर्यसम्बन्धी वीर्याचार।

प्रश्न—ज्ञानाचार कितने प्रकारका है ?

उत्तर—आठ प्रकारका। वह इस तरह—

(१) श्रुत समयानुसार पढ़ना।
(२) श्रुत नियमसे पढ़ना।
(३) श्रुत बहुमानपूर्वक पढ़ना।
(४) श्रुत उपधानपूर्वक पढ़ना।
(५) गुरु, ज्ञान अथवा सिद्धान्तका अपलाप नहीं करना।
(६) उच्चारण शुद्ध करना।
(७) अर्थ शुद्ध करना।
(८) उच्चारण और अर्थ दोनों शुद्ध करने।

प्रश्न—दर्शनाचार कितने प्रकारका है ?

उत्तर—आठ प्रकारका। वह इस तरहः—

(१) जिनवचनमें शङ्का नहीं करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) जिनवचनके अतिरिक्त अन्यकी काङ्क्षा नहीं करना ।

(३) जिनवचनमें मतिभ्रम नहीं करना ।

(४) मूढदृष्टिवाला नहीं होना । अर्थात् सत्यासत्य-(विवेक) परीक्षण सीखना चाहिए ।

(५) धर्माचरणवालोंकी पुष्टि करना ।

(६) धर्ममार्गसे विचलित होनेवालेको स्थिर करना ।

(७) साधर्मियोंके प्रति वात्सल्यभाव रखना ।

(८) धर्मकी प्रभावना करनी ।

प्रश्न—चारित्राचार कितने प्रकारका है ?

उत्तर—आठ प्रकारका । वह इस तरहः—

(१) पाँच समितियोंका पालन करना ।

(२) तीन गुप्तियोंका पालन करना ।

प्रश्न—तपाचार कितने प्रकारका है ?

उत्तर—बारह प्रकारका । वह इस तरहः—

छह प्रकारका बाह्यतप—

(१) उपवास करना ।

(२) ऊणोदरी व्रतका पालन करना, भूखकी अपेक्षा कुछ कम खाना ।

(३) वृत्ति-संक्षेप करना, खानेके द्रव्य कम करना ।

(४) रसका त्याग, दूध, दही, घृत, तेल, गुड़ और पक्वान्न यथाशक्ति कम करना ।

(५) संयमके पालनमें यथाशक्य कायाका क्लेश सहन करना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) शरीरादिका सङ्गोपन करना; अर्थात् अङ्गोपाङ्ग सङ्कोच-पूर्वक रखना।

छह प्रकारका अभ्यन्तर तप—

(१) दोषोंकी शुद्धिके लिए शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त लेना।

(२) ज्ञानादि मोक्षके साधनोंकी यथाविधि आराधना करना।

(३) सङ्घ, श्रमण आदिका वैयावृत्त्य करना।

(४) शास्त्रका स्वाध्याय करना।

(५) शुभ ध्यान धरना।

(६) कषाय आदिका त्याग करना।

प्रश्न—वीर्याचार कितने प्रकारका है ?

उत्तर—तीन प्रकारका। मन, वचन और कायकी शक्ति बिना छिपाये ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके आचारोंका पालन करनेके लिये पुरुषार्थ करना।

प्रश्न—पञ्चाचारसे क्या होता है ?

उत्तर—पञ्चाचारसे धर्मकी आराधना सुन्दर रीतिसे होती है।

---

२९ सुगुरु-वंदण-सुत्तं

[सुगुरु-वन्दन-सूत्र]

मूल—

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए, निसीहिआए, अणुजाणह मे मिउग्गहं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निसीहि अहोकाय, काय--सफासं खमणिज्जो भे !
किलामो,
अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे ! दिवसो वइक्कंतो ?
जत्ता भे ?
जवणिज्जं च भे ?
खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं,
आवस्सिआए पडिक्कमामि ।
खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए,
तित्तीसन्नयराए,
जं किंचि मिच्छाए,
मण--दुक्कडाए वय--दुक्कडाए काय--दुक्कडाए,
कोहाए माणाए मायाए लोभाए,
सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए,
सव्वधम्माइक्कमणाए,
आसायणाए,
जो मे अइयारो कओ, तस्स खमासमणो !
पडिक्कमामि निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

इच्छामि—चाहता हूँ ।

खमासमणो !—हे क्षमाश्रमण गुरुदेव !

वंदिउं—वन्दन करनेको ।

जावणिज्जाए—सुखशाता (शान्ति) पूछते हुए ।

निसीहिआए—अविनय आशातनाकी क्षमा माँगते हुए ।

अणुजाणह—आज्ञा प्रदान करो ।

मे—मुझे ।

मिउग्गहं—अवग्रहमें आनेके लिये, मर्यादित भूमिमें प्रवेश करनेकी ।

मित—मर्यादित । अवग्रह—गुरुके आसपासकी शरीर जितनी (साढेतीन हाथ) जगह ।

निसीहि—अशुभ व्यापारोंके त्याग-पूर्वक ।

अहोकायं—चरणोंको ।

काय-संफासं—मेरी कायाद्वारा संस्पर्श ।

खमणिज्जो—सहन करने योग्य है, क्षमा करें ।

भे !—आपके द्वारा, आप ।

किलामो—खेद ।

अप्पकिलंताणं—अल्प ग्लानिवाले आपका ।

बहुसुभेण—अत्यन्त सुखपूर्वक ।

भे !—आपका ।

दिवसो—दिवस ।

वइक्कंतो ?—बीता ?, व्यतीत हुआ ?

जत्ता—यात्रा, संयम-यात्रा ।

भे ?—आपकी ।

जवणिज्जं—इन्द्रिय और मन उपशमसे युक्त, इन्द्रिय कषाय उपघातसे रहित ।

च—और ।

भे ?—आपका ।

खामेमि—खमाता हूँ, क्षमा माँगता हूँ ।

खमासमणो !—हे क्षमाश्रमण !

देवसिअं—दिवस सम्बन्धी, दिनमें किये हुए ।

वइक्कमं—व्यतिक्रमकी, अपराधकी ।

आवस्सिआए—आवश्यक — क्रियाके लिये ।

पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करता हूँ, अवग्रहसे बाहर जाता हूँ ।

खमासमणाणं—क्षमाश्रमणकी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसिआए–दिवस-सम्बन्धी ।

आसायणाए–आशातना ।

तित्तीसन्नयराए–तैंतीसमेंसे ।

तं किंचि–जो कोई ।

मिच्छाए–मिथ्याभावद्वारा ।

मण–दुक्कडाए–मनके दुष्कृतद्वारा, मनकी दुष्ट प्रवृत्तिसे हुई ।

वय–दुक्कडाए-वचनके दुष्कृतद्वारा, वचनकी दुष्ट प्रवृत्तिसे हुई ।

काय–दुक्कडाए–कायके दुष्कृत-द्वारा, कायकी दुष्ट प्रवृत्तिसे हुई ।

कोहाए–क्रोधसे हुई ।

माणाए–मानसे हुई ।

मायाए–मायासे हुई ।

लोभाए–लोभसे हुई, लोभकी वृत्तिसे हुई ।

सव्वकालियाए–सर्वकाल सम्बन्धी ।

सव्वमिच्छोवयाराए–सर्व प्रकारके मिथ्या उपचारोंसे ।

सव्वधम्माइक्कमणाए–सर्व प्रकार-के धर्मका अतिक्रमण होनेके कारण हुई ।

जो–जो ।

मे–मुझसे ।

अइयारो–अतिचार ।

कओ–किया हो, हुआ हो ।

तस्स–तत् सम्बन्धी ।

खमासमणो !–हे क्षमाश्रमण !

पडिक्कमामि–प्रतिक्रमण करता हूँ, वापस लौटता हूँ ।

निंदामि–निन्दा करता हूँ ।

गरिहामि–गुरुके समक्ष निन्दा करता हूँ ।

अप्पाणं–आत्माको, अशुभ योगमें प्रवृत्त अपनी आत्माका ।

वोसिरामि–छोड़ देता हूँ, त्याग करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

[शिष्य कहता है–] हे क्षमाश्रमण गुरुदेव ! आपकी मैं सुख-शाता पूछते हुए तथा अविनय आशातनाकी क्षमा माँगते हुए वन्दन करना चाहता हूँ ।×

× यहाँ गुरु कहें–'छंदेणं' यदि ऐसी ही इच्छा हो तो ऐसा करो, तब शिष्य कहे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुझे आपकी मर्यादितभूमिके समीप आनेकी आज्ञा प्रदान करो। +

सर्व अशुभ व्यापारोंके त्याग-पूर्वक आपके चरणोंको अपनी कायासे स्पर्श करता हूँ। उससे जो कोई खेद–कष्ट हुआ हो उसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करें। आपका दिन अल्प–खेदसे सुखपूर्वक व्यतीत हुआ है ?*

आपको संयम—यात्रा चल रही है ? ×

आपकी इन्द्रियाँ और कषाय उपघात रहित वर्तन करते हैं ? ÷

हे क्षमाश्रमण ! दिनमें किये हुए अपराधोंकी क्षमा माँगता हूँ।=

आवश्यक–क्रियाके लिये अब मैं अवग्रहके बाहर जाता हूँ। दिनमें आप क्षमाश्रमणकी तैंतीसमेंसे कोई भी आशातना की हो तो उससे मैं वापस लौटता हूँ। और जो कोई अतिचार मिथ्याभावके कारण हुई आशातनासे हुआ हो, मन, वचन और कायाकी दुष्ट–प्रवृत्तिसे हुई आशातनासे हुआ हो, क्रोध, मान, माया और लोभकी वृत्तिसे हुई आशातनासे हुआ हो अथवा सर्व काल–सम्बन्धी, सर्व प्रकारके मिथ्या उपचारोंसे, सर्व प्रकारके धर्मके अति-

---

+ यहाँ गुरु कहें– अणुजाणामि'–आज्ञा देता हूँ। तब शिष्य कहे—

* यहाँ गुरु कहें–'तह त्ति' ऐसा ही है। तब शिष्य कहे—

× यहाँ गुरु कहें–'तुब्भंपि वट्टए ?' तुम्हारी भी चल रही है ?

÷ यहाँ गुरु कहें–'एवं' ऐसा ही है। तब शिष्य कहे—

= यहाँ गुरु कहें–'अहमपि खामेमि तुब्भं'–मैं भी तुमसे क्षमा चाहता हूँ। फिर शिष्य कहे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमणके कारण हुई आशातनासे हुआ हो, उनसे हे क्षमाश्रमण ! मैं वापस लौटता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और इस अशुभ—योगमें प्रवृत्त अपनी आत्माका त्याग करता हूँ ।

सूत्र-परिचय—

गुरुको बारह आवर्तपूर्वक वन्दन करनेके लिये यह सूत्र बोला जाता है । इसमें 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए' इन पदोंसे वन्दनकी इच्छाका निवेदन किया जाता है, अतः इसको 'इच्छा-निवेदन-स्थान' कहते हैं । 'अणुजाणह' से 'किलामो' पर्यन्तके पदोंसे अनुज्ञा माँगी जाती है, अतः इसको 'अनुज्ञापन-स्थान' कहते हैं । 'अप्पकिलंताणं' से 'वइक्कंतो' तकके पदोंसे 'अव्याबाध-स्थिति' पूछी जाती है, अतः इसको 'अव्याबाध-पृच्छा-स्थान' कहते हैं । 'जत्ता भे ?' इन दो पदोंसे संयम-यात्राकी पृच्छा की जाती है, अतः इसको 'संयमयात्रा-पृच्छा-स्थान' कहते हैं । 'जवणिज्जं च भे ?' इन तीन पदोंसे यापनाकी पृच्छा की जाती है, अतः इसको 'यापना—पृच्छा-स्थान' कहते हैं । और 'खामेमि खमासमणो' से 'वोसिरामि' तकके पदोंसे अपराधकी क्षमा माँगी जाती है, अतः इसको 'अपराध-क्षमापन-स्थान' कहते हैं ।

इस सूत्रमें 'अहोकायं काय—' 'जत्ता भे ?' और 'जवणिज्जं च भे ?' ये शब्द विशिष्ट रीतिसे बोले जाते हैं, वे इस प्रकार—

अ—रजोहरणको स्पर्श करते हुए बोला जाता है ।
हो—ललाटको स्पर्श करते हुए बोला जाता है ।
का—रजोहरणको स्पर्श करते हुए बोला जाता है ।
यं—ललाटको स्पर्श करते हुए बोला जाता है ।
का—रजोहरणको स्पर्श करते हुए बोला जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य—ललाटको स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

ज—अनुदात्त-स्वरसे बोला जाता है और उसी समय गुरु-चरणकी स्थापनाको दोनों हाथोंसे स्पर्श किया जाता है।

त्ता—स्वरित-स्वरसे बोला जाता है और उस समय चरण स्थापनासे उठाये हुए हाथ रजोहरण और ललाटके बीचमें चौड़े करनेमें आते हैं।

भे—उदात्त-स्वरसे बोला जाता है और उस समय दृष्टि गुरुके समक्ष रखकर दोनों हाथ ललाटपर लगाये जाते हैं।

ज—अनुदात्त-स्वरसे, चरणस्थापनाको स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

व—स्वरित-स्वरसे, मध्यमें आते हुए हाथ चौड़े करके बोला जाता है।

णि—उदात्त-स्वरसे, ललाटको स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

ज्जं—अनुदात्त-स्वरसे, चरण-स्थापनाको स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

च—स्वरित-स्वरसे, मध्यमें आते हुए हाथ चौड़े करके बोला जाता है।

भे—उदात्त-स्वरसे, ललाटको स्पर्श करते हुए बोला जाता है।

---

३० जीवहिंसा-आलोयणा

['सात लाख'-सूत्र]

मूल—

सात लाख पृथ्वीकाय,
सात लाख अप्काय,
सात लाख तेजकाय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सात लाख वायुकाय,
दस लाख प्रत्येक–वनस्पतिकाय,
चौदह लाख साधारण–वनस्पतिकाय,
दो लाख दो इन्द्रिय,
दो लाख तीन इन्द्रिय,
दो लाख चार इन्द्रिय,
चार लाख देवता,
चार लाख नारकी,
चार लाख तिर्यञ्च–पञ्चेन्द्रिय,
चौदह लाख मनुष्य,

इस प्रकार चौरासी लाख जीवयोनियोंमेंसे किसी जीवका हनन किया हो, हनन कराया हो, हनन करते हुएका अनुमोदन किया हो, वह सब मन, वचन और कायासे मिच्छा मि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ और अर्थ–सङ्कलना—

स्पष्ट है ।

सूत्र–परिचय—

यह सूत्र चौरासी लाख जीवयोनियोंके अन्तर्गत किसी भी जीवकी हिंसा की हो, उसका मिथ्या दुष्कृत लेनेके लिए बोला जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१ अट्ठारस पाव–ठाणाणि

[अठारह पापस्थानक]

मूल—

पहला प्राणातिपात,
दूसरा मृषावाद,
तीसरा अदत्तादान,
चौथा मैथुन,
पाँचवाँ परिग्रह,
छठा क्रोध,
सातवाँ मान,
आठवीं माया,
नौवाँ लोभ,
दसवाँ राग,
ग्यारहवाँ द्वेष,
बारहवाँ कलह,
तेरहवाँ अभ्याख्यान,
चौदहवाँ पैशुन्य,
पन्द्रहवाँ रति–अरति,
सोलहवाँ पर–परिवाद,
सत्रहवाँ माया–मृषावाद,
अठारहवाँ मिथ्यात्व–शल्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन अठारह पापस्थानकोंमेंसे मेरे जीवने जो कोई पाप सेवन किया हो, सेवन कराया हो, सेवन करते हुएके प्रति अनुमोदन किया हो; उन सबका मन, वचन और कायासे मिच्छा मि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ—

प्राणातिपात–हिंसा ।
मृषावाद–झूठ बोलना ।
अदत्तादान–चोरी ।
मैथुन–अब्रह्म ।
परिग्रह–धन-दौलतपर मोह ।
क्रोध–गुस्सा, कोप ।
मान–गर्व, मद ।
माया–छल, कपट ।
लोभ–तृष्णा ।
राग–प्रेम ।
द्वेष–परस्पर ईर्ष्या करना ।
कलह–क्लेश ।
अभ्याख्यान–दोषारोपण, व्यर्थ ही किसी पर झूठा दोष आरोपण करना ।
पैशुन्य–चुगली, पीठ पीछे सच्चे-झूठे दोष प्रकाशित करना ।
रति-अरति–हर्ष और उद्वेग ।
पर-परिवाद–दूसरेको बुरा कहना और अपनी प्रशंसा करना ।
माया-मृषावाद–प्रवञ्चना, ठगाई ।
मिथ्यात्व-शल्य–मिथ्यात्व दोष ।

अर्थ-सङ्कलना—

स्पष्ट है ।

सूत्र-परिचय—

यह सूत्र अठारह पापस्थानकोंमेंसे किसी भी पापस्थानकका सेवन किया हो, उसका मिथ्या दुष्कृत लेनेके लिये बोला जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२ सावग-पडिक्कमण-सुत्तं

['वंदित्तु'-सूत्र]

मूल—

[गाहा]

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धम्मायरिए अ सव्वसाहू अ ।
इच्छामि पडिक्कमिउं, सावग-धम्माइआरस्स ॥१॥

शब्दार्थ—

वंदित्तु—वन्दन करके ।
सव्वसिद्धे—सर्व सिद्ध भगवन्तोंको ।
धम्मायरिए—धर्माचार्योंको ।
अ—और ।
सव्वासाहू—सब साधुओंको ।
अ—और
इच्छामि—चाहता हूँ ।
पडिक्कमिउं—प्रतिक्रमण करनेको ।
सावग-धम्माइआरस्स—श्रावक-धर्ममें लगे हुए अतिचारोंका ।

अर्थ-सङ्कलना—

सर्व सिद्ध भगवन्तों, (सर्व) धर्माचार्यों और सर्व साधुओंको वन्दन करके श्रावक—धर्ममें लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ ॥ १ ॥

मूल—

जो मे वयाइआरो, नाणे तहे दंसणे चरित्ते अ ।
सुहुमो व बायरो वा, तं निंदे तं च गरिहामि ॥ २ ॥

शब्दार्थ—

जो-जो ।
मे-मुझे ।
वयाइआरो—व्रतोंके विषयमें अतिचार लगा हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणे–ज्ञानकी आरायनाके विषयमें ।
तह–उसी प्रकार ।
दंसणे–दर्शनकी आराधनाके विषयमें ।
चरित्ते–चारित्रकी आराधनाके विषयमें ।
अ– और ।
सुहुमो–शीघ्र ध्यानमें न आये ऐसा, छोटा ।
व–अथवा ।
बायरो–शीघ्र ध्यानमें आये ऐसा, बड़ा ।
वा–अथवा ।
तं–उसकी ।
निंदे–आत्मसाक्षीसे बुरा मानता हूँ, निन्दा करता हूँ ।
तं–उसकी ।
च–और ।
गरिहामि–गुरुकी साक्षीमें प्रकट करता हूँ, गर्हा करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

मुझे व्रतोंके विषयमें तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी आराधनाके विषयमें छोटा अथवा बड़ा, जो अतिचार लगा हो, उसकी मैं निन्दा करता हूँ, उसकी मैं गर्हा करता हूँ ।। २ ।।

मूल—

दुविहे परिग्गहम्मी, सावज्जे बहुविहे अ आरंभे ।
कारावणे अ करणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। ३ ।।

शब्दार्थ—

दुविहे–दो प्रकारके, बाह्य और अभ्यन्तर ये दो प्रकारके ।
परिग्गहम्मी–परिग्रहके विषयमें, परिग्रहके कारण ।
जो वस्तु ममत्वसे ग्रहण की जाय वह परिग्रह । धन, धान्य आदि परिग्रह कहलाते हैं ।
सावज्जे–पापमय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुविहे–अनेक प्रकारके ।
अ–और ।
आरंभे–आरम्भ ।
कारावणे–दूसरेसे करवाते हुए ।
अ–और ।
कारणे–स्वयं करते हुए ।
पडिक्कमे–प्रतिक्रमण करता हूँ, निवृत्त होता हूँ ।
देसिअं–दिवस-सम्बन्धी ।
सव्वं–छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों उन सबसे ।

अर्थ–सङ्कलना—

बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहके कारण, पापमय अनेक प्रकारके आरम्भ दूसरेसे करवाते हुए और स्वयं करते हुए, दिवस-सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ ३ ॥

मूल—

जं बद्धमिंदिएहि, चउहिं कसाएहिं अप्पसत्थेहिं ।
रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—

जं बद्धं–जो बँधा हो ।
इंदिएहिं–इन्द्रियोंसे ।
चउहिं कसाएहिं–चार कषायोंसे ।
अप्पसत्थेहिं–अप्रशस्त ।
रागेण–रागसे ।
रागका लक्षण प्रीति अथवा आसक्ति है ।
व–अथवा ।
दोसेण–द्वेषसे ।
द्वेषका लक्षण अप्रीति है ।
व–अथवा ।
तं निंदे तं च गरिहामि–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

अप्रशस्त इन्द्रियों, चार कषायों, (तीन योगों) तथा राग और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वेषसे, जो (अशुभ-कर्म) बँधा हो, उसकी मैं निन्दा करता हूँ, उसकी मैं गर्हा करता हूँ ।। ४ ।।*

मूल—

आगमणे निग्गमणे, ठाणे चंकमणे अणाभोगे ।
अभिओगे अ निओगे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।।५।।

शब्दार्थ—

आगमणे–आनेमें ।
निग्गमणे–जानेमें ।
ठाणे–एक स्थानपर खड़े रहनेमें !
चंकमणे–बारंबार चलनेमें अथवा इधर उधर फिरने में ।
अणाभोगे–अनुपयोगमें, उपयोग न होनेसे ।
अभिओगे–अभिग्रहसे, दबाव होनेसे ।
अ–और ।
निओगे–नौकरी-आदिके कारण ।
पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ-सङ्कलना—

उपयोग नहीं रहनेसे, दबाव होनेसे अथवा नौकरी-आदिके कारण आनेमें, जानेमें, एक स्थान पर खड़े रहनेमें और बारंबार चलनेमें अथवा इधर उधर फिरनेमें दिवस-सम्बन्धी जो (अशुभ-कर्म) बँधे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ।। ५ ।।

---

*इन्द्रिय, कषाय, योग तथा राग-द्वेषके प्रशस्त और अप्रशस्त विभागोंके लिये देखो, प्रबोधटीका भाग २, पृ. १८२ । यहाँ तीन योग उपलक्षणसे लिये जाते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

संका कंख विगिच्छा, पसंस तह संथवो कुलिंगीसु ।
सम्मत्तस्स इआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥६॥

शब्दार्थ—

संका—वीतरागके वचनोंमें शङ्का ।
कंख—अन्यमतकी इच्छा, कांक्षा ।
विगिच्छा—धर्म के फलमें सन्देह होना अथवा साधु-साध्वीके मलिन वस्त्र देखकर दुर्भाव (दुगंछा) होना, विचिकित्सा ।
पसंस—प्रशंसा, कुलिङ्गी-प्रशंसा ।
तह—तथा ।
संथवो—संस्तव ।
कुलिंगीसु—कुलिङ्गियोंके बारेमें । पृथक् पृथक् वेश पहनकर धर्मके बहाने जो लोगोंको ठगते हैं वे कुलिङ्गी कहाते हैं ।
सम्मत्तस्स इआरे—सम्यक्त्वके अतिचारोंसे ।
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—पूर्ववत्०

अर्थ—सङ्कलना—

सम्यक्त्वके पालनमें शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, कुलिङ्गी-प्रशंसा तथा कुलिङ्गी-संस्तवद्वारा दिवस-सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ ६ ॥

मूल—

छक्काय-समारंभे, पयणे अ पयावणे अ जे दोसा ।
अत्तट्ठा य परट्ठा, उभयट्ठा चेव तं निंदे ॥७॥

शब्दार्थ—

छक्काय-समारंभे—छहकायके जीवोंकी-विराधना हो ऐसी प्रवृत्ति करते हुए ।
पयणे—राँधते हुए ।
अ-और ।
पयावणे—रँधाते हुए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ–तथा ।
जे–जो ।
दोसा–दोष ।
अत्तट्ठा–स्वयंके लिये, अपने लिये ।
य–और ।
परट्ठा–दूसरोंके लिये ।
उभयट्ठा–दोनोंके लिये ।
चेव–और साथ ही ।
तं निंदे–उनकी मैं निन्दा करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

छह कायके जीवोंको विराधना हो ऐसी प्रवृत्ति करते हुए तथा अपने लिये, दूसरोंके लिये और साथ ही दोनोंके लिये राँधते हुए, रँधाते हुए जो दोष हुए हों, उनको मैं निन्दा करता हूँ ॥ ७ ॥

मूल—

पंचण्हमणुव्वयाणं, गुणव्वयाणं च तिण्हमइआरे ।
सिक्खाणं च चउण्हं, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—

पंचण्हमणुव्वयाणं–पाँच अणुव्रतोंमें।

स्थूल–प्राणातिपात–विरमणव्रत आदि पाँच व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।

गुणव्वयाणं–गुणव्रतोंमें ।

दिक्–परिणाम–व्रत आदि तीन व्रत गुणव्रत कहलाते हैं ।

च–और ।
तिण्हं–तीन ।
अइआरे–अतिचारोंको ।
सिक्खाणं–शिक्षाव्रतोंमें ।

सामयिक–व्रत आदि चार व्रत शिक्षाव्रत कहलाते हैं ।

च–और ।
चउण्हं–चार ।
पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों में दिवस-सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ ८ ॥

मूल—

पढमे अणुव्वयम्मी, थूलग-पाणाइवाय-विरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय-प्पसंगेणं ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—

पढमे अणुव्वयम्मी-प्रथम अणुव्रतके विषयमें ।

थूलग-पाणाइवाय-विरईओ-स्थूल प्राणातिपातकी विरतिसे दूर हो ऐसा,

स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रतमें अतिचार लगे ऐसा ।

थूलग—स्थूल, कुछ अंशोंमें पालन करना ।

पाणाइवाय-प्राणका वियोग करना, हिंसा । विरइ-विरमणव्रत, दूर रहना ।

आयरिय-जो कोई आचरण किया हो ।

अप्पसत्थे-अप्रशस्त-भावका उदय होनेसे ।

इत्थ-यहाँ ।

पमाय-प्पसंगेणं-प्रमादके प्रसङ्गसे

अर्थ-सङ्कलना—

अब प्रथम अणुव्रतके विषयमें (लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण किया जाता है ।) यहाँ प्रमादके प्रसङ्गसे अथवा (क्रोधादि) अप्रशस्त भावका उदय होनेसे स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रतमें अतिचार लगे ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ ९ ॥

मूल—

वह-बंध-छविच्छेए, अइभारे भत्त-पाण-वुच्छेए ।
पढम-वयस्स इआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

वह–बंध–छविच्छेए–मारते (फटकारते), बाँधते और अङ्गोपाङ्ग छेदते ।

वह—पशु अथवा दास–दासी आदिको निर्दयता–पूर्वक मारना । बंध—पशु अथवा दास–दासी आदिको रस्सी या साँकलसे बाँधना । छविच्छेअ–अङ्गोपाङ्ग अथवा चमड़ी छेदना ।

अइभारे–बहुत बोझा भरनेसे ।

भत्त–पाण–वुच्छेए–भोजन और पानीका विच्छेद करनेसे, भूखा–प्यासा रखनेसे ।

भत्त–भोजन । पाण–पानी ।

वुच्छेअ–विच्छेद करना, नहीं देना ।

पढम–वयस्स–पहले व्रतके विषयमें ।

इआरे–अतिचारोंको ।

यहाँ मूल शब्द अइआरे है, पर पूर्वके अकारका लोप होनेसे इआरे ऐसा पाठ बोला जाता है ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्० ।

अर्थ-सङ्कलना—

प्राणियोंको मारनेसे (फटकारनेसे), रस्सी आदि बाँधनेसे, अङ्गोपाङ्ग छेदनेसे, बहुत बोझा भरनेसे और भूखा-प्यासा रखनेसे, पहले व्रतके विषयमें, दिवस–सम्बन्धी छोटे–बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ १० ॥

मूल—

बीए अणुव्वयम्मी, परिथूलग–अलिय–वयणविरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय–प्पसंगेणं ॥ ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

बीए अणुव्वयम्मी–दूसरे अणुव्रतके विषयमें ।

परिथूलग–अलिय–वयण–विरईओ–स्थूल मृषावाद–विरमणव्रतमें, अतिचार लगे ऐसा । परिथूलग–स्थूल । अलिय–वयण––झूठे वचन, मृषावाद । विरति–विरमण–व्रत ।

आयरियमप्पसत्थे इत्थ पमाय–प्पसंगेणं–पूर्ववत्०

अर्थ-सङ्कलना—

अब दूसरे अणुव्रतके विषयमें (लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण किया जाता है ।) यहाँ प्रमादके प्रसङ्गसे अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भावका उदय होनेसे स्थूल–मृषावाद–विरमण–व्रतमें अतिचार लगे ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।। ११ ।।

मूल—

सहसा–रहस्स–दारे, मोसुवएसे अ कूडलेहे अ ।
बीयवयस्स इआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। १२ ।।

शब्दार्थ—

सहसा–रहस्स–दारे—सहसाभ्याख्यान करनेसे, रहोऽभ्याख्यान करनेसे, स्वदारमन्त्र–भेद करनेसे ।

सहसाऽभ्याख्यान—बिना विचारे किसीको दूषित कहना । रहोऽभ्याख्यान–कोई मनुष्य रहस् अर्थात् एकान्तमें गुप्त बातें करते हों, उन्हें देखकर मनमाना अनुमान लगा लेना । स्वदारमन्त्र-भेद–अपनी स्त्रीकी गुप्त बात बाहर प्रकाशित करनी ।

मोसुवएसे–मिथ्या उपदेश अथवा झूठी सलाह देनेसे ।

अ–और ।

कूडलेहे–झूठी बातें लिखनेसे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ–और ।

बीयव्वयस्स इआरे–दूसरे व्रतके विषयमें ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

बिना विचारे किसीको दूषित कहनेसे (किसी पर दोषारोपण करनेसे), कोई मनुष्य गुप्त बातें करते हों, उन्हें देखकर मनमाना अनुमान लगानेसे, अपनी स्त्रीकी गुप्त बात बाहर प्रकाशित करनेसे, मिथ्या उपदेश अथवा झूठी सलाह देनेसे तथा झूठी बात लिखनेसे दूसरे व्रतके विषयमें दिवस–सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ।। १२ ।।

मूल—

तइअे अणुव्वयम्मी, थूलग–परदव्व–हरण–विरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय–प्पसंगेणं ।। १३ ।।

शब्दार्थ—

तइअे अणुव्वयम्मी–तीसरे अणुव्रतके विषयमें ।

थूलग–परदव्व–हरण–विरईओ–स्थूल–परद्रव्य–हरणकी विरतिसे दूर हो ऐसा, स्थूल–अदत्तादान–विरमण–व्रतमें अतिचार लगे ऐसा ।

थूलग–परदव्व–हरण–विरई — दूसरेके धनको हरण करनेका स्थूल रूपमें त्याग करना ।

आयरियमप्पसत्थे इत्थ पमाय–प्पसंगेणं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

अब तीसरे अणुव्रतके विषयमें (लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण किया जाता है ।) यहाँ प्रमादके प्रसङ्गसे अथवा क्रोधादि अप्रशस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावका उदय होनेसे स्थूल–अदत्तादान–विरमण–व्रतमें अतिचार लगे ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।। १३ ।।

मूल—

तेनाहड–प्पओगे, तप्पडिरूवे विरुद्ध–गमणे अ ।
कूडतुल–कूडमाणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। १४ ।।

शब्दार्थ—

तेनाहड–प्पओगे–स्तेनाहृत तथा स्तेन–प्रयोगमें, चोरद्वारा लायी वस्तु रखलेनेसे और चोरी करनेका उत्तेजन मिले ऐसे वचन बोलनेसे ।

तेन–चोर, आहड–लायी गयी । स्तेनप्रयोग–चोरी करनेका उत्तेजन मिले, ऐसे वचन बोलना ।

तप्पडिरूवे–नकली माल बेचनेसे, मालमें किसी तरहकी मिलावट करनेसे ।

विरुद्ध–गमणे–राज्यके नियमोंसे विरुद्ध गमन करनेसे ।

कूडतुल–कूडमाणे–झूठा तौल तौलनेसे, झूठा मापनेसे, झूठा तौल तथा झूठे मापका उपयोग करनेसे ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

चोरद्वारा लायी हुई वस्तु रख लेनेसे, चोरी करनेका उत्तेजन मिले, ऐसा वचन–प्रयोग करनेसे, मालमें मिलावट करनेसे, राज्यके विरुद्ध गमन करनेसे और झूठा तौल तथा झूठे मापका उपयोग करनेसे, दिवस–सम्बन्धी छोटे–बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ।। १४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

चउत्थे अणुव्वयम्मी, निच्चं परदार–गमण–विरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय–प्पसंगेणं ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—

चउत्थे अणुव्वयम्मी–चौथे अणुव्रतके विषयमें ।
निच्चं–नित्य, निरन्तर ।
परदार–गमण – विरईओ – परदार–गमन–विरतिमें अतिचार लगे ऐसा ।
आयरियमप्पसत्थे इत्थ पमाय–प्पसंगेणं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

अब चौथे अणुव्रतके विषयमें (लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण किया जाता है ।) यहाँ प्रमादके प्रसङ्गसे अथवा क्रोधादि अप्रशस्त-भावका उदय होनेसे निरन्तरकी परदार–गमन–विरतिमें अतिचार लगे, ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ १५ ॥

मूल—

अपरिग्गहिआ–इत्तर–अणंग–वीवाह–तिव्व–अणुरागे ।
चउत्थवयस्स इआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१६॥

शब्दार्थ—

अपरिग्गहिआ – इत्तर – अणंग-वीवाह – तिव्व – अणुरागे–अपरिगृहीता–गमन, इत्वरगृहीता–गमन, अनङ्ग-क्रीडा, परविवाह–करण और तीव्र–अनुरागके कारण ।

अपरिगृहीता–गमन–जो स्त्री परिगृहीता अर्थात् विवाहित न हो वह अपरिगृहीता, कन्या और विधवा स्त्रियाँ अपरिगृहीता कहलाती हैं, उनके साथ गमन करना–सङ्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना; वह अपरिगृहीता–गमन ।

इत्वरगृहीता–अल्प समयके लिये ग्रहण करनेमें आयी हुई स्त्री अर्थात् रखात (पासवान) अथवा वेश्या ।

अनङ्ग–क्रीडा–कामवासना जागृत करनेवाली क्रिया ।

परविवाह–करण–अपने लड़के-लड़की अथवा आश्रितोंके अतिरिक्त दूसरोंके विवाह आदि करना-कराना ।

तीव्र–अनुराग–विषय–भोग करनेकी अत्यन्त आसक्ति ।

चउत्थवयस्स इआरे–चौथे व्रतके अतिचारोंको ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

अपरिगृहीता–गमन, इत्वरगृहीता–गमन, अनङ्ग–क्रीडा, परविवाहकरण और तीव्र–अनुरागके कारण चौथे व्रतके विषयमें दिवस–सम्बन्धी छोटे–बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ १६ ॥

मूल—

इत्तो अणुव्वये पंचमम्मि आयरिअमप्पसत्थम्मि ।
परिमाण–परिच्छेए, इत्थ पमाय--प्पसंगेणं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—

इत्तो–यहाँसे, अब ।

अणुव्वये पंचमम्मि–पाँचवें अणुव्रतके विषयमें ।

आयरिअमप्पसत्थम्मि–अप्रशस्त–भावका उदय होनेसे जो कोई आचरण किया हो ।

परिमाण–परिच्छेए – परिमाण परिच्छेदके विषयमें, परिग्रह–परिमाण–व्रतमें अतिचार लगे ऐसा ।

इत्थ पमाय-प्पसंगेणं – पूर्ववत्०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

अब पाँचवें अणुव्रतके विषयमें (लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण किया जाता है।) यहाँ प्रमादके प्रसङ्गसे अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भावका उदय होनेसे परिग्रह-परिमाण-व्रतमें अतिचार लगे ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ १७ ॥

मूल—

धण-धन्न-खित्त-वत्थू-रुप्प-सुवन्ने अ कुविअ-परिमाणे।
दुपए चउप्पयम्मि य, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—

धण-धन्न-खित्त - वत्थू-रुप्प-सुवन्ने-धन-धान्य-प्रमाणातिक्रममें, क्षेत्र-वास्तु प्रमाणातिक्रममें, रौप्य-सुवर्ण-प्रमाणातिक्रममें।

धण-गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य वस्तुओंका सङ्ग्रह धन कहाता है। गणिम अर्थात् गिनकर लेने योग्य वस्तुएँ, जैसे-रोकड़े रुपये (नोट), सुपारी, श्रीफल आदि। धरिम अर्थात् तौलकर ली जाय ऐसी वस्तुएँ, जैसे कि गुड़, शक्कर आदि। मेय अर्थात् मापकर लेने योग्य वस्तुएँ, जैसे कि घी, तेल, कपड़ा आदि। परिच्छेद्य अर्थात् घिसकर अथवा काटकर ली जायँ ऐसी वस्तुएँ, जैसे कि सुवर्ण, रत्न आदि।

धन्न-जव, गेहूँ, चावल आदि चौबीस प्रकारके धान्य। खित्त-खेत, वाडी, बाग-बगीचा आदि। वत्थू-मकान हाट, गोदाम आदि। रुप्प-चाँदी। सुवन्न-सोना। अतिक्रम-उल्लङ्घन।

अ-और।

कुविअ-परिमाणे-कुप्य - प्रमाणातिक्रमके विषयमें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोना–चाँदीके अतिरिक्त वस्तुएँ कुप्य कहलाती हैं। शृङ्गार–सज्जा आदिका समावेश भी इसी विभागमें हो जाता है।

दुपए–चउप्पयम्मि–द्विपद और चतुष्पदके विषयमें, द्विपद–चतुष्पद – प्रमाणातिक्रमके विषयमें।

दुपअ–दो पैरवाले, दास–दासी और पक्षी। चउप्पय–चार पैरवाले, हाथी, घोड़ा, उँट आदि।

य–और।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

धन–धान्यका, क्षेत्र–वास्तुका, सोना–चाँदीका, अन्य धातुओंका तथा शृङ्गार–सज्जाका और मनुष्य, पक्षी तथा पशुओंका प्रमाण उल्लङ्घन करनेसे दिवस–सम्बन्धी छोटे–बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ १८ ॥

मूल—

गमणस्स य परिमाणे, दिसासु उड्ढं अहे अ तिरिअं च।
बुड्ढी सइ–अंतरद्धा, पढमम्मि गुणव्वए निंदे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—

गमणस्स–गमनके, जाने–आनेके।

य–और।

परिमाणे–परिमाणके विषयमें।

दिसासु–दिशाओंमें।

उड्ढं–ऊर्ध्वदिशामें जानेका प्रमाण लाँघनेसे।

अहे–अधोदिशामें जानेका प्रमाण लाँघनेसे।

अ–और।

तिरिअं–तिर्यग्दिशामें जानेका प्रमाण लाँघनेसे।

ऊर्ध्व और अधोदिशाका मध्य भाग तिर्यग्दिशा कहलाता है।

च–और।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुड्ढी–वृद्धि, बढ़ जानेसे ।
सइ–अंतरद्धा–स्मरण न रहनेसे, भूल जानेसे ।
पढमम्मि–गुणव्वए–पहले गुणव्रतमें ।
निंदे–मैं निन्दा करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

(अब मैं दिक्परिमाणव्रतके अतिचारोंकी आलोचना करता हूँ ।) उसमें ऊर्ध्वदिशामें जानेका प्रमाण लाँघनेसे, तिर्यग् अर्थात् उत्तर दक्षिणके मध्यकी दिशामें जानेका प्रमाण लाँघनेसे, क्षेत्रका प्रमाण बढ़ जानेसे अथवा क्षेत्रका प्रमाण भूल जानेसे पहले गुणव्रतमें जो अतिचार लगे हों, उनकी मैं निन्दा करता हूँ ॥ १९ ॥

मूल—

मज्जम्मि अ मंसम्मि अ, पुप्फे अ फले अ गंध–मल्ले अ ।
उवभोग–परीभोगे, बीअम्मि गुणव्वए निंदे ॥ २० ॥

शब्दार्थ—

मज्जम्मि–मद्यके विषयमें, मदिरा (की विरति) में ।
अ–और ।
मंसम्मि–मांसके विषयमें, मांस (की विरति) में ।
अ–तथा ।
पुप्फे–फूलके विषयमें ।
अ–और ।
फले–फलके विषयमें ।
अ–और ।
गंध–मल्ले–गन्ध और माल्यके विषयमें ।
गंध–केसर, कस्तूरी आदि सुगन्धी पदार्थ ।
माल्य–फूलकी माला आदि शृङ्गार ।
अ–और ।
उवभोग–परीभोगे–उपभोग–परिभोग करनेमें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवभोग–एक बार उपयोगमें लेना। परीभोग-बारंबार उपयोगमें लेना।

बीयम्मि गुणव्वए–दूसरे गुणव्रतमें।

निंदे–मैं निन्दा करता हूँ।

अर्थ–सङ्कलना—

दूसरे गुणव्रतमें मदिरा (की विरति)में,मांस (की विरति) में, तथा फूल, फल और सुगन्धी पदार्थों एवं माला आदिके उपभोग—परिभोग करनेमें जो अतिचार लगे हों, उनकी मैं निन्दा करता हूँ।। २० ।।

मूल—

सच्चित्ते पडिबद्धे, अपोल–दुप्पोलियं च आहारे।
तुच्छोसहि–भक्खणया, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।।२१।।

शब्दार्थ—

सच्चित्ते–सचित्त आहारके भक्षणमें।

सचित्त–सजीव, चैतन्यवाला।

पडिबद्धे–सचित्त–प्रतिबद्ध आहारके भक्षणमें।

जो वस्तु सामान्यतया निर्जीव हो चुकी हो किन्तु उसका कोई भाग सचित्तके साथ जुड़ा हुआ हो, वह सचित्त–प्रतिबद्ध कहाता है। जैसे कि वृक्षका गोंद, बीज सहित पका हुआ फल।

अपोल – दुप्पोलियं – अपक्व ओषधिके भक्षणमें; दुष्पक्व आहारके भक्षणमें।

अपोल–नहीं पकी हुई। दुप्पोलिय–कुछ पकी हुई और कुछ नहीं पकी हुई।

च–और।

आहारे–आहारके विषयमें, आहारके भक्षणमें।

तुच्छोसहि – भक्खणया – तुच्छ ओषधिके भक्षणमें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसमें खानेका भाग कम और फेंक देनेका भाग अधिक हो, वह तुच्छ वनस्पति कहलाती है, जैसे कि बेर, सीताफल, गन्ने आदि ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

निश्चित किये हुए प्रमाणसे अधिक सचित्त आहारके भक्षणमें, सचित्त प्रतिबद्ध आहारके भक्षणमें, अपक्व ओषधिके भक्षणमें, दुष्पक्व आहारके भक्षणमें तथा तुच्छ ओषधिके भक्षणमें, दिवस–सम्बन्धी छोटे–बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ २१ ॥

मूल—

इंगाली वण साडी, भाडी फोडी सुवज्जए कम्मं ।
वाणिज्जं चेव दंत–लक्ख–रस–केस–विस–विसयं ॥२२॥

एवं खु जंतपीलण–कम्मं निल्लंछणं च दव–दाणं ।
सर–दह–तलाय–सोसं, असई–पोसं च वज्जिज्जा ॥२३॥

शब्दार्थ—

इंगाली वण साडी भाडी फोडी—अङ्गार, वन, शकट भाटक और स्फोटक ।

सुवज्जए–मैं छोड़ देता हूँ ।

कम्मं–कर्म ।

वाणिज्जं–वाणिज्य ।

चेव–इसी प्रकार ।

दंत–लक्ख–रस–केस–विस–विसयं–दन्त, लाख, रस, केश और विष–सम्बन्धी ।

एवं–इसी प्रकार ।

खु–वस्तुतः ।

जंत–पीलण–कम्मं – यन्त्र – पीलन–कर्म ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निल्लंछणं–निर्लाञ्छन-कर्म, अङ्ग-च्छेदन–कर्म ।

च–और ।

दव–दाणं–दव–दान–कर्म, वन, क्षेत्र आदि में आग लगानेका व्यापार ।

सर–दह–तलाय–सोसं–सरोवर, स्रोत, तालाब आदिको सुखानेका कार्य ।

असई–पोसं–असती-पोषण-कर्म ।

वज्जिज्जा-मैं छोड़ देता हूँ । जिस कर्म अथवा व्यापारसे बहुत कर्म-बन्धन हो, उसे कर्मादान कहते हैं । बाईसवीं और तेईसवीं गाथामें पन्द्रह कर्मादानोंके नाम दिये हैं, वे इस तरह हैं :–

(१) अङ्गार–कर्म–जिसमें अग्निका अधिक काम पड़ता हो, ऐसा कार्य ।

(२) वन–कर्म–जिसमें वनस्पतिका अधिक समारम्भ हो ऐसा कार्य ।

(३) शकट-कर्म–गाड़ी बनानेका कार्य ।

(४) भाटक–कर्म—किराये पर वाहन चलानेका कार्य ।

(५) स्फोटक कर्म—पृथ्वी तथा पत्थर फोड़ने का कार्य ।

(६) दन्त – वाणिज्य—हाथी दाँत आदिका व्यापार ।

(७) लाक्षा – वाणिज्य—लाख आदिका व्यापार ।

(८) रस–वाणिज्य–दूध, दही, घृत, तेल आदिका व्यापार ।

(९) केश – वाणिज्य — ज़हर और ज़हरीले पदार्थोंका व्यापार ।

(१०) यन्त्र–पीलन–कर्म—चक्की, घाणी आदि अन्न तथा बीज पीसनेका कार्य ।

(११) निर्लाञ्छन–कर्म—पशुओंके अङ्गोंको छेदना, काटना, आँकना, डाम लगाना तथा गलानेका कार्य ।

(१२) दव–दान–कर्म—वनमें आग लगानेका कार्य ।

(१३) जल–शोषण–कर्म—सरोवर, स्रोत तथा तालाब आदि सुखानेका कार्य ।

(१४) असती–पोषण–कर्म—कुलटा अथवा व्यभिचारिणी स्त्रियों तथा हिंसक पशुओंके पोषणका कार्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

अङ्गार–कर्म, वन–कर्म, शकट–कर्म, भाटक–कर्म, स्फोटक–कर्म, दन्त–वाणिज्य, लाक्षा–वाणिज्य, रस–वाणिज्य, केश–वाणिज्य, विष–वाणिज्य, यन्त्र–पीलन–कर्म, निर्लाञ्छन–कर्म, दव–दान–कर्म, जल–शोषण–कर्म और असती–पोषण–कर्म छोड़ देता हूँ ॥२२–२३॥

मूल—

सत्थग्गि–मुसल–जंतग–तण–कट्ठे मंत–मूल–भेसज्जे ।
दिन्ने दवाविए वा, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—

सत्थग्गि – मुसल–जंतग–तण–कट्ठे–शस्त्र, अग्नि, मूसल, चक्की (पेषणी) आदि यन्त्र, तृण और काष्ठके विषयमें ।

मंत–मूल–भेसज्जे–मन्त्र, मूल और ओषधिके विषयमें ।

दिन्ने दवाविए वा–दूसरोंको देते हुए और दिलाते हुए ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं–पूर्ववत्०

अर्थ-सङ्कलना—

शस्त्र, अग्नि, मूसल आदि साधन, चक्की (पेषणी) आदि यन्त्र, विभिन्न प्रकारके तृण, काष्ठ, मूल और ओषधि आदि (विना कारण) दूसरोंको देते हुए और दिलाते हुए (सेवित अनर्थदण्डसे) दिवस–सम्बन्धी छोटे–बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ २४॥

मूल—

ण्हाणुव्वट्टण–वन्नग–विलेवणे सद्द--रूव--रस--गंधे ।
वत्थासण--आभरणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥ २५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

ण्हाणुव्वट्टण – वन्नग – विलेवणे —स्नान, उद्वर्तन, वर्णक और विलेपनके विषयमें ।

ण्हाण–स्नान करना ।

उव्वट्टण–मैल निकालनेके लिये उबटन आदि पदार्थ लगाना ।

वन्नग–रङ्ग लगाना तथा चित्रकारी करना ।

विलेवण–लेपन करना ।

सद्द–रूव–रस–गंधे–शब्द, रूप, रस और गन्धके विषयमें ।

वत्थासण – आभरणे—वस्त्र, आसन और आभरणके विषयमें ।

पडिक्कमे देसिअं सव्वं -पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

१ स्नान, २ उद्वर्तन, ३ वर्णक, ४ विलेपन, ५ शब्द, ६ रूप, ७ रस, ८ गन्ध, ९ वस्त्र, १० आसन और ११ आभरणके विषयमें सेवित अनर्थदण्डसे दिवस–सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ।। २५ ।।

मूल—

कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरि--अहिगरण--भोग--अइरित्ते ।
दंडम्मि अणट्ठाए, तइअम्मि गुणव्वए निंदे ।। २६ ।।

शब्दार्थ—

कंदप्पे–कन्दर्पके विषयमें, काम–विकारके विषयमें ।

कुक्कुइए–अनुचित चेष्टाके विषयमें, कौत्कुच्यके विषयमें ।

मोहरि – अहिगरण – भोग – अइरित्ते–मौखर्य संयुक्ताधिकरण और भोगातिरिक्तताके कारण ।

मौखर्य–अधिक बोलना, आवश्यकतासे अधिक बोलना ।

संयुक्ताधिकरण–तैयार किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ शस्त्र। जैसे कि:– धनुषके निकट तीर रखना। ऊखलके पास मूसल रखना। बन्दूक भरकर रखना आदि। भोगातिरिक्त–भोगोंकी अधिकता, आवश्यकतासे अधिक भोग भोगना।

दंडम्मि अणट्ठाए–अनर्थ–दण्डके विषयमें, अनर्थ–दण्ड विरमण-व्रत नामके।

तइअम्मि गुणव्वए–तीसरे गुण-व्रतके विषयमें।

निंदे–मैं निन्दा करता हूँ।

अर्थ–सङ्कलना—

अनर्थदण्ड–विरमण–व्रत नामके तीसरे गुण–व्रतके विषयमें (१) कन्दर्प, (२) कौत्कुच्य, (३) मौखर्य, (४) संयुक्ताधिकरण और (५) भोगातिरिक्तताके कारण जो अतिचार लगे हों, उनकी मैं निन्दा करता हूँ ॥ २६ ॥

मूल—

तिविहे दुप्पणिहाणे, अणवट्ठाणे तहा सई–विहूणे।
सामाइय वितह–कए, पढमे सिक्खावए निंदे ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—

तिविहे – दुप्पणिहाणे – तीन प्रकारके दुष्प्रणिधानके विषयमें; मनो–दुष्प्रणिधान, वचन–दुष्प्रणिधान और काय-दुष्प्रणिधानके विषयमें।
दुप्पणिहाण–दुष्ट–प्रणिधान, दुष्ट प्रकारकी एकाग्रता।

अणवट्ठाणे–अनवस्थानके विषयमें, एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थानपर जानेसे।

तहा–इसी प्रकार।

सइ–विहूणे–स्मृति – विहीनत्वके विषयमें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाइय वितहकए–सामायिक वितथ किया हो, सामायिककी विराधना की हो।

पढमे सिक्खावए–पहले शिक्षा-व्रतके विषयमें।

निंदे–मैं निन्दा करता हूँ।

अर्थ-सङ्कलना—

पहले शिक्षाव्रतमें सामायिकको निष्फल करनेवाले मनो-दुष्प्रणिधान, वचन–दुष्प्रणिधान, काय–दुष्प्रणिधान, अनवस्थान और स्मृति-विहीनत्व नामके पाँच अतिचारोंकी मैं निन्दा करता हूँ ॥ २७ ॥

मूल—

आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गल--क्खेवे ।
देसावगासिअम्मी, बीए सिक्खावए निंदे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—

आणवणे–आनयन-प्रयोगके विषयमें, बाहरसे वस्तु मँगानेसे।

पेसवणे–प्रेष्य–प्रयोगके विषयमें, वस्तु बाहर भेजनेसे।

सद्दे–शब्दानुपातके विषयमें, आवाज करके उपस्थिति बतलानेसे।

रूवे–रूपानुपातके विषयमें, जाली (झरोखे) आदि स्थानपर आकर अपनी उपस्थिति बतलानेसे।

अ–और।

पुग्गल–क्खेवे–पुद्गलके क्षेपसे, वस्तु फेंकनेसे।

देसावगासिअम्मी–देशावकाशिक व्रतके विषयमें।

बीए सिक्खावए–दूसरे शिक्षा-व्रतमें।

निंदे–मैं निन्दा करता हूँ।

अर्थ-सङ्कलना—

देशावकाशिक नामके दूसरे शिक्षा–व्रतमें १ आनयन–प्रयोग, २ प्रेष्य–प्रयोग, ३ शब्दानुपात, ४ रूपानुपात और ५ पुद्गल—क्षेपद्वारा जो अतिचार लगे हों, उनकी मैं निन्दा करता हूँ ॥ २८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

संथारुच्चारविही--पमाय तह चेव भोअणाभोए ।
पोसह--विहि--विवरीए, तइए सिक्खावए निंदे ॥२९॥

शब्दार्थ—

संथारुच्चारविही – पमाय – संथारा और उच्चारकी विधिमें हुए प्रमादके कारण; संथारा और उच्चार–प्रस्रवण–भूमिकी प्रतिलेखना और प्रमार्जनामें प्रमाद होनेसे ।
संथारेकी विधि–घास, कम्बल अथवा बिस्तर आदि पर सोते रहनेकी विधि, उच्चारकी विधि–बड़ी नीति और लघुनीति परठवनेकी विधि ।

तह–तथा ।

चेव–इसी तरह ।

भोअणाभोए–भोजनादिकी चिन्ताद्वारा ।

पोसह–विहि–विवरीए – पोषध विधिकी विपरीतता ।

तइए सिक्खावए — तीसरे शिक्षाव्रतमें ।

निंदे–मैं निन्दा करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

संथारा और उच्चार–प्रस्रवण–भूमिकी प्रतिलेखना और प्रमार्जनामें प्रमाद होनेसे तथा भोजनादिकी चिन्ताद्वारा पौषधोपवास नामके तीसरे शिक्षाव्रतमें जो कोई विपरीतता हुई हो (अतिचारोंका सेवन हुआ हो) उसकी मैं निन्दा करता हूँ ॥ २९ ॥

मूल—

सचित्त निक्खिवणे, पिहिणे ववएस--मच्छरे चेव ।
कालाइक्कम--दाणे--चउत्थ सिक्खावए निंदे ॥ ३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

सच्चित्ते निक्खिवणे–सचित्त निक्षेपमें; सचित्त वस्तु डालनेमें।

पिहिणे–सचित्त पिधानमें, सचित्त वस्तु ढकनेमें।

ववएस–मच्छरे–परव्यपदेश और मात्सर्यमें, बहाना करनेमें और ईर्षा करनेमें।

चेव–इसी प्रकार।

कालाइक्कम–दाणे – कालातिक्रम दानमें, काल बीत जानेपर दान देनेके विषयमें।

चउत्थ – सिक्खावए – चौथे शिक्षाव्रतके प्रतिक्रमण-प्रसङ्गमें।

निंदे–मैं निन्दा करता हूँ।

अर्थ–सङ्कलना—

सचित्त–निक्षेपण, सचित्त–पिधान, पर–व्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम–दान इन पाँच अतिचारोंकी मैं चौथे शिक्षाव्रतके प्रतिक्रमण–प्रसङ्गमें निन्दा करता हूँ॥ ३०॥

मूल—

सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे अस्संजएसु अणुकंपा।
रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि॥ ३१॥

शब्दार्थ—

सुहिएसु–सुहितोंके विषयमें। जो साधु ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें रत हो वह सुहित कहलाता है।

अ–और।

दुहिएसु–दुःखितोंके विषयमें। जिस साधुके पास वस्त्र, पात्र आदि उपाधि (सामग्री) बराबर न हो वे दुःखित कहलाते हैं।

अ–और।

जा–जो।

मे–मुझसे।

अस्संजएसु–अस्वयतोंके विषयमें।

अणुकंपा–अनुकम्पा भक्ति।

रागेण—रागसे।

व–और।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोसेण–द्वेष से ।
व–तथा ।
तं निंदे तं च गरिहामि–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

जो मुझसे सुहित, दुःखित और अस्वयत साधुओं की भक्ति राग अथवा द्वेष से हुई हो, उसकी मैं निन्दा करता हूँ और गर्हा करता हूँ ।। ३१ ।।

मूल—

साहूसु संविभागो, न कओ तव-चरण-करण-जुत्तेसु ।
संते फासुअदाणे, तं निंदे तं च गरिहामि ।।३२।।

शब्दार्थ—

साहूसु–साधुओंके विषयमें ।
संविभागो–संविभाग, वस्तुओंका एक भाग ।
न कओ–नहीं किया हो, नहीं दिया हो ।
तव-चरण-करण-जुत्तेसु–तप, चरण और करणसे युक्त; तपस्वी, चारित्रशील और क्रियापात्र ।
संते फासुअदाणे–दानके योग्य वस्तुएँ उपस्थित होते हुए भी ।
तं निंदे तं च गरिहामि–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

तपस्वी, चारित्रशील और क्रियापात्र साधुओं के दान देने योग्य वस्तुएँ उपस्थित होते हुए भी, उनमेंसे एक भाग नहीं दिया हो, तो अपने उस दुष्कृत्यकी मैं निन्दा करता हूँ और गर्हा करता हूँ ।।३२।।

मूल—

इह लोए परलोए, जीविअ-मरणे अ आसंस-पओगे ।
पंचविहो अइआरो, मा मज्झं हुज्ज मरणंते ।।३३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

इहलोए—इहलोक सम्बन्धी आसक्ति रखनेसे, इहलोकाशंसा—प्रयोगमें ।

परलोए—परलोक सम्बन्धी आसक्ति रखनेसे, परलोकाशंसा—प्रयोग में ।

जीविअ-मरणे—जीवन में आसक्ति रखनेसे और मरणकी इच्छा करनेसे, जीविताशंसाप्रयोग में और मरणाशंसाप्रयोग में ।

अ—और ।

आसंस-पओगे—कामभोगकी आसक्ति करनेसे, मानता करनेसे, कामभोगाशंसा-प्रयोगमें ।

पंचविहो—पाँच प्रकारका ।

अइआरो—अतिचार ।

मा—नहीं, न ।

मज्झं—मुझे ।

हुज्ज—होवें ।

मरणंते—मरणान्त समयमें, मरणके समयमें ।

अर्थ-सङ्कलना—

१ इहलोकाशंसा—प्रयोग, २ परलोकाशंसा—प्रयोग, ३ जीविताशंसा—प्रयोग, ४ मरणाशंसा—प्रयोग और ५ कामभोगाशंसा—प्रयोग, ये पाँच प्रकार के अतिचार मुझे मरणके समय न होवें ।। ३३ ।।

मूल—

काएण काइअस्सा, पडिक्कमे वाइअस्स वायाए ।
मणसा माणसिअस्सा, सव्वस्स वयाइआरस्स ।।३४।।

शब्दार्थ—

काएण काइअस्सा—कायाके अशुभ प्रवर्तनको शुभ काययोगसे ।

पडिक्कमे—प्रतिक्रमण करता हूँ ।

वाइअस्स वायाए—वचनके अशुभ प्रवर्तनको शुभ वचनयोगसे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणसा माणसिअस्सा–मनके अशुभ प्रवर्तनको शुभ मनोयोग से ।

सव्वस्स–सर्व ।

वयाइआरस्स – व्रतोंके अतिचारोंका ।

अर्थ–सङ्कलना—

कायाके अशुभ प्रवर्तनको शुभ काययोगसे, वचनके अशुभ प्रवर्तनको शुभ वचनयोगसे, मनके अशुभ प्रवर्तनको शुभ मनोयोगसे, इस प्रकार सर्व–व्रतोंके अतिचारोंका प्रतिक्रमण करता हूँ ।। ३४ ।।

मूल—

वंदण–वय–सिक्खा–गारवेसु सण्णा–कसाय–दंडेसु ।
गुत्तीसु अ समिईसु अ, जो अइआरो अ तं निंदे ।।३५।।

शब्दार्थ—

वंदण–वय–सिक्खा–गारवेसु– वन्दन; व्रत, शिक्षा और गारव (अभिमान) के विषयमें ।

सण्णा – कसाय – दंडेसु – संज्ञा, कषाय और दण्डके विषयमें ।

गुत्तीसु–गुप्तिके विषयमें ।

अ–और ।

समिईसु–समितिके विषयमें ।

अ–और ।

जो–जो ।

अइआरो–अतिचार ।

अ–तथा ।

तं–उसकी ।

निंदे–निन्दा करता हूँ ।

वन्दन दो प्रकारके हैं:—चैत्यवन्दन और गुरु–वन्दन । व्रत बारह हैं :—स्थूल–प्राणातिपात – विरमण – व्रत आदि । शिक्षा दो प्रकार की है :—ग्रहण और आसेवना । सूत्र और अर्थ ग्रहण करना ये ग्रहणशिक्षा और कर्तव्योंका पालन करना ये आसेवनाशिक्षा । गारव तीन हैं:—रसगारव अर्थात् मधुर खाने–पीनेका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिमान । ऋद्धिगारव—अर्थात् धन कुटुम्ब आदिका अभिमान और सातागारव अर्थात् शरीर को सुख उत्पन्न करे ऐसी सामग्रियों-का अभिमान । संज्ञा चार हैं:—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह । कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ । दण्ड तीन हैं :—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड । गुप्ति तीन हैं :—मनोगुप्ति आदि । समिति पाँच हैं:—ईर्या-समिति आदि ।

अर्थ-सङ्कलना—

१ वन्दन, २ व्रत, ३ शिक्षा, ४ गारव, ५ संज्ञा, ६ कषाय, ७ दण्ड, ८ गुप्ति और ९ समिति–इन नौ विषयोंमें (करने योग्य न करनेसे और नहीं करने योग्य करनेसे) जो अतिचार लगे हों, उनकी मैं निन्दा करता हूँ ।।३५।।

मूल—

सम्मद्दिट्ठी जीवो, जइ वि हु पावं समायरइ किंचि ।
अप्पो सि होइ बंधो, जेण न निद्धंधसं कुणइ ।।३६।।

शब्दार्थ—

समद्दिट्ठी–सम्यग्दृष्टिवाला ।
जीवो–जीव, आत्मा ।
जइ वि हु–यद्यपि ।
पावं–पापको, पापमय प्रवृत्तिको ।
समायरइ–करता है ।
किंचि–थोड़ी, किञ्चित् ।
अप्पो–अल्प ।
सि–उसको ।
होइ–होता है ।
बंधो–बन्ध, कर्मबन्ध ।
जेण–जिससे, कारण कि ।
न–नहीं ।
निद्धंधसं–निर्दयता पूर्वक ।
कुणइ–करता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

सम्यग्दृष्टिवाला जीव-आत्मा यद्यपि (प्रतिक्रमण करने के अनन्तर भी) किंचित् पापमय-प्रवृत्तिको करता है, तो भी उसे कर्मबन्ध अल्प होता है, कारण कि वह उसको निर्दयता-पूर्वक नहीं करता ।। ३६ ।।

मूल—

तं पि हु सपडिक्कमणं, सप्परिआवं सउत्तरगुणं च ।
खिप्पं उवसामेइ, वाहि व्व सुसिक्खिओ विज्जो ।।३७।।

शब्दार्थ—

तं–उसको ।
पि–भी ।
हु–अवश्य (निश्चयका भाव बतलाता है) ।
सपडिक्कमणं–प्रतिक्रमणवाला हो कर, प्रतिक्रमण करके ।
सप्परिआवं–पश्चात्तापवाला हो कर, पश्चात्ताप करके ।
सउत्तरगुणं–उत्तर गुणवाला हो कर, प्रायश्चित्त करके ।
च–और ।
खिप्पं–शीघ्र ।
उवसामेइ–उपशान्त करता है, शमन कर देता है ।
वाहि व्व–जैसे व्याधिका ।
सुसिक्खिओ–सुशिक्षित ।
विज्जो–वैद्य ।

अर्थ-सङ्कलना—

जैसे सुशिक्षित वैद्य व्याधिका शीघ्र शमन कर देता है, वैसे ही (प्रतिक्रमण करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव उस अल्प कर्म-बन्धका भी) प्रतिक्रमण करके, पश्चात्ताप करके तथा प्रायश्चित्त करके शीघ्र नाश कर देता है ।। ३७ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[सिलोगो]

जहा विसं कुट्ठ-गयं, मंत-मूल-विसारया ।
विज्जा हणंति मंतेहिं, तो तं हवइ निव्विसं ॥३८॥
एवं अट्ठविहं कम्मं, राग-दोस-समज्जिअं ।
आलोअंतो अ निंदंतो, खिप्पं हणइ सुसावओ ॥३९॥

शब्दार्थ—

जहा—जैसे ।
विसं—विषको, जहरको ।
कुट्ठ-गयं—कोष्ठमें गए हुए, पेटमें गये हुये ।
मंत-मूल-विसारया—मन्त्र और मूलमें विशारद, मन्त्र और जड़ी-बूटीके निष्णात ।
विज्जा—वैद्य ।
हणंति—नष्ट करते हैं, उतारते हैं।
मंतेहिं—मन्त्रों से ।
तो—उससे ।
तं—वह ।
हवइ—होता है ।
निव्विसं—निर्विष, विष-रहित ।
एवं—वैसे ही ।
अट्ठविहं—आठ प्रकारके ।
कम्मं—कर्मको ।
राग-दोस-समज्जिअं—राग और द्वेषसे उपार्जित ।
आलोअंतो – आलोचना करता हुआ ।
अ—और ।
निंदंतो—निन्दा करता हुआ ।
खिप्पं—शीघ्र ।
हणइ—नष्ट करता है ।
सुसावओ—सुश्रावक ।

अर्थ-सङ्कलना—

जैसे पेटमें गये हुए जहरको मन्त्र और जड़ी-बूटी के निष्णात वैद्य मन्त्रों से उतारते हैं और उससे वह विष–रहित होता है; वैसे ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(व्रत—कर्म करनेवाला गुणवान्) सुश्रावक अपने पापोंकी आलोचना और निन्दा करता हुआ राग और द्वेषसे उपार्जित आठ प्रकारके कर्मको शीघ्र नष्ट करता है ॥३८--३९॥

मूल—

[गाहा]

कय–पावो वि मणुस्सो, आलोइअ निंदिअ गुरु–सगासे।
होइ अइरेग–लहुओ, ओहरिअ–भरु व्व भारवहो ॥४०॥

शब्दार्थ—

कय–पावो–कृत–पाप, पाप करने वाला।

वि–भी।

मणुस्सो–मनुष्य।

आलोइअ निंदिअ गुरु–सगासे–गुरुके समक्ष अपने पापोंकी आलोचना तथा निन्दा करके।

होइ–होता है, हो जाता है।

अइरेग–लहुओ–बहुत हलका।

ओहरिअ–भरु व्व–भार उतारे हुएकी तरह, जिसने भार (बोझा) उतार दिया है उस के समान।

भारवहो–भारवाहक, मजदूर।

अर्थ-सङ्कलना—

पाप करनेवाला मनुष्य भी गुरुके समक्ष अपने पापोंकी आलोचना तथा निन्दा करके भार उतारे हुए मजदूरकी तरह बहुत हलका हो जाता है ॥ ४० ॥

मूल—

आवस्सएण एएण, सावओ जइ वि बहुरओ होई।
दुक्खाणमंतकिरिअं, काही अचिरेण कालेण ॥४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

आवस्सएण एएण—इस आवश्यक—द्वारा।
सावओ--श्रावक।
जइ वि--यद्यपि।
बहुरओ--बहुत रजवाला, बहुत कर्मवाला।
होइ--होता है।
दुक्खाणमंतकिरिअं--दुःखोंकी अन्तक्रिया, दुःखोंका अन्त।
काही--करेगा, करता है।
अचिरेण कालेण--अल्प समयमें।

अर्थ–सङ्कलना—

यद्यपि श्रावक (सावद्य आरम्भोंके कारण) बहुत कर्मवाला होता है, तथापि इस आवश्यक–द्वारा अल्प समयमें दुःखोंका अन्त करता है ॥ ४१ ॥

मूल—

आलोयणा बहुविहा, न य सभरिआ पडिक्कमण–काले।
मूलगुण–उत्तरगुणे, तं निंदे तं च गरिहामि ॥४२॥

शब्दार्थ—

आलोयणा--दोषोंको सँभालनेकी क्रिया, आलोचना।
बहुविहा--अनेक प्रकारकी।
न—नहीं।
य--और।
संभरिआ—याद आयीं।
पडिक्कमण – काले -- प्रतिक्रमणके समयमें, प्रतिक्रमण करते समय।
मूलगुण -- उत्तरगुणे -- मूलगुण और उत्तरगुण सम्बन्धी।
तं निंदे तं च गरिहामि—पूर्ववत्०।

अर्थ–सङ्कलना—

मूलगुण और उत्तरगुण सम्बन्धी आलोचना बहुत प्रकारकी होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, वे सब प्रतिक्रमण करते समय याद नहीं आयी हों, उनकी यहाँ मैं निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ ।। ४२ ।।

मूल—

तस्स धम्मस्स केवलि–पन्नत्तस्स–
अब्भुट्ठिओ मि आराहणाए विरओ मि विराहणाए ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ।।४३।।

शब्दार्थ—

तस्स धम्मस्स–उस धर्मकी, उस श्रावक–धर्मकी ।

केवलि–पन्नत्तस्स–केवली भगवन्तोंद्वारा प्ररूपित ।

अब्भुट्ठिओ मि–खड़ा हुआ हूँ, तत्पर हुआ हूँ ।

आराहणाए–आराधनाके लिए ।

विरओ मि–मैं विरत हुआ हूँ ।

विराहणाए–विराधना से ।

तिविहेण–तीन प्रकार से; मन, वचन और काय के द्वारा ।

पडिक्कंतो– प्रतिक्रमण करता हुआ, सम्पूर्ण दोषोंसे निवृत्त होता हुआ ।

वंदामि–मैं वन्दना करता हूँ ।

जिणे–जिनोंको ।

चउव्वीसं–चौबीसों ।

अर्थ–सङ्कलना—

अब मैं केवली भगवन्तोंद्वारा प्ररूपित (और गुरुके निकट स्वीकृत) श्रावक-धर्मकी आराधनाके लिए तत्पर हुआ हूँ और विराधनासे विरत हुआ हूँ, अतः मन, वचन और काय के द्वारा सम्पूर्ण दोषोंसे निवृत्त होता हुआ चौबीसों जिनोंको मैं वन्दन करता हूँ।। ४३।।

मूल—

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ।।४४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जावंति–जिनके ।
चेइआइं–चैत्य, जिनबिम्ब ।
उड्ढे–ऊर्ध्वलोकमें ।
अ–और ।
अहे–अधोलोक में ।
अ–और ।
तिरिअलोए–तिर्यग्लोकमें, मनुष्यलोक में ।
अ–भी ।
सव्वाइं ताइं–उन सबको ।
वंदे–मैं वन्दन करता हूँ ।
इह–यहाँ ।
संतो–रहता हुआ ।
तत्थ संताइं–वहाँ रहे हुओंको ।

अर्थ–सङ्कलना—

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मनुष्यलोकमें जितने भी जिनबिंब हों, उन सबको यहाँ रहता हुआ, वहाँ रहे हुओंको मैं वन्दन करता हूँ ।।४४।।

मूल—

जावंत के वि साहू, भरहेरवय–महाविदेहे अ ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड–विरयाणं ।।४५।।

शब्दार्थ—

जावंत के वि–जो कोई भी ।
साहू–साधु ।
भरहेरवय महाविदेहे–भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्र में ।
अ–और ।
सव्वेसिं तेसिं–उन सबको ।
पणओ–नमा हुआ हूँ, नमन करता हूँ ।
तिविहेण–करना, कराना, और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारों से ।
तिदंड-विरयाणं–तीन दण्डसे विरत; मन, वचन और कायासे पाप प्रवृत्ति नहीं करनेवाले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रमें स्थित जो कोई भी साधु मन, वचन और काया से पाप-प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं, और करते हुए का अनुमोदन भी करते नहीं, उन सबको मैं नमन करता हूँ ।। ४५ ।।

मूल—

चिर-संचिअ-पाव-पणासणीइ भव-सय-सहस्स-महणीए।
चउवीस-जिण-विणिग्गय-कहाइ बोलंतु मे दिअहा ।।४६।।

शब्दार्थ—

चिर-संचिअ-पाव-पणासणीइ- दीर्घकालसे सचित पापोंका नाश करनेवाली ।

चिर-दीर्घकाल । संचिअ-उपार्जित । पाव-पाप । पणासणीइ-नाश करनेवाली ।

भव-सय - सहस्स-महणीए- लाखों भवका मथन करनेवाली, लाखों भवका अन्त करनेवाली भव-संसार । सय-सहस्स-सौ हजार, लाख । महणीए मथन करनेवाली, नाश करनेवाली ।

चउवीस-जिण-विणिग्गय-कहाइ-चौबीसों जिनेश्वरोंके मुखसे निकली हुई कथाओंसे ।

चउवीस-चौबीस । जिण-जिनेश्वर । विणिग्गय-मुखसे निकली हुई । कहाइ-कथाओंसे, धर्मकथाओंके स्वाध्यायसे ।

बोलंतु-बीतें, व्यतीत हों ।

मे-मेरे ।

दिअहा-दिवस ।

अर्थ-सङ्कलना—

दीर्घकालसे सञ्चित पापोंका नाश करनेवाली, लाखों भवका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त करनेवाली ऐसी चौबीसों जिनेश्वरोंके मुखसे निकली हुई धर्म कथाओंके स्वाध्यायसे मेरे दिवस व्यतीत हों ॥ ४६ ॥

मूल--

मम मंगलमरिहंता, सिद्धा साहू सुअं च धम्मो अ ।
सम्मद्दिट्ठी देवा, दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥४७॥

शब्दार्थ—

मम–मुझे ।
मंगलं–मंगलरूप हों ।
अरिहंता अरिहन्त, अर्हन्त ।
सिद्धा–सिद्ध ।
सुअं–द्वादशांगीरूप श्रुत ।
च–और ।
धम्मो–धर्म, चारित्रधर्म ।
अ–और ।
सम्मद्दिट्ठी-देवा–सम्यग्दृष्टि देव ।
दिंतु–प्रदान करें ।
समाहिं–समाधिको ।
च–और ।
बोहिं–बोधिको ।
च–और ।

अर्थ-सङ्कलना—

अर्हन्त, सिद्ध, साधु, द्वादशांगीरूप श्रुत और चारित्रधर्म मुझे मंगलरूप हों, तथा सम्यग्दृष्टि देव मुझे समाधि और बोधि प्रदान करें ॥ ४७ ॥

मूल—

पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे अ पडिक्कमणं ।
असद्दहणे अ तहा, विवरीअ--परूवणाए अ ॥४८॥

शब्दार्थ—

पडिसिद्धाणं–निषेध किये हुए कृत्योंके ।
करणे–करनेसे ।
किच्चाणं–करने योग्य कृत्योंके ।
अकरणे–नहीं करनेसे ।
अ–और ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिक्कमणं--प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है।
असद्दहणे--अश्रद्धा होनेसे।
अ--और।
तहा--इसी तनह।
विवरीअ-- परूवणाए--श्रीजिनेश्वरदेवके उपदेशसे विपरीत प्ररूपणा करनेसे।

अर्थ--सङ्कलना

निषेध किये हुए कृत्योंके करनेसे, करने योग्य कृत्योंके नहीं करनेसे, अश्रद्धा होनेसे और श्रीजिनेश्वरदेवके उपदेशसे विपरीत प्ररूपणा करनेसे प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है ॥ ४८ ॥

मूल—

[सिलोगो]

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥४९॥

शब्दार्थ—

खामेमि--मैं क्षमा करता हूँ।
सव्वजीवे--सब जीवोंको।
सव्वे--सब।
जीवा--जीव।
खमंतु--क्षमा करें।
मे--मुझे।
मित्ती--मैत्री।
मे--मेरी।
सव्व--भूएसु--सर्व प्राणियोंके प्रति, सब जीवोंके साथ।
वेरं--वैर।
मज्झ--मेरा।
न--नहीं।
केणइ--किसीके साथ।

अर्थ--सङ्कलना—

सब जीवोंको मैं क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, मेरी सब जीवोंके साथ मैत्री (मित्रता) है। मेरा किसीके साथ वैर नहीं॥ ४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गाहा]

मूल—

एवमहं आलोइअ, निंदिअ गरहिअ दुगंछिउं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥५०॥

शब्दार्थ—

एवमहं--इस तरह मैं ।

आलोइअ--आलोचना करके ।

निंदिअ--निन्दा करके ।

गरहिअ--गर्हा करके ।

दुगंछिउं सम्मं--अरुचि व्यक्त करके, जुगुप्सा करके ।

सम्मं--सम्यक् प्रकारसे ।

तिविहेण--पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं--पूर्ववत्०

अर्थ-सङ्कलना—

इस तरह सम्यक् प्रकारसे अतिचारोंकी आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा करके, मैं मन, वचन और कायासे सम्पूर्ण दोषोंकी निवृत्तिपूर्वक चौबीसों जिनेश्वरोंको वन्दन करता हूँ ॥ ५० ॥

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रसे श्रावक धर्ममें लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण किया जाता है, इसलिये यह श्रावक प्रतिक्रमण--सूत्र (सावग--पडिक्कमण--सुत्त) कहलाता है । इसका पहला शब्द 'वंदित्तु' है, इसलिये यह 'वंदित्तु--सूत्र' भी कहलाता है ।

श्रावक--धर्म

प्रश्न—श्रावक किसे कहते हैं ?
उत्तर—जो सुने उसे श्रावक कहते हैं ।
प्रश्न—क्या सुनने से श्रावक कहते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—जो जिनवचन सुने उसे श्रावक कहते हैं । +

प्रश्न—श्रावक जिनवचन किस प्रकार सुने ?

उत्तर—जो जिनेश्वर भगवान् विद्यमान हों तो श्रावक उनके पास जाय और श्रद्धापूर्वक उनके वचन सुने, परन्तु वे विद्यमान न हों तो उनकी पाट--परम्परामें उतरे हुए आचार्य महाराजों, उपाध्याय महाराजों अथवा साधु--मुनिराजोंके समीप जाय और उनसे श्रद्धापूर्वक जिनवचन सुने ।

प्रश्न—श्रावक जिनवचन सुनकर क्या करे ?

उत्तर—श्रावक जिनवचन सुनकर उनपर विचार करे, मनन करे और उनमेंसे जितना शक्य हो, उतना अपने जीवनमें उतारे ।

प्रश्न—उत्तम श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसे जिनेश्वर भगवान्के शासनमें सम्पूर्ण श्रद्धा हो, जो सुपात्रको निरन्तर दान देता हो, जो प्रतिदिन पुण्यके कार्य करता हो और जो सुसाधुओंकी सेवा करनेमें अपने जीवनको धन्य मानता हो, उसे उत्तम श्रावक कहते हैं । एतदर्थ नीचेका पद्य स्मरण रखने योग्य है :—

श्रद्धालुतां श्राति जिनेन्द्रशासने,
धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम् ।
करोति पुण्यानि सुसाधुसेवना—
दतोऽपि तं श्रावकमाहुरुत्तमाः ॥१॥

प्रश्न—श्रावकका धर्म कितने प्रकारका है ?

उत्तर—श्रावकका धर्म दो प्रकारका है:--सामान्य श्रावक--धर्म और विशेष श्रावक--धर्म ।

+ श्रावक शब्दकी विशेष व्याख्याके लिये देखो—प्रबोधटीका भाग १ला, सूत्र १०--४ तथा प्रबोधटीका भा. २ रा, सूत्र ३२--४, गाथा ४६.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—सामान्य श्रावक--धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—मार्गानुसारीके पैंतास बोलोंका पालन करना, सामान्य श्रावक-धर्म कहलाता है ।

प्रश्न—मार्गानुसारीके पैंतीस बोल कौनसे हैं ?

उत्तर—वे इस ग्रन्थके पीछे उपयोगी विषयोंके सङ्ग्रहमें दिये हैं ।

प्रश्न—मार्गानुसारीके पैंतीस बोलोंका पालन करनेसे क्या होता है ?

उत्तर—मार्गानुसारीके पैंतीस बोलोंका पालन करनेसे व्यवहारकी शुद्धि होती है, नीतिका स्तर उच्च होता है और विशेष श्रावक--धर्मके पालन-की योग्यता आती है ।

प्रश्न—विशेष श्रावक धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर सम्यक्त्वमूल बारह व्रतोंके पालनको विशेष श्रावकधर्म कहते हैं ।

प्रश्न—सम्यक्त्वमूल अर्थात् ?

उत्तर—जिसके मूलमें सम्यक्त्व स्थित हो, वह सम्यक्त्वमूल ।

प्रश्न—सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—तत्त्वद्वारा अर्थकी श्रद्धा करनी, उसे सम्यक्त्व कहते हैं ।

प्रश्न—तत्त्व अर्थात् ?

उत्तर—तत्त्व अर्थात् भाव ।

प्रश्न—अर्थ--अर्थात् ?

उत्तर—अर्थ--अर्थात् जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष । तात्पर्य यह है कि जीवाजीवादि नव तत्त्वोंपर हृदयसे श्रद्धा रखनी, यह सम्यक्त्व है ।

प्रश्न—सम्यक्त्वका व्यावहारिक स्वरूप क्या है ?

उत्तर—सुदेव, सुगुरु और सुधर्मपर श्रद्धा ।

प्रश्न—सुदेव किसे कहते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—अरिहन्त भगवन्तको सुदेव कहते हैं, क्यों कि वे सर्व दोषोंसे रहित हैं। सिद्ध भगवन्तको भी सुदेव कहते हैं, क्यों कि उनमें भी कोई दोष नहीं है।

प्रश्न—सुगुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं तिरें और दूसरोंको तारें उनको सुगुरु कहते हैं। उनके मुख्य लक्षण पाँच महाव्रत, पाँच आचार तथा पाँच समिति और तीन गुप्तिका पालन है।

प्रश्न—सुधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो केवली भगवन्तद्वारा कथित हो उसको सुधर्म कहते हैं।

प्रश्न—बारह व्रतोंके नाम क्या हैं ?

उत्तर—(१) स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत।

(२) स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रत।

(३) स्थूल-अदत्तादान-विरमण-व्रत।

(४) परदारागमन-विरमण-व्रत।

(५) परिग्रह-परिमाण-व्रत।

(६) दिक्-परिमाण-व्रत।

(७) उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत।

(८) अनर्थदण्ड-विरमण-व्रत।

(९) सामायिक-व्रत।

(१०) देशावकाशिक-व्रत।

(११) पोषधोपवास-व्रत।

(१२) अतिथि-संविभाग-व्रत।

प्रश्न—इन व्रतोंके कितने विभाग होते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—तीन। उनमें एकसे पाँच तकके व्रतोंको अणुव्रत कहते हैं, छःसे आठ तकके व्रतोंको गुणव्रत कहते हैं और नौसे बारहतकके व्रतोंको शिक्षाव्रत कहते हैं। इन बारह व्रतोंमें पहले पाँच मूलव्रत हैं और बादके सात उत्तरव्रत हैं।

प्रश्न—स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—कुछ अंशोंमें हिंसा करनेसे रुकनेका व्रत। इस व्रतको लेनेवाला किसी भी त्रस्त जीवकी सङ्कल्पपूर्वक निरपेक्ष हिंसा नहीं करे।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः—वध, बन्ध, छविच्छेद, अतिभार और भक्तपान-विच्छेद। +

प्रश्न—स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—कुछ अंशों में झूठ बोलनेसे रुकनेका (विरत होनेका) व्रत। इस व्रतको लेनेवाला कन्या, गाय, भूमि, स्थापत्य अथवा साक्षीके सम्बन्धमें बड़ा झूठ न बोले।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः—सहसाऽभ्याख्यान, रहोऽभ्याख्यान, स्वदारमन्त्रभेद, मृषोपदेश और कूटलेख।

प्रश्न—स्थूल-अदत्तादान-विरमण-व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—कुछ अंशों में अदृष्टवस्तु लेनेसे विरत होनेका व्रत। इस व्रतको लेनेवाला डाका डालकर, सेंध लगाकर, गाँठ खोलकर अथवा तालेमें कुंजी आदि लगाकर किसीकी बिना दी हुई वस्तु नहीं ले।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः—स्तेनाहृत-प्रयोग, स्तेन-प्रयोग, तत्प्रतिरूप, विरुद्धगमन और कूटतुल-कूटमान।

+ अतिचारोंके नाम विषयको स्पष्ट समझनेके लिये दिये हैं, इनके अर्थ प्रत्येक गाथाके पश्चात् आये हुए शब्दार्थसे जानने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—परदारागमन–विरमण–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—दूसरेकी विवाहित स्त्रीके साथ सङ्ग करनेसे विरत होनेका व्रत। इस व्रतको लेनेवाला अपनी परिणीत–पत्नीसे सन्तुष्ट रहे।

प्रश्न—इस व्रत में कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः—अपरिगृहीतागमन, इत्वरगृहीतागमन, अनङ्गक्रीडा, पर-विवाह–करण और तीव्र–अनुराग।

प्रश्न—परिग्रह–परिमाण–व्रतका अर्थ क्या है।

उत्तर—धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, चाँदी, सोना एवं अन्य धातु, द्विपद और चतुष्पदके सङ्ग्रहको परिग्रह कहते हैं। उसका माप करना–मर्यादा करनी वह परिग्रह–परिमाण–व्रत।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः–धन–धान्य–प्रमाणातिक्रम, क्षेत्र–वास्तु–प्रमाणातिक्रम, रुप्य–सुवर्ण–प्रमाणातिक्रम, कुप्य–प्रमाणातिक्रम और द्विपद–चतुष्पद–प्रमाणातिक्रम।

प्रश्न—दिक्–परिमाण–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—प्रत्येक दिशामें कुछ अन्तरसे अधिक नहीं जाना ऐसा व्रत।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः—ऊर्ध्वदिक्–प्रमाणातिक्रम, अधोदिक्–प्रमाणातिक्रम, तिर्यग्-दिक्–प्रमाणातिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तर्धान।

प्रश्न—उपभोग–परिभोग–परिमाण–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—जो वस्तु एकबार भोगी जाय वह उपभोग और बारबार भोगी जाय वह परिभोग। उसका माप निश्चित करना, वह उपभोग–परिभोग–परिमाण–व्रत। इस व्रतमें बहुत आरम्भ–समारम्भवाले व्यापार अर्थात् कर्म भी छोड़ दिये जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—बीस। उनमें सचित्त, सचित्त–सम्बद्ध, संमिश्र, अभिषव और दुष्पक्व ये पाँच अतिचार **भोगके** सम्बन्धमें लगते हैं और पन्द्रह अतिचार इंगाल आदि **कर्मोंके** सम्बन्धमें लगते हैं।

प्रश्न—अनर्थदण्ड–विरमण व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—बिना कारण आत्माको दण्ड देनेसे विरत होनेका व्रत। इस व्रतको लेनेवाले अपध्यान, पापोपदेश, हिंस्रप्रदान और प्रमादाचरण इन चार वस्तुओंका त्याग करते हैं। अपध्यान अर्थात् आर्तध्यान और रौद्रध्यान। पापोपदेश अर्थात् अन्यको आरम्भ–समारम्भ करनेकी प्रेरणा मिले ऐसे वचन। हिंस्रप्रदान अर्थात् हिंसाकारी वस्तुएँ दूसरोंको देनी और प्रमादाचरण अर्थात् प्रमादवाला आचरण।

प्रश्न—सामायिक–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—दो घड़ीतक सर्व पापव्यवहार छोड़ देनेका व्रत।

प्रश्न—देशावकाशिक–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—किन्हीं भी व्रतोंमें रखी हुई छूटोंको विशेष मर्यादित करके उसके एक भागमें स्थिर रहना। इस व्रतमें चौदह नियम रखे जाते हैं, वे पीछे उपयोगी विषयोंके संग्रहमें दिये हैं।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः—आनयन–प्रयोग, प्रेष्य–प्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप।

प्रश्न—प्रोषधोपवास–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वके दिनोंमें उपवासपूर्वक धर्मध्यान करना।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँचः–अप्रतिलेखित–दुष्प्रतिलेखित–शय्या–संस्तारक, अप्रमार्जित–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुष्प्रमार्जित–शय्या-संस्तारक, अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित-उच्चार-प्रस्रवणभूमि, अप्रमार्जित–दुष्प्रमार्जित–उच्चार–प्रस्रवणभूमि और अनुपालना ।

प्रश्न—अतिथि–संविभाग–व्रतका अर्थ क्या है ?

उत्तर—साधुओंको निर्दोष आहार–पानी बहोरनेका व्रत ।

प्रश्न—इस व्रतमें कितने अतिचार लगते हैं ?

उत्तर—पाँच:–सचित्तनिक्षेप, सचित्तविधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रमदान ।

प्रश्न—इस प्रकार श्रावक कुल कितने अतिचारोंका प्रतिक्रमण करता है ?

उत्तर—१२४ अतिचारोंका, उनमें ५ + ५ + ५ + ५ + ५ + ५ + २० + ५ + ५ + ५ + ५ + ५ मिलकर ७५ अतिचार बारह व्रत सम्बन्धी होते हैं और ४९ अतिचार दूसरे होते हैं ।

प्रश्न—४९ अतिचारोंकी गणना किस तरह होती है ?

उत्तर—ज्ञानाचारके ८, दर्शनाचारके ८, चारित्राचारके ८, तपाचारके १२, वीर्याचारके ३, सम्यक्त्वके ५ और संलेखनाके ५, इस प्रकार कुल ४९ । ×

प्रश्न—सम्यक्त्वके पाँच अतिचार कौनसे हैं ?

उत्तर—शङ्का, काङ्क्षा, विचिकित्सा, कुलिङ्गीप्रशंसा और कुलिङ्गी–संस्तव ।

प्रश्न—संलेखनाके पाँच अतिचार कौनसे हैं ?

उत्तर—इहलोकाशंसा–प्रयोग, परलोकाशंसा–प्रयोग, जीविताशंसा–प्रयोग, मरणाशंसा–प्रयोग और कामभोगाशंसा–प्रयोग ।

प्रश्न—अतिचारोंकी शुद्धिके लिये श्रावक क्या करे ?

उत्तर—प्रतिक्रमण ।

× अतिचार विचारनेकी गाथामें पञ्चाचारके ३९ अतिचारोंका वर्णन आ जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रमण

प्रश्न—प्रतिक्रमण क्या है ?

उत्तर—एक प्रकारकी आवश्यक-क्रिया ।

प्रश्न—उसमें क्या किया जाता है ?

उत्तर—आलोचना, निन्दा और गर्हा ।

प्रश्न—आलोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—दोषों अथवा अतिचारोंका स्मरण करना, उसे आलोचना कहते हैं।

प्रश्न—निन्दा किसे कहते हैं ?

उत्तर—मैंने यह अनुचित किया अथवा मुझसे यह अनुचित हुआ, इस प्रकार आत्मसाक्षीसे कहना, यह निन्दा कहलाती है ।

प्रश्न—गर्हा किसे कहते हैं ?

उत्तर—दोषों अथवा अतिचारोंको गुरुके समक्ष निवेदन करना, यह गर्हा कहलाती है ।

प्रश्न—प्रतिक्रमण शब्दका अर्थ क्या है ?

उत्तर—इसके लिये शास्त्रकारोंद्वारा कथित गाथा सुनो—

स्वस्थानाद् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशं गतः ।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥

आत्मा प्रमादवश अपने स्थानसे परस्थानमें गयी हो, वहाँसे वापस लौटना, वह प्रतिक्रमण कहाता है । तात्पर्य यह है कि आत्मा ज्ञान, दर्शन और चारित्रका भाव त्यागकर मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद एवं कषायमें पड़ी हो, वहाँसे वापस, ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें आ जाय, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ।

प्रश्न—प्रतिक्रमण कितने प्रकारके हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—पाँच प्रकारके:-(१) देवसिअ-दैवसिक, (२) राइअ-रात्रिक, (३) पक्खिअ-पाक्षिक, (४) चाउम्मासिअ-चातुर्मासिक और (५) संवच्छरिअ-सांवत्सरिक।

प्रश्न—दैवसिक प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रतिक्रमण दिवसके अतिचारोंके सम्बन्धमें किया जाय, उसको दैवसिक-प्रतिक्रमण कहते हैं। यह प्रतिक्रमण सायंकालमें किया जाता है।

प्रश्न—रात्रिक प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रतिक्रमण रात्रिके अतिचारोंके सम्बन्धमें किया जाय, उसको रात्रिक-प्रतिक्रमण कहते हैं। यह प्रतिक्रमण प्रातःकालमें किया जाता है।

प्रश्न—पाक्षिक प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रतिक्रमण पक्षके अतिचारोंके सम्बन्धमें किया जाय, उसको पाक्षिक-प्रतिक्रमण कहते हैं। यह प्रतिक्रमण चतुर्दशीके दिन सायंकालको किया जाता है।

प्रश्न—चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रतिक्रमण चातुर्मासमें लगे हुए अतिचारोंके सम्बन्धमें किया जाय, उसको चातुर्मासिक-प्रतिक्रमण कहते हैं। यह प्रतिक्रमण कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी, फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी और आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीके दिन सायङ्कालको किया जाता है।

प्रश्न—सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रतिक्रमण संवत्सर अर्थात् वर्षके अतिचारोंके सम्बन्धमें किया जाय, उसको सांवत्सरिक प्रतिक्रमण कहते हैं। यह प्रतिक्रमण भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीके दिन सायङ्कालको किया जाता है।

प्रश्न—प्रतिक्रमण करना आवश्यक कब होता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—इसका उत्तर वंदित्तु–सूत्रकी ४८ वीं गाथामें दिया गया है; वह इस प्रकार :–

पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे अ पडिक्कमणं ।
असद्दहणे अ तहा, विवरीअ–परूवणाए अ ॥४८॥

निषिद्ध किये गये कृत्योंको करनेसे, करने योग्य कृत्योंको नहीं करनेसे, अश्रद्धा उत्पन्न होनेसे और श्रीजिनेश्वरदेवके उपदेशसे विपरीत प्ररूपणा करनेसे प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है ।

प्रश्न—प्रतिक्रमणका फल क्या है ?

उत्तर—दोषोंकी निवृत्ति, आत्माकी शुद्धि ।

प्रश्न—प्रतिक्रमण कौन करे ?

उत्तर—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ।

प्रश्न—इन सबका प्रतिक्रमण एक समान होता है अथवा पृथक् पृथक् ?

उत्तर—पृथक् पृथक् । साधु–साध्वी साधु–धर्ममें लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण करे और श्रावक–श्राविका श्रावक–धर्ममें लगे हुए अतिचारोंका प्रतिक्रमण करे । परन्तु दोनों प्रतिक्रमणोंमें कुछ सूत्र समान होते हैं, इसलिये साधु तथा श्रावक और साध्वी तथा श्राविका साथ बैठकर प्रतिक्रमण कर सकते हैं ।

---

३३ गुरुखामणा–सुत्तं

['अब्भुट्ठिओ'–सूत्र]

मूल—

[शिष्य] इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! अब्भुट्ठिओ हं अब्भिंतर–देवसिअं (राइअं) खामेउं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गुरु–खामेह]

[शिष्य] इच्छं, खामेमि देवसिअं (राइअ) ।

जं किंचि अपत्तिअं, परपत्तिअं, भत्ते, पाणे, विणए, वेयावच्चे, आलावे, संलावे, उच्चासणे, समासणे, अंतरभासाए, उवरिभासाए ।

जं किंचि मज्झ विणय–परिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ—

इच्छाकारेण संदिसह–इच्छा-पूर्वक आज्ञा प्रदान करो ।

भगवन् !–हे भगवन् !

अब्भुट्ठिओ हं–मैं उपस्थित हुआ हूँ ।

अब्भिंतर – देवसिअं–दिनके किये हुए ।

खामेउं–खमानेके लिये, क्षमा माँगनेके लिये ।

(**खामेह**–खमावो–क्षमा माँगो)

इच्छं–चाहता हूँ ।

खामेमि–खमाता हूँ, क्षमा माँगता हूँ ।

देवसिअं–दिवस-संबंधी अपराध ।

जं किंचि–जो कुछ ।

अपत्तिअं–अप्रीतिकारक ।

परपत्तिअं–विशेष अप्रीतिकारक ।

भत्ते–आहारमें ।

पाणे–पानीमें ।

विणए–विनयमें ।

वेयावच्चे–वैयावृत्त्यमें ।

आलावे–बोलनेमें ।

संलावे–बातचीत करनेमें ।

उच्चासणे–(गुरुसे) उच्च आसन-पर बैठनेमें, ऊँचा आसन रखनेमें ।

समासणे–(गुरुके आसनके) समान आसन रखनेमें ।

अंतरभासाए–बीचमें बोलनेमें

उवरिभासाए–गुरुसे ऊपर होकर बोलनेमें ।

जं किंचि—जो कोई (वर्तन) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मज्झ–मेरा ।
विणय–परिहीणं–विनयरहित ।
सुहुमं वा बायरं वा–सूक्ष्म अथवा स्थूल ।
तुब्भे जाणह–आप जानते हों ।
अहं न जाणामि–मैं नहीं जानता ।
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं–पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

हे भगवन् ! इच्छा–पूर्वक आज्ञा प्रदान करो । मैं दिन (रात्रि)के अन्दर किये हुए अपराधोंकी क्षमा माँगनेके लिये उपस्थित हुआ हूँ ।

[गुरु]–क्षमा माँगो ।

[शिष्य]–चाहता हूँ ! दिवस–सम्बन्धी अपराधोंकी क्षमा माँगता हूँ ।

आहारमें, पानीमें, विनयमें, वैयावृत्त्यमें, बोलनेमें, बातचीत करनेमें, ऊँचा आसन रखनेमें, समान आसन रखनेमें, बीचमें बोलनेमें, गुरुके ऊपर होकर बोलनेमें जो कुछ अप्रीति अथवा विशेष अप्रीतिकारक किया हो, तथा मुझसे सूक्ष्म अथवा स्थूल (अल्प या अधिक) जो कोई विनय–रहित वर्तन हुआ हो; आप जानते हों और मैं नहीं जानता, (ऐसा कोई अपराध हुआ हो;) तत्सम्बन्धी मेरे सब पाप मिथ्या हों ।।

सूत्र–परिचय —

इस सूत्रद्वारा शिष्य गुरुके प्रति हुए छोटे-बड़े अपराधों की क्षमा माँगता है, इसलिये ये 'गुरुखामणा–सुत्त' कहलाता है । पहले शब्दसे इसे 'अब्भुट्ठिओ' सूत्र भी कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु–क्षमापना

प्रश्न—गुरु–क्षमापना अर्थात् ?

उत्तर—गुरुके प्रति छोटे-बड़े जो अपराध हुए हों उनकी क्षमा माँगनेकी क्रिया ।

प्रश्न—गुरुके प्रति छोटे-बड़े अपराध कितने प्रकारसे होने सम्भव हैं ?

उत्तर—तीन प्रकारसे ।

(१) अप्रीति अथवा विशेष अप्रीति उत्पन्न करें, ऐसे कार्य ।

(२) कोई भी विनय–रहित कृत्य होनेसे, जिनका कि शिष्यको ध्यान हो ।

(३) कोई भी विनय–रहित कृत्य होनेसे, जिनका कि शिष्यको ध्यान न हो ।

प्रश्न—अप्रीति अथवा विशेष अप्रीति उत्पन्न हो ऐसे कार्य होने कब सम्भव हैं ?

उत्तर—(१) **भत्ते**–आहार–सम्बन्धी गुरुने जो सूचना दी हो, उसपर पूर्ण ध्यान न दिया जाय तब ।

(२) **पाणे**—पानी सम्बन्धी गुरुने जो सूचना दी हो, उसपर पूर्ण ध्यान न दिया जाय तब ।

(३) **विणए**—गुरुका जिस जिस प्रकारसे विनय करना चाहिए, उस उस प्रकारसे विनय न हुआ हो तब ।

(४) **वेयावच्चे**—गुरुका जिस जिस प्रकारसे वैयावृत्त्य करना चाहिये, उस उस प्रकारसे वैयावृत्त्य नहीं हुआ हो तब ।

(५) **आलावे**—बोलते समय जिस तरह शब्द–प्रयोग होना चाहिये, वह नहीं हुआ हो तब ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) **संलावे**—बातचीत करते समय जिस तरह मान रखनेमें सचेत रहना चाहिये, वैसा नहीं हुआ हो तब ।

(७) **उच्चासणे**—गुरुके आसनसे अपना आसन ऊँचा रखा हो तब ।

(८) **समासणे**—गुरुके जितना ही अपना आसन ऊँचा रखना हो तब ।

(९) **अन्तरभासाए**—गुरु किसीके साथ वार्तालाप करते हों और बीचमें बोल गये हों तब ।

(१०) **उवरिभासाए**—गुरुके ऊपर होकर कोई बात कही गयी हो तब ।

प्रश्न—विनय-रहित कृत्य होना कब सम्भव है ?

उत्तर—किसी भी समय । शिष्यको गुरुके साथ अनेक प्रकारके कार्य होते हैं, अतः प्रत्येक समय उसको गुरुके प्रति योग्य विनय करना चाहिये, परन्तु किसी कारणवश उसका ध्यान न रहे तो विनय-रहित कृत्य होता है ।

प्रश्न—शिष्य जान-बूझकर गुरुका विनय नहीं करे तो ?

उत्तर—तो वह महादोषका भागी होता है और उसकी सब साधना निष्फल हो जाती है । शास्त्रोंमें कहा है कि :—जो साधु (शिष्य) गुरुका विनय यथार्थ रूपसे नहीं करता है, और मोक्षकी इच्छा करता है, वह जीवितकी इच्छा करते हुए अग्निमें प्रवेश करनेका कार्य करता है । इसलिये यहाँ भूल-चूकका प्रसङ्ग समझना चाहिये । किसी समय भूल होनेके पश्चात् शिष्यको ध्यान आ जाता है कि मुझसे भूल हुई और किसी समय ऐसा ध्यान बिलकुल नहीं आता है, यद्यपि गुरुको इस बातका ध्यान आ जाता है । अतएव ऐसे समस्त अपराधों की क्षमा माँगी जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—क्षमा किस तरह माँगी जाती है ?

उत्तर—प्रथम गुरुकी आज्ञा लेकर तथा उनकी स्वीकृतिपूर्वक नीचे झुक कर भूमिपर मस्तक टेककर बाँये हाथमें धारण की हुई मुहपत्तीसे (प्रतिक्रमणके अतिरिक्त वन्दनाके प्रसङ्गमें गृहस्थोंको दुपट्टेसे) मुख आच्छादित करके तथा दाँया हाथ गुरुके चरणपर रखकर (ऐसा न हो सके तो उनकी ओर हाथ लम्बा करके अपने अपराधोंकी क्षमा माँगी जाती है ।

३४ आयरियाइ–खामणासुत्तं

['आयरिय–उवज्झाए'–सूत्र]

मूल—

[गाहा]

आयरिय–उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल–गणे अ ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥२॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म-निहिअ-निय-चित्ता ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥३॥

शब्दार्थ—

आयरिय–उवज्झाए–आचार्य और उपाध्यायके प्रति ।

सीसे–शिष्यपर ।

साहम्मिए–साधर्मिकके प्रति । साधर्मिक–समान धर्मवाला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुल–गणे–कुल और गणके प्रति ।
कुल–एक आचार्यका समुदाय ।
गण–तीन कुलोंका समूह ।
अ–और ।
जे मे केइ कसाया–मैंने जो कोई कषाय की हो ।
सव्वे–उन सबकी ।
तिविहेण–तीन प्रकारोंसे, मन, वचन और कायासे ।
खामेमि–क्षमा माँगता हूँ ।
सव्वस्स–सकल ।
समण–संघस्स–श्रमण–सङ्घके ।
भगवओ–पूज्य ।
अंजलिंकरिअ–हाथ जोड़कर।
सीसे–मस्तकपर ।
सव्वं–सबको ।
खमवइत्ता–क्षमा माँगकर ।
खमामि–क्षमा करता हूँ ।
सव्वस्स–सबको ।
अहयं पि–मैं भी ।
सव्वस्स जीवरासिस्स–सकल जीवराशिकी ।
भावओ–भावसे, अन्तःकरणसे ।
धम्म–निहिय–निय–चित्तो–धर्मके विषयमें स्थापित किया है चित्त जिसने ऐसा मैं, धर्म–भावना–पूर्वक ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि-पूर्ववत्० ।

अर्थ–सङ्कलना—

आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गणके प्रति मैंने जो कोई कषाय की हों, उन सबको मैं मन, वचन और कायासे क्षमा माँगता हूँ ॥ १ ॥

मस्तकपर हाथ जोड़कर पूज्य ऐसे सकल श्रमण–सङ्घसे क्षमा माँगकर मैं भी सबको क्षमा देता हूँ ॥ २ ॥

अन्तःकरणसे धर्मभावना–पूर्वक सकल जीवराशिसे क्षमा माँगकर मैं भी उनको क्षमा करता हूँ ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रद्वारा आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल, गण तथा सकल श्रमणसङ्घ के प्रति क्रोधादि कषायोंसे जो अपराध हुए हों उनकी क्षमा माँगी जाती है। इसी प्रकार सकल जीवराशि से क्षमा माँगकर उनको क्षमा दी जाती है।

---

३५ सुअदेवया—थुई

[श्रुतदेवताकी स्तुति]

मूल—

[सुअदेवयाए करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ०]

[गाहा]

सुअदेवया भगवई, नाणावरणीअ-कम्म-संघायं ।
तेसिं खवेउ सययं, जेसिं सुअ-सायरे भत्ती ॥१॥

शब्दार्थ—

[**सुअदेवयाए**—श्रुतदेवताके लिये, श्रुतदेवीकी आराधनाके लिये ।
करेमि काउस्सग्गं—मैं कायोत्सर्ग करता हूँ ।]
सुअदेवया—श्रुतदेवी ।
भगवई—पूज्य ।
नाणावरणीअ-कम्म-संघायं—ज्ञानावरणीय-कर्मके समूहका ।
तेसिं—उनके ।
खवेउ—खपाओ, क्षय करो ।
सययं—सदा ।
जेसिं—जिनकी ।
सुअ-सायरे—प्रवचनरूपी समुद्रके विषयमें ।
भत्ती—भक्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

श्रुतदेवी की आराधनाके लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। जिनकी प्रवचनरूपी समुद्रके विषयमें सदा भक्ति है, उनके ज्ञानावरणीय-कर्मके समूहका पूज्य श्रुतदेवी क्षय करो ॥ १ ॥

सूत्र-परिचय—

यह स्तुति श्रुतदेवताकी है और इसको पुरुष ही बोलते हैं।

---

३६ खित्तदेवया-थुइ

[क्षेत्रदेवता-स्तुति]

मूल—

[खित्तदेवयाए करेमि काउस्सग्गं। अन्नत्थ०]

[गाहा]

जीसे खित्ते साहू, दंसण-नाणेहिं चरण-सहिएहिं।
साहंति मुक्ख-मग्गं, सा देवी हरउ दुरिआइं ॥१॥

शब्दार्थ—

[**खित्तदेवयाए** – क्षेत्रदेवताकी आराधनाके लिये।
करेमि काउस्सग्गं–मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।]

जीसे–जिनके।
खित्ते–क्षेत्रमें।
साहू–साधुगण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणनाणेहिं–दर्शन और ज्ञान-द्वारा, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानद्वारा।

चरण-सहिएहिं–चारित्रसहित, सम्यक्चारित्र सहित।

साहंति–साधते हैं।

मुक्ख–मग्गं–मोक्ष-मार्गको।

सा–वह, वे।

देवी–देवी, क्षेत्रदेवता,

हरउ–हरण करें, दूर करें।

दुरिआइं–दुरितोंको, विघ्नों को।

अर्थ–सङ्कलना

क्षेत्रदेवताकी आराधनाके लिये कायोत्सर्ग करता हूँ। जिनके क्षेत्रमें साधुगण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित मोक्ष–मार्गको साधते हैं, वे क्षेत्रदेवता दुरितोंको–विघ्नोंको दूर करें॥१॥

सूत्र–परिचय—

यह स्तुति क्षेत्रदेवताकी है और इसको पुरुष ही बोलते हैं।

---

३७ श्रुतदेवता–स्तुतिः

['कमल–दल'–स्तुति]

मूल—

[गाहा]

कमल–दल–विपुल–नयना, कमल–मुखी कमलगर्भ–सम-गौरी।
कमले स्थिता भगवती, ददातु श्रुतदेवता सिद्धिम् ॥१॥

शब्दार्थ—

कमल–दल–विपुल–नयना–कमल–पत्र जैसे विशाल नयनोंवाली।

कमल–मुखी–कमल जैसे मुखवाली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमल-गर्भ-सम-गौरी-कमल-के मध्यभाग जैसे गौर वर्णवाली।
कमले-कमलमें।
स्थिता-स्थित।
भगवती-पूज्य।
ददातु-प्रदान करे।
श्रुतदेवता-श्रुतदेवता।
सिद्धिम्-सिद्धि।

अर्थ-सङ्कलना—

कमल-पत्र जैसे विशाल नयनोंवाली, कमल जैसे मुखवाली कमल के मध्यभाग जैसे गौर वर्णवाली और कमल पर स्थित पूज्य श्रुतदेवता सिद्धि प्रदान करे ॥१॥

सूत्र-परिचय—

यह स्तुति श्रुतदेवताकी है। और इसको 'सुयदेवया थुई' सूत्र ३५के स्थान पर स्त्रियाँ बोलती हैं।

---

३८ वर्धमान-स्तुतिः

['नमोऽस्तु वर्धमानाय'-सूत्र]

मूल—

इच्छामो अणुसट्ठिं नमो खमासमणाणं।
नमोऽर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधुभ्यः।

[अनुष्टुप्]

नमोऽस्तु वर्धमानाय, स्पर्धमानाय कर्मणा।
तज्जयावाप्तमोक्षाय, परोक्षाय कुतीर्थिनाम् ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[औपच्छन्दसिक]×

येषां विकचारविन्द–राज्या, ज्यायः–क्रम–कमलावलिं दधत्या ।
सदृशैरिति सङ्गतं प्रशस्यं, कथितं सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥२॥

[वंशस्थ]

कषाय–तापार्दित–जन्तु–निर्वृतिं,
करोति यो जैनमुखाम्बुदोद्गतः ।
स शुक्र–मासोद्भव–वृष्टि–सन्निभो,
दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिराम् ॥३॥

शब्दार्थ—

इच्छामो–चाहते हैं ।
अणुसट्ठिं–अनुशासन, आज्ञा ।
नमो–नमस्कार हो ।
खमासमणाणं–पूज्य क्षमा-श्रमणोंको ।
नमोऽर्हत्०–पूर्ववत्०
नमः अस्तु–नमस्कार हो ।
वर्धमानाय–श्रीवर्धमानके लिये, श्रीमहावीरप्रभुको ।
स्पर्धमानाय–जीतनेकी स्पर्धा करते हुए ।
कर्मणा–कर्मके साथ, कर्मवैरीके साथ ।
तज्जयावाप्तमोक्षाय – उस (कर्म)के जयद्वारा मोक्ष प्राप्त करनेवालेको ।
परोक्षाय–परोक्ष, अगम्य ।
कुतीर्थिनाम्–कुतीर्थिकोंके लिये, मिथ्यात्वियोंके लिये ।
येषां–जिनकी ।
विकचारविन्द–राज्या –विकसित कमलकी पङ्क्तिने ।

× औपच्छन्दसिक छन्द वैतालिकका ही एक भेद है, परन्तु इसमें १६ + १८, १६ + १८ मात्राएँ होती हैं, अर्थात् वैतालिकसे इसमें दो मात्राएँ अधिक होती हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकच–विकसित, खिला हुआ। अरविन्द–कमल। राजि–श्रेणि।

ज्यायः–क्रम–कमलावलिं–उत्तम चरण–कमलकी श्रेणिको। ज्यायस्–उत्तम। क्रम–चरण। आवलि–हार, श्रेणि।

दधत्या–धारण करनेवाली।

सदृशैः–समानके साथ।

इति सङ्गतं–इस प्रकार समागम होना वह।

प्रशस्यं–प्रशस्त, प्रशंसनीय।

कथितं–कहा।

सन्तु–हों।

शिवाय–शिवके लिये, मोक्षके लिये।

ते–वे।

जिनेन्द्राः–जिनेन्द्र।

कषाय – तापार्दित – जन्तु–निर्वृतिं – कषायरूपी तापसे पीड़ित प्राणियोंकी शान्तिको।

करोति–करता है।

यः–जो।

जैनमुखाम्बुदोद्गतः – जिनेश्वर-के मुखरूपी मेघसे प्रकटित। जैनमुख–जिनेश्वरका मुख। अम्बुद–मेघ। उद्गत–प्रकटित।

सः–वह।

शुक्रमासोद्भव – वृष्टि – स-न्निभः–ज्येष्ठमासमें हुई वृष्टिके जैसा।

शुक्रमास–ज्येष्ठ मास। उद्भव –उत्पन्न। वृष्टि–वर्षा। सन्निभ–सदृश, जैसा।

दधातु–करो।

तुष्टिं–अनुग्रह।

मयि–मुझ पर।

विस्तरः–विस्तार, समूह।

गिराम्–वाणीका।

अर्थ–सङ्कलना—

हम अब आपकी आज्ञा चाहते हैं। पूज्य क्षमा–श्रमणोंको नमस्कार हो। अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार हो।

जो कर्म–वैरीके साथ जीतनेकी स्पर्धा करते हुए जय प्राप्त करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं और जिनका स्वरूप मिथ्यात्वियोंके लिये अगम्य है, ऐसे श्रीमहावीर प्रभुको मेरा नमस्कार हो ॥१॥

जिनकी उत्तम चरण-कमलकी श्रेणिको धारण करनेवाली (देवनिर्मित) विकसित (सुवर्ण) कमलोंकी पङ्क्तिने (मानो ऐसा) कहा कि—'समानके साथ इस प्रकार समागम होना, प्रशंसनीय है,' वे जिनेन्द्र मोक्षके लिये हों ॥२॥

जो वाणीका समूह जिनेश्वरके मुखरूपी मेघसे प्रकटित होनेपर कषायके तापसे पीड़ित प्राणियोंको शान्ति प्रदान करता है और जो ज्येष्ठ मासमें हुई (पहली) वृष्टि जैसा है, वह मुझपर अनुग्रह करे ॥३॥

सूत्र-परिचय—

दैवसिक प्रतिक्रमणमें छः आवश्यक पूर्ण होनेके पश्चात् मङ्गलस्तुतिके निमित्त यह सूत्र बोला जाता है। इसमें पहली स्तुति श्रीमहावीरस्वामीकी है, दूसरी स्तुति सामान्य जिनोंकी है और तीसरी स्तुति श्रीतीर्थङ्करके वाणीरूप श्रुतज्ञान की है। स्त्रियाँ इस स्तुतिके स्थानपर 'संसार दावानल'-की स्तुति बोलती हैं।

---

३९ प्राभातिक--स्तुतिः

['विशाल-लोचन-दलं'-सूत्र]

[अनुष्टुप्]

विशाल-लोचन-दलं, प्रोद्यद्-दन्तांशु-केसरम् ।
प्रातर्वीरजिनेन्द्रस्य, मुख-पद्मं पुनातु वः ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[औपच्छन्दसिक]

येषामभिषेक–कर्म कृत्वा, मत्ता हर्षभरात् सुखं सुरेन्द्राः ।
तृणमपि गणयन्ति नैव नाकं, प्रातः सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः।२।

[वंशस्थ]

कलङ्क–निर्मुक्तममुक्तपूर्णतं, कुतर्क–राहु–ग्रसनं सदोदयम् ।
अपूर्वचन्द्रं जिनचन्द्रभाषितं, दिनागमे नौमि बुधैर्नमस्कृतम्।३।

शब्दार्थ—

विशाल–लोचन–दलं–विशाल नेत्ररूपी पत्रवाला ।

प्रोद्यद्–दन्तांशु–केसरम्–देदीप्यमान दाँतोंकी किरणरूप केसरवाला ।

प्रोद्यत्–देदीप्यमान। दन्त–दाँत। अंशु–किरण । केसर–पुष्पतन्तु – फूलके मध्यमें होनेवाले पुंकेसर, स्त्रीकेसर आदि तन्तुविशेष ।

प्रातः–प्रातःकालमें ।

वीर–जिनेन्द्रस्य – श्रीवीरजिनेश्वरका ।

मुख–पद्मं–मुखरूपी कमल ।

पुनातु–पवित्र करो ।

वः–तुमको ।

येषाम्–जिनकी ।

अभिषेक–कर्म–अभिषेकका कार्य, स्नान–क्रिया ।

कृत्वा–करके ।

मत्ताः–मत्त बने हुए ।

हर्षभरात्–हर्षके समूहसे, अति हर्षसे ।

सुखं–सुखको ।

सुरेन्द्राः–सुरेन्द्र, देवेन्द्र ।

तृणमपि–तिनके जितना भी, तृणमात्र भी ।

गणयन्ति नैव–नहीं गिनते हैं ।

नाकं–स्वर्गको स्वर्गके ।

प्रातः–प्रातःकालमें ।

सन्तु–हों ।

शिवाय–शिवसुखके लिये ।

ते–वे ।

जिनेन्द्राः–जिनेन्द्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलङ्क-निर्मुक्तम्–कलङ्कसे रहित।

अमुक्तपूर्णतं–पूर्णता नहीं त्यागने वालेको।

कुतर्क-राहु-ग्रसनं–कुतर्करूपी राहुको डसनेवालेको।

सदोदयम्–कभी अस्त नहीं होनेवाला, सदा उदयको प्राप्त।

अपूर्वचन्द्रं–नवीन प्रकारके चन्द्रमाको, अपूर्वचन्द्रकी।

जिनचन्द्र-भाषितं–जिनचन्द्रकी वाणीसे बना हुआ।

दिनागमे–प्रातःकालमें।

नौमि–स्तवन करता हूँ, स्तुति करता हूँ।

बुधैः–पण्डितोंने।

नमस्कृतम्–नमस्कार किया है उसको।

अर्थ-सङ्कलना—

विशाल नेत्ररूपी पत्रवाला, देदीप्यमान दाँतोंकी किरणरूप केसरवाला, श्रीवीरजिनेश्वरका मुखरूपी कमल प्रातःकालमें तुमको पवित्र करे ॥१॥

जिनकी स्नान-क्रिया करनेसे अतिहर्षसे मत्त बने हुए देवेन्द्र स्वर्गके सुखको तृणमात्र भी नहीं गिनते हैं, वे जिनेन्द्र प्रातःकालमें शिव-सुखके लिये हों ॥२॥

जो कलङ्कसे रहित हैं, पूर्णताका त्याग नहीं करते, कुतर्करूपी राहुको डस लेते हैं, सदा उदयको प्राप्त रहते हैं, ऐसे जिनचन्द्रकी वाणीसे जो बना हुआ है और पण्डितोंने जिसे नमस्कार किया है, उस आगमरूपी अपूर्वचन्द्रकी मैं प्रातःकालमें स्तुति करता हूँ ॥३॥

सूत्र-परिचय—

रात्रिक प्रतिक्रमणमें ६ आवश्यक पूरे होने के बाद मङ्गल स्तुतिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमित्त यह सूत्र बोला जाता है। इसमें पहली स्तुति श्रीवीरजिनेश्वरकी है, दूसरी स्तुति सामान्य जिनों की है और तीसरी स्तुति श्रीतीर्थङ्करकी वाणीकी है।

---

४० साहुवंदण-सुत्तं

['अड्ढाइज्जेसु'-सूत्र]

मूल—

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु।
जावंत के वि साहू, रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह-धारा ॥१॥
पंचमहव्वय-धारा, अट्ठारस-सहस्स-सीलंग-धारा।
अक्खयायार-चरित्ता, ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि।२।

शब्दार्थ—

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु—जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, और अर्धपुष्कर द्वीपमें, ढाई द्वीपमें। अड्ढाइज्जेसु—अर्ध तीसरेमें, अर्धपुष्करद्वीपमें।

दीव-समुद्देसु—द्वीप और समुद्रमें जम्बूद्वीप और धातकीखण्डमें।

पण्णरससु—पन्द्रह।

कम्मभूमिसु—कर्मभूमियोंमें।

जावंत के वि साहू—जो कोई भी साधु।

रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह-धारा—रजोहरण, गुच्छक और (काष्ठ) पात्रको धारण करनेवाले।

रयहरण—रजको दूर करनेवाला उपकरण—विशेष। गुच्छ—पातरेकी झोली पर ढँकनेका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक प्रकारका ऊनका वस्त्र ।
पडिग्गह–पातरा, पात्र ।
धारा–धारण करनेवाले ।

पंचमहव्वय–धारा–पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले ।

अठ्ठारस – सहस्स–सीलंग – धारा–अठारह हजार शीलके अङ्गोंको धारण करनेवाले ।

अक्खयायार – चरित्ता – अक्षत आचार और चारित्र आदि (भाव–लिङ्ग) को धारण करनेवाले ।

ते–उन ।

सव्वे–सबको ।

सिरसा–सिरसे, कायासे ।

मणसा–मनसे ।

मत्थएण–वंदामि–वन्दन करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

ढाई द्वीपमें आयी हुई पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जो कोई साधु रजोहरण, गुच्छ और (काष्ठ) पात्र (आदि द्रव्यलिङ्ग) तथा पाँच महाव्रत, अठारह हजार शीलाङ्ग, अक्षत आचार और चारित्र आदि (भाव–लिङ्ग) के धारण करनेवाले हों, उन सबको काया तथा मनसे वन्दन करता हूँ ।।

सूत्र–परिचय—

इस सूत्रसे ढाई द्वीपमें स्थित साधु-मुनिराजोंको वन्दन किया जाता है, इसलिये यह 'साहु–वंदण–सुत्त' कहलाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलाङ्ग-रथ

कुल १८०००

न करे ६०००	न करावे ६०००	न अनु०करे ६०००							
मनोयोग २०००	वचनयोग २०००	काययोग २०००							
आहार संज्ञा ५००	भय संज्ञा ५००	मैथुन संज्ञा ५००	परिग्रह संज्ञा ५००						
श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह १००	चक्षु निग्रह १००	घ्राणे० नि० १००	रसने० नि० १००	स्पर्शे० नि० १००					
पृथ्वी० १०	अप् १०	तेउ० १०	वाउ० १०	वन० १०	दो. इ. १०	तीन इ. १०	चतु. इ. १०	पञ्च इ० १०	अजीव १०
क्षमा. १	मार्दव २	आर्जव ३	मुक्ति ४	तप ५	संयम ६	सत्य ७	शौच ८	अकिञ्चनत्व ९	ब्रह्मचर्य १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलाङ्ग–रथ

यतिधर्म दस प्रकारका है :—(१) क्षमा, (२) मार्दव, (३) आर्जव, (४) मुक्ति, (५) तप, (६) संयम, (७) सत्य, (८) शौच, (९) अकिञ्चनत्व और (१०) ब्रह्मचर्य, इसलिये सबसे नीचेके कोष्ठकमें यह बतलाया है। यतिको (१) पृथ्वीकाय–समारम्भ, (२) अप्काय–समारम्भ, (३) तेजस्काय–समारम्भ, (४) वायुकाय–समारम्भ, (५) वनस्पतिकाय–समारम्भ (६) द्वीन्द्रिय–समारम्भ, (७) त्रीन्द्रिय–समारम्भ, (८) चतुरिन्द्रिय–समारम्भ, (९) पञ्चेन्द्रिय समारम्भ और (१०) अजीव–समारम्भकी जयणा करनी चाहिए, अतः दूसरे कोष्ठकमें यह बतलाया है। यह यतिधर्मयुक्त जयणा पाँच इन्द्रिय जयपूर्वक की जाती है, इसलिये तीसरे कोष्ठकमें पाँच इन्द्रियोंके नाम दिखाये हैं। अर्थात् शीलके कुल भेद ५०० हुए।

इस भेदको आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओंसे मनोयोग, वचनयोग और काययोग इन तीन योगोंसे और करना नहीं, कराना नहीं और करते हुएका अनुमोदन करना नहीं, इन तीन करणोंसे गुणन करनेपर अठारह हजार शीलाङ्ग होते हैं।

१० × १० × ५ × ४ × ३ × ३ = १८०००

---

४१ सप्तति--शत--जिनवन्दनम्

['वरकनक'–स्तुति]

मूल—

[गाहा]

वरकनक–शङ्ख–विद्रुम–मरकत–घन–सन्निभं विगत–मोहम्।
सप्ततिशतं जिनानां, सर्वामर–पूजितं वन्दे ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

वरकनक-शङ्ख-विद्रुम-मरकत-घन-सन्निभं – श्रेष्ठ सुवर्ण, श्रेष्ठ शङ्ख, श्रेष्ठ विद्रुम, श्रेष्ठ नीलम और श्रेष्ठ मेघ जैसे (वर्णवाले) ।

वरकनक–श्रेष्ठ सुवर्ण, उत्तम सोना । शङ्ख–समुद्रमें उत्पन्न होनेवाला दो इन्द्रियवाले (द्वीन्द्रिय) प्राणीका कलेवर विशेष । विद्रुम-मूँगा । मरकत–नीलम । घन–मेघ । सन्निभ–जैसा ।

विगत-मोहम्–जिनका मोह चला गया है वैसे, मोह रहित ।

सप्ततिशतं–एकसौ सत्तर ।

जिनानां–जिनेश्वरोंको ।

सर्वामर-पूजितं–सर्व देवोंसे पूजित

वन्दे–मैं वन्दना करता हूँ ।

अर्थ-सङ्कलना—

श्रेष्ठ सुवर्ण, श्रेष्ठ शङ्ख, श्रेष्ठ मूँगा, श्रेष्ठ नीलम और श्रेष्ठ मेघ जैसे वर्णवाले, मोह–रहित और सर्व देवोंसे पूजित एकसौ सत्तर जिनेश्वरोंको मैं वन्दन करता हूँ ।।१।।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रसे उत्कृष्ट १७० जिनोंके लिये वन्दना की जाती है। तीर्थङ्करदेव कर्मभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, जिसके पृथक् पृथक् विभाग विजय कहलाते हैं। ऐसे एक–एक विजयमें एक समयमें एक ही तीर्थङ्कर हो सकते हैं। जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रमें ३२ विजय हैं, भरत और ऐरावत में भी एक–एक विजय है, अर्थात् सब मिल कर ३४ विजय हैं। धातकीखण्ड, जम्बूद्वीपसे दुगुना है इसमें ६८ विजय हैं; और अर्ध–पुष्करावर्तखण्ड धातकीखण्ड जितना होनेसे उसमें भी ६८ विजय हैं। पुष्करावर्त्तका शेष आधा खण्ड मनुष्यक्षेत्रके बाहर होनेसे उसमें विजयकी गिनती नहीं है। इस प्रकार जम्बूद्वीपके ३४, धातकीखण्डके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८ और अर्धपुष्करावर्त खण्डके ६८ मिलकर १७० विजय होते हैं। जिस समय प्रत्येक क्षेत्रमें तीर्थङ्कर विद्यमान होते हैं उस समय उनकी उत्कृष्ट संख्या १७० की होती है। ऐसी घटना श्रीअजितनाथ प्रभुके वारेमें-समयमें हुई थी।

---

४२ शान्ति-स्तवः

['लघु-शान्ति']

मूल—

(मङ्गलादि)

[गाहा]

शान्ति शान्ति-निशान्तं, शान्तं शान्ताशिवं नमस्कृत्य।
स्तोतुः शान्ति--निमित्तं, मन्त्रपदैः शान्तये स्तौमि ॥१॥

शब्दार्थ—

शान्ति–श्रीशान्तिनाथ भगवान्को।

शान्ति-निशान्तं--शान्तिके गृह समान।

शान्तं–शान्तरससे युक्त, प्रशम-रस-निमग्न।

शान्ताशिवं–जिनने अशिवको शान्त किया है, अशिवका नाश करनेवाले।

नमस्कृत्य–नमस्कार करके।

स्तोतुः–स्तुति करनेवालेकी।

शान्ति-निमित्तं–शान्तिके निमित्त, शान्ति करनेमें निमित्त-भूत ऐसे साधन (तन्त्र) का।

मन्त्रपदैः–मन्त्रपदोंसे, मन्त्रगर्भित पदोंसे।

शान्तये–शान्तिके लिये।

स्तौमि–स्तवन करता हूँ, वर्णन करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

शान्तिके गृहसमान, प्रशमरस-निमग्न और अशिवका नाश करनेवाले श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को नमस्कार करके, स्तुति करनेवाले की शान्तिके लिये मैं मन्त्र-गर्भित पदोंसे शान्ति करनेमें निमित्तभूत ऐसे साधन (तन्त्र) का वर्णन करता हूँ ॥१॥

मूल—

(श्रीशान्ति-जिन-नाम-मन्त्र-स्तुति)

ओमिति निश्चितवचसे, नमोनमो भगवतेऽर्हते पूजाम् ।
शान्तिजिनाय जयवते, यशस्विने स्वामिने दमिनाम् ॥२॥

शब्दार्थ—

ओम्—ॐकार, परम-तत्त्वकी विशिष्ट संज्ञा ।
इति—ऐसे ।
निश्चितवचसे—व्यवस्थित वचन वाले ।
नमो नमः—नमस्कार हो, नमस्कार हो ।
भगवते—भगवान्‌को ।
अर्हते पूजाम्—द्रव्य तथा भावपूजाके योग्य ।
शान्तिजिनाय—श्रीशान्तिजिनके लिये, श्रीशान्तिजिनको ।
जयवते—जयवान् ।
यशस्विने—यशस्वी ।
स्वामिने दमिनाम्—योगियोंके स्वामी, योगीश्वर ।

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ पूर्वक नाममन्त्रका प्रारम्भ करते हैं। (१) व्यवस्थित वचनवाले, (२) भगवान्, (३) द्रव्य तथा भावपूजाके योग्य, (४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयवान्, (५) यशस्वी और (६) योगीश्वर ऐसे श्रीशान्तिजिनको नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥२॥

मूल—

सकलातिशेषक–महा–सम्पत्ति–समन्विताय शस्याय ।
त्रैलोक्य–पूजिताय च, नमो नमः शान्तिदेवाय ॥३॥

शब्दार्थ—

सकलातिशेषक – महा–सम्पत्ति – समन्विताय – चौंतीस अतिशयरूप महासम्पत्तिसे युक्त। सकल – समग्र । अतिशेषक– अतिशय । समन्वित–युक्त ।

शस्याय–प्रशस्त ।

त्रैलोक्य – पूजिताय – त्रिलोकसे पूजित, त्रैलोक्य–पूजित ।

च–और ।

नमो नमः–नमस्कार हो, नमस्कार हो ।

शान्तिदेवाय–शान्तिके अधिपतिको, श्रीशान्तिनाथ भगवान्को ।

अर्थ–सङ्कलना—

(७) चौंतीस अतिशयरूप महासम्पत्तिसे युक्त, (८) प्रशस्त, (९) त्रैलोक्य–पूजित और (१०) शान्तिके अधिपति ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥३॥

मूल—

सर्वामर–सुसमूह–स्वामिक–सम्पूजिताय निजिताय ।
भुवन–जन–पालनोद्यततमाय सततं नमस्तस्मै ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

सर्वामर–सुसमूह –स्वामिक-सम्पूजिताय–सर्व देवसमूहके स्वामियोंद्वारा विशिष्ट प्रकारसे पूजित ।

निजिताय–किसीसे नहीं जीते गये, अजित ।

भुवन–जन–पालनोद्यततमाय–विश्वके लोगोंका रक्षण करनेमें तत्पर ।

सततं–सदा ।

नमः–नमस्कार हो ।

तस्मै–उन श्री शान्तिनाथको ।

अर्थ–सङ्कलना—

(११) सर्व देवसमूहके स्वामियोंद्वारा विशिष्ट प्रकारसे पूजित (१२) अजित और (१३) विश्वके लोगोंका रक्षण करनेमें तत्पर ऐसे श्रीशान्तिनाथको सदा नमस्कार हो ।।४।।

मूल—

सर्व–दुरितौघ–नाशनकराय सर्वाशिव–प्रशमनाय ।
दुष्ट–ग्रह–भूत–पिशाच–शाकिनीनां प्रमथनाय ।।५।।

शब्दार्थ—

सर्व–दुरितौघ–नाशनकराय–समग्र भय–समूहोंका नाश करनेवाले ।

सर्वाशिव-प्रशमनाय–सर्व उपद्रवों का शमन करनेवाले ।

दुष्ट – ग्रह – भूत – पिशाच – शाकिनीनां – प्रमथनाय–दुष्टग्रह, भूत, पिशाच, शाकिनियोंद्वारा उत्पादित पीड़ाओंका अत्यन्त नाश करनेवाले ।

अर्थ–सङ्कलना—

(१४) समग्रभय–समूहोंका नाश करनेवाले, (१५) सर्व उपद्रवोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शमन करनेवाले और (१६) दुष्ट ग्रह, भूत, पिशाच तथा शाकिनियों-द्वारा उत्पादित पीड़ाओंका अत्यन्त नाश करनेवाले ऐसे श्रीशान्ति-नाथ को नमस्कार हो ॥५॥

मूल—

यस्येति नाममन्त्र–प्रधान–वाक्योपयोग–कृततोषा ।
विजया कुरुते जनहितमिति च नुता नमत तं शान्तिम् ॥६॥

शब्दार्थ—

यस्य–जिसके ।

इति–ऐसे ।

नाममन्त्र– प्रधान– वाक्योप – योग–कृततोषा.– नाममन्त्र-वाले उत्तम अनुष्ठानोंसे तुष्ट की हुई ।

भगवान्‌के विशिष्ट नामवाले मन्त्रको ' नाममन्त्र ' कहते हैं । वाक्योपयोग–विधि-युक्त जप अथवा अनुष्ठान ।

विजया–विजयादेवी ।

कुरुते–करती है ।

जनहितम्–लोगोंका हित ।

इति–इससे ।

च–ही ।

नुता–स्तुति की गयी है ।

नमत–नमस्कार करो ।

तं–उन ।

शान्तिम्–श्रीशान्तिनाथको ।

अर्थ-सङ्कलना—

जिनसे नाममन्त्रवाले उत्तम अनुष्ठानोंसे तुष्ट की हुई विजयादेवी लोगोंका (ऋद्धि–सिद्धि–प्रदानपूर्वक) हित करती है, उन श्रीशांति-नाथको (हे मनुष्यों ! तुम) नमस्कार करो और विजया (-जया) देवी कार्य करनेवाली है इससे उसकी भी प्रसङ्गानुसार यहाँ स्तुति की गयी है ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

(विजया–जया–नवरत्न–माला)

भवतु नमस्ते भगवति !, विजये ! सुजये ! परापरैरजिते ! ।
अपराजिते ! जगत्यां, जयतीति जयावहे ! भवति ! ॥७॥

शब्दार्थ—

भवतु–हो ।
नमः–नमस्कार ।
ते–आपको ।
भगवति !–हे भगवती !
विजये !–हे विजया !
सुजये !–हे सुजया !
परापरैः–परापर और अन्य रहस्योंसे ।
अजिते !–हे अजिता !
अपराजिते !–हे अपराजिता !
जगत्यां–जम्बूद्वीपमें, जगत्में ।
जयति–जयको प्राप्त होती है ।
इति–इस लिये ।
जयावहे !–हे जयावहा !
भवति–हे भवती !

अर्थ-सङ्कलना—

हे भगवती ! हे विजया ! हे सुजया ! हे अजिता ! हे अपराजिता ! हे जयावहा ! हे भवती ! आपकी शक्ति परापर और अन्य रहस्योंसे जगत्में जयको प्राप्त होती है, इस लिये आपको नमस्कार हो ॥७॥

मूल—

सर्वस्यापि च सङ्घस्य, भद्र–कल्याण–मङ्गल–प्रददे ! ।
साधूनां च सदा शिव–सुतुष्टि–पुष्टि–प्रदे ! जीयाः ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

सर्वस्य–सकल ।
अपि च–और ।
सङ्घस्य–सङ्घको ।
भद्र–कल्याण–मङ्गल–प्रददे !–भद्र, कल्याण और मङ्गल देनेवाली !
साधूनां–साधुओंको, श्रमणसङ्घको ।
च–उसी प्रकार ।
सदा–निरन्तर, सदा ।
शिव–सुतुष्टि–पुष्टि–प्रदे !–निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली ।
जीयाः–आपकी जय हो ।

अर्थ–सङ्कलना—

सकलसङ्घको भद्र, कल्याण और मङ्गल देनेवाली, उसी प्रकार श्रमण–सङ्घको सदा निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली हे देवी ! आपकी जय हो ॥८॥

मूल—

भव्यानां कृतसिद्धे !, निर्वृति–निर्वाण–जननि ! सत्त्वानाम् ।
अभय–प्रदान–निरते ! नमोऽस्तु स्वस्तिप्रदे ! तुभ्यम् ॥९॥

शब्दार्थ—

भव्यानां–भव्य उपासकोंको ।
कृतसिद्धे !– हे कृतसिद्धा, हे सिद्धिदायिनी !
निर्वृति–निर्वाण–जननि !–शान्ति तथा परम–प्रमोदको देनेमें कारणभूत, शान्ति तथा परम प्रमोद देनेवाली ।
सत्त्वानाम्–सत्त्वशाली उपासकोंको ।
अभय–प्रदान–निरते !–अभयदान करनेमें तत्पर, निर्भयता देनेवाली !
नमः अस्तु–नमस्कार हो !
स्वस्तिप्रदे !–क्षेम करनेवाली !
तुभ्यम्—आपके लिये, आपको ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

भव्य उपासकोंको सिद्धि, शान्ति और परम-प्रमोद देनेवाली तथा सत्त्वशाली उपासकोंको निर्भयता और क्षेम देनेवाली हे देवि ! आपको नमस्कार हो ॥ ९ ॥

मूल—

भक्तानां जन्तूनां, शुभावहे ! नित्यमुद्यते ! देवि ! ।
सम्यग्दृष्टीनां धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय ॥१०॥
जिनशासन-निरतानां, शान्ति-नतानां च जगति जनतानाम् ।
श्री-सम्पत्-कीर्ति-यशो-वर्धनि ! जय देवि ! विजयस्व॥११॥

शब्दार्थ—

भक्तानां जन्तूनां-कनिष्ठ उपासकोंका ।
शुभावहे !-शुभ करनेवाली ।
नित्यम्-सदा ।
उद्यते !-उद्यमवती !, तत्पर रहनेवाली !
देवि !-हे देवि !
सम्यग्दृष्टीनां-सम्यग्दृष्टिवाले जीवोंको ।
धृति-रति-मति - बुद्धि-प्रदानाय-धृति, रति, मति और बुद्धि देनेमें सदा तत्पर ।
धृति-स्थिरता । रति-हर्ष । मति-विचार-शक्ति । बुद्धि-अच्छे बुरेका निर्णय करने वाली शक्ति ।
जिनशासन-निरतानां शान्ति-नतानां च - जैनधर्ममें अनुरक्त तथा शान्तिनाथ भगवान्को नमन करनेवाली ।
जगति-जगत्में ।
जनतानां-जनताके लिये ।
श्री-सम्पत्-कीर्ति - यशो वर्धनि !-लक्ष्मी, सम्पत्ति, कीर्ति और यशमें वृद्धि करनेवाली ।
जय-आपकी जय हो ।
देवि !-हे देवि !
विजयस्व-आपकी विजय हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

कनिष्ठ उपासकोंका शुभ करनेवाली, सम्यग्दृष्टिवाले जीवोंको धृति, रति, मति और बुद्धि देनेमें सदा तत्पर रहनेवाली, जैनधर्ममें अनुरक्त तथा शान्तिनाथ भगवान्‌को नमन करनेवाली जनताके लिये लक्ष्मी, सम्पत्ति, कीर्ति और यशमें वृद्धि करनेवाली हे देवि ! आपकी जगत्‌में जय हो ! विजय हो ! ॥ १०-११ ॥

मूल—

सलिलानल-विष-विषधर-दुष्टग्रह-राज-रोग-रण-भयतः ।
राक्षस-रिपुगण-मारी-चौरेति-श्वापदादिभ्यः ॥१२॥

अथ रक्ष रक्ष सुशिवं, कुरु कुरु शान्तिं च कुरु कुरु सदेति ।
तुष्टिं च कुरु कुरु पुष्टिं, कुरु कुरु स्वस्तिं च कुरु कुरु त्वम् ॥१३॥

शब्दार्थ—

सलिलानल - विष - विषधर- दुष्टग्रह - राज - रोग-रण- भयतः-जल, अग्नि, विष, सर्प, दुष्टग्रह, राजा, रोग और युद्ध-इन आठ प्रकारके भयोंसे। सलिल-जल। अनल-अग्नि। विष-जहर। विषधर-सर्प। दुष्ट-ग्रह-गोचरमें स्थित अशुभ ग्रह। रण-युद्ध।

राक्षस- रिपुगण-मारी-चौरे- ति-श्वापदादिभ्यः -राक्षस, शत्रुसमूह, महामारी, चोर, सात ईति, हिंस्र-पशु आदिके उपद्रवसे।

अथ-अब।

रक्ष रक्ष-रक्षण कर, रक्षण कर।

सुशिवं कुरु कुरु-उपद्रव रहित कर, उपद्रव रहित कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्ति च कुरु कुरु–और शान्ति कर, शान्ति कर।

सदा–निरन्तर।

इति–इति, समाप्ति।

तुष्टि कुरु कुरु–तुष्टि कर, तुष्टि कर।

पुष्टि कुरु कुरु–पुष्टि कर पुष्टि कर।

स्वस्ति च कुरु कुरु–और क्षेम कर क्षेम कर।

त्वं–तू।

अर्थ-सङ्कलना—

और तू जलभयसे, अग्निभयसे, विषभयसे, सर्पभयसे, दुष्ट-ग्रहोंके भयसे, राजभयसे, रोगभयसे, रणभयसे, राक्षसोंके उपद्रवसे, शत्रुसमूहके उपद्रवसे महामारीके उपद्रवसे, चोरके उपद्रवसे, ईति-संज्ञक उपद्रवसे, शिकारी (हिंस्र) पशुओंके उपद्रवसे और भूत, पिशाच तथा शाकिनियोंके उपद्रवसे रक्षण कर ! रक्षण कर ! उप-द्रव-रहित कर, उपद्रव-रहित कर; शान्ति कर; शान्ति कर; तुष्टि कर, तुष्टि कर; पुष्टि कर, पुष्टि कर; क्षेम कर, क्षेम कर ॥ १२-१३ ॥

मूल—

भगवति ! गुणवति ! शिव-शान्ति-तुष्टि-
पुष्टि-स्वस्तीह कुरु कुरु जनानाम् ।
ओमिति नमो नमो हाँ ह्रीँ ह्रूँ हः—
यः क्षः ह्रीँ फट् फट् स्वाहा ॥१४॥

शब्दार्थ—

भगवति !–हे भगवती !

गुणवति !–हे गुणवती !
गुण–सत्त्व, रजस् और तमस्।

शिव-शान्ति - तुष्टि - पुष्टि-स्वस्ति इह कुरु कुरु–आप यहाँ निरुपद्रवता, शान्ति, तुष्टि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्टि और क्षेम करो, क्षेम करो।

जनानाम्–मनुष्योंके लिये।

ॐ नमो नमो ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीँ फट् फट् स्वाहा यह एक प्रकारका षोडशी (देवी) मन्त्र है।

अर्थ–सङ्कलना—

हे भगवती ! हे गुणवती ! आप यहाँ मनुष्योंके लिये निरुपद्रवता, शान्ति, तुष्टि, और क्षेम करो, क्षेम करो, 'ॐ नमो नमो, ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीँ फट् फट् स्वाहा' ॥१४॥

मूल—

एवं यन्नामाक्षर–पुरस्सरं संस्तुता जयादेवी।
कुरुते शान्तिं नमतां, नमो नमः शान्तये तस्मै ॥१५॥

शब्दार्थ—

एवं–ऊपर कहे अनुसार

यन्नामाक्षर–पुरस्सरं–जिनके नाम–मन्त्र और अक्षर–मन्त्रों–की पुरश्चर्या-पूर्वक।

संस्तुता–अच्छी तरह, स्तुति की हुई।

जयादेवी–जयादेवी।

कुरुते शान्तिं–शान्ति करती है।

नमतां–नमन करनेवालोंको।

नमो नमः–नमस्कार हो, नमस्कार हो।

शान्तये तस्मै–उन श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को।

अर्थ–सङ्कलना—

ऊपर कहे अनुसार जिनके नाम–मन्त्र और अक्षर–मन्त्रोंकी पुरश्चर्या–पूर्वक अच्छी तरह स्तुति की हुई (विजया–) जयादेवी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमन करनेवालोंको शान्ति करती है, उन श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥ १५ ॥

मूल—

(फलश्रुति)

इति पूर्वसूरि–दर्शित–मन्त्रपद–विदर्भितः स्तवः शान्तेः ।
सलिलादि–भय–विनाशी, शान्त्यादिकरश्च भक्तिमताम् ।१६।

शब्दार्थ—

इति–अन्तमें ।

पूर्वसूरि – दर्शित – मन्त्रपद – विदर्भितः–पूर्वसूरियोंद्वारा गुर्वाम्नाय–पूर्वक प्रगट किये हुए मन्त्रपदोंसे गूँथा हुआ ।

स्तवः शान्तेः–शान्ति–स्तव ।

सलिलादि – भय – विनाशी–जलादिके भयसे मुक्त करनेवाला ।

शान्त्यादिकरः–उपद्रवोंकी शान्ति–पूर्वक तुष्टि और पुष्टिको भी करनेवाला ।

च–और ।

भक्तिमताम्–भक्ति करनेवालोंको, विधि–पूर्वक अनुष्ठान करनेवालोंको ।

अर्थ–सङ्कलना—

अन्त में यही कहना है कि यह शान्ति–स्तव पूर्वसूरियोंद्वारा गुर्वाम्नायपूर्वक प्रकट किये हुए मन्त्रपदोंसे गूँथा हुआ है और यह विधि–पूर्वक अनुष्ठान करनेवालोंको जलादिके भयसे मुक्त करनेवाला तथा उपद्रवोंकी शान्ति–पूर्वक तुष्टि और पुष्टिको भी करनेवाला है ॥१६॥

मूल—

यश्चैनं पठति सदा, शृणोति भावयति वा यथायोगम् ।
स हि शान्तिपदं यायात्, सूरिः श्रीमानदेवश्च ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

यः–जो ।

च–और ।

एनं–इस स्तवको ।

पठति–पढ़ता है ।

सदा–निरन्तर, सदा ।

शृणोति–दूसरेके पापसे सुनता है ।

भावयति वा यथायोगम्–अथवा मन्त्रयोगके नियमानुसार उसकी भावना करता है ।

स– वह ।

हि–निश्चय ।

शान्तिपदं–सिद्धि पदको, शान्ति पदको ।

यायात्–प्राप्त करे ।

सूरिः श्रीमानदेवः च–श्रीमानदेवसूरि भी ।

अर्थ–सङ्कलना—

और जो इस स्तवको सदा भावपूर्वक पढ़ता है, दूसरेके पाससे सुनता है, तथा मन्त्रयोगके नियमानुसार इसकी भावना करता है, वह निश्चय ही शान्तिपदको प्राप्त करता है । सूरि श्रीमानदेव भी शान्तिपदको प्राप्त करें ।।१७।।

मूल—

(अन्त्यमङ्गल)

[श्लोक]

[उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न–वल्लयः ।

मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।१८।।

शब्दार्थ—

उपसर्गाः–उपसर्ग, आपत्तियां ।

क्षयं यान्ति–नष्ट होते हैं ।

छिद्यन्ते–कट जाती हैं ।

विघ्न वल्लयः–विघ्नरूपी लताएँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनः–मन ।
प्रसन्नताम् एति–प्रसन्नताको प्राप्त होता है ।
पूज्यमाने जिनेश्वरे–जिनेश्वर देवका पूजन करनेसे ।

अर्थ–सङ्कलना—

[श्रीजिनेश्वर देवका पूजन करनेसे समस्त प्रकारके उपसर्ग नष्ट होते हैं, विघ्नरूपी लताएँ कट जाती हैं और मन प्रसन्नताको प्राप्त होता है ॥१८॥

मूल—

सर्व मङ्गल–माङ्गल्यं, सर्व–कल्याणकारणम् ।
प्रधानं सर्व–धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥१९॥]

शब्दार्थ—

सर्व-मङ्गल-माङ्गल्यं०–अर्थ पूर्ववत्०

अर्थ–सङ्कलना—

सर्व मङ्गलोंमें मङ्गलरूप, सर्व कल्याणोंका कारण रूप और सर्व धर्मोंमें श्रेष्ठ ऐसा जैनशासन (प्रवचन) सदा जयवाला है ॥१९॥]

सूत्र–परिचय—

वीर-निर्वाणकी सातवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें शाकम्भरी नगरीमें किसी कारणसे कुपित हुई शाकिनीने महामारीका उपद्रव फैलाया । यह उपद्रव इतना भारी था कि इसमें ओषध और वैद्य कुछ भी काम नहीं आ सकते थे । इसलिये प्रतिक्षण मनुष्य मरने लगे और सारी नगरी श्मशान जैसी भयङ्कर दिखने लगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस परिस्थितिमें कुछ सुरक्षित रहे हुए श्रावक जिनचैत्यमें एकत्रित होकर विचार करने लगे, तब आकाशसे आवाज़ हुई कि 'तुम चिन्ता क्यों करते हो ? नाडूल नगरीमें श्रीमानदेवसूरि विराजते हैं, उनके चरणोंके प्रक्षालित जलसे अपने घरों पर छिड़काव करो, जिससे सम्पूर्ण उपद्रव शान्त हो जायगा ।

इस वचनसे आश्वासन पाये हुए संघने वीरदत्त नामके एक श्रावक-को विज्ञप्ति–पत्र देकर नाडूल नगरमें विराजित (नाडोल–मारवाडमें) श्रीमानदेवसूरिके पास भेजा ।

सूरिजी तपस्वी, ब्रह्मचारी और मन्त्रसिद्ध महापुरुष थे तथा लोको-पकार करनेकी परम निष्ठावाले थे, इससे उन्होंने शान्ति–स्तव नामका एक मन्त्रयुक्त चमत्कारिक स्तोत्र बनाकर दिया और चरणोदक भी दिया। यह शान्ति-स्तव लेकर वीरदत्त शाकम्भरी नगरीमें आया। वहाँ उनके चरणजलको (शान्ति-स्तवसे मन्त्रित) अन्य जलके साथ मन्त्रित कर छिड़-काव करनेसे तथा शान्ति–स्तवका पाठ करनेसे महामारीका उपद्रव शान्त हो गया, तबसे यह स्तव सब प्रकारके उपद्रवोंके निवारणार्थ बोला जाता है। प्रतिक्रमणमें यह कालान्तरमें प्रविष्ट हुआ है ।

शान्ति स्तव

प्रश्न—शान्ति–स्तवकी रचना किसने की है ?

उत्तर—शान्ति–स्तवकी रचना वीरनिर्वाणकी सातवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें हुए श्रीमानदेवसूरिने की है ।

प्रश्न—उन्होंने इस स्तवकी रचना किसलिये की ?

उत्तर—उन्होंने इस स्तवकी रचना शाकम्भरी नगरीमें शाकिनीद्वारा किये हुए महामारीके उपद्रवका शमन करनेके लिए की थी, परन्तु इसमें विशेषता यह रखी कि इसका विधिवत् पाठ करनेसे अनेक प्रकारके भय दूर हों और उपद्रव शान्त हों ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—शान्तिस्तवका पाठ करनेसे कौनसे भय दूर होते हैं ?

उत्तर—शान्ति–स्तवका पाठ करनेसे नीचे लिखे भय दूर होते हैं :—

(१) जलका भय (अतिवृष्टि बाढ़ आदि) ।

(२) अग्निका भय ।

(३) विषका भय ।

(४) सर्पका भय ।

(५) दुष्टग्रहका भय ।

(६) राजका भय ।

(७) रोगका भय ।

(८) युद्धका भय, (लड़ाई-झगड़ा, आक्रमण आदिका भय) ।

प्रश्न—शान्ति–स्तवका पाठ करनेसे कौनसे उपद्रव शान्त होते हैं ।

उत्तर—शान्ति–स्तवका पाठ करनेसे नीचे लिखे उपद्रव शान्त होते हैं :—

(१) राक्षसका उपद्रव ।

(२) शत्रुसमूहका उपद्रव ।

(३) महामारी (प्लेग) का उपद्रव ।

(४) चोरका उपद्रव ।

(५) ईतिसंज्ञक–उपद्रव, (१) अतिवृष्टि होना, (२) बिलकुल वृष्टि न होना, (३) चूहोंकी वृद्धि होना, (४) पतंगे आदिका आधिक्य होना, (५) शुकोंकी बहुलता, (६) अपने राज्य-मण्डलमें आक्रमण होना और (७) शत्रु-सैन्यकी चढ़ाई, ये सात ईतिसंज्ञक उपद्रव हैं ।)

(६) हिंसक (शिकारी) पशुओंका उपद्रव ।

(७) भूत-पिशाचका उपद्रव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८) शाकिनी–डाकिनियोंका उपद्रव ।

प्रश्न—शान्ति-स्तवमें किसकी स्तुति की गयी है ?

उत्तर—शान्ति-स्तवमें श्रीशान्तिनाथ भगवान् तथा विजया–जयादेवीकी स्तुति की गयी है ।

प्रश्न—शान्ति-स्तवमें श्रीशान्तिनाथ भगवान्की स्तुति किस प्रकार की गयी है ।

उत्तर—शान्ति-स्तवमें प्रथम श्रीशान्तिनाथ भगवान्के सामान्य गुणोंकी स्तुति की गयी है, जैसे कि:–वे शान्तिके गृहसमान हैं, प्रशमरसमें निमग्न हैं, अशिवका नाश करनेवाले हैं, आदि । तदनन्तर पाँच गाथाओंसे नाम–मन्त्र–स्तुति की गयी है ।

प्रश्न—नाम–मन्त्र स्तुतिमें क्या आता है ?

उत्तर—नाम–मन्त्र स्तुतिमें सोलह नाम–मन्त्र आते हैं; जो इस प्रकार हैं:–

(१) ॐ **निश्चितवचसे** शान्तिनाथाय नमो नमः ॥

(२) ॐ **भगवते** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(३) ॐ **अर्हते** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(४) ॐ **जयवते** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(५) ॐ **यशस्विने** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(६) ॐ **दमिनां स्वामिने** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(७) ॐ **सकलातिशेषक–महासम्पत्ति-समन्विताय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(८) ॐ **शस्याय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(९) ॐ **शान्तिदेवाय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(१०) ॐ **त्रैलोक्यपूजिताय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) ॐ **सर्वामरसुसमूह–स्वामिक–सम्पूजिताय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(१२) ॐ **निजिताय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(१३) ॐ **भुवनजनपालनोद्यततमाय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(१४) ॐ **सर्वदुरितौघनाशनकराय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(१५) ॐ **सर्वाशिवप्रशमनाय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

(१६) ॐ **दुष्टग्रह–भूत–पिशाच-शाकिनी–प्रमथनाय** शान्तिजिनाय नमो नमः ॥

प्रश्न—इन नाम–मन्त्रोंसे क्या होता है ?

उत्तर—इन नाम–मन्त्रोंवाले वाक्य–प्रयोगोंसे विजया–जयादेवी तुष्ट होकर ऋद्धि–सिद्धि प्रदान करती हुई लोक–हित करती है ।

प्रश्न—शान्ति–स्तवमें विजया–जया देवीकी स्तुति किस प्रकारकी गई है ?

उत्तर—शान्ति–स्तवमें प्रथम विजया–जया–देवीकी नामस्तुति की गई है और फिर मन्त्रस्तुति की गई है ।

प्रश्न—विजया–जया देवीकी नामस्तुतिमें क्या आता है ?

उत्तर—विजया–जया देवीकी नामस्तुतिमें चौबीस नामोंके सम्बोधनपूर्वक भय और उपद्रवसे रक्षण करनेकी और शान्ति, तुष्टि, पुष्टि और स्वस्ति देनेकी प्रार्थना की जाती है ।

प्रश्न—वह किस प्रकार ?

उत्तर—सातवीं गाथामें भगवती[१], विजया[२], सुजया[३], अजिता[४], अपराजिता[५], जयावहा[६] और भवती[७] ये सात नाम आते हैं । आठवीं गाथामें 'भद्र–कल्याण–मङ्गल–प्रददे !' इस वाक्यसे भद्रा[८], कल्याणी[९] और मङ्गला[१०] का सूचन होता है एवं ' शिव–सुतुष्टि–पुष्टिप्रदे ! ' से शिवा[११], तुष्टिदा[१२] और पुष्टिदा[१३] का सूचन होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौवीं गाथामें ' भव्यानां कृतसिद्धे ! ' पदसे सिद्धिदायिनीका[१४] ' निर्वृति–निर्वाणिजननि ! ' इस पदसे निर्वृति[१५] और निर्वाणी[१६] नामका और ' अभय–प्रदान–निरते ! ' तथा ' स्वस्तिप्रदे !' पदसे अभया[१७] और क्षेमङ्करी[१८]का सूचन होता है। दसवीं गाथामें ' शुभावहे !' पदसे शुभङ्करीका[१९] तथा ' धृति–रति–मति–बुद्धि–प्रदानाय ' पदसे सरस्वतीका[२०] सूचन होता है। इसी प्रकार ग्यारहवीं गाथामें श्री–सम्पत्–कीर्ति–यशो–वर्धिनी।' पदसे श्रीदेवता[२१], रमा[२२], (सम्पत्ति बढ़ानेवाली), कीर्तिदा[२३] और यशोदा[२४] का सूचन होता है। इस प्रकार सातवीं गाथासे लेकर ग्यारहवीं गाथा तक चौबीस नाम गुँथे हुए हैं और बारहवीं तथा तेरहवीं गाथामें सलिलादि–भयोंसे एवं राक्षसादि उपद्रवोंसे रक्षण करनेकी तथा शान्ति, तुष्टि, पुष्टि और स्वस्ति देनेकी प्रार्थना की गई है।

प्रश्न—विजया–जया देवीकी मन्त्रस्तुतिमें क्या आता है ?

उत्तर—विजया–जया देवीकी मन्त्रस्तुतिमें 'ॐ नमो नमो ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीँ फट् फट् स्वाहा ' इन मन्त्राक्षर–पूर्वक शिव, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि और स्वस्ति करनेकी प्रार्थना की जाती है। सारांश यह है कि इन दोनों प्रकारकी स्तुतिद्वारा उपद्रवोंका निवारण तथा शान्ति, तुष्टि, पुष्टि और क्षेम प्राप्तिकी इच्छा की गयी है और मन्त्रसे प्रसन्न हुई देवी भक्तोंको यथाभिलषित लाभ देती है।

प्रश्न—शान्ति–स्तवकी गाथाएँ कितनी हैं ?

उत्तर—सत्रह। अन्तकी दो गाथाएँ सुभाषितके रूपमें बोली जाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३ पासनाह–जिण–थुई

['चउक्कसाय'–सूत्र]

मूल—

[पादाकुलक]

चउक्कसाय–पडिमल्लुल्लूरणु,
दुज्जय–मयण–बाण–मुसुमूरणु ।
सरस–पियंगु–वण्णु गय–गामिउ,
जयउ पासु भुवणत्तय–सामिउ ॥१॥

[अडिल्ल]

जसु–तणु–कंति–कडप्प सिणिद्धउ,
सोहइ फणि–मणि–किरणालिद्धउ ।
नं नव–जलहर तडिल्लय–लंछिउ,
सो जिणु पासु पयच्छउ वंछिउ ॥२॥

शब्दार्थ—

चउक्कसाय– पडियल्लुल्लूरणु
–चार कषायरूपी शत्रु योद्धाओंका नाश करनेवाले ।

चउक्कसाय–क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय । पडिमल्ल–सामने लड़नेवाला योद्धा । उल्लुल्लूरण–नाश करनेवाला ।

दुज्जय–मयण-बाण–मुसुमूरणु–
कठिनाईसे जीते जायँ ऐसे कामदेवके बाणोंको तोड़ देनेवाले ।

दुज्जय–कठिनाईसे जीता जाने वाला । मयण–बाण–कामदेवके बाण । मुसुमूरणु–तोड़ देनेवाला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरस – पियंगु – वण्णु – नवीन (ताजा) प्रियङ्गुलता जैसे वर्णवाले।

सरस–ताजा, नवीन। पियंगु–एक प्रकारकी वनस्पति, प्रियङ्गु। वण्णु–वर्ण, रंग।

गय–गामिउ–हाथीके समान गतिवाले।

जयउ–जयको प्राप्त हों!

पासु–पार्श्वनाथ।

भुवणत्तय–सामिउ–तीनों भुवनके स्वामी।

जसु–जिनके।

तणु–कंति–कडप्प – शरीरका तेजोमण्डल।

सिणिद्धउ–स्निग्ध, देदीप्यमान।

सोहइ – शोभित होता है।

फणि – मणि – किरणालिद्धउ – नागमणिके किरणोंसे युक्त। फणि–नाग। मणि–मस्तकपर स्थित मणि।

नं–मानो।

नव–जलहर–नवीन मेघ।

नव–नवीन। जलहर-मेघ, बादल।

तडिल्लय–लंछिउ–बिजलीसे युक्त

तडिल्लय–बिजली। लंछिउ–युक्त, सहित।

सो–वह, वे।

जिणु–जिन।

पासु–श्रीपार्श्वनाथ।

पयच्छउ–प्रदान करें।

वंछिउ–वाञ्छित, मनोवाञ्छित।

अर्थ–सङ्कलना—

चार कषायरूपी शत्रु—योद्धाओंका नाश करनेवाले, कठिनाईसे जीते जाने वाले ऐसे कामदेवके बाणोंको तोड़देनेवाले, नवीन प्रियंगुलताके समान वर्णवाले, हाथीके समान गतिवाले, तीनों भुवनके स्वामी श्रीपार्श्वनाथ जयको प्राप्त हों ॥१॥

जिनके शरीरका तेजोमण्डल देदीप्यमान है, जो नागमणिकी किरणोंसे युक्त और जो मानो बिजलीसे युक्त नवीन मेघ हों, ऐसे शोभित हैं वे श्रीपार्श्वजिन मनोवाञ्छित फल प्रदान करें ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌की स्तुति की गयी है। अतः यह 'पासनाह-जिण-थुई' कहलाती है। पहले शब्दसे इसको 'चउक्कसाय'-सूत्र भी कहते हैं।

एक अहोरात्रमें साधु और श्रावकको सात चैत्यवन्दन करने होते हैं, उनमें साधु सातवाँ चैत्यवन्दन 'संथारा-पोरिसी' पढ़ते समय करते हैं और श्रावक सोते समय सातवां चैत्यवन्दन करना भूल न जायँ, इसलिये देवसिय-पडिक्कमणके अन्तमें सामायिक पारते समय 'लोगस्स' सूत्र कहनेके पश्चात् करते हैं, तब इस सूत्रका उपयोग होता है।

---

४४ भरहेसर-सज्झाओ

['भरहेसर-बाहुबली'-सज्झाय]

मूल—

[गाहा]

भरहेसर बाहुबली, अभयकुमारो अ ढंढणकुमारो।
सिरिओ अणिआउत्तो, अइमुत्तो नागदत्तो अ ॥१॥
मेअज्ज थूलभद्दो, वयररिसी नंदिसेण सीहगिरी।
कयवन्नो अ सुकोसल, पुंडरिओ केसि करकंडू ॥२॥
हल्ल विहल्ल सुदंसण, साल महासाल सालिभद्दो अ।
भद्दो दसण्णभद्दो, पसण्णचंदो अ जसभद्दो ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंबुपहु वंकचूलो, गयसुकुमालो अवंतिसुकुमालो ।
धन्नो इलाइपुत्तो, चिलाइपुत्तो अ बाहुमुणी ॥४॥

अज्जगिरी अज्जरक्खिअ, अज्जसुहत्थी उदायगो मणगो ।
कालयसूरी संबो, पज्जुण्णो मूलदेवो अ ॥५॥

पभवो विण्हुकुमारो अद्दकुमारो दढप्पहारी अ ।
सिज्जंस कूरगडू अ, सिज्जंभव मेहकुमारो अ ॥६॥

एमाइ महासत्ता, दिंतु सुह गुण–गणेहिं संजुत्ता ।
जेसिं नाम–ग्गहणे, पाव–पबंधा विलय जंति ॥७॥

सुलसा चंदणबाला, मणोरमा मयणरेहा दमयंती ।
नमयासुंदरी सीया, नंदा भद्दा सुभद्दा य ॥८॥

राइमई रिसिदत्ता, पउमावई अंजणा सिरीदेवी ।
जिट्ठ सुजिट्ठ मिगावइ, पभावई चिल्लणादेवी॥९॥

बंभी सुंदरी रुप्पिणी, रेवइ कुंती सिवा जयंती अ ।
देवइ दोवइ धारणी, कलावई पुप्फचूला य ॥१०॥

पउमावई अ गोरी, गंधारी लक्खमणा सुसीमा य ।
जंबूवई सच्चभामा, रुप्पिणी कण्हट्ठ महिसीओ ॥११॥

जक्खा य जक्खदिन्ना, भूआ तह चेव भूअदिन्ना अ ।
सेणा वेणा रेणा, भइणीओ थूलभद्दस्स ॥१२॥

इच्चाइ महासइओ, जयंति अकलंक-सील-कलिआओ ।
अज्ज वि वज्जइ जासिं, जस–पडहो तिहुअणे सयले॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

सरल है ।

अर्थ–सङ्कलना—

भरतेश्वर, बाहुबली, अभयकुमार, ढंढणकुमार, श्रेयक, अर्णिकापुत्र, अतिमुक्त और नागदत्त ।।१।।

मेतार्यमुनि, स्थूलभद्र, वज्रऋषि, नंदिषेण, सिंहगिरि, कृतपुण्य, सुकोशलमुनि, पुण्डरीक, केशी और करकण्डू (प्रत्येक बुद्ध) ।।२।।

हल्ल, विहल्ल, सुदर्शन सेठ, शाल और महाशाल मुनि, शालिभद्र, भद्रबाहु स्वामी, दशार्णभद्र, प्रसन्नचन्द्र राजर्षि और यशोभद्रसूरि ।।३।।

जम्बूस्वामी, वङ्कचूल राजकुमार, गजसुकुमाल, अवन्तिसुकुमाल, धन्नो (न्य), इलाचीपुत्र, चिलातीपुत्र और बाहुमुनि ।।४।।

आर्यमहागिरि, आर्यरक्षित, आर्य सुहस्तिसूरि, उदायन राजर्षि, मनककुमार और मूलदेव (राजा) ।।५।।

प्रभवस्वामी, विष्णुकुमार, आर्द्रकुमार, दृढप्रहारी, श्रेयांस, कूरगडू साधु, शय्यम्भव–स्वामी और मेघकुमार ।।६।।

इत्यादि जो महापुरुष अनेक गुणोंसे युक्त हैं और जिनका नाम लेनेसे पापके दृढबन्ध नष्ट हो जाते हैं, वे सुख प्रदान करें ।।७।।

सुलसा, चन्दनबाला, मनोरमा, मदनरेखा, दमयन्ती, नर्मदासुन्दरी, सीता, नन्दा, भद्रा और सुभद्रा ।।८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजिमती, ऋषिदत्ता, पद्मावती, अञ्जनासुन्दरी, श्रीदेवी, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा, मृगावती, प्रभावती और चेल्लणा रानी ॥९॥

ब्राह्मी, सुन्दरी, रुक्मिणी, रेवती, कुन्ती, शिवा, जयन्ती, देवकी, द्रौपदी, धारणी, कलावती और पुष्पचूला ॥१०॥

तथा पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जम्बूवती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठ कृष्णकी पटरानियाँ ॥११॥

यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेना, वेना, और रेणा ये सात स्थूलभद्र बहिनें ॥१२॥

इत्यादि निष्कलङ्क शीलको धारण करनेवाली महासतियाँ जयको प्राप्त होती हैं कि जिनके यशका पटह आज भी समग्र त्रिभुवनमें बज रहा है ॥१३॥

सूत्र-परिचय—

प्रातःस्मरणीम महापुरुष और महासतियों का स्मरण करने के लिये यह सज्झाय प्रातःकालमें राइय-पडिक्कमण करते समय बोली जाती है। इसमें बताये हुए महापुरुषों तथा महासतियोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

महापुरुष

१ भरत :—श्रीऋषभदेव भगवान्के सबसे बड़े पुत्र और प्रथम चक्रवर्ती। ये एक समय आरीसा-भुवनमें अपने अलङ्कृत शरीरको देखते थे, इतनेमें एक उँगलीमेंसे अँगूठी निकल गयी, इसलिये वह शोभारहित लगी। यह देखकर अन्य अलङ्कार भी उतारे, तो सारा शरीर शोभारहित लगने लगा। इससे 'अनित्यं संसारे भवति सकलं यन्नयनगम्' संसारमें जो वस्तुएँ आँखोंसे देखी जाती हैं, वे सब नश्वर हैं,' ऐसी अनित्य-भावना होने लगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तब इन्द्रमहाराजने आकर कहा कि–'आप द्रव्यलिङ्ग धारण करिये, हम दीक्षाका महोत्सव करते हैं।' इन्होंने पञ्च-मुष्टि–लोच किया और देवताओंसे दिये गये रजोहरण–पात्र आदि ग्रहण किये। अन्तमें अष्टापद पर्वतपर निर्वाणको प्राप्त हुए।

२ बाहुबली :—भरत चक्रवर्तीके छोटे भाई। भगवान् ऋषभदेवने उनको तक्षशिलाका राज्य दिया था। उनका बाहुबल असाधारण था, इस कारण चक्रवर्ती की आज्ञा नहीं मानते थे। इससे भरत चक्रवर्तीने उनपर चढ़ाई की और दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, बाहुयुद्ध और दण्डयुद्ध किया, जिसमें वे हार गये। अन्तमें भरतने मुष्टिप्रहार किया, उससे बाहुबली कटि (कमर) तक ज़मीनमें घुस गये। उसका प्रत्युत्तर देनेके लिये बाहुबलीने भी मुट्ठी उठायी। यदि यह मुट्ठी भरतपर पड़ी होती तो उनका प्राण निकल जाता; परन्तु इसी समय बाहुबलीकी विचारधारा पलट गयी कि नश्वर राज्यके लिये बड़े भाईकी हत्या करनी उचित नहीं, इससे मुट्ठी वापस नहीं उतारते हुए उससे मस्तकके केशोंका लोच किया और भगवान् ऋषभदेवके पास जानेको तत्पर हुए, किन्तु उसी समय विचार आया कि मुझसे छोटे अठानवे भाई दीक्षा लेकर केवलज्ञानको प्राप्त हुए, वे वहाँ उपस्थित हैं उनको मुझे वन्दन करना पड़ेगा; अतः मैं भी केवलज्ञान प्राप्त करके ही वहाँ जाऊँ। इस विचारसे वहीं कायोत्सर्गमें स्थिर रहे। एक वर्षतक उग्रतप करनेपर भी उनको केवलज्ञान नहीं हुआ, तब प्रभुने उनको प्रतिबोध देनेके लिये ब्राह्मी और सुंदरी नामकी साध्वियोंको भेजा, जो कि संसारी अवस्थामें उनकी बहिनें थीं। उनने आकर कहा 'हे भाई! हाथीकी पीठसे उतरो, हाथीपर चढ़े हुए केवलज्ञान नहीं होता है–वीरा मोरा गज थकी उतरो, गज चढ्ये केवल न होय रे!' यह सुनकर बाहुबली चौंक पड़े। यह बात अभिमानरूपी हाथीको थी। अन्तमें भावना शुद्ध होनेसे उन्हें वहीं केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर वे श्रीऋषभदेव भगवान्के पास गये और उनको वन्दन करके केवलियोंकी परिषद्में विराजित हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ अभयकुमार :—ये श्रेणिक राजाके पुत्र थे। इनकी माताका नाम सुनन्दा था। बाल्यावस्थामें ही खाली कुएँमें गिरी हुई अँगूठीको अपने बुद्धि-चमत्कारसे ऊपर ले आये, जिससे प्रसन्न होकर श्रेणिक राजाने इनको मुख्य-मन्त्री बनाया। ये औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी–इन चारों बुद्धियोंके स्वामी थे। पिताके कार्यमें इन्होंने बहुत सहायता की थी। अन्तमें प्रभु महावीरसे दीक्षा ले, उत्कृष्ट तपकर मोक्ष प्राप्त किया। आज भी व्यापारीवर्ग शारदा–पूजनके समय अपनी बहीमें 'अभयकुमारकी वृद्धि हो' यह वाक्य लिखकर इनका स्मरण करता है।

४ ढंढणकुमार :—ये श्रीकृष्ण वासुदेवकी ढंढणा नामक रानीके पुत्र थे। इन्होंने बाईसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथसे दीक्षा ग्रहण की थी, परन्तु पूर्व–कर्मके उदयसे शुद्धभिक्षा नहीं मिलती थी, इसलिये अभिग्रह किया कि 'स्वलब्धिसे भिक्षा मिले तब ही लेनी।' एक समय भिक्षाके लिये ये द्वारिकामें फिरते थे, उस समय श्रीकृष्णने वाहन (रथ)से नीचे उतरकर भक्तिभावसे बन्दन किया। यह देखकर किसी श्रेष्ठिने उनको उत्तम मोदक वहोराये (भिक्षामें दिये); परन्तु 'यह आहार स्वलब्धिसे नहीं मिला,' ऐसा प्रभुके मुखसे जानकर, उसको कुम्हारकी शालामें परठवनेके हेतु चले। उस समय उत्तम भावना करनेसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

५ श्रीयक :—ये शकडाल मन्त्रीके पुत्र और स्थूलभद्रके छोटे भाई थे। पिताकी मृत्युके अनन्तर नन्दराजाका मन्त्रीपद इनको प्राप्त हुआ था। धर्मपर अतीव अनुराग होनेसे लगभग सौ जिनमन्दिर और करीब तीनसौ धर्मशालाएँ बनवाई थीं तथा अन्य भी धर्मके अनेक कार्य किये थे। अन्तमें इन्होंने दीक्षा ग्रहण की और पर्युषण–पर्वमें उपवासका आराधन करते हुए कालधर्मको प्राप्त हुए।

६ अर्णिका–पुत्र आचार्य :—उत्तर मथुरामें देवदत्त नामका एक वैश्य रहता था। वह धन कमानेके लिये दक्षिण–मथुरामें आया और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ अर्णिकाके साथ उसके लग्न हुए। वहाँसे वापस उत्तर–मथुरामें जा समय अर्णिकाने मार्गमें पुत्रको जन्म दिया और उसका नाम सन्धीरण रखा, परन्तु जनतामें वे अर्णिकापुत्र के नामसे प्रसिद्ध हुए। योग्य आयुमें जयसिंह आचार्यसे दीक्षा ग्रहणकर क्रमानुसार वे आचार्य हुए। कुछ समय पश्चात् पुष्पचूल राजा की रानी–पूष्पचूलाने इनसे प्रतिबोध प्राप्तकर दीक्षा ली। एक समय दुष्काल पड़नेसे अन्य मुनिगण तो देशान्तर चले गये, किन्तु अर्णिका–पुत्र आचार्य वृद्ध होनेके कारण पुष्पचूल राजाके आग्रहसे वहीं रहे। पुष्पचूला उनकी वैय्यावृत्य करती थी, ऐसा करते-करते उसको केवलज्ञान हुआ। इस बातका आचार्यको समाचार मिला, तब उन्होंने केवली पुष्पचूलासे क्षमा माँगी और अपना मोक्ष कब होगा, यह प्रश्न पूछा? इसका उत्तर मिला कि 'गङ्गा नदी पार उतरते समय तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा।' थोड़े समयके बाद जब वे अन्य मनुष्योंके साथ नौकामें बैठ कर गङ्गा नदी पार कर रहे थे तब जिस ओर आचार्य थे, उसी ओरसे नौका भारी होने लगी। इससे लोगोंने उनको उठा कर नदीमें फेंक दिया, परन्तु समभावमें स्थिर रहनेसे उसी समय उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इन आचार्यका शरीर तिरता हुआ नदीके किनारे आ गया। उस स्थान पर कुछ समयके अनन्तर पाटल नामक पौधा लग गया कि जहाँ कालान्तरमें पाटलिपुत्र नामका सुन्दर नगर बसा।

७ अतिमुक्त मुनि :—पेढालपुर नगरमें विजय नामका राजा राज्य करता था। उसके श्रीमती नामकी रानी थी। उसको एक पुत्र हुआ। उसका नाम अतिमुक्त रखा। इस कुमारने आठ वर्षकी अवस्थामें मातापिताकी अनुमति लेकर श्रीगौतमस्वामीसे दीक्षा ली थी। ये एक समय प्रातःकालमें कुछ समयसे पूर्व गोचरी करनेके लिये निकले और एक सेठके यहाँ गये, तब सेठकी पुत्रवधूने कहा कि 'अभी कैसे? क्या बिलम्ब हो गया क्या?' शब्द द्व्यर्थक थे। गोचरी और दीक्षा दोनोंको लागू पड़ते थे। मुनि उनका मर्म समझ कर बोले कि 'मैं जो जानता हूँ, वह नहीं जानता।' यह सुनकर चतुर पुत्रवधू विचारमे पड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गयी। अन्तमें मुनिने उसका मर्म समझाया कि मरण निश्चित है, यह बात मैं जानता हूँ, किन्तु कब होगा, यह मैं नहीं जानता। एक समय वर्षा होनेके पश्चात् अन्य बालकोंके साथ ये बालमुनि भी पत्तोंकी नाव बना कर पानीमें तिराने लगे। उस समय श्रीगौतमस्वामी उधरसे निकले, उन्हें उनके मुनिधर्मका ध्यान आया और सहसा ये लज्जित हो गये। फिर श्रीमहावीर प्रभुके पास जाकर 'ईरियावहिया' आलोचन करते हुए 'दगमट्टी दगमट्टी' ऐसा शब्दोच्चार करने लगे तब पृथ्वीकाय तथा अप्-कायके जीवोंसे क्षमा माँगते हुए पापका अत्यन्त पश्चात्ताप होनेसे भावनाकी परम विशुद्धि हुई और केवलज्ञानी हुए।

८ नागदत्त (१) :—वाराणसी नगरीमें यज्ञदत्त नामका एक सेठ रहता था, उसकी धनश्री नामकी स्त्री थी। उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम नागदत्त रखा गया। उसका विवाह नागवसु नामकी कन्याके साथ हुआ। एक समय नगरका राजा अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ जा रहा था, तब उसके कानमेंसे एक कुण्डल नीचे गिर गया। उसी मार्ग से होकर नागदत्त निकला, परन्तु उसको दूसरेकी वस्तु नहीं लेने की प्रतिज्ञा थी, इससे वह कुण्डलपर दृष्टि डाले बिना चला गया और उपाश्रयमें जाकर कायोत्सर्गमें स्थिर रहा। इसी समय नगरका कोटवाल (कोतवाल) जो इनकी पत्नी-को चाहता था, वहाँसे निकला और उसने वह कुण्डल नागदत्त के पास जाकर रख दिया।

राजाने देखा तो कुण्डल मिला नहीं। फिर कोतवालने ढूँढ़नेका बहाना करके कहा कि 'महाराज ! आपका कुण्डल नागदत्तके पाससे मिल गया है' इसलिए उसको शूलीपर चढ़ाया गया, किन्तु सत्यके प्रभावसे शूलीका सिंहासन हो गया और शासनदेवीने प्रकट होकर कहा कि—'यह नागदत्त उत्तम पुरुष है, यह प्राण जानेपर भी दूसरेकी वस्तुका स्पर्श नहीं कर सकता। पहले धनदत्त सेठ ने इसकी एकसौ सोनेकी मोहरें रख ली थीं और अभी कोतवालने इस पर झूठा आरोप लगाया है।' यह सुनकर राजाने उन दोनोंको दण्ड दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तमें नागदत्तने दीक्षा अङ्गीकृत की और सर्व कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा मोक्षलक्ष्मी का स्वामी हुआ।

नागदत्त (२) : —लक्ष्मीपुर नगरमें दत्त नामका एक सेठ था। उसकी स्त्रीका नाम देवदत्ता था। उसके एक पुत्र हुआ। जिसका नाम नागदत्त रखा। वह नागकी क्रीडामें अत्यन्त निपुण था। एक समय उसको प्रतिबोध करानेके लिये उसका देवमित्र गारुडीका रूप लेकर उसके निकट आया और वे परस्पर एक दूसरेके सर्पोंको खिलाने लगे। तब गारुडीको तो कुछ भी नहीं हुआ, परन्तु नागदत्त गारुडीके सर्पोंके दंशसे मूर्च्छित हो गया; तब गारुडिकने उसको जिलाया और अपना पूर्वभव सुनाया कि हम दोनों पूर्वभवमें मित्रदेव थे। इससे नागदत्तको जाति स्मरण हुआ और उसने दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर क्रोध–मान–माया–लोभरूपी अन्तरङ्ग शत्रुओंको वशमें करके मुक्तिको प्राप्त हुए।

९. **मेतार्यमुनि** :—ये चाण्डालके यहाँ उत्पन्न हुए थे, किन्तु इनका लालन–पालन राजगृहीके एक श्रीमन्तके घर हुआ था। पूर्वजन्मके मित्रदेवकी सहायतासे अद्भुत कार्य सिद्ध करनेसे महाराजा श्रेणिकके जामाता बने थे। बारह वर्ष तक गृहस्थ–जीवन व्यतीत कर अट्ठाईस वर्षकी आयुमें दीक्षा ग्रहण की। एक समय किसी सुनारके यहाँ गोचरी लेनेको गये। वह सुनार सोनेके अलङ्कार–जव बना रहा था, उन्हें छोड़कर घर के अन्दर आहार लेने गया। इतनेमें क्रौञ्च पक्षी आकर वे जव चुग गया। सोनी बाहर आया और जव न देखकर मुनिके प्रति शङ्कित हो पूछने लगा कि 'महाराज! सुवर्णके जव कहाँ गये?' महात्मा मेतार्य मुनिने सोचा कि 'यदि मैं पक्षीका नाम लूँगा तो यह सुनार उसको अवश्य मार डालेगा' इसलिये मौन रहे। उन्हें मौन देखकर सुनारकी शङ्का पक्की हो गयी और उनको स्वीकृत करानेके विचारसे मस्तकपर गीले चमड़ेकी पट्टी खूब कसकर बाँधी तथा धूपमें खड़ा रखा। उस पट्टीके सङ्कुचित होनेसे तथा मस्तकपर रक्तका दबाव बढ़ जानेसे असह्यपीडा होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगी, परन्तु उसको कर्म–क्षयका उत्तम मार्ग मानकर वे कुछ भी नहीं बोले। अन्तमें उनके दोनों नेत्र बाहर निकल पड़े। इस असह्य वेदनाको समभावसे सहन करनेके कारण उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

१० **स्थूलभद्र** :—ये नन्दराजाके मन्त्री शकडालके ज्येष्ठ पुत्र थे और यौवनावस्थामें कोशा नामकी गणिकाके मोहमें फँस गये थे। कालान्तरमें वैराग्य प्राप्तकर आचार्य सम्भूतिविजयसे दीक्षा ग्रहण की। श्रीभद्रबाहु-स्वामीसे इन्होंने दशपूर्वका ज्ञान प्राप्त किया था। एक समय इनकी चिर-परिचिता कोशा वेश्याके यहाँ गुरुकी आज्ञासे चातुर्मास किया और सब प्रकारके प्रलोभनोंका सामना करके अपने संयम–नियममें सम्पूर्ण सफलता प्राप्त करनेके साथ ही इन्होंने कोशाको भी संयममें स्थिर रखा। गुरुने इनके कार्यको 'दुष्कर, दुष्कर, दुष्कर' कहा था।

११ **वज्रस्वामी** :—तुम्बवनमें इनका जन्म हुआ था। पिताका नाम धनगिरि और माताका नाम सुनन्दा था। इनके जन्म लेनेसे पूर्व ही पिता धनगिरिने दीक्षा ग्रहण की। एक बार वे भिक्षाके लिये अपने पहले-वाले घरपर आये, तब बालकके बहुत रोनेसे परेशान होकर माताने वह बालक मुनि (पिता)को बहोरा दिया। बालकका नाम गुरुने वज्र रखा। कुछ वर्षोंके अनन्तर माताने बालकको वापस लेनेके हेतु राजद्वारमें आवेदन किया; किन्तु राजाने बालककी इच्छानुसार न्याय दिया और वज्रस्वामी साधुओंके समुदायमें विद्यमान रहे। बाल्यवयमें ही इन्होंने पठन–पाठन करती हुई आर्याओंके मुखसे श्रवणकर पदानुसारी लब्धिसे ग्यारह अङ्ग याद कर लिये थे। इन्होंने अपने संयमसे प्रसन्न बने हुए मित्र देवोंसे आकाश-गामिनी विद्या और वैक्रियलब्धि प्राप्त की थी।

इनके समयमें बारहवर्षी भयङ्कर दुष्काल पड़ा, जिसमें इनके पाँचसौ शिष्य गोचरी नहीं मिलनेके कारण अनशन कर कालधर्मको प्राप्त हुए थे। ये आर्यसिंहगिरिके शिष्य और प्रभु महावीरके तेरहवें पट्टधर थे। दसवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वधरके रूपमें ये अन्तिम माने जाते हैं। शासन--सेवाके अनेक कार्य कर अनशन--पूर्वक कालधर्मको प्राप्त हुए।

१२ नन्दिषेण :—इस नामसे दो महापुरुषोंके चरित्र प्राप्त होते हैं, एक तो अद्भुत वैयावृत्त्य करनेवाले नन्दिषेण; कि जिनको देवता भी डिगा नहीं सके और दूसरे श्रेणिक राजाके पुत्र नन्दिषेण कि जिन्होंने प्रभु महावीरकी देशनासे प्रतिबोध प्राप्त करके दीक्षा ली थी। उग्र तपश्चर्याके कारण इनको कुछ लब्धियाँ प्राप्त हुई थीं। ये एक बार गोचरीके प्रसङ्गसे एक वेश्याके यहाँ चले गये और 'धर्मलाभ' कहकर खड़े रहे। वेश्या बोली :–'हे मुनिराज ! तुम्हारे धर्मलाभको मैं क्या करूँ ? यहाँ तो द्रव्य लाभकी आवश्यकता है !' यह सुनकर मुनिने एक तिनका खींचा जिससे लगातार सुवर्णकी वृष्टि हुई। यह देखकर वेश्या बोली–हे प्रभो ! मूल्य देकर ऐसे ही नहीं जाया जाता। मुझपर दया करो ! आप चले जायँगे तो मेरे मरणसे आपको स्त्रीहत्या लगेगी, आदि।' मुनि धर्मका उल्लङ्घन करके भी वेश्याके यहाँ रहे, किन्तु इस बार ऐसा अभिग्रह किया कि प्रति-दिन दस पुरुषोंको उपदेश देकर, धर्ममें श्रद्धायुक्त बनाकर प्रभुके निकट भेजना। बारह वर्ष तो इस प्रकार व्यतीत हुए; किन्तु एक दिन ऐसा आया कि दसवाँ व्यक्ति समझा नहीं। नन्दिषेणने बहुत परिश्रम किया किन्तु वह सब व्यर्थ गया। तब वेश्याने विनोद करते हुए कहा कि 'स्वामिन् ! दसवें आप।' इसी समय मोहनिद्रा टूट जाने से नन्दिषेणने पुनः दीक्षा ग्रहण की और आत्मकल्याण किया।

१३ सिंहगिरि :—ये प्रभु महावीरके बारहवें पट्टपर विराजने वाले प्रभावशाली आचार्य थे और श्रीवज्रस्वामीके गुरु थे।

१४ कृतपुण्यक (कयवन्ना सेठ) :—ये पूर्वजन्ममें मुनिको दान देनेसे राजगृही नगरीमें धनेश्वर नामक श्रेष्ठिके यहाँ पुत्ररूपमें अवतरित हुए। फिर अनुक्रमसे इन्होंने श्रेणिक राजाका आधा राज्य प्राप्त किया तथा उनकी पुत्री मनोरमाके स्वामी बने। संसारके अनेक भोग भोगनेके पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु महावीरके मुखसे अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनकर इन्होंने दीक्षा ग्रहण की और विविध तप करके अपनी आत्माका कल्याण किया। आज भी 'कयवन्ना सेठका सौभाग्य हो' ऐसे शब्द नये वर्षकी बहीमें लिखे जाते हैं।

१५ सुकोशलमुनि :—ये अयोध्याके राजा कीर्तिधरके पुत्र थे। इनकी माताका नाम सहदेवी था। पहले कीर्तिधरने दीक्षा ली और बादमें उनका उपदेश सुनकर इन्होंने दीक्षा ली थी। इनकी माता सहदेवी पति और पुत्रका वियोग असह्य होनेके कारण आर्त्तध्यान करती हुई मरणको प्राप्त होकर, एक जङ्गलमें सिंहिनी हुई। एक बार दोनों राजर्षि उसी जङ्गलमें गये और कायोत्सर्ग ध्यानमें खड़े रहे, तब इस सिंहिनीने आकर सुकोशल मुनिपर आक्रमण किया और उनके शरीरको चीर डाला, परन्तु ये धर्मध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। इस प्रकारकी अचल और प्रबल धर्मभावना होनेसे अन्तकृत् केवली हुए और मोक्षमें गये।

१६ पुण्डरीक :—पिताने ज्येष्ठ पुत्र पुण्डरीकको राज्य सौंपकर संयम धारण किया, तब कनिष्ठपुत्र कण्डरीकने उनके साथ दीक्षा ली, परन्तु उसका पालन न हो सकनेसे वह चारित्रभ्रष्ट होकर घर आया। पुण्डरीकने देखा कि छोटे भाई की लालसा राज्यासनमें है, अतः इन्होंने कुछ भी आनाकानी किये विना राज्यासन उसको सौंप दिया और स्वयं दीक्षा लेकर निवृत्त हो गये। कण्डरीकको उसी रात्रिमें अत्याहारके कारण विषूचिका हो गयी और मृत्युको प्राप्त हो सातवें नरकमें गया। जब कि पुण्डरीकमुनि भाव-चारित्रका पालन कर सर्वार्थसिद्ध विमानमें देवत्वको प्राप्त हुए।

१७ केशी :—ये श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी परम्पराके गणधर थे। प्रदेशी जैसे नास्तिक राजाको इन्होंने प्रतिबोध दिया था तथा श्रीगौतमस्वामीके साथ धर्मचर्चा की थी। अन्तमें प्रभु महावीरके पाँच महाव्रत स्वीकृतकर सिद्धि-पदको प्राप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ राजर्षि करकण्डू :—चम्पानगरीके राजा दधिवाहनकी रानी पद्मावतीके ये पुत्र थे। जब ये गर्भमें थे, तब राजा रानीका दोहद पूरनेके लिये रानीके साथ हाथीपर बैठकर फिरने निकला। इतनेमें हाथी उन्मत्त होकर जङ्गलकी ओर भागा। तब राजा तो जैसे-तैसे हाथीके ऊपरसे उतर गया और राज्यमें वापस लौट आया, किन्तु रानी सूचनानुसार नहीं उतर सकी। हाथीने उसको घोर जङ्गलमें छोड़ दिया तब रानी अत्यन्त प्रयाससे जङ्गलके बाहर आयी और साध्वियोंकी बस्तीमें गयी। वहाँ साध्वियोंका उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण की। कुछ समयके बाद पुत्रका प्रसव हुआ उसको श्मशानमें छोड़ दिया। चाण्डालने उसको पालपोसकर बड़ा किया। शरीरमें खुजली (कण्डू) अधिक चलनेके कारण इनका नाम करकण्डू पड़ा। धीरे धीरे ये कञ्चनपुरके राजा हुए और दधिवाहनने इनका परिचय प्राप्तकर चम्पापुरीका राज्य भी इनको दिया। एक समय वृद्ध वृषभको देखकर इन्हें बोध हुआ और जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस प्रसङ्गसे राज्य छोड़ दिया और शुद्ध चारित्रका पालनकर आत्म-कल्याण किया। ये पहले प्रत्येक बुद्ध गिने जाते हैं।

१९-२० हल्ल-विहल्ल :—हल्ल और विहल्ल ये दोनों श्रेणिककी पत्नी चेल्लणारानीके पुत्र थे। श्रेणिकने अपना सेचनक हाथी इनको दिया था, इसलिये कोणिकने इनके साथ युद्ध किया था। इस युद्धमें वैशालीपति चेटक महाराजाने हल्ल-विहल्लकी सहायता की थी, किन्तु युद्धके मध्यमें सेचनकके खाईमें गिरकर मर जानेसे इन्हें वैराग्य हो गया, अतः प्रभु महावीरसे दीक्षा ग्रहणकर आत्म-कल्याण किया।

२१ सुदर्शन सेठ :—इनके पिताका नाम अर्हद्दास और माताका नाम अर्हद्दासी था। ये बारहव्रतधारी श्रावक थे। परदारा-विरमण-व्रतके विषयमें इनकी कठिन परीक्षा हुई थी। एक समय ये पोषधव्रत लेकर ध्यानमें खड़े थे, तब राज-रानी अभयाकी सूचनासे दासी इनको राजमहलमें उठा ले गयी और इनको विचलित करनेके लिये अनेक उपाय किये,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर सबसे निष्फल होनेसे इनपर शीलभङ्गका मिथ्या आरोप लगाया, जिसके फल-स्वरूप राजाने इनको शूलीपर चढ़ानेका दण्ड दिया; किन्तु शीलके प्रभावसे शूलीका सिंहासन बन गया और इनका जय-जयकार हुआ। तदनन्तर वैराग्य हो जानेसे दीक्षा ग्रहण की।

२२-२३ शाल-महाशाल :—इस नामके दो भाई थे। उनमें परस्पर अत्यन्त प्रीति थी। दोनों भाइयोंने राज्यको तृणवत् मानकर अपने भानजे गांगलिको राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् गांगलि और उसके माता-पिताको भी प्रतिबोध दिया। अन्तमें केवली होकर मोक्षमें गये।

२४ शालिभद्र :—पूर्वभवमें मुनिको क्षीरदान देनेके कारण राजगृही नगरीके अतिधनिक सेठ गोभद्र और भद्रा सेठानीके यहाँ पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। ये अतुल सम्पत्ति तथा उच्चकुलकी ३२ सुन्दरियोंके स्वामी थे। गोभद्र सेठ प्रभु महावीरसे दीक्षा ग्रहण कर, उत्तम चारित्रका पालनकर मृत्युके बाद स्वर्गमें गये और वहाँ से प्रतिदिन अपने पुत्रके लिये दिव्य वस्त्र तथा आभूषणादि भोग-सामग्री पूरी करने लगे। एक समय श्रेणिक महाराजा उनकी स्वर्गीय ऋद्धि देखनेके लिये आये, जिससे अपने ऊपर भी स्वामी हैं, यह जान वैराग्य को प्राप्त हो, सर्वस्वका परित्यागकर प्रभु महावीरसे दीक्षा ले, उग्र तप कर, आत्म-साधना की।

२५ भद्रबाहुस्वामी :—ये चौदहपूर्वके जानकार थे, आवश्यकादि दस सूत्रोंपर इन्होंने निर्युक्ति रची है। तथा इन्होंने सङ्घकी विज्ञप्तिसे श्री-थूलभद्रको पूर्वोंका ज्ञान दिया था।

२६ दशार्णभद्र राजा:—दशार्णपुरके राजा थे। इनको नित्य त्रिकाल जिनपूजनका नियम था। एक बार अभिमानपूर्वक अपूर्व समृद्धिसे युक्त हो वीरप्रभुके वन्दनार्थ जाते हुए इन्द्रकी समृद्धि देखकर इनके गर्व-का खण्डन हुआ और वैराग्य जागृत होनेसे वहीं दीक्षा ग्रहण की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७ प्रसन्नचन्द्र राजर्षि :—इनके पिता का नाम सोमचन्द्र और माताका नाम धारिणी था। इन्होंने अपने बालकुमारको राज्यासन देकर दीक्षा ग्रहण की थी। एक समय ये राजगृहीके उद्यानमें कायोत्सर्ग करते थे, इतनेमें सुना कि चम्पानगरीके दधिवाहन राजाने उसकी नगरीको घेर रखा है और अपना पुत्र जो अभी बालक है उसको मारकर राज्य ले लेगा।' इस कारण राज्य तथा कुमारके प्रति मोह उत्पन्न होनेसे तथा उसकी रक्षाका विचार करते करते मानसिक–युद्ध खेलने से कुछ ही समयमें सातवें नरकके योग्य कर्म एकत्रित किये, किन्तु पुनः विचारश्रेणी बदल जानेसे उन सब कर्मोंका क्षय कर दिया और वहीं केवलज्ञान प्राप्त किया।

२८ श्रीयशोभद्रसूरि :—ये श्रीशय्यम्भवसूरिके शिष्य और भद्रबाहु स्वामीके गुरु थे। इन्होंने चारित्रका सम्यग् आराधन किया था।

२९ श्रीजम्बूस्वामी :—अखण्ड बालब्रह्मचारी और अतुल वैभव–त्यागी। निःस्पृह और वैराग्य–वासित होने पर भी माता–पिताके आग्रहसे आठ कन्याओंसे विवाह किया था, परन्तु पहली ही रात्रिमें उनको उपदेश देकर वैराग्य उत्पन्न किया। इसी समय पाँचसौ चोरोंके साथ चोरी करनेको आया हुआ प्रभव नामक चोरोंका स्वामी भी इनके उपदेशसे पिघल गया। दूसरे दिन सबने साथ मिलकर सुधर्मास्वामीसे दीक्षा ग्रहण की। धीरे धीरे इनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। ये इस युगके, इस क्षेत्रके, अन्तिम केवली गिने जाते हैं। श्रीसुधर्मा स्वामीके बाद जैन शासनका पूर्ण भार इन्होंने वहन किया था। श्रीसुधर्मा स्वामीने आगमोंका गुम्फन इन्हींको उद्देश करके किया था।

३० कुमार वङ्कचूल :—विराट् देशका राजकुमार। इन्हें बाल्यकालसे ही जुआ, चोरी आदि महाव्यसन की लत पड़ गई थी। पिताने परेशान होकर देश निकाला दिया। तब ये अपनी पत्नी (तथा एक बहिन) के साथ जङ्गलमें रहने लगे। फिर वहीं पल्लीपति हो गये। एक समय इनकी पल्लीमें मुनिने चातुर्मास किया। चातुर्मास पूर्ण होनेके पश्चात् मुनिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसे इन्होंने (१) अपरिचित फल नहीं खाना, (२) प्रहार करनेसे पूर्व सात कदम पीछे हटना, (३) राजाकी पटरानीके साथ सांसारिक भोग नहीं भोगना तथा (४) कौएका मांस नहीं खाना, ये चार नियम ग्रहण किये और अन्त तक इनका दृढ़तापूर्वक पालन किया, जिससे मरकर बारहवें देवलोकमें उत्पन्न हुए।

३१ गजसुकुमाल :—श्रीकृष्णके छोटे भाई। बाल्यावस्थामें वैराग्य हुआ। माता-पिताने मोह-पाशमें बाँधनेके लिये विवाह कर दिया। परन्तु शीघ्र ही संसारका त्याग करके श्रीनेमिनाथप्रभुके निकट जाकर इन्होंने दीक्षा ग्रहण की; और उनकी आज्ञा लेकर श्मशानमें कायोत्सर्ग करके ध्यानमें खड़े रहे। इतनेमें इनका श्वसुर सोमशर्मा ब्राह्मण उधरसे निकला। वह गजसुकुमालको मुनिवेशमें ध्यानमग्न देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने अपनी पुत्रीका जीवन बिगाड़नेके कारण इनको योग्य दण्ड देनेका निर्णय किया। अतः वहाँ पासमें ही जो चिता जल रही थी, उसमें से धधकते हुए अङ्गारे ले कर, इनके मस्तक पर रख दिये। गजसुकुमाल इससे तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुए। अपि तु, मनको ध्यानमें और भी दृढ़ किया। ऐसा करने से ये अन्तकृत् केवली हुए और मोक्षमें गये।

३२ अवन्तिसुकुमाल :—अवन्ति–सुकुमार। इनके पिताका नाम भद्र और माताका नाम भद्रा था। ये उज्जयिनीके निवासी थे और इनके बत्तीस पत्नियाँ थीं। एक बार आर्य सुहस्तिसूरिके समीप 'नलिनीगुल्म' अध्ययन सुनते हुए जाति स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ और सब वैभव छोड़कर उन्हींसे दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर श्मशानभूमिमें कायोत्सर्ग-ध्यानमें मग्न थे तब एक सियारने इनके शरीरमें काट खाया, परन्तु ये ध्यानसे बिलकुल डिगे नहीं। फिर शुभ ध्यानमें मृत्युको प्राप्त हो, नलिनीगुल्म विमानमें देव हुए। इनके मृत्यु-स्थल पर माता-पिताने एक बड़ा प्रासाद बँधवाकर उसमें पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिष्ठा करवायी, जो 'अवन्ति-पार्श्वनाथ' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३ धन्यकुमार :—इनके पिताका नाम धनसार और माताका नाम शीलवती था। इन्होंने अपने बुद्धिबलसे अक्षय लक्ष्मी उपार्जित की थी। कालान्तरमें अपनी आठ पत्नियों का त्याग करके अपने साले शालिभद्रके साथ दीक्षा ग्रहण की और उग्र तपश्चर्या की।

३४ इलाचीपुत्र :—ये श्रेष्ठि-पुत्र होते हुए भी एक नटकी पुत्रीके मोहमें पड़ गये और उसके साथ विवाह करनेके लिये नटकी इच्छानुसार नट बने थे। अपनी अद्भुतकलासे राजाको प्रसन्न करनेके लिये एक बार ये बेन्नातट नगरमें गये। वहाँ बाँस और रस्सीपर चढ़कर अद्भुत खेल करने लगे, किन्तु नटपुत्री को देखकर मोहित बना हुआ राजा प्रसन्न नहीं हुआ। इतनेमें दूर एक मुनिको देखा। उन्हें एक रूपवती स्त्री भिक्षा दे रही थी, किन्तु वे ऊँची दृष्टि करके भी उसको नहीं देख रहे थे। यह देखकर इन्हें वैराग्य हुआ। और वैसी ही भावना करनेसे वहीं केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

३५ चिलाती-पुत्र :—चिलाती नामकी दासीके पुत्र। ये पहले एक सेठके यहाँ नौकरी करते थे, पर सेठने अपलक्षण देखकर इनको निकाल दिया, तब ये जङ्गलमें जाकर चोरोंके सरदार बने। इनको सेठकी सुषमा नामक पुत्री पर मोह था; इससे एक बार सेठके घर डाका डाला और पुत्रीको उठा ले गये। अन्य चोरोंने दूसरा धन-माल लूटा। इतनेमें कोलाहल होनेसे राज्यके सिपाही आ पहुँचे। उनके साथ सेठ तथा सेठके पाँचों पुत्रोंने पीछा किया। तब अन्य चोर धन-माल मार्ग में छोड़कर भाग गये। सिपाही वह धन लेकर लौट गये; पर चिलातीने सुषमाको नहीं छोड़ा और वह जङ्गलमें चला गया। सेठने अपने पुत्रोंके साथ उसका बराबर पीछा किया। जब समीप आ गये, तो उनको देखकर चिलातीने सुषमाका सिर काट लिया और धड़ वहीं पड़ा रहने दिया। सेठ उसको देखकर रुदन करता हुआ वापस लौट आया। चिलातीपुत्रको अब कुछ शान्ति मिली। धीरे-धीरे वह जङ्गलमें चलने लगा। वहाँ एक मुनिको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानमें स्थित देखा। उन्होंने चिलातीपुत्रको तीन पद दिये—'उपशम, विवेक और संवर।' और आकाशमार्गसे चले गये। उक्त तीन पदोंका अर्थ विचारते हुए चिलातीपुत्र वहीं खड़ा रहा और शुभ ध्यानमें मग्न हो गया। उसका शरीर लहूसे भरा हुआ था। अतः लहूकी गन्धसे चींटियाँ आ पहुँची और काटने लगीं, परन्तु वह ध्यानसे विचलित नहीं हुआ। ढाई दिनमें तो उसका शरीर छलनी जैसा हो गया। किन्तु उसने सारे दुःखोंको समभावसे सहन कर लिया और मृत्युके पश्चात् स्वर्गको गया।

३६ युगबाहु मुनि :—पाटलिपुत्र नामके नगरमें विक्रमबाहु नामका राजा था। उसकी मदनरेखा नामकी रानी थी। प्रौढावस्थामें उसके पुत्र हुआ। उसका नाम युगबाहु रखा गया। उनको शारदादेवी तथा विद्याधरोंकी सहायतासे अनेक विद्याएँ प्राप्त हुई थीं और अनङ्गसुन्दरी नामक अत्यन्त रूपवती रमणीके साथ उनका लग्न हुआ था। तत् पश्चात् ज्ञानपञ्चमीकी विधिपूर्वक आराधना करके दीक्षा ली और उग्र तपश्चर्या करके कर्मक्षय किया, तथा केवलज्ञान प्राप्त किया।

३७–३८ आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तिसूरि :—ये दोनों श्रीस्थूलभद्रजीके दशपूर्वी शिष्य थे। इस समयमें जिनकल्पका विच्छेद था, तो भी आर्य महागिरि गच्छमें रहकर जिनकल्पकी तुलना करते थे और आर्य सुहस्ति सङ्घका भार वहन करते थे। आर्य सुहस्तिसूरि ने कालान्तरमें अवन्तिपति सम्प्रति राजाको प्रतिबोध दिया। उस राजाने जिनदेवोंके अनेक मन्दिर बनाकर अनार्यदेशमें भी साधुओंके विहार करनेकी सरलता करके जैनधर्मकी बहुत प्रभावना की। जैनशासनका प्रभाव इनके समयमें अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हुआ था।

३९ आर्यरक्षितसूरि :—ये विद्वान् ब्राह्मण थे। जब ये अध्ययन करके वापस लौटे तब बहुत बड़ा उत्सव हुआ। पर जैनधर्मका पालन करनेवाली माता इस अध्ययनसे प्रसन्न नहीं हुई। उसने कहा—दृष्टिवादके अतिरिक्त अन्य हिंसा प्रतिपादक शास्त्र नरकमें ले जानेवाले हैं। माता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के ऐसे वचन सुनकर आर्यरक्षित तोसलिपुत्र आचार्यके पास गये और उक्त अध्ययनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये जैन दीक्षा ग्रहण की। गुरु-के समीप जितना दृष्टिवाद था; वह सब पढ़ लिया; फिर वज्रस्वामीके पास गये और नवपूर्वका अभ्यास किया। कुछ काल पश्चात् माता-पिता आदि सारे कुटुम्बको प्रतिबोध कर दीक्षा दी। जैन श्रुतज्ञानके द्रव्या-नुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और धर्मकथानुयोग ऐसे चार विभाग इनके द्वारा हुए हैं।

४० उदायन राजर्षि :—ये वीतभय नगरीके राजा थे। अपने भानजे केशीको राजगद्दी देकर इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। इधर-उधर विहार करते-करते पुनः जब वीतभय नगरीमें आये, तब राजाके मन्त्री-द्वारा इनपर विष-प्रयोग हुआ। यद्यपि उस समय तो ये दैव–सहायसे बच गये; किन्तु बादमें विष–प्रयोग सफल हुआ। अपने को जहर दिया गया है ऐसा जानते हुए भी अन्ततक शुभ ध्यानमें रहे, और मरकर स्वर्गमें गये।

४१ मनक :—श्रीशय्यम्भवसूरिके पुत्र और शिष्य। इनकी आयु अल्प थी, इस कारण साधुधर्मका शीघ्र ज्ञान करानेके लिए सूरिजीने सिद्धान्तोंका साररूप दशवैकालिक नामका सूत्र बनाया। इस सूत्रका अभ्यासकर छः मासतक चारित्रका पालनकर स्वर्गमें गये।

४२ कालकाचार्य (१) :—तुरिमणि नगरीमें कालक नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी बहिनका नाम भद्रा था तथा भद्राके भी एक पुत्र था, जिसका नाम दत्त था। कालकने दीक्षा ली थी। एवं दत्त महान् उद्धत और सातों व्यसनोंमें पारङ्गत था, धीरे धीरे उसने जितशत्रु राजा-से राज्य छीन लिया और उस राज्यका अधिपति बन बैठा। फिर उसने यज्ञ आरम्भ किया, जिसमें अनेक जीवोंका संहार होने लगा।

एक समय कालकाचार्य (संसारी अवस्थाके उसके मामा) फिरते-फिरते वहाँ आये तब दत्तने उनसे यज्ञका फल पूछा। तब कालकाचार्यने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा कि–'ऐसा हिंसामय यज्ञ करनेसे नरककी ही गति प्राप्त होती है।' दत्तने इसका प्रमाण माँगा, तब आचार्यने कहा कि 'आजसे सातवें दिन तेरे मुखमें विष्ठा पड़ेगी, यही इसका प्रमाण है।' आचार्यकी यह बात सत्य निकली, और मरकर वह सातवें नरकमें गया। जितशत्रु राजा फिरसे राज्य सिंहासनपर बैठा और उसने कालकाचार्यके उपदेशसे जैनधर्म अङ्गीकार किया।

कालकाचार्य (२) :—इनके पिताका नाम प्रजापाल था और वह श्रीपुरका राजा था।

इनके भानजे बलमित्र और भानुमित्रके आग्रहसे इन्होंने भरुचमें चातुर्मास किया, पर पूर्वभवके वैरी गङ्गाधर पुरोहितने राजाको उलट-पुलट समझाकर युक्तिसे इनको चातुर्मासमें ही दूसरे स्थानके लिये निकलवाया, इसलिये ये वहाँसे प्रतिष्ठानपुरमें चातुर्मास करने गये। वहाँके राजा शालिवाहनने इनका नगर-प्रवेश महान् उत्सवके साथ करवाया। पर्युषण-पर्व निकट होनेसे राजाने कहा कि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीके दिन यहाँ इन्द्रमहोत्सव मनाया जाता है इसलिये पर्युषणपर्व पहले अथवा बादमें रखना चाहिये, जिससे हम उसका आराधन कर सकें। तब कालकाचार्यने कहा कि–विशिष्ट कारण उपस्थित होनेपर चतुर्थीके दिन इसका आराधन हो सकता है। तबसे पञ्चमीके स्थानपर चतुर्थीकी संवत्सरी हुई।

श्रीसीमन्धर स्वामीने इद्रके समक्ष कालकाचार्यकी प्रशंसा की कि—'निगोदका स्वरूप कहनेमें उनके जैसा दूसरा कोई नहीं है।' यह सुनकर इन्द्र ब्राह्मणका रूप लेकर इनके पास आया और इनसे निगोदका स्वरूप पूछा। कालकाचार्यने सब यथार्थ रूपमें कह दिया, जिससे इन्द्र प्रसन्न होकर स्वस्थानपर चला गया।

कालकाचार्य (३) :—इनके पिताका नाम वज्रसिंह और माताका नाम सुरसुन्दरी था। ये मगध देशके राजा थे। इन्होंने गुणधरसूरिसे दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी बहिन सरस्वतीने भी इन्हींके साथ दीक्षा ली थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक समय ये उज्जयिनीमें आये, तब सरस्वती साध्वी भी वहाँ आयी थी। वह साध्वी जब बाहर जाकर पुनः शहरमें आरही थी, तो वहाँके राजा गर्दभिल्लने उसको अत्यन्त स्वरूपवती देख, पकड़वाकर महलमें भिजवा दिया। इस बातका समाचार मिलते ही सूरिजीने सङ्घको खबर दी तथा अन्य अनेक प्रकारोंसे राजाको समझाया, परन्तु दुराचारी राजा समझा नहीं, तब सूरिजीने वेश-परिवर्तन कर पारस-कूलकी ओर जाकर वहाँके ९६ शक राजाओंको प्रतिबोध देकर गर्दभिल्लपर चढ़ाई करवायी और उसको हराकर सरस्वती साध्वीको छुड़ाया।

ये कालकाचार्य महाप्रभावक थे।

४३-४४ **साम्ब और प्रद्युम्न** :—ये दोनों श्रीकृष्णके पुत्र थे। साम्बकी माता जम्बूवती थी और प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणी थी। बाल्यकाल में अनेक लीलाएँ करके, कौमार्यावस्थामें विविध पराक्रम दिखलाकर, अन्तमें वैराग्यको प्राप्त होकर, दीक्षित हुए और शत्रुञ्जय पर्वतपर मोक्षमें गये।

४५ **मूलदेव** :—राजकुमारमूलदेव सङ्गीतादि कलामें निपुण थे, किन्तु बहुत जुआ खेलनेवाले थे। पिताने इनको देशनिकाला दिया, तबसे उज्जयिनीमें आकर रहने लगे। सङ्गीत-कलासे देवदत्ता नामकी गणिका तथा उसके कलाचार्य उपाध्याय विश्वभूतिको इन्होंने पराजित कर दिया था। कुछ समयके पश्चात् दानके प्रभावसे ये हाथियोंसे समृद्ध विशाल राज्य तथा गुणानुरागिणी कला-प्रिय चतुर गणिका देवदत्ताके स्वामी हुए। अन्तमें सत्सङ्ग होनेसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और चारित्रका पालनकर स्वर्गमें गये। वहाँसे च्यवित होकर मोक्षको प्राप्त होंगे।

४६ **प्रभव स्वामी** :—ये पूर्वोक्त श्रीजम्बूस्वामीके यहाँ लग्नकी पहली रातको पाँचसौ चोरोंके साथ चोरी करने गये, वहाँ नवपरिणीत आठ वधुओंके साथ परस्पर चलते हुए आध्यात्मिक संवादको सुनकर प्रतिबुद्ध हुए और सब चोरोंके साथ दीक्षा ग्रहण की। फिर जम्बूस्वामीने शासनका भार इनको सँभलाया। ये चौदहपूर्व के जानकार थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७ **विष्णुकुमार** :—इनके पिताका नाम पद्मोत्तर और माताका नाम ज्वालादेवी था। इन्होंने श्रीमुनिसुव्रत आचार्यसे दीक्षा ग्रहण की और तपके प्रभावसे अपूर्वलब्धिवाले हुए। एक समय पहले विवादमें हारे हुए धर्मद्वेषी नमुचि प्रधानने द्वेषबुद्धिसे जैन साधुओंको राज्यकी सीमासे बाहर निकालनेकी आज्ञा की। इस बातकी जानकारी होते ही ये जैन साधुओंकी सहायता करने आये और नमुचिसे केवल तीन पग जमीनकी माँग की, उसने देना स्वीकार किया। तब क्रुद्ध विष्णुमुनिने एक लाख योजनका विराट् शरीर बनाकर एक पाँव समुद्रके पूर्व भागपर और दूसरा पाँव समुद्रके पश्चिम भागपर रखा। 'तीसरा पाँव कहाँ रखूँ' यह कहकर वह पाँव नमुचिके मस्तक पर रखा। जिससे वह मरकर नरकमें गया। देव, गन्धर्व, किन्नर, देवाङ्गना आदिकी उपशम–रसमय मधुर सङ्गीत–प्रार्थनासे अन्तमें क्रोध शान्त हुआ। फिर तपश्चर्या करते हुए और शुद्ध चारित्रका पालन करते हुए मोक्ष गये।

४८ **आर्द्रकुमार** :—ये अनार्य देशमें आये हुए आर्द्रक–देशके राजकुमार थे। इनके पिता आर्द्रक और श्रेणिक राजाकी परस्पर गाढ़ मैत्री थी, इस कारण अभयकुमार आर्द्रक राजाके पुत्र आर्द्रकुमारकी भी मैत्री हो गयी। एक समय अपने मित्रको जैनधर्म प्राप्त करानेके लिये अभयकुमार द्वारा प्रेषित जिन--प्रतिमाके दर्शन होनेसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और आर्यदेशमें आकर इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। यह दीक्षा वर्षोंतक पालनेके पश्चात्, भोगावली कर्मका उदय होनेसे इनको संसारवास स्वीकृत करना पड़ा और बालकके स्नेह बन्धनसे मुक्त होनेके लिए बारहवर्ष व्यतीत करने पड़े। तदनन्तर इन्होंने फिरसे दीक्षा ली और अनेक जीवोंको प्रतिबोध दिया। इन्होंने गोशालकके साथ धर्मचर्चा करके उसको निरुत्तर किया था।

४९ **दृढप्रहारी** :—ये यज्ञदत्तनामक ब्राह्मणके पुत्र थे और कुसङ्गसे बिगड़ गये थे। धीरे धीरे ये प्रसिद्ध चोर बन गये। एक बार लूट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते समय इन्होंने ब्राह्मण, गाय और सगर्भा स्त्रीकी हत्या की थी, किन्तु इन बड़ी हत्याओंसे इनका हृदय द्रवित हो गया और इन्होंने संयम धारण किया। उसके पश्चात् जहाँतक पूर्व पापकी स्मृति हो, वहाँतक कायोत्सर्ग करनेका अभिग्रह करके, हत्यावाले गाँवके पास ध्यानमें मग्न हो गये। वहाँ लोगोंने इनपर पत्थर, कूड़ा आदिका प्रहार किया और असह्य कठोर शब्द कहे, परन्तु ये ध्यानसे किञ्चित् भी विचलित न हुए। सारे उपसर्ग समभावसे सहन करते हुए इन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

५० श्रेयांसकुमार :—ये बाहुबलीके पौत्र थे और सोमयश राजाके पुत्र थे। इन्होंने श्रीआदिनाथप्रभुको एक वर्षके उपवास के बाद गन्नेके रसका पारणा कराया था।

५१ कूरगडूमुनि :—ये धनदत्त श्रेष्ठीके पुत्र थे और श्रीधर्मघोष-सूरिसे बाल्यवयमें दीक्षित हुए थे। इनमें क्षमाका गुण अद्भुत था, किन्तु कोई तपश्चर्या नहीं कर सकते थे। एक बार प्रातःकालमें गोचरी लाकर वापरनेके लिये बैठे कि मासखमणवाले एक साधुने कहा कि—'मैंने थूँकनेका पात्र माँगा, वह क्यों नहीं दिया ? और आहार वापरनेको बैठ गये ? अतः अब मैं तुम्हारे पात्रमें ही बलगम डालूँगा।' ऐसा कहकर उस साधुने पात्रमें बलगम (कफ) डाल दिया। कूरगडूमुनि इससे कुछ भी क्रुद्ध नहीं हुए। अपि तु हाथ जोड़कर बोले कि 'महात्मन् ! क्षमा कीजिये, मैं बालक हूँ; भूल हुई। मेरे ऐसे धन्य भाग्य कहाँ हैं कि आपके जैसे तपस्वीका बलगम मेरे भोजनमें गिरे !' ऐसी भावना उत्तरोत्तर बढ़नेसे इनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

५२ शय्यम्भवसूरि :—श्रीप्रभवस्वामीके पट्टधर शिष्य। ये पूर्वावस्थामें कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। श्रीप्रभवस्वामीके अनन्तर समस्त जैनशासनका भार इन्होंने वहन किया था। इनका बाल-पुत्र मनक भी इन्हींके मार्गमें पला था और उसने अल्पवयमें ही आत्म-हित साध लिया था। इस पुत्र-शिष्यको पढ़ानेके लिये सूरिजीने सिद्धान्तमेंसे सारसंग्रह—कर दशवैकालिक सूत्रकी रचना की थी, जो एक पवित्र आगम माना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३ मेघकुमार :—ये श्रेणिक राजाकी धारिणी नामक पत्नीके पुत्र थे। और उच्च कुलीन आठ राजकुमारियोंके साथ इन्होंने विवाह किया था। किन्तु एक समय प्रभु महावीरकी देशना सुनकर, माता-पिताकी आज्ञासे इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। प्रभुने इनको स्थविर साधुओंको सौंप दिया। (उन साधुओंने दूसरे स्थानपर जाकर रात बितायी।) नवदीक्षित मेघकुमारका सन्थारा अन्तिम और द्वारके समीप था। इसलिये रात्रिमें लघुशङ्कादि करनेके लिये जाते--आते साधुओंके जाने--आनेसे, उनके पैरका स्पर्श होनेसे, एवं सन्थारेमें धूल पड़नेसे सारी रात नींद नहीं आयी। तब विचार किया कि प्रातः उठकर ये सब वस्तुएँ प्रभुको सौंपकर घर जाऊँगा। प्रातः सब साधु प्रभु महावीरको वन्दन करने गये तब मेघकुमार भी साथ थे। सर्वज्ञ प्रभु महावीरने इनके द्वारा किया हुआ दुर्ध्यान बतलाकर प्रतिबोध दिया और इनका पूर्वभव कहा तथा हाथीके भवमें खरगोशको बचानेके लिये किस प्रकार अनुकम्पा की थी, यह जानकर इनके मनका समाधान हुआ। फिर चारित्रका निरतिचार पालन करके स्वर्गमें गये और वहाँसे महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर मोक्षमें जायँगे।

महासतियाँ

१ सुलसा :—इनके पतिका नाम नागरथ था, जो श्रेणिककी सेनामें मुख्य रथिक (सारथी) थे। प्रथम तो उसके कोई सन्तान नहीं थी, किन्तु कालान्तरमें उत्तम धर्माराधना के प्रभावसे तथा प्रसन्न हुए देवकी सहायतासे बत्तीस पुत्र हुए। ये पुत्र पढ़--लिखकर योग्यावस्थामें विवाहके पश्चात् श्रेणिकके अङ्गरक्षक बनकर रहे और श्रेणिक जब सुज्येष्ठाका हरण करने गया तब वीरतापूर्वक लड़कर मृत्युको प्राप्त हुए।

अपने बत्तीस पुत्रोंकी एक साथ मृत्यु होनेपर भी भवस्थितिका विचार करके सुलसाने शोक नहीं किया और पतिको भी शोकातुर होनेसे रोका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुलसा भगवान् महावीरकी परम श्राविका थी। एक समय अम्बड श्रावकके साथ भगवान् महावीरने सुलसा को 'धर्मलाभ' कहलाया। इससे अम्बडके विचार आया कि यह कैसी श्राविका होगी जिसको कि भगवान् महावीर धर्मलाभ कहलाते हैं? ऐसा विचारकर अम्बडने अपनी ऐन्द्रजालिक विद्यासे सुलसाकी परीक्षा की, परन्तु वह धर्मसे तनिक भी विचलित नहीं हुई। तब उसके घर जाकर भगवान्का धर्मलाभ पहुँचाया और उसकी धर्मके प्रति जो दृढ़ता थी उसकी प्रशंसा की। यह मरकर स्वर्गमें गयीं और वहाँसे च्यवित होकर आनेवाली चौबीसीमें निर्मम नामक पन्द्रहवाँ तीर्थङ्कर होंगी।

२ **चन्दनबाला** :—चम्पापुरीमें दधिवाहन नामक एक राजा था। उसकी रानी पद्मावती थी, जिसका दूसरा नाम धारिणी था। उसके वसुमती नामकी एक पुत्री थी। एक दिन कौशाम्बीके राजा शतानीकने उसपर चढ़ाई की जिससे डरकर दधिवाहन राजा भाग गया। सैनिकोंने उसके नगरको लूटा और धारिणी तथा वसुमतीको उठाकर ले गये। अपने शीलकी रक्षाके लिये धारिणी मार्गमें ही अपनी जीभ काटकर मर गयी। कौशाम्बी पहुँचनेके बाद वसुमतीको बाजारमें बेचनेके लिये खड़ा किया गया वहाँ एक सेठने उसको खरीद लिया। उस सेठने वसुमतीका नाम चन्दनबाला रखा। यह अति स्वरूपवती थी। इस कारण सेठकी पत्नी मूलाको शङ्का हुई कि सम्भवतः सेठ स्वयं इसके साथ विवाह करेंगे।

एक दिन सेठ जब बाहर--गाँव गया, तब मूलाने चन्दनबालाको एक तलघरमें बन्द कर दिया, उसके पैरमें बेड़ियाँ डालीं और मस्तक मुँडवा दिया। इस प्रकार अन्न--जलरहित तीन दिन बीत गये। चौथे दिन सेठको खबर हुई, तब तलघर खोलकर उसको बाहर निकाला और एक सूपेमें उड़दके बाकले (उबाले हुए उड़द) देकर, उसकी बेड़ियाँ तुड़वानेके लिये लुहारको बुलाने गया। इधर चन्दनबाला मनमें विचार करती है कि-'मेरे तीन दिनका उपवास है, इसलिये यदि कोई मुनिराज पधारें तो उनको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहोराकर फिर पारणा करूँ।' इतनेमें भगवान् महावीर वहाँ पधारे, जिनको कि दस बोलका अभिग्रह था। इन अभिग्रहके बोलोंमें से रुदनका एक बोल कम था यह देख कर वे पीछे फिरे। इसी समय चन्दनबालाकी आँखोंमें आँसू आ गये, यह देख भगवान् पीछे फिरे और चन्दनबालाके हाथसे पारणा किया। उसी समय आकाशमें देवदुन्दुभि बजी, पञ्चदिव्य प्रकट हुए। चन्दनबालाके मस्तकपर सुन्दर बाल आ गये और लोहेकी बेड़ियोंके स्थानपर सुन्दर दिव्य आभूषण हो गये। सर्वत्र चन्दनबालाका जय-जयकार हुआ। अन्तमें चन्दनबालाने भगवान् महावीरसे दीक्षा ली और साध्वीसंघमें प्रधान बनी तथा क्रमशः केवली होकर मोक्षपदको प्राप्त हुई।

३ **मनोरमा** :—जिनके शीलके प्रभावसे शूलीका सिंहासन बन गया था, उन सुदर्शन सेठकी पत्नी।

४ **मदनरेखा** :—मणिरथ राजाके छोटे भाई युगबाहुकी अत्यन्त स्वरूपवती सुशील पत्नी। मणिरथने मदनरेखाको विचलित करनेके लिये अनेक यत्न किये, पर वे व्यर्थ गये। अन्तमें युगबाहुका खून करवा दिया, परन्तु गर्भवती मदनरेखा भाग गयी। जङ्गलमें जाकर मदनरेखाने एक पुत्रको जन्म दिया, जो प्रत्येक बुद्धके रूपमें नमिराज ऋषिके नामसे आगे जाकर प्रसिद्ध हुआ। कुछ समय पश्चात् मदनरेखाने दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया।

५ **दमयन्ती** :—विदर्भ-नरेश भीमराजाकी पुत्री और नलराजकी पत्नी। कथा प्रसिद्ध है।

६ **नर्मदासुन्दरी** :—सहदेवकी पुत्री और महेश्वरदत्तकी स्त्री। शीलकी रक्षाके लिये इसने अनेक सङ्कटोंका सामना किया था। अन्तमें श्रीआर्यसुहस्तिसूरिसे दीक्षा ग्रहण की और अपनी योग्यतासे प्रवर्त्तिनी-पद प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७ सीता :—विदेहराज जनककी पुत्री और श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी। कथा प्रसिद्ध है।

८ नन्दा (सुनन्दा) :—श्रेणिक राजा माता-पितासे रूठकर बेनातट नगरमें चले गये तब वहाँ गोपाल नाम धारण किया था और धनपति नामके सेठकी पुत्री नन्दाके साथ विवाह किया। उससे अभय-कुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बुद्धिके लिए आज भी दृष्टान्तरूप है। नन्दाको पतिका वियोग कुछ वर्षोंतक सहन करना पड़ा, पर वह धर्मपालन और शील-रक्षणमें अडिग रही, इसलिये उसकी गणना सती स्त्रियोंमें होती है।

९ भद्रा :—शालिभद्रकी माता। जैन धर्मकी परम अनुरागिनी।

१० सुभद्रा :—इनके पिताका नाम जिनदास और माताका नाम तत्त्वमालिनी था। इनके ससुरालवाले बौद्ध होनेसे इन्हें अनेक प्रकारसे सताया करते थे, परन्तु ये अपने धर्मसे लेशमात्र भी चलित नहीं हुईं। एकबार मुनिकी आँखमें गिरे हुए तिनकेको निकालनेसे इनपर कलङ्क लगा, जिसको दूर करनेके लिये शासनदेवकी आराधना की। दूसरे दिन नगरके सब द्वार बन्द हो गये। और आकाशवाणी हुई कि 'जब कोई सती स्त्री कच्चे सूतके तारसे छलनीद्वारा कुएमेंसे जल निकालकर छींटेगी, तब इस चम्पानगरीके द्वार खुलेंगे।' यह असाधारण कार्य सती सुभद्राने कर दिखलाया, तबसे वे प्रातःस्मरणीया गिनी जाती हैं। अन्तमें दीक्षा लेकर मोक्षमें गयीं।

११ राजिमती :—विवाहकके लिये आया हुआ विवाहोत्सुक कन्त वापस लौट गया, निश्चित लग्न अधूरे रह गये, किन्तु एक बार मनसे पतिके रूपमें वरण किये हुएके अतिरिक्त सती दूसरेकी आशा कैसे कर सकती है? विवाहोत्सुक कन्त संसारसे विरक्त होकर जब त्यागी-तपस्वी बने, तब धर्माराधनके लिये उनका शरण अङ्गीकृत किया। मन, वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और कायासे संयमका पालनकर वे श्रीनेमिनाथकी प्रथम साध्वी बनीं। श्रीनेमिनाथके छोटे भाई रथनेमि, उग्रसेन राजाकी इन सौन्दर्यवती पुत्रीको देखकर मोहको प्राप्त हुए थे और साधुव्रतके अनन्तर भी डगमगाते रहे; परन्तु इन महासतीने सुन्दर शिक्षा देकर उनको चारित्रमें पुनः स्थिर कर दिया और अन्तमें सर्व कर्मोंका क्षय करके मुक्तिको प्राप्त हुए।

१२ **ऋषिदत्ता** :—ये हरिषेण तापसकी पुत्री थीं और कनकरथ राजाके साथ इनका विवाह हुआ था। प्राक्तन कर्मोंके कारण इन्हें अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंसे गुजरना पड़ा; पर सभीसे पार हुईं और अन्तिम समयमें संयम धारणकर सिद्धिपदको प्राप्त हुईं।

१३ **पद्मावती** :—देखो राजर्षि करकण्डू (१८)।

१४ **अञ्जनासुन्दरी** :—पवनञ्जयकी पत्नी और हनुमान्‌की माता। इनसे विवाह करके पतिने बरसोंतक छोड़ दिया था, इससे वियोगके दिन चल रहे थे। एक समय पति युद्धमें गये, वहाँ चक्रवाक-मिथुनकी विरह-विह्वलता देखकर पत्नीकी स्मृति आयी। तब पत्नीसे मिलनेके हेतु गुप्त रीतिसे वापस आये, पर इस मिलनका परिणाम आपत्तिजनक निकला। इनके पतिके आनेकी बात किसीने जानी नहीं और अञ्जनाको जब गर्भवतीके रूपमें देखा तब इनपर कलङ्क लगाया। और ये पिताके घर भेज दी गयीं, किन्तु कलङ्कवाली पुत्रीको कौन रखे? अन्तमें वनकी राह ली। वहाँ हनुमान् नामक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। सती अञ्जना शीलव्रतमें तत्पर रहीं। पति वापस लौटनेपर सब बात जानकर बहुत पछताया, और पत्नीकी खोजमें निकला एवं अत्यन्त परिश्रम व प्रयत्नसे मिलाप हुआ। कालान्तरमें दोनों चारित्रका पालनकर मुक्तिपदको प्राप्त हुए।

१५ **श्रीदेवी** :—ये श्रीधर राजाकी परम शीलवती स्त्री थीं। एकके बाद एक, इस प्रकार दो विद्याधरोंने अपहरणकर इन्हें शीलसे डिगानेका बहुत प्रयत्न किया, परन्तु पर्वतकी तरह ये निश्चल रहीं। अन्तमें चारित्रका पालन कर स्वर्गमें गयीं और वहाँसे मोक्षमें जायँगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६ **ज्येष्ठा** :—ये चेटक राजाकी पुत्री और प्रभु महावीरके ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धनकी पत्नी थीं। प्रभुसे लिये हुए बारह व्रत इन्होंने अटल निश्चयसे पाले थे। इनके शीलकी शक्रेन्द्रने भी स्तुति की थी।

१७ **सुज्येष्ठा** :—चेटककी पुत्री। सङ्केतानुसार इन्हें लेने आया हुआ श्रेणिक राजा भूलसे इनकी बहिन चेल्लणाको लेकर चला गया, इस कारण वैराग्यको प्राप्त होकर इन्होंने श्रीचन्दनबालासे दीक्षा ली और विविध तपोंका आचरण करके आत्म-कल्याण किया।

१८ **मृगावती** :—ये भी चेटक राजाकी पुत्री थीं और कौशाम्बीके राजा शतानीकसे इनका विवाह हुआ था। एक बार इनका केवल अँगूठा देकर किसी चित्रकारने इनका पूरा चित्र बनाया, उसे देखकर शङ्कित हुए शतानीक राजाने चित्रकारका अपमान किया, तब उस चित्रकारने वह चित्र उज्जयिनीके राजा चण्डप्रद्योतको दिखाया। फल स्वरूप चण्डप्रद्योतने शतानीक राजासे मृगावतीकी माँग की, किन्तु शतानीकने मना कर दिया। इससे कौशाम्बीपर चढ़ाई की। शतानीक उसी रात्रिको अपस्मारके रोगसे मर गया, इसीलिये मृगावतीने युक्तिसे चण्डप्रद्योतको वापस हटाया और चातुर्यसे राज्य-रक्षाके लिये राजधानीमें अत्यन्त दृढ़ दुर्ग (किला) बनवाया। वहाँ प्रभु महावीरका शुभागमन होनेपर रानी मृगावतीने नगरके द्वार खोल दिये और वन्दन करनेके लिये गयी। चण्डप्रद्योत भी प्रभु महावीरके दर्शनार्थ आया। समवसरणमें प्रभु महावीरके समक्ष अपने बालकुमारको चण्डप्रद्योतकी गोदीमें रख उसकी अनुमति प्राप्तकर मृगावतीने दीक्षा ग्रहण की तथा चन्दनबालाकी शिष्या बनी। इनके पुत्र उदयनको कौशाम्बीके राज्यासन पर बिठलाया गया।

एक बार उपाश्रयमें आते समय विलम्ब होनेसे श्रीचन्दनबालाने उलाहना दिया। उसके निमित्त क्षमापना करते हुए उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। गुरुणी चन्दनबाला उस समय सोयी हुई थीं। गाढ अन्धकारमें उनके समीप होकर सर्प निकला, इसके केवलज्ञानका प्रभाव जानकर मृगावतीने उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ एकतरफ कर दिया। श्रीचन्दनबाला जग गयीं और पूछा कि 'मुझको क्यों जगाया ?' तब इनके दिये गये उत्तरसे ज्ञात हुआ कि मृगावतीको केवलज्ञान हुआ था। तदनन्तर इन्हें खमाते हुए श्रीचन्दनबालाको भी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और दोनों मोक्षमें गयीं।

१९ **प्रभावती** :—ये चेटक महाराजकी पुत्री और सिन्धुसौवीरके अन्तिम राजर्षि उदायन (४०) की पटरानी थीं। श्रीजिनेश्वरदेवके प्रति इनकी अपूर्व भक्ति थी।

२० **चेल्लणा** :—ये चेटक महाराजकी पुत्री और महाराज श्रेणिककी पत्नी थीं। प्रभु महावीर की ये परम श्राविका थीं। एक समय श्रेणिकको इनके शीलपर सन्देह हुआ, परन्तु सर्वज्ञ प्रभु महावीरके वचनसे वह दूर हुआ। शीलव्रतके अखण्ड पालनके कारण इनकी गणना सती स्त्रियोंमें होती है।

२१–२२ **ब्राह्मी और सुन्दरी** :—श्रीऋषभदेव भगवान्‌की विदुषी पुत्रियाँ। एक लिपिमें प्रवीण थीं, और दूसरी गणितमें। दोनों बहिनोंने दीक्षा लेकर जीवनको उज्ज्वल किया। और बाहुबलीको उपदेश देनेके लिये ये दोनों बहिनें साथ गयी थीं।

२३ **रुक्मिणी** :—एक सती स्त्री, जो श्रीकृष्णकी पटरानी रुक्मिणीसे पृथक् थीं।

२४ **रेवती** :—भगवान् महावीरकी परम श्राविका। प्रभुको रुग्णावस्थामें भक्तिभावसे कूष्माण्डपाक बहोराकर तीर्थङ्कर-नामगोत्र बाँधा था। आगामी चौबीसीमें समाधि नामक सत्रहवाँ तीर्थङ्कर होंगी !

२५ **कुन्ती** :—पाँच पाण्डवोंकी माता। कथा प्रसिद्ध है।

२६ **शिवा** :—ये चेटक महाराजकी पुत्री और महाराजा चण्डप्रद्योतकी रानी थीं। तथा परम शीलवती थीं। ये देवकृत उपसर्गसे भी चलायमान नहीं हुई थीं। उज्जयिनी नगरीमें अनेक बार आग लगती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी, जो इनके हाथसे पानी छिटकानेपर शान्त हो जाती थी। अन्तमें प्रभुसे दीक्षा लेकर मोक्षमें गयीं।

२७ **जयन्ती** :—ये शतानीक राजाकी बहिन और महारानी मृगावतीकी ननद थीं, और पूर्ण विदुषी थीं। इन्होंने प्रभु महावीरसे कुछ तात्त्विक प्रश्न पूछे थे, जिनके प्रत्युत्तर प्रभुने दिये थे। अन्ततः दीक्षा लेकर, कर्मक्षय करके मोक्षमें गयीं।

२८ **देवकी** :—ये वासुदेवकी पत्नी और श्रीकृष्णकी माता थीं। इनके भाई कंसको किसी मुनिके कहनेसे ज्ञात हुआ कि देवकीका पुत्र तुझे मारेगा। इस कारण देवकीके जो बालक उत्पन्न होता उसको कंस लेकर मार डालता। परन्तु देव-प्रभावसे वे देवकीके बालक भद्दिलपुरमें नागसेठके यहाँ पलते थे। और उसकी पत्नी जिन मृत बालकोंको जन्म देती थी, वे यहाँ आते थे। इस प्रकार छः बालक कंसको सौंपे गये थे। सातवाँ पुत्र नन्दकी यशोदाको सौंपा गया और उसकी बालक-पुत्री कंसको दी गयी। ये सातवें पुत्र ही श्रीकृष्ण थे। कालान्तरमें देवकीने सम्यक्त्व सहित श्रावकके बारह व्रत ग्रहण किये और उनका उचितरूपेण पालन किया था।

२९ **द्रौपदी** :—पाण्डवोंकी पत्नी। कथा प्रसिद्ध है।

३० **धारिणी** :—ये चेटक महाराजाकी पुत्री और चम्पापुरीके महाराजा दधिवाहनकी पत्नी थीं। तथा चन्दनबालाकी ये माता थीं। एक बार शतानीक राजाके नगरपर चढ़ाई करनेसे धारिणी अपनी पुत्री वसुमतीको लेकर भाग गयी। इतनेमें किसी सैनिकने उसको पकड़ लिया और मार्गमें अनुचित माँग की। ऐसे समयमें धारिणीने शीलकी रक्षाके लिये जीभ काटकर प्राण-त्याग किया।

३१ **कलावती** :—ये शङ्ख राजाकी शीलवती स्त्री थीं। एक समय भाई द्वारा प्रेषित कङ्कणोंकी जोड़ी पहनकर ये प्रशंसाके वाक्य कहती थीं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय मति--विभ्रमसे पतिको इनके शीलपर सन्देह हुआ, और उनने कङ्कण–सहित हाथ काटनेकी आज्ञा दी। वधिकोंने जङ्गलमें लेजाकर कङ्कण–सहित इनके हाथ काट लिये, किन्तु शीलके दिव्य प्रभावसे इनके हाथ वैसे-के-वैसे हो गये। इस जङ्गलमें इन्होंने एक पुत्रको जन्म दिया और वहाँसे चलकर एक तापसके आश्रममें आश्रय लिया। शङ्का दूर होने पर पति बादमें पछताया। अनेक वर्षोंके पश्चात् इनसे पतिका पुनः मिलाप हुआ, किन्तु तब तो जीवनका रङ्ग पलट चुका था। अन्तमें दीक्षा ग्रहणकर इन्होंने आत्म–कल्याण किया और स्वर्गमें गयीं। वहाँसे च्यवित होकर मोक्षमें जायँगी।

३२ पुष्पचूला :—देखो अर्णिकापुत्र आचार्य (६)।

३३–४०:—पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जम्बूवती, सत्यभामा और रुक्मिणी। ये आठों श्रीकृष्णकी पटरानियाँ थीं। इनके शीलकी परीक्षा पृथक् पृथक् समयमें हुई थी। किन्तु ये प्रत्येकमें पार उतरीं। अन्तमें आठों पटरानियोंने दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया।

४१–४७–१ यक्षा, २ यक्षदत्ता, ३ भूता, ४ भूतदत्ता, ५ सेना, ६ वेना और ७ रेणा। ये सातों महासतियाँ श्रीस्थूलभद्रकी बहिनें थीं। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। इनमें से प्रत्येकने भागवती-दीक्षा अङ्गीकार कर आत्माका उद्धार किया था। इनका विशेष परिचय श्रीस्थूलभद्रके जीवन-चरित्रमें मिलेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५ सड्ढ–निच्च–किच्च–सज्झाओ

['मन्नह जिणाणं' सज्झाय]

मूल—

[गाहा]

मन्नह जिणाणमाणं, मिच्छं परिहरह धरह सम्मत्तं ।
छव्विह–आवस्सयम्मि उज्जुत्ता होह पइदिवसं ॥१॥
पव्वेसु पोसहवयं, दाणं सीलं तओ अ भावो अ ।
सज्झाय–नमुक्कारो, परोवयारो अ जयणा अ ॥२॥
जिण-पूआ जिण-थुणणं, गुरु-थुअ साहम्मिआण वच्छल्लं ।
ववहारस्स य सुद्धी रह-जत्ता तित्थ–जत्ता य ॥३॥
उवसम–विवेग–संवर, भाषा–समिई छज्जीव–करुणा य ।
धम्मिअजण–संसग्गो, करण-दमो चरण-परिणामो ॥४॥
संघोवरि बहुमाणो, पुत्थय–लिहणं पभावणा तित्थे ।
सड्ढाण किच्चमेअं, निच्चं सुगुरूवएसेणं ॥५॥

शब्दार्थ—

मन्नह–मानो ।

जिणाणं–जिनेश्वरोंकी ।

आणं–आज्ञाको ।

मिच्छं-मिथ्यात्वको, मिथ्यात्वका । मिथ्यात्व—जिसमें खोटापन अथवा असत्यता हो ।

परिहरह–त्याग करो ।

धरह–धारण करो ।

सम्मत्तं–सम्यक्त्वको ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छव्विह – आवस्सयम्मि -- छः प्रकारके आवश्यक करनेमें ।
छः आवश्यक–(१) सामायिक, (२) चतुर्विंशति–स्तव, (३) वन्दन, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रत्याख्यान ।

उज्जुत्ता–उद्यमवान्, प्रयत्नशील ।

होह–बनो ।

पइदिवसं–प्रतिदिन ।

पव्वेसु–पर्वके दिनोंमें ।

पोसहवयं–पोषधव्रत करो ।

दाणं–दान दो ।

सीलं–सदाचारका पालन करो ।

तवो–तप, तपका अनुष्ठान करो ।

अ–और ।

भावो–भाव, मैत्री आदि उत्तम प्रकारकी भावना करो ।

अ–और ।

सज्झाय – नमुक्कारो – स्वाध्याय करो और नमस्कार–मन्त्रकी गणना करो; पाँच प्रकारके स्वाध्यायमें मग्न बनो, नमस्कारमन्त्रकी गणना करो ।

परोवयरो – परोपकार – परायण बनो ।

अ–और ।

जयणा–सावधानी रखो ।

अ–और ।

जिण–पूआ – जिनेश्वरकी पूजा करो ।

जिण-थुणणं–जिन-स्तवन करो ।

गुरु–थुअ–गुरुकी स्तुति करो ।

साहम्मिआण – वच्छल्लं – साधर्मिक भाइयोंके प्रति वात्सल्य दिखलाओ ।
साहम्मिअ-समान धर्मद्वारा अपना जीवन व्यतीत करनेवाला ।
वच्छल्ल–स्नेह, प्रेमभाव ।

ववहारस्स य सुद्धी–और देने–लेनेमें प्रामाणिकता रखो, व्यवहारमें शुद्धि रखो ।

रह-जत्ता–रथ-यात्रा करो ।

तित्थ–जत्ता य – और तीर्थ–यात्रा करो ।

उवसम–विवेग– संवर –उपशम, विवेक और संवर धारण करो ।
उवसम–कषायकी उपशान्ति ।
विवेग-सत्यासत्यकी परीक्षा ।
संवर–नये कर्म बँधे नहीं, ऐसी प्रवृत्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासा–समिई–बोलनेमें साव–धानी रखो ।

छज्जीव–करुणा य–छः कायके जीवोंके प्रति करुणा रखो ।

छज्जीव–छः कायके जीव-(१) पृथ्वीकाय, (२) अप्काय, (३) तेजस्काय, (४) वायु-काय, (५) वनस्पतिकाय और (६) त्रसकाय ।

धम्मिअजण – संसग्गो– धार्मिक मनुष्योंके संसर्गमें रहो ।

करणदमो-इन्द्रियोंका दमन करो ।

करण–इन्द्रियाँ । दम-दमन ।

चरण-परिणामो–चारित्र ग्रहण करनेकी भावना रखो ।

चरण–चारित्र । परिणाम–भावना ।

संघोवरि बहुमाणो-सङ्घके प्रति बहुमान रखो ।

पुत्थय–लिहणं–(धार्मिक) पुस्तकें लिखाओ ।

पभावणा तित्थे–तीर्थकी प्रभा–वना करो ।

तीर्थ–प्रभावना-धर्मकी उन्नति हो ऐसा प्रयत्न ।

सड्ढाण–श्रावकोंके ।

किच्चमेअं–ये कृत्य हैं ।

निच्चं–नित्य ।

सुगुरूवएसेणं – सद्गुरुके उप–देशसे ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे भव्य जीवो ! तुम जिनेश्वरोंकी आज्ञाको मानो, मिथ्यात्वका त्याग करो, सम्यक्त्वको धारण करो और प्रतिदिन छःप्रकारके आवश्यक करनेमें प्रयत्नशील बनो ।। १ ।।

और पर्वके दिनोंमें पोषध करो, दान दो, सदाचारका पालन करो, तपका अनुष्ठान करो, मैत्री आदि उत्तम प्रकारकी भावना करो, पाँच प्रचारके स्वाध्यायमें मग्न बनो, नमस्कार-मन्त्रकी गणना करो, परोपकार-परायण बनो और यथाशक्य दयाका पालन करो।।२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिदिन जिनेश्वरदेवकी पूजा करो, नित्य जिनेश्वरदेवकी स्तुति करो, निरन्तर गुरुदेवकी स्तुति करो, सर्वदा साधर्मिक भाइयोंके प्रति वात्सल्य दिखलाओ, व्यवहारकी शुद्धि रखो तथा रथ-यात्रा और तीर्थ-यात्रा करो ॥ ३ ॥

कषायोंको शान्त करो, सत्यासत्यकी परीक्षा करो, संवरके कृत्य करो, बोलने में सावधानी रखो, छः कायके जीवोंके प्रति करुणा रखो, धार्मिकजनोंका संसर्ग रखो, इन्द्रियोंका दमन करो तथा चारित्र ग्रहण करने की भावना रखो ॥ ४ ॥

सङ्घके प्रति बहुमान रखो, धार्मिक पुस्तकें लिखाओ और तीर्थकी प्रभावना करो। ये श्रावकोंके नित्य कृत्य हैं, जो सद्गुरुके उपदेशसे जानना चाहिये ॥ ५ ॥

सूत्र-परिचय—

यह सज्झाय पोषधव्रतमें तथा पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक-प्रतिक्रमणके पहले दिन दैवसिक-प्रतिक्रमणमें बोला जाता है। इसमें श्रावकके करने योग्य ३६ प्रकारके कार्य प्रदर्शित किये गये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६ सकल–तीर्थ–वंदना

['सकल–तीर्थ–वन्दना']

मूल—

[चोपाई]

सकल–तीर्थ वन्दूं कर जोड़, जिनवर–नामे मंगल कोड़ ।
पहले स्वर्गे लाख बत्तीश, जिनवर–चैत्य नमूं निश–दीस ॥१॥
तीजे लाख अट्ठावीस कह्यां, त्रीजे बार लाख सद्दह्यां ।
चौथे स्वर्गे अड लक्खधार, पांचमे वन्दूं लाख ज चार ॥२॥
छट्ठे स्वर्गे सहस पचास, सातमे चालीस सहस प्रासाद ।
आठमे स्वर्गे छ हजार, नव–दशमे वन्दूं शत चार ॥३॥
अग्यार–बारमे त्रणसें सार, नव ग्रैवेयके त्रणसें अढार ।
पांच अनुत्तर सर्वे मली, लाख चौरासी अधिकां वली ॥४॥
सहस सत्ताणुं त्रेवीश सार, जिनवर–भवन तणो अधिकार ।
लांबा सौ जोजन विस्तार, पचास ऊंचा बहोतर धार ॥५॥
एकसौ एंशी बिंब प्रमाण, सभा–सहित एक चैत्ये जाण ।
सौ कोड बावन कोड संभाल, लाख चोराणुं सहस चौंआल ॥६॥
सातसै उपर साठ विशाल, सब बिंब प्रणमूं त्रण काल ।
सात कोड़ ने बहोंतेर लाख, भवनपतिमां देवल भाख ॥७॥
एकसौ एंशी बिंब प्रमाण, एक एक चैत्ये संख्या जाण ।
तेरसै कोड़ नेव्याशी कोड, आठ लाख वन्दूं कर जोड ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीसं ने ओगणसाठ, तिर्छालोकमां चैत्यनो पाठ ।
त्रण लाख एकाणुं हजार, त्रणसै बीस ते बिंब जुहार ॥९॥
व्यंतर ज्योतिषीमां वली जेह, शाश्वता जिन वन्दूं तेह ।
ऋषभ चन्द्रानन वारिषेण, वर्धमान नामे गुण-सेण॥१०॥
संमेतशिखर वंदुं जिन बीस, अष्टापद वन्दूं चौबीस ।
विमलाचल ने गढ गिरनार, आबू ऊपर जिनवर जुहार॥११॥
शंखेश्वर केसरियो सार, तारंगे श्रीअजित जुहार ।
अंतरिक्ख वरकाणो पास, जीराउलो ने थंभण पास ॥१२॥
गाम नगर पुर पाटण जेह, जिनवर–चैत्य नमूं गुणगेह ।
विहरमाण वन्दूं जिन बीस, सिद्ध अनन्त नमूं निश-दीस ।१३।
अढीद्वीपमां जे अणगार, अढार सहस सीलांगना धार ।
पंच महाव्रत समिति सार, पाले पलावे पंचाचार ॥१४॥
बाह्य अभ्यंतर तप उजमाल, ते मुनि वन्दूं गुण–मणिमाल ।
नितनित उठी कीर्ति करुं, जीव कहे भवसायर तरुं॥१५॥

शब्दार्थ—

सरल है ।

अर्थ–सङ्कलना—

सब तीर्थोंको मैं वन्दन करता हूँ, कारण कि श्रीजिनेश्वर प्रभुके नामसे करोड़ों मङ्गल प्रवृत्त होते हैं । मैं प्रतिदिन श्रीजिनेश्वरके चैत्योंको नमस्कार करता हूँ । (वह इस प्रकार–) पहले देवलोकमें स्थित बत्तीस लाख जिन–भवनोंको मैं वन्दन करता हूँ ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे देवलोकमें अट्ठाईस लाख, तीसरे देवलोकमें बारह लाख चौथे देवलोकमें साठ लाख और पाँचवें देवलोकमें चार लाख जिन-भवनोंको मैं वन्दन करता हूँ ॥ २ ॥

छठे देवलोकमें पचास हजार, सातवें देवलोकमें चालीस हजार, आठवें देवलोकमें छः हजार, नौवें और दसवें देवलोकके मिलकर चारसौ जिन-भवनोंको मैं वन्दन करता हूँ ॥ ३ ॥

ग्यारहवें और बारहवें देवलोकके मिलकर तीनसौ, नौ ग्रैवेयकमें तीनसौ अठारह तथा पाँच अनुत्तर विमानमें पाँच जिन--भवन मिलकर चौरासी लाख, सत्तानवे हजार तेईस जिन--भवन हैं, उनको मैं वन्दन करता हूँ कि जिनका अधिकार शास्त्रोंमें वर्णित है। ये जिन--भवन सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊँचे हैं ॥ ४--५ ॥

इन प्रत्येक जिन--भवनों अथवा चैत्योंमें सभा--सहित १८० जिन--बिम्बोंका प्रमाण है; इस प्रकार सब मिलकर एकसौ बावन करोड़ चौरानवे लाख, चौंतालीस हजार, सातसौ साठ (१५२९४४-४७६०) विशाल जिन--प्रतिमाओंका स्मरणकर तीनों काल मैं प्रणाम करता हूँ। भवनपतिके आवासोंमें सात करोड़, बहत्तर लाख (७७२०००००) जिन--चैत्य कहे हुए हैं ॥ ६--७ ॥

इन प्रत्येक चैत्योंमें एकसौ अस्सी जिन बिम्ब होते हैं। अतः सब मिलकर तेरह सौ नवासी करोड़ और साठ लाख (१३८९६००००००) जिन बिम्ब होते हैं, जिन्हें हाथ जोड़कर मैं वन्दन करता हूँ ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्छा–लोक अर्थात् मनुष्य–लोकमें तीन हजार; दोसौ उनसठ (३२५९) शाश्वत चैत्योंका वर्णन आता है, जिनमें तीन लाख इकानवे हजार, तीनसौ बीस (३९१३२०) जिनप्रतिमाएँ हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ ।। ९ ।।

इसके अतिरिक्त व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके निवासमें जो जो शाश्वत जिन–बिम्ब हैं, उन्हें भी मैं वन्दन करता हूँ। गुणोंकी श्रेणिसे परिपूर्ण चार शाश्वत जिन–बिम्बोंके शुभनाम–१ श्रीऋषभ, २ चन्द्रानन, ३ वारिषेण और ४ वर्द्धमान हैं ।। १० ।।

संमेतशिखरपर बीस तीर्थङ्करोंकी प्रतिमाएँ हैं, अष्टापदपर चौबीस तीर्थङ्करोंकी प्रतिमाएँ हैं, तथा शत्रुञ्जय, गिरनार और आबूपर भी भव्य जिन—मूर्तियाँ हैं, उन सबको मैं वन्दन करता हूँ ।। ११ ।।

तथा शङ्खेश्वर, केशरियाजी आदिमें भी पृथक् पृथक् तीर्थङ्करों-की प्रतिमाएँ हैं; एवं तारंगापर श्रीअजितनाथजीकी प्रतिमा है, उन सबको मैं वन्दन करता हूँ। इसी प्रकार अन्तरिक्षपार्श्वनाथ, जीरावला पार्श्वनाथ और स्तम्भनपार्श्वनाथके तीर्थ भी प्रसिद्ध हैं, उन सबको मैं वन्दन करता हूँ ।। १२ ।।

इसके उपरान्त भिन्न भिन्न ग्रामोंमें, नगरोंमें, पुरोंमें और पट्टन (पाटण)में गुणोंके गृहरूप जो जो जिनेश्वर प्रभुके चैत्य हों, उनको मैं वन्दन करता हूँ। तथा बीस विहरमाण जिन एवं आजतक हुए अनन्त सिद्धोंको मैं प्रतिदिन नमस्कार करता हूँ ।। १३ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाईद्वीपमें जो साधु अठारह हजार शीलाङ्ग-रथके धारण करनेवाले हैं, पाँच महाव्रत, पाँच समिति तथा पाँच आचारके स्वयं पालन करनेवाले हैं और दूसरोंसे भी पालन करानेवाले हैं, ऐसे गुणरूपी रत्नोंकी मालाको धारण करनेवाले मुनियोंको मैं वन्दन करता हूँ।। १४।।

जीव (श्रीजीवविजयजी महाराज) कहते हैं कि नित्य प्रातः-कालमें उठकर इन सबका मैं कीर्तन करता हूँ, (मैं) भवसागर तिर जाऊँगा ।। १५ ।।

सूत्र-परिचय—

यह सूत्र रात्रिक-प्रतिक्रमणके छः आवश्यक पूर्ण होनेके पश्चात् लोकमें स्थित शाश्वत चैत्य, शाश्वत जिनबिम्ब, वर्तमान तीर्थ, विरहमाण जिन, सिद्ध और साधुओंको वन्दन करनेके लिये बोला जाता है; अतः इसे सकलतीर्थ-वन्दना कहते हैं। आरम्भके शब्दोंसे 'सकल तीरथ' के नामसे भी प्रसिद्ध है। इसकी रचना विक्रमकी अठारहवीं शतीके अन्तिम भागमें उत्पन्न हुए श्रीजीवविजयजी महाराजने की है।

---

४७ पोसह–सुत्तं

['पोषध लेनेका' सूत्र]

मूल—

करेमि भंते ! पोसहं,
आहार–पोसहं देसओ सव्वओ,
सरीर–सक्कार–पोसहं सव्वओ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंभचेर–पोसहं सव्वओ,
अव्वावार–पोसहं सव्वओ,
चउव्विहं पोसहं ठामि,
जाव दिवसं (जाव अहोरत्तं) पज्जुवासामि,
दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं न करोमि,
न कारवेमि ।
तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि,
अप्पाणं वोसिरामि ॥

शब्दार्थ—

करेमि–करता हूँ ।
भंते !–हे भदन्त ! हे पूज्य !
पोसहं–पोषध ।
आहार–पोसहं–आहार–पोषध ।
आहार–सम्बन्धी पोषध करना वह–आहार–पोसह ।
देसओ–देशसे, कुछ अंशोंमें ।
सव्वओ–सर्वसे, सर्वांशमें ।
सरीर–सक्कार–पोसहं – शरीर – सत्कार–पोषध ।
सरीर–काया । सक्कार-स्नान, उद्वर्तन (उबटन), विलेपन आदि विशिष्ट वस्त्र अलङ्कार धारण करनेकी क्रिया ।
सव्वओ–सर्वसे ।
बंभचेर–पोसहं–ब्रह्मचर्य-पोषध ।
सव्वओ–सर्वसे ।
अव्वावार-पोसहं–अव्यापार-पोषध कुत्सित प्रवृत्तिके त्यागरूप जो पोषध वह अव्यापार-पोषध ।
सव्वओ–सर्वसे ।
चउव्विहं–चार प्रकारके ।
पोसहं–पोषधके विषयमें, पोषध-व्रतमें ।
ठामि–रहता हूँ, स्थिर होता हूँ ।
जाव–जहाँतक ।
दिवसं–दिन पूर्ण हो वहाँतक ।
(**जाव**–जहाँतक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहोरत्तं–अहोरात्र ।) (दिवस और रात्रि पूर्ण हो, वहाँतक ।)
पज्जुवासामि–सेवन करूँ ।
दुविहं–दो प्रकारसे, करना और करानारूप दो प्रकारोंसे ।
तिविहेणं–तीन प्रकारसे, मन, वचन और काया इन तीन प्रकारोंसे ।
मणेणं–मनसे ।
वायाए–वाणीसे ।
काएणं–कायासे ।
न करेमि–न करूँ ।
न कारवेमि–न कराऊँ ।
तस्स–तत्सम्बन्धी सावद्य योगका ।
भंते !–हे भदन्त ! हे भगवन् !
पडिक्कमामि–प्रतिक्रमण करता हूँ, निवृत्त होता हूँ ।
निंदामि–निन्दा करता हूँ, बुरा मानता हूँ ।
गरिहामि–गर्हा करता हूँ, घृणा करता हूँ ।
अप्पाणं–आत्माका, कषायात्माका ।
वोसिरामि–वोसिराता हूँ, त्याग करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे पूज्य ! मैं पोषध करता हूँ । उसमें आहार–पोषध देशसे (कुछ अंशमें) अथवा सर्वसे (सर्वांशसे) करता हूँ, ब्रह्मचर्य–पोषध सर्वसे करता हूँ और अव्यापार–पोषध (भी) सर्वसे करता हूँ । इस तरह चार प्रकारके पोषध-व्रतमें स्थिर होता हूँ । जहाँतक दिन अथवा अहोरात्र–पर्यन्त मैं प्रतिज्ञाका सेवन करूँ वहाँतक मन, वचन और कायासे सावद्य–प्रवृत्ति न करूँ और न कराऊँ । हे भगवन् ! इस प्रकारकी जो कोई अशुभ–प्रवृत्ति हुई हो उससे मैं निवृत्त होता हूँ । उन अशुभ प्रवृत्तियोंको मैं बुरी मानता हूँ, तत्सम्बन्धी घृणा करता हूँ और इस अशुभ प्रवृत्तिको करनेवाले कषायात्माका मैं त्याग करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय--

इस सूत्रसे पोषध लिया जाता है।

पोषध

प्रश्न—पोषध क्या है ?

उत्तर—एक प्रकारका शिक्षाव्रत। श्रावकके बारह व्रतोंमें इसका क्रम ग्यारहवाँ है ?

प्रश्न—पोषधका अर्थ क्या है ?

उत्तर—धर्मका पोषण करे, धर्मकी पुष्टि करे, वह पोषध। श्रीहरिभद्रसूरिने दसवें पञ्चाशकमें कहा है कि 'जो कुशल धर्मका पोषण करता है जिसमें श्रीजिनेश्वर देवोंद्वारा कथित आहार-त्याग आदिका विधि-पूर्वक अनुष्ठान किया जाय वह पोषध।'

प्रश्न—पोषध कितने प्रकारका है ?

उत्तर—चार प्रकारका। आहार-पोषध, शरीरसत्कार-पोषध, ब्रह्मचर्य-पोषध और अव्यापार-पोषध।

प्रश्न—आहार-पोषध किसे कहते हैं ?

उत्तर—उपवास आदि तप करना, उसे आहार-पोषध कहते हैं।

प्रश्न—शरीरसत्कार-पोषध किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्नान, उद्वर्तन (पीठी अथवा अन्य उबटन लगाना), विलेपन, पुष्प, गन्ध, विशिष्ट वस्त्र और आभरणादिसे शरीरका सत्कार करनेका त्याग करना, उसे शरीरसत्कार-पोषध कहते हैं।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य-पोषध किसे कहते हैं ?

उत्तर—ब्रह्मचर्यका पालन करना, उसे ब्रह्मचर्य-पोषध कहते हैं।

प्रश्न—अव्यापार-पोषध किसे कहते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—सावद्य व्यापारका त्याग करना, उसे अव्यापार-पोषध कहते हैं।

प्रश्न—ये प्रत्येक पोषध कितने प्रकारसे होता है ?

उत्तर—दो प्रकारसे :—एक देशसे और दूसरा सर्वसे, परन्तु वर्तमान सामाचारीके अनुसार आहार-पोषध ही देशसे और सर्वसे, इस तरह दो प्रकारसे होता है और शेष तीन पोषध केवल सर्वसे होते हैं।

प्रश्न—पोषधव्रत कितने समयके लिये ग्रहण किया जाता है ?

उत्तर—पोषधव्रत सामान्यतया एक अहोरात्र अर्थात् आठ प्रहरके लिये ग्रहण किया जाता है, परन्तु ऐसी अनुकूलता न हो तो केवल दिन अथवा केवल रात्रिके लिये भी पोषध-व्रत लिया जा सकता है।

प्रश्न—पोषध-व्रतसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—पौषधव्रतसे साधुजीवनकी शिक्षा मिलती है और आध्यात्मिक शान्ति प्राप्ति होती है।

---

४८ पोसह--पारण--सुत्तं

['पोसह पारनेका'-सूत्र]

मूल—

[गाहा]

सागरचंदो कामो, चंदवडिंसो सुदंसणो धन्नो।
जेसिं पोसह–पडिमा, अखंडिया जीविअंते वि ॥१॥
धन्ना सलाहणिज्जा, सुलसा आणंद–कामदेवा य।
जास पसंसइ भयवं, दढव्वयत्तं महावीरो ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोषध विधिसे लिया, विधिसे पूर्ण किया, विधि करने-में जो कोई अविधि हुई हो, उन सबका मन, वचन काया-से मिच्छा मि दुक्कडं ॥

पोषधके अठारह दोषोंमें जो कोई दोष लगा हो तो उन सबका मन, वचन और कायासे मिच्छा मि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ—

सागरचंदो–सागरचन्द्र राजर्षि ।
कामो–कामदेव श्रावक ।
चंदवडिंसो–चन्द्रावतंस राजा ।
सुदंसणो–सुदर्शन सेठ ।
धन्नो–धन्य हैं ।
जेसिं–जिनकी ।
पोसह–पडिमा–पोषधकी प्रतिमा (नियम--विशेष) ।
अखंडिआ–खण्डित नहीं हुई, अखण्डित रही ।
जीविअंते–जीवनके अन्त तक ।
वि–भी ।
धन्ना–धन्य हैं ।
सलाहणिज्जा–श्लाघनीय हैं, प्रशंसनीय हैं ।
सुलसा–सुलसा नामवाली भगवान् महावीरकी परम श्राविका ।
आणंद–कामदेवा–आनन्द और कामदेव नामके श्रावक ।
य–और ।
जास–जिनके ।
पसंसइ–प्रशंसा करते हैं ।
भयवं–भगवान् ।
दढव्वयत्तं–दृढव्रतताकी, व्रतकी दृढताकी ।
महावीरो–श्रमण भगवान् महावीर ।
पोसह–विधिसे०–अर्थ स्पष्ट है ।

अर्थ–सङ्कलना—

सागरचन्द्र, कामदेव, चन्द्रावतंस राजा और सुदर्शन सेठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्य हैं जिनको पोषध--प्रतिमा (प्रतिज्ञा) जीवनके अन्ततक अखण्डित रही ।। १ ।।

श्रवण भगवान् महावीर जिनके व्रतकी दृढताकी प्रशंसा करते हैं, वे सुलसा, आनन्द और कामदेव आदि धन्य और प्रशंसनीय हैं ।।२।।

शेष स्पष्ट है ।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रसे पोषध पूर्ण किया जाता है ।

पोषध त्यागने योग्य अठारह दोष

१. पोषधमें विरति–रहित किसी अन्य श्रावकका लाया हुआ आहार-पानी वापरना–काममें लाना ।

२. पोषधके निमित्त सरस (रसादियुक्त) आहार लेना ।

३. उत्तरवारणाके दिन विविध प्रकारकी सामग्री वापरना ।

४. पोषधके निमित्त उसके पूर्व देहविभूषा करनी ।

५. पोषधके निमित्त वस्त्रादि धुलवाना ।

६. पोषधके निमित्त आभूषण बनवाना और पोषधके समय धारण करना।

७. पोषधके निमित्त वस्त्र रँगवाना ।

८. पोषधके समय शरीरसे मैल उतारना ।

९. पोषधमें असमयमें शयन करना अथवा निद्रा लेना ।

(रात्रिके दूसरे प्रहरमें संथारा–पोरिसी करके निद्रा लेना उपयुक्त है ।)

१०. पोषधमें अच्छे–बुरे आहारके सम्बन्धमें चर्चा करना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. पोषधमें भली–बुरी राजकथा अथवा युद्धकथा करनी।
१३. पोषधमें देशकथा करनी।
१४. पोषधमें पूंजन–पडिलेहण विना लघुनीति अथवा बड़ीनीति परठवना।
१५. पोषधमें किसीकी निन्दा करनी।
१६. पोषधमें जिन्होंने पोषध नहीं लिया ऐसे माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री आदि सम्बन्धियोंसे वार्तालाप करना।
१७. पोषधमें चोर सम्बन्धी बात करनी।
१८. पोषधमें स्त्रियोंके अङ्गोपाङ्ग देखना।

---

४९ संथारा–पोरिसी

[संस्तारक–पौरुषी]

मूल—

१ नमस्कार

निसीहि, निसीहि, निसीहि,
नमो खमासमणाणं गोयमाइणं महामुणीणं ॥

शब्दार्थ—

निसीहि–अन्य सर्व प्रवृत्तियोंका निषेध करता हूँ।
नमो–नमस्कार हो।
खमासमणाणं–क्षमा–श्रमणोंको।
गोयमाइणं–गौतम आदि।
महामुणिणं–महामुनियोंको।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ–सङ्कलना—

अन्य सर्व प्रवृत्तियोंका निषेध करता हूँ, निषेध करता हूँ, निषेध करता हूँ। क्षमाश्रमणोंको नमस्कार हो। गौतम आदि महामुनियोंको नमस्कार हो ॥

मूल—

२ संथारेकी आज्ञा

अणुजाणह जिट्ठज्जा !
अणुजाणह परम–गुरू ! गुरु–गुण–रयणेहिं मंडिय–सरीरा ! ।
बहु–पडिपुन्ना पोरिसी, राइय–संथारए ठामि ॥१॥

शब्दार्थ—

अणुजाणह–अनुज्ञा दीजिये।
जिट्ठज्जा !–हे ज्येष्ठ आर्यो।
अणुजाणह–अनुज्ञा दीजिये।
परम–गुरू–!–हे परम–गुरुओं !
गुरु–गुण–रयणेहिं—उत्तम गुण–रत्नोंसे।
मंडिय – सरीरा ! – विभूषित देहवाले !
बहु–पडिपुन्ना–सम्पूर्ण, अच्छी तरह परिपूर्ण।
पोरिसी–पौरुषी।
पोरिसी–दिन अथवा रात्रिका चौथा भाग।
राइय–संथारए—रात्रि–संथारेके विषयमें।
ठामि–स्थिर होता हूँ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे ज्येष्ठ आर्यो ! अनुज्ञा दीजिये।

उत्तम गुणरत्नोंसे विभूषित देहवाले हे परम–गुरुओं (प्रथम) पौरुषी अच्छी तरह परिपूर्ण हुई है, अतः रात्रि–संथारेके विषयमें स्थिर होता हूँ ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

३ संथारेकी विधि

अणुजाणह संथारं, बाहुवहाणेण वाम–पासेणं ।
कुक्कुडि–पाय–पसारण, अतरंत पमज्जए भूमिं ॥२॥

शब्दार्थ—

अणुजाणह–अनुज्ञा दीजिये ।
संथारं–संथारेकी ।
बाहुवहाणेण–हाथका उपधान (तकिया) करनेसे ।
बाहु–हाथ । उवहाण–तकिया ।
वाम–पासेणं–बाँयी करवटसे ।
कुक्कुडि – पाय – पसारण – मुर्गीकी तरह पाँव रखकर सोनेमें ।
अतरंत–अशक्त होऊँ ।
पमज्जए–प्रमार्जन करूँ ।
भूमिं–भूमिका ।

अर्थ–सङ्कलना—

(हे भगवन् !) संथारेकी अनुज्ञा दीजिये, हाथका तकिया करनेसे तथा बाँयी करवटसे सोनेसे (इसकी विधि की जाती है, वह मैं जानता हूँ) और मुर्गीकी तरह पाँव रखकर (सोना चाहिये यह भी मैं जानता हूँ । यदि इस प्रकार) सोनेमें अशक्त होऊँ तो भूमिका प्रमार्जन करूँ (और बादमें पाँव लम्बे करूँ) ॥ २ ॥

मूल—

संकोइअ संडासा, उव्वट्टंते अ काय–पडिलेहा ।

४ जगना पड़े तो

दव्वाइ–उवओगं, णिस्सास–निरुंभणालोए ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

संकोइअ–पैर लम्बे करनेके बादमें सिकोड़ने पड़ें तो।

संडासा–घुटनोंको (पूंजकर)।

उव्वट्टंते–करवट बदलना।

अ–और।

काय–पडिलेहा–कायाकी पडिलेहणा करनी।

दव्वाइ – उवओगं – द्रव्यादिका विचार करना; द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी विचारणा करनी।

णिस्सास – निरुंभणालोए – श्वासको रोकना और द्वारकी ओर देखना।

णिस्सास–निःश्वास। निरुंभण–रोध, रोकना।

अर्थ–सङ्कलना—

यदि पैर लम्बे करनेके बादमें सिकुड़ने पड़ें तो घुटनों को पूंजकर सिकुड़ने और करवट बदलना पड़े तो शरीरका प्रमार्जन करना (यह इसकी विधि है। यदि कायचिन्ताके लिये उठना पड़े तो) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी विचारणा करनी और (इतना करनेपर भी यदि निद्रा न उड़े तो हाथसे नाक दबाकर) श्वासको रोकना और इस प्रकार निद्रा बराबर उड़े तब प्रकाशवाले द्वारके सामने देखना (ऐसी इसकी विधि है) ॥ ३ ॥

मूल—

५ सागरी अणसण

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइ रयणीए।
आहारमुवहि–देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जइ–यदि ।
मे–मेरे ।
हुज्ज–हो ।
पमाओ–प्रमाद, मरण ।
इमस्स–इस ।
देहस्स–देहका ।
इमाइ रयणीए–इस रात्रिमें ही ।
आहारमुवहि-देहं–आहार–पानी, वस्त्र–उपकरण और देहका ।
सव्वं–सबका ।
तिविहेण– तीन प्रकारसे, मन, वचन और कायासे ।
वोसिरिअं– वोसिराया है, त्याग किया है ।

अर्थ–सङ्कलना—

यदि मेरे इस देहका इस रात्रिमें ही मरण हो तो (अभीसे) मैंने आहार-पाणी, वस्त्र–उपकरण और देह इन सबका मन, वचन और कायासे त्याग किया है ।। ४ ।।

मूल—

६ मङ्गल-भावना

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि-पन्नत्तो धम्मो मंगलं ।। ५ ।।

शब्दार्थ—

चत्तारि–चार, चार पदार्थ ।
मंगलं–मङ्गल ।
अरिहंता–अरिहन्त ।
मंगलं–मङ्गल ।
सिद्धा–सिद्ध ।
मंगलं–मङ्गल ।
साहू–साधु ।
मंगलं–मङ्गल ।
केवलि-पन्नत्तो–केवलियों से प्ररूपित, केवलि-प्ररूपित ।
धम्मो–धर्म ।
मंगलं–मङ्गल ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

चार पदार्थ मङ्गल हैं :-(१) अरिहन्त मङ्गल हैं, (२) सिद्ध मङ्गल हैं, (३) साधु मङ्गल हैं और (४) केवलि-प्ररूपित धर्म मङ्गल है ॥ ५ ॥

मूल—

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—

चत्तारि–चार, चार पदार्थ ।
लोगुत्तमा–लोकोत्तम हैं ।
अरिहन्ता०–पूर्ववत् ।

अर्थ-सङ्कलना—

चार पदार्थ लोकोत्तम हैं :—(१) अरिहन्त लोकोत्तम हैं, (२) सिद्ध लोकोत्तम हैं, (३) साधु लोकोत्तम हैं और (४) केवलि-प्ररूपित धर्म लोकोत्तम है ॥ ६ ॥

मूल—

७ चार शरण

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि-पन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

चत्तारि–चारोंकी ।
सरणं–शरण ।
पवज्जामि–स्वीकृत करता हूँ, अङ्गीकार करता हूँ ।
अरिहंते–पूर्ववत्० ।

अर्थ-सङ्कलना—

(संसारके भयसे बचनेके लिये) मैं चारोंकी शरण अङ्गीकार करता हूँ :—(१) अरिहन्तोंकी शरण अङ्गीकार करता हूँ, (२) सिद्धोंकी शरण अङ्गीकार करता हूँ, (३) साधुओं की शरण अङ्गीकार करता हूँ और (४) केवलि–प्ररूपित धर्मकी शरण अङ्गीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

मूल—

८ अठारह पापस्थानोंका त्याग

पाणाइवायमलियं, चोरिक्कं मेहुणं दविण–मुच्छं ।
कोहं माणं मायं, लोहं पिज्जं तहा दोसं ॥ ८ ॥
कलहं अब्भक्खाणं, पेसुन्नं रइ–अरइ–समाउत्तं ।
परपरिवायं माया–मोसं मिच्छत्त–सल्लं च ॥ ९ ॥
वोसिरसु इमाइं मुक्ख–मग्ग–संसग्ग–विग्घभूआइं ।
दुग्गइ–निबंधणाइं, अट्ठारस पावठाणाइं ॥ १० ॥

शब्दार्थ—

पाणाइवायं–प्राणातिपात ।
अलियं–झूठा, मृषावाद ।
चोरिक्कं–चोरी, अदत्तादान ।
मेहुणं–मैथुन ।
दविण–मुच्छं–द्रव्यपर ममत्व, परिग्रह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोहं–क्रोध ।

माणं–मान ।

मायं–माया ।

लोहं–लोभ ।

पिज्जं–राग ।

तहा–तथा ।

दोसं–द्वेष ।

कलहं–कलह ।

अब्भक्खाणं–आक्षेप, अभ्याख्यान ।

पेसुन्नं–चुगली, पैशुन्य ।

रइ–अरइ–समाउत्तं–रति और अरतिसे युक्त, रति–अरति ।

पर-परिवायं–दूसरेको अवर्णवाद (अयोग्यवचन) बोलनेकी क्रिया, पर–परिवाद ।

माया-मोसं–माया–मृषावाद ।

मिच्छत्त–सल्लं – मिथ्यात्वरूपी शल्यको, मिथ्यात्व–शल्य ।

च–और ।

वोसिरसु–छोड़ दे, त्याग करने योग्य हैं ।

इमाइं-ये ।

मुक्ख – मग्ग – संसग्ग – विग्घ-भूआइं–मोक्षमार्गकी प्राप्तिमें विघ्नभूत ।

मुक्ख–मग्ग–मोक्षमार्ग ।

संसग्ग–प्राप्ति ।

विग्घभूअ–विघ्नभूत, अन्तरायरूप ।

दुग्गइ–निबंधणाइं–दुर्गतिके कारणरूप ।

दुग्गइ–नरक, तिर्यञ्च आदि गति । निबंधण–कारणरूप ।

अट्ठारस–अठारह ।

पाव–ठाणाइं–पाप–स्थानक ।

अर्थ–सङ्कलना—

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति–अरति, पर–परिवाद, माया–मृषावाद और मिथ्यात्व–शल्य ये अठारह पाप–स्थानक मोक्ष–मार्गकी प्राप्तिमें विघ्नभूत और दुर्गतिके कारण होनेसे त्याग करने योग्य हैं (अतः मैं इनका त्याग करता हूँ) ।। ८–९–१० ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

९ आत्मानुशासन

[सिलोगो]

एगो हं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ ।
एवं अदीण-मणसो, अप्पाणमणुसासइ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—

एगो–एक, अकेला ।
हं–मैं ।
नत्थि–नहीं है ।
मे–मेरा ।
कोइ–कोई ।
न–नहीं ।
अहं–मैं ।
अन्नस्स–दूसरेका ।
कस्सइ–किसी ।
एवं–इस प्रकार ।
अदीण-मणसो–दीनतासे रहित मनवाला, अदीन मनसे विचारता हुआ ।
अप्पाणमणुसासइ – आत्माको शिक्षा दे, आत्माको समझाये ।

अर्थ-सङ्कलना—

'मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और मैं किसी दूसरेका नहीं हूँ,' इस प्रकार अदीन मनसे विचारता हुआ आत्माको समझाये (समझाना चाहिये) ॥ ११ ॥

मूल—

एगो मे सासओ अप्पा, नाण-दंसण-संजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग-लक्खणा ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

एगो–एक ।
मे–मेरी ।
सासओ–शाश्वत, अमर ।
अप्पा–आत्मा ।
नाण–दंसण–संजुओ–ज्ञान और दर्शनसे युक्त ।
सेसा–शेष, दूसरे सब ।
मे–मेरे ।
बाहिरा भावा – बाह्य – भाव, बहिर्भाव ।
सव्वे–सब ।
संजोग – लक्खणा – पुद्गलके संयोगसे उत्पन्न, संयोगसे उत्पन्न ।

अर्थ–सङ्कलना—

ज्ञान और दर्शनसे युक्त एक मेरी आत्मा ही अमर है और दूसरे सब संयोगसे उत्पन्न बहिर्भाव हैं ।। १२ ।।

मल—

१० सर्व सम्बन्धका त्याग

संजोग–मूला जीवेण, पत्ता दुक्ख–परंपरा ।
तम्हा संजोग–संबंधं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ।।१३।।

शब्दार्थ—

संजोग–मूला–संयोगके कारण उत्पन्न हुई, कर्म-संयोगके कारण ही ।
जीवेण–जीवने ।
पत्ता–प्राप्त की है ।
दुक्ख–परंपरा–दुःखकी परम्परा ।
तम्हा–अत एव ।
संजोग–संबंधं – संयोग – सम्बन्ध-को, कर्म-संयोगोंको ।
सव्वं–सर्व ।
तिविहेणं–तीन प्रकारसे, मन, वचन और कायासे ।
वोसिरिअं – वोसिराया-त्याग किया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

मेरे जीवने दुःखकी परम्परा कर्म-संयोगके कारण ही प्राप्त की है, अत एव इन सर्व कर्म-संयोगोंको मैंने मन, वचन और कायासे वोसिराया-त्याग किया है ॥ १३ ॥

मूल—

११ सम्यक्त्वकी धारणा

[गाहा]

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिण-पन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहिअं ॥१४॥

शब्दार्थ—

अरिहंतो-अरिहन्त ।
मह-मेरे ।
देवो-देव (हैं) ।
जावज्जीवं-जीऊँ वहाँतक ।
सुसाहुणो-सुसाधु ।
गुरुणो-गुरु (हैं) ।
जिन-पन्नत्तं-जिनोंद्वारा प्ररूपित ।
तत्तं-तत्त्व ।
इअ-ऐसा ।
सम्मत्तं-सम्यक्त्व ।
मए-मैंने ।
गहिअं-ग्रहण किया है ।

अर्थ-सङ्कलना—

मैं जीऊँ वहाँतक अरिहन्त मेरे देव हैं, सुसाधु मेरे गुरु हैं और जिनोंद्वारा प्ररूपित तत्त्व (यह मेरा धर्म है,) ऐसा सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है ॥ १४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

१२ क्षमापना

[दोहा]

खमिअ खमाविअ मइ खमह, सव्वह जीव–निकाय ! ।
सिद्धह साख आलोयण, मुज्झह वइर न भाव ॥१५॥

शब्दार्थ—

खमिअ–क्षमा करके (क्षमा किया) ।
खमाविअ–क्षमा कराकर, क्षमा माँगकर (क्षमा माँगी) ।
मइ–मुझे ।
खमह–क्षमा करो ।
सव्वह–आप सब ।
जीव–निकाय !–हे जीव–समूह !
सिद्धह–सिद्धोंकी ।
साख–साक्षीमें ।
आलोयण–आलोचना करता हूँ ।
मुज्झह–मेरा ।
वइर–वैर ।
न–नहीं ।
भाव–भाव ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे जीव–समूह ! आप सब खमत–खामणा करके मुझे क्षमा करो । मैं सिद्धोंकी साक्षीमें आलोचना करता हूँ कि मेरा किसी भी जीवके साथ वैर–भाव नहीं है ॥ १५ ॥

मूल—

सव्वे जीवा कम्म–वस, चउदह–राज–भमंत ।
ते मे सव्व खमाविआ, मज्झ वि तेह खमंत ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

सव्वे जीवा–सब जीव ।
कम्म-वस–कर्म–वश होकर ।
चउदह-राज–चौदह रज्जुप्रमाण लोकमें ।
भमंत–भ्रमण करते हैं ।
ते–उन ।
मे–मैंने ।
सव्व–सबको ।
खमाविआ–खमाये हैं ।
मज्झ–मुझे ।
वि–भी ।
तेह–वे ।
खमंत–क्षमा करें ।

अर्थ-सङ्कलना—

सब जीव कर्म–वश होकर चौदह रज्जुप्रमाण लोकमें भ्रमण करते हैं, उन सबको मैंने खमाया है, वे भी मुझे क्षमा करें ॥१६॥

मूल—

१३ सर्व पापोंका मिथ्यादुष्कृत

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वायाइ भासिअं पावं ।
जं जं काएण कयं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥१७॥

शब्दार्थ—

जं जं–जो जो ।
मणेण–मनसे ।
बद्धं–बाँधा हो ।
जं जं–जो जो ।
वायाइ–वाणीसे, वचनसे ।
भासिअं–कहा हो ।
पावं–पाप ।
जं जं–जो जो ।
काएण–कायासे ।
कयं–किया हो ।
मिच्छा–मिथ्या ।
मि–मेरा ।
दुक्कडं–दुष्कृत ।
तस्स–तत्सम्बन्धी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

जो जो पाप मनसे बाँधा हो, जो जो पाप वचन से कहा हो, जो जो पाप कायासे किया हो, तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ।।१७।।

सूत्र-परिचय—

साधु तथा पोषधधारी श्रावक रात्रिके प्रथम प्रहरमें स्वाध्याय करनेके पश्चात् दूसरे प्रहरमें संथारा करनेके लिये जब गुरु महाराजकी आज्ञा माँगता है, तब यह सूत्र बोलता है । संथारा करनेकी पोरिसीमें यह सूत्र बोला जाता है, इसलिये इसको संथारा-पोरिसी कहते हैं ।

संथारा-पोरिसी

प्रश्न—संथारा-पोरिसीमें पहले क्या किया जाता है ?

उत्तर—संथारा-पोरिसीमें प्रथम स्वाध्यायादि प्रवृत्तियोंका निषेध करके नमस्कार किया जाता है ।

प्रश्न—यह नमस्कार किसको किया जाता है ?

उत्तर—यह नमस्कार सामान्यतः सर्व क्षमाश्रमणों और विशेषतः गौतमादि महामुनियोंको किया जाता है, क्योंकि निर्वाण-मार्गके साधनमें इनका जीवन मार्गदर्शक है ।

प्रश्न—इसके बाद क्या किया जाता है ?

उत्तर—बादमें नमस्कार-मन्त्र और सामायिक-सूत्र ('करेमि भंते' सूत्र) का पाठ तीन बार बोला जाता है और ज्येष्ठ आचार्य अथवा गुरुको निवेदन किया जाता है कि 'बहु पडिपुन्ना पोरिसी' अर्थात् पोरिसी स्वाध्यायमें अच्छी तरह व्यतीत हुई है, इसलिये संथारेपर जानेकी आज्ञा दीजिये और उस समय संथारेकी सामान्य विधि भी कही जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—संथारेकी सामान्य विधि क्या है ?

उत्तर—संथारेकी सामान्य विधि यह है कि—

(१) तृण; सूखा घास अथवा कमलीका संथारा करना और उसपर तकिया आदि साधन न रखकर हाथका तकिया देकर सोना।

(२) वाम–पार्श्वसे सोना।

(३) सोते समय मुर्गीकी तरह पैरोंको घुटनोंके यहाँसे सिकोड़ लेना।

(४) यदि पैरोंको घुटनेके यहाँसे सिकुड़ना अनुकूल न हो तो पैर लम्बे कर लें किन्तु ऐसा करते समय जिस भूमिपर पैर रखने हों उसका प्रमार्जन कर लेना चाहिए।

(५) पैर लम्बे करनेके बाद सिकोड़ने हों तो घुटनोंका भाग पूंजना जिससे जीव-विराधना होना सम्भव न हो।

(६) यदि करवट बदलनी हो तो शरीरका प्रमार्जन करना। तात्पर्य यह है कि सोनेके पश्चात् इच्छानुसार करवटें नहीं बदली जा सकतीं।

(७) सोनेके बाद कायचिन्ता (मल-मूत्र-त्याग) आदिके लिये उठना पड़े तो निद्रासे सर्वथा मुक्त होकर ही जाना योग्य है, अन्यथा निद्रावस्थामें उठकर इधर उधर धक्के खाते हुए चलना, यह आत्मनिष्ठ पुरुषके लिये योग्य नहीं।

(८) बराबर जागृत होनेके लिये प्रथम द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे विचारणा करनी चाहिये कि 'मैं कौन हूँ ?' 'अभी प्रव्रजित हूँ कि अप्रव्रजित ?' 'व्रतमें हूँ कि व्रतसे बाहर ?' 'कहाँ सोया हुआ हूँ ?' 'पहली, दूसरी या तीसरी मंजिल पर अथवा किसी अन्य स्थानपर (क्षेत्र) ? 'कितना समय व्यतीत हुआ होगा (काल) ? मेरे अभी उठनेका प्रयोजन क्या है (भाव) ? आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) इतना होनेपर भी यदि निद्रा पूर्णतया दूर न हो तो नाक दबाना और श्वास रोकना। जिससे थोड़े ही समयमें निद्राका दूर होना सम्भव है।

(१०) निद्रा बराबर दूर होने पर यदि खिड़की अथवा द्वारसे प्रकाश आता हो तो उसके सामने देखना तथा इस प्रकार सर्वथा निद्रामुक्त होनेके पश्चात् ही जयणापूर्वक कायचिन्ता दूर करनी।

प्रश्न—इसके बाद क्या किया जाता है ?

उत्तर—बादमें सागारी अणसण किया जाता है।

प्रश्न—वह किस तरह ?

उत्तर—'यदि इस रात्रिमें ही मेरा मरण हो जाय तो आहार-पाणी, वस्त्र-उपकरण और देहको मैं मन, वचन और कायासे वोसिराता हूँ' इस प्रकार गुरुके समक्ष प्रकट किया जाता है। इस तरहकी एकरारवाली विज्ञप्तिको 'सागारी अणसण' कहते हैं।

प्रश्न—फिर क्या किया जाता है ?

उत्तर—फिर मङ्गलभावना की जाती है तथा अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवलिप्रणीत धर्म इन चारोंकी शरण अङ्गीकार की जाती है।

प्रश्न—फिर क्या किया जाता है ?

उत्तर—फिर अठारह पापस्थानकोंका त्याग करके आत्मानुशासन किया जाता है। उसके बाद सर्व पौद्गलिक सम्बन्धोंका त्याग करके सम्यक्त्वकी धारणा दृढ़ की जाती है और सब जीवोंके साथ खमत-खामणा करके सब पापोंका मिथ्यादुष्कृत किया जाता है। तदनन्तर रात्रिका संथारा किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५० पच्चक्खाणके सूत्र

प्रभातके पच्चक्खाण ।

१ नवकारसीका पच्चक्खाण ।
२ पोरिसी और साड्ढपोरिसीका पच्चक्खाण ।
३ पुरिमड्ढ-अवड्ढका पच्चक्खाण ।
४ एगासण-बियासण और एगलठाणका पच्चक्खाण ।
५ आयंबिल-निव्विगइय (निव्वी) का पच्चक्खाण ।
६ तिवि(हा)हार उपवासका पच्चक्खाण ।
७ चउवि(हा)हार उपवासका पच्चक्खाण ।

सायंकालके पच्चक्खाण ।

८ पाणहारका पच्चक्खाण ।
९ चउवि(हा)हारका पच्चक्खाण ।
१० तिवि(हा)हारका पच्चक्खाण ।
११ दुवि(हा)हारका पच्चक्खाण ।
१२ देशावकाशिकका पच्चक्खाण ।

मूल—

१ नवकारसीका पच्चक्खाण ।

उग्गए सूरे, नमुक्कार-सहिअं मुट्ठि-सहिअं, पच्चक्खाइ चउव्विहं पि आहारं—असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरह ॥

२ पोरिसी और साढपोरिसीका डेपच्चक्खाण ।

उग्गए सूरे, नमुक्कार–सहिअं पोरिसिं साड्ढ-पोरिसिं मुट्ठि–सहिअं पच्चक्खाइ ।

उग्गए सूरे, चउव्विहं पि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं पच्छन्नकालेणं दिसा–मोहेणं, साहु-वयणेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

३ पुरिमड्ढ—अवड्ढका पच्चक्खाण ।

सूरे उग्गए पुरिमड्ढं अवड्ढं मुट्ठि–सहिअं पच्चक्खाइ ।

चउव्विहं पि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहु–वयणेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

४ एगासण, बियासण और एगलठाण का पच्चक्खाण ।

उग्गए सूरे, नमुक्कार–सहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं मुट्ठि–सहिअं पच्चक्खाइ । चउव्विहं पि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहु–वयणेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं ।

विगइओ पच्चक्खाइ । अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं अक्खित्तविवेगेणं पडुच्चमक्खिएणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगासणं पच्चक्खाइ। तिविहं पि आहारं–असणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सागारिआगारेणं आउंटणपसारणेणं गुरु–अब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं पाणस्स लेवेण वा अलेवेण वा अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरइ ॥

५ आयंबिल, निव्विगइय(निव्वी)का पच्चक्खाण।

उग्गए सूरे नमुक्कार–सहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ।

उग्गए सूरे, चउव्विहं पि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहु-वयणेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं,

आयंबिलं पच्चक्खाइ। अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं लेवा–लेवेणं गिहत्थ–संसट्ठेणं उक्खित्त–विवेगेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं,

एगासणं पच्चक्खाइ। तिविहं पि आहारं–असणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं सागारिआगारेणं आउंटण–पसारणेणं गुरु–अब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं पाणस्स लेवेण वा अलेवेण या अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरइ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६ तिवि(हा)हार उपवासका पच्चक्खाण ।

सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ ।

तिविहं पि आहारं–असणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणहार पोरिसिं साड्ढपोरिसिं मुट्ठि–सहिअं पच्चक्खाइ । अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं दिसा–मोहेणं साहु–वयणेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं पाणस्स लेवेण वा अलेवेण वा अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरइ॥

७ चउव्वि(हा)हारका पच्चक्खाण ।

सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ ।

चउव्विहं पि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

८ पाणहारका पच्चक्खाण ।

पाणहार–दिवसचरिमं पच्चक्खाइ ।

अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

९ चउव्वि(हा)हारका पच्चक्खाण ।

दिवसचरिमं पच्चक्खाइ ।

चउव्विहं पि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० तिवि(हा)हारका पच्चक्खाण ।

दिवसचरिमं पच्चक्खाइ ।

तिविहं पि आहारं—असणं खाइमं साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ।

११ दुवि(हा)हारका पच्चक्खाण ।

दिवसचरिमं पच्चक्खाइ ।

दुविहं पि आहारं—असणं खाइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

१२ देशावकाशिकका पच्चक्खाण ।

देशावगासियं उवभोग-परिभोगं पच्चक्खाइ ।

अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ॥

शब्दार्थ—

(सभी पच्चक्खाणोंके अर्थ एक साथ दिये हैं। बार बार आनेवाले शब्दोंके अर्थ एक बार ही दिये गये हैं।)

उग्गए सूरे—सूर्योदयके पश्चात् दो घड़ीतक, सूर्योदयसे दो घड़ीतक।

नमुक्कार- सहिअं मुट्ठि- सहिअं—नमस्कार—सहित, मुष्टि—सहित।

पच्चक्खाइ—मन, वचन और कायासे त्याग करता है, प्रत्याख्यान करता है।

चउव्विहं पि आहारं – चारों प्रकारके आहारका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असणं–अशन ।

अशन–क्षुधाका शमन करे ऐसे चावल, कठोल, रोटी, पूरी आदि पदार्थ ।

पाणं–पान ।

पान–पानी, छाछ (मट्ठा), धोवन आदि पीने योग्य पदार्थ ।

खाइमं–खादिम ।

खादिम–जिससे कुछ अंशमें क्षुधाकी तृप्ति हो ऐसे फल, गन्ने, चिवड़ा आदि पदार्थ ।

साइमं–स्वादिम ।

स्वादिम–स्वाद लेने योग्य सुपारी, तज, लौंग, इलायची, चूर्ण आदि पदार्थ ।

अन्नत्थ–इसके अतिरिक्त ।

अणाभोगेणं–अनाभोगसे ।

(यहाँ मूल शब्द अणाभोगेणं है, किन्तु इनमेंसे अकार का लोप हो गया है ।)

किसी वस्तुका प्रत्याख्यान किया है यह बात बिलकुल भूल जानेसे कोई वस्तु खानेमें आ जाय अथवा मुँहमें रख दी जाय, उसको अनाभोग कहते हैं ।

सहसागारेणं–सहसाकारसे ।

कोई वस्तु इच्छा न होने पर भी संयोगवशात् अथवा हठात् मुँहमें प्रविष्ट हो जाय उसको सहसागार कहते हैं ।

महत्तरागारेणं–महत्तराकारसे ।

किसी विशिष्ट प्रयोजनके उपस्थित होने पर श्रीसङ्घ अथवा आचार्य महाराज आज्ञा करें और पच्चक्खाणका समयसे पूर्व पालन करना पड़े तो उसको महत्तरागार कहते हैं ।

सव्वसमाहिवत्तियागारेणं –

सर्वसमाधिवत्तियागारसे, सर्व–समाधि–प्रत्ययाकारसे ।

तीव्र शूल आदि रोगके कारण शरीर विह्वल हो और प्रत्याख्यानका काल पूर्ण होनेसे पूर्व चित्तकी समाधि टिकानेके लिये प्रत्याख्यान पूर्ण किया जाय तो उसको सव्वसमाहिवत्तियागार कहते हैं ।

वोसिरइ–त्याग करता है ।

पोरिसिं–पोरिसी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्योदयके बाद एक पोरिसी जितना समय व्यतीत हो वहाँतक चारों आहारका त्याग करनेको पोरिसी कहते हैं ।

साड्ढपोरिसि–डेढ़ पोरिसी । साड्ढ–आधेसे युक्त, डेढ़ ।

पच्छन्न–कालेणं–कालज्ञान न होनेसे ।

दिसा–मोहेणं–दिशाका विपरीत भास होनेसे, दिङ्मोहसे ।

साहुवयणेणं–साधुका वचन सुननेसे, 'उग्घाडा पोरिसी' ऐसा साधुका वचन सुननेसे ।

पुरिमड्ढ–दिनका पहला आधा भाग पूर्वार्ध ।

अवड्ढ–बादका आधा भाग, अपरार्ध ।

एगासणं–एकाशन, एक बार खानेका नियम ।

बे–आसणं–द्व्यशन, दो बार खानेका नियम ।

विगइयो–विकृति, विगइ ।

लेवालेवेणं–लेपालेपसे, लेपको अलेप करनेसे ।

लेप–आयंबिलमें त्याग करनेयोग्य विकृतिसे लिप्त भोजन करनेके पात्र अथवा चम्मच आदि ।

अलेव–ऐसे पात्रादिको पोंछ लेना ।

गिहत्थ–संसट्ठेणं–गृहस्थसे जो मिला हुआ हो उससे ।

गिहत्थ–भोजन देनेवाले (से) ।

संसट्ठ–मिला हुआ । भोजन देनेवालेकी असावधानीके कारण विकृतिसे मिला हुआ ।

उक्खित्त – विवेगेणं – जिस पर विकृति रखकर उठा ली गयी हो ऐसी वस्तु काममें लानेसे ।

उक्खित्त–उठा ली गयी । विवेग-त्याग, विभाग करना !

पडुच्च – मक्खिएणं – साधारण घृत आदि चुपड़ा हुआ हो ऐसी वस्तुसे ।

पडुच्च–सर्वथा शुष्क ऐसे मांड आदि का आश्रय लेकर ।

मक्खिअ–जो चुपड़नेमें आया हो ।

पारिट्ठावणियागारेणं – विधिपूर्वक परठवना पड़े उससे ।

सागारिआगारेणं–गृहस्थ आदिके आ जानेसे आहार करनेके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये दूसरे स्थानपर जाना पड़े उससे।

सागारिअ–गृहस्थ।

आगार–घर। साधुको गृहस्थके समक्ष आहार–पानी करना निषिद्ध है अतः गृहस्थके आ जानेपर अन्यत्र जाकर आहार पानी करे तो उसको सागारिकागार कहते हैं।

आउंटण – पसारणेणं – सुन्न पड़ जानेसे अथवा झनझनाहट आनेसे शरीरके अङ्गोपाङ्ग सिकोड़ने या फैलानेसे।

आउंटण–सङ्कोच, सिकुड़ना। पसारण–विस्तार, अङ्गोंको फैलाना।

गुरु–अब्भुट्ठाणेणं–गुरु अथवा ज्येष्ठ मुनिके आ जानेसे खड़ा होना पड़े उससे।

गुरु–गुरु, अपनेसे पहले दीक्षित मुनि। अब्भुट्ठाण–खड़ा होना।

पाणस्स–पानी सम्बन्धी।

लेवेण वा–ओसामण, इमली, दाख आदिके पानीसे, लेपसे।

यहाँ लेप–शब्दसे ओसामण इमली, दाख आदिका पानी ग्रहण करनेकी समाचारी है। वा–अथवा।

अलेवेण वा–अथवा छाछके नितारे हुए पानीसे, अलेपसे।

यहाँ अलेप शब्दसे साबूदानेका धोवन तथा छाछ–मट्ठाका नितरा हुआ पानी ग्रहण करनेकी समाचारी है।

अच्छेण वा – अथवा स्वच्छ पानीसे।

अच्छ–तीन बार उकाला हुआ पानी, निर्जीव, निर्मल जल तथा फल आदिका धोवन।

बहुलेवेण वा–अथवा चावल आदिके धोवनसे।

यहाँ बहुलेवेण शब्दसे चावल आदिके धोवनका पानी लेनेकी समाचारी है।

ससित्थेण वा–अथवा राँधे हुए चावलोंके गाढ़े माँडसे।

ससित्थ–राँधे हुए चावलोंका धोवन।

असित्थेण वा–अथवा चावल आदिके पतले माँडसे।

असित्थ–जो वस्तु अधिक न धोयी गयी हो पर सामान्य धोयी गयी हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयंबिल–आयंबिल, आयामाम्ल अथवा आचामाम्ल।

आयाम–मांड़ (धोवन)।
आम्ल–काँजी अथवा खट्टा पानी।
चावल, उड़द और जब आदिके भोजनमें जिसका (इन दो वस्तुओंका) मुख्य उपयोग होता है, उसको आगमकी भाषामें आयंबिल कहते हैं।

अब्भत्तट्ठं–उपवासको।

अब्भत्तट्ठ–जिसमें भोजन करनेका प्रयोजन न हो।

पाणहार – दिवसचरिमं – पाणहार नामका दिवस चरिम प्रत्याख्यान।

पाणहार–पानीके आहारकी जो छूट थी उसका प्रत्याख्यान।
दिवस चरिम–जो दिनके अवशिष्ट भागमें तथा सारी रातके लिये किया जाता है, वह दिवस – चरिम प्रत्याख्यान।

देसावगासियं –देशावकाशिक–व्रत सम्बन्धी।

उवभोगं परिभोगं – उपभोग परिभोगको।

अर्थ–सङ्कलना—

(१) नवकारसी

सूर्योदयसे दो घड़ीतक नमस्कार–सहित मुष्टि-सहित नामका प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

(२) पोरिसी और साड्ढपोरिसी

सूर्योदयसे एक प्रहर (अथवा डेढ़ प्रहर) तक नमस्कार–सहित मुष्टि–सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनभोग, सहसाकार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु-वचन, महत्तराकार और सर्व-समाधि-प्रत्ययाकार-पूर्वक त्याग करता है।

(३) पुरिमड्ढ-अवड्ढ

सूर्योदयसे पूर्वार्ध अर्थात् दो प्रहरतक अथवा अपरार्ध अर्थात् तीन प्रहरतक (नमस्कार-सहित) मुष्टि-सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु-वचन, महत्तराकार और सर्व-समाधि-प्रत्ययाकार-पूर्वक त्याग करता है।

(४) एगासण, बियासण और एगलठाण

सूर्योदयसे एक प्रहर अथवा डेढ़ प्रहरतक नमस्कार-सहित, मुष्टि-सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु-वचन, महत्तराकार और सर्व-समाधि-प्रत्याकार-पूर्वक त्याग करता है।

अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थ-संसृष्टं, उत्क्षिप्तविवेक, प्रतीत्य-म्रक्षित, पारिष्ठापनिकार, महत्ताकार और सर्व-समाधि-प्रत्ययाकार-पूर्वक विकृतियोंका त्याग करता है।

बियासणमें चौदह आगारोंकी छूट होती है, वह इस प्रकार :— अनाभोग,[1] सहसाकार,[2] सागरिकाकार[3], आकुञ्चन-प्रसारण,[4] गुर्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्युत्थान,[५] पारिष्ठापनिकाकार,[६] महत्तराकार,[७]सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार,[८] लेप,[९] अलेप,[१०] अच्छ,[११] बहुलेप,[१२] ससिक्थ,[१३] असिक्थ[१४]।

(५) आयंबिल और निवी

सूर्योदयसे एक प्रहर (अथवा डेढ़ प्रहर) तक नमस्कार–सहित, मुष्टि–सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधुवचन, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

आयंबिलका आठ आगार–पूर्वक प्रत्याख्यान करता है :–अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थ–संसृष्ट, उत्क्षिप्त–विवेक, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार।

एकाशनका प्रत्याख्यान करता है, उसमें तीनों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, सागारिकाकार, आकुञ्चन–प्रसारण, गुर्वभ्युत्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

पानी–सम्बन्धी छः आगार :– लेप, अलेप, अच्छ, बहुलेप, ससिक्थ और असिक्थ।

(६) तिवि(हा)हारका उपवास

(सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके) सूर्योदयतक उपवासका प्रत्याख्यान करता है। उसमें तीनों प्रकारके आहारोंका अर्थात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पानीके अतिरिक्त अशन, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार पूर्वक त्याग करते हैं।

पानी–आहारका एक प्रहर (अथवा डेढ़ प्रहर) तक नमस्कार–सहित, मुष्टि–सहित, अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु–वचन, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक प्रत्याख्यान करता है।

पानीके–(आगार) :—लेप, अलेप, अच्छ, बहुलेप, ससिक्थ और असिक्थ।

(७) चउवि(हा)हार उपवास

(सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके) सूर्योदयतक उपवासका प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

(८) पाणहार

दिवसके शेष भागसे सम्पूर्ण रात्रि–पर्यन्त पानीके आहारका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) चउव्वि(हा)हार

दिवसके शेष भागसे सम्पूर्ण रात्रि–पर्यन्तका प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक–त्याग करता है।

(१०) तिवि(हा)हार

दिवसके शेष भागसे सम्पूर्ण रात्रि–पर्यन्तका प्रत्याख्यान करता है। उसमें तीनों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

(११) दुवि(हा)हार

दिवसके शेष भागसे सम्पूर्ण रात्रि–पर्यन्तका प्रत्याख्यान करता है। उसमें दोनों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन और खादिमका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार–पूर्वक त्याग करता है।

(१२) देशावकाशिक

देशसे संक्षेप की हुई उपभोग और परिभोगकी वस्तुओंका प्रत्याख्यान करता है, और उसका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व–समाधि–प्रत्ययाकार पूर्वक त्याग करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

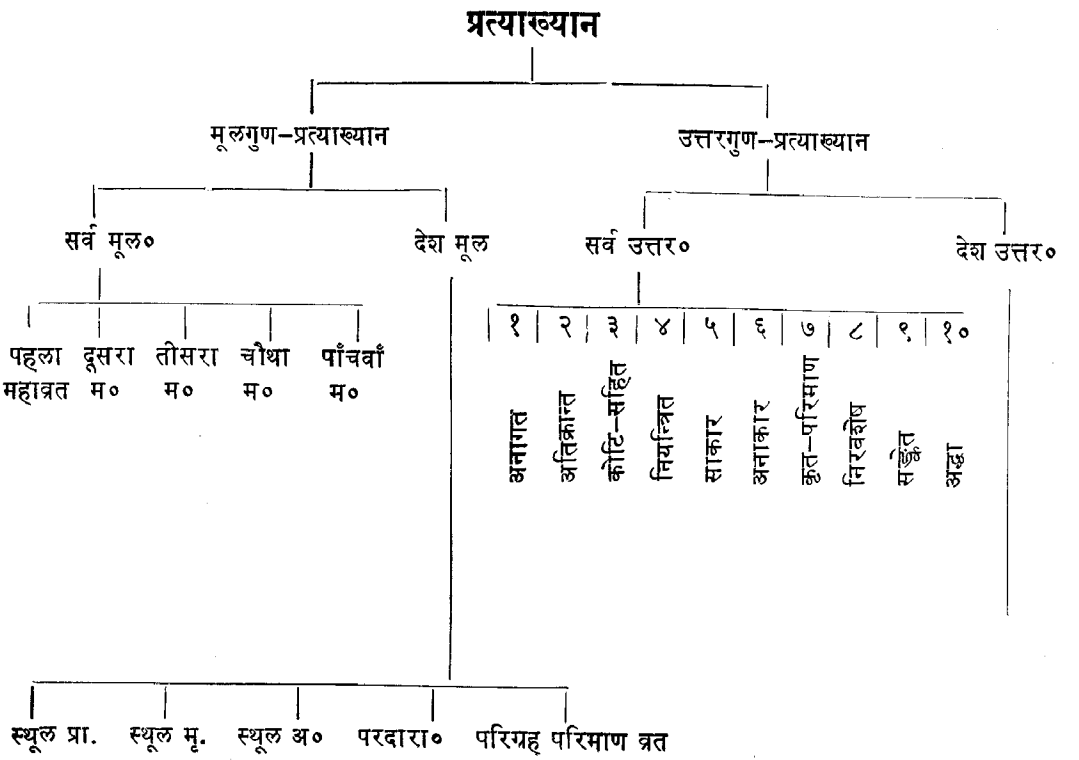

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९ सङ्केत

१ अंगुट्ठ स०
२ मुट्ठि स०
३ गंठि स०
४ घर स०
५ सेउ स०
६ सास स०
७ थिबुअ स०
८ जोइ स०

१० अद्धा

१ नमुक्कार–स०
२ पोरिसी साड्ढ पोरिसी
३ पुरिमड्ढ- अवड्ढ
४ एगासण
५ एगलठाण
६ आयंबिल
७ उपवास
८ चरिम
९ अभिग्रह
१० विगइत्याग

देश उत्तर०

दिग्व्रत
उपभोग–परिभोग–परिमाण
अनर्थदण्ड–विरमण
सामायिक
देशावकाशिक
पोषधोपवास
अतिथि–संविभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय—

प्रतिक्रमणमें छठे आवश्यकके अधिकारमें जब पच्चक्खाण किये जाते हैं, तब इस सूत्रका उपयोग होता है ।

प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण)

प्रश्न—प्रत्याख्यान क्या है ?

उत्तर—आत्माको संयमगुणसे विभूषित करनेवाली एक प्रकारकी क्रिया ।

प्रश्न—प्रत्याख्यानका अर्थ क्या है ?

उत्तर—प्रत्याख्यान शब्द प्रति, आ और ख्यान ऐसे तीन पदोंसे बना हुआ है । प्रति अर्थात् अविरतिसे प्रतिकूल, आ अर्थात् विरतिके अभिमुख और ख्यान अर्थात् कहना । तात्पर्य यह है कि अविरतिके प्रतिकूल और विरतिके अनुकूल ऐसा जो प्रतिज्ञारूप कथन है वह प्रत्याख्यान कहलाता है ।

प्रश्न—प्रत्याख्यानके पर्यायवाची शब्द कौनसे हैं ?

उत्तर—नियम, अभिग्रह, विरमण, व्रत, विरति, आश्रवद्वार–निरोध निवृत्ति, गुणधारणा आदि ।

प्रश्न—प्रत्याख्यान कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर—दो प्रकारका :–(१) मूलगुण–प्रत्याख्यान और (२) उत्तरगुण–प्रत्याख्यान । उसमें मूलगुणके सम्बन्धमें जो प्रत्याख्यान किया जाय, उसको मूलगुण–प्रत्याख्यान कहते हैं और उत्तरगुणके सम्बन्धमें जो प्रत्याख्यान किया जाय, उसको उत्तरगुण प्रत्याख्यान कहते हैं । इनके भेद-प्रभेद ऊपर बतलाई हुई तालिकासे बराबर समझमें आ जायगा ।

प्रश्न—अनागत–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्वके दिनोंमें ग्लान, वृद्ध आदिका वैयावृत्त्य हो सके तदर्थ पर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनेसे पूर्व ही तपश्चर्याका प्रत्याख्यान करना, उसको अनागत प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—अतिक्रान्त–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्वके दिनोंमें वैयावृत्त्य आदिके कारणसे जो तपश्चर्या न हो सकी हो तो वह बादके दिनोंमें करनी, उसको अतिक्रान्त–प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—कोटिसहित–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उपवास आदि जो तपश्चर्या पूर्ण हो गयी हो, वैसी ही तपश्चर्या फिरसे करनेके प्रत्याख्यानको कोटिसहित–प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—नियन्त्रित–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पहले जिस प्रत्याख्यानका सङ्कल्प किया हो, वह रोगादि कारणोंके उपस्थित होनेपर भी पूर्ण करना, उसको नियन्त्रित प्रत्याख्यान कहते हैं। ऐसा प्रत्याख्यान चौदहपूर्वी, दसपूर्वी तथा जिनकल्पोंको होता है।

प्रश्न—साकार–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्याख्यानमें आवश्यक आगार (आकार) रखे हों, उसको साकार–प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—अनाकार–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस प्रत्याख्यानमें कोई आगार (आकार) नहीं रखे हों, उसको अनाकार–प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—परिमाणकृत–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें दत्ती, कवल (कौर) अथवा घरकी संख्याका परिमाण हो, उसको परिमाणकृत–प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—निरवशेष–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—जिसमें चारों आहार तथा अफीम–तम्बाकू आदि अनाहारका भी प्रत्याख्यान किया जाय, उसको निरवशेष–प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न—सङ्केत–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्रत्याख्यान किसी भी संकेतसे किया गया हो, उसको संकेत–प्रत्याख्यान कहते हैं। जैसे कि अँगूठा मुट्ठीमें रखकर नमस्कार नहीं गिनूँ वहाँतकका प्रत्याख्यान, जहाँतक मुट्ठी बन्द रखकर नमस्कार न गिनूँ वहाँतकका प्रत्याख्यान आदि।

प्रश्न—अद्धा–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें समयकी मर्यादा रखी गयी हो, उसको अद्धा–प्रत्याख्यान कहते हैं। इसके दस प्रकार हैं, वे इस तरह :—

(१) नमस्कार–सहित (नमुक्कारसी अथवा नवकारसी)।

(२) पौरुषी–सार्द्ध पौरुषी (पोरिसी, साड्ढपोरिसी)।

(३) पुरिमार्ध–अपार्ध (पुरिमड्ढ, अवड्ढ)।

(४) एकाशन–द्व्यशन (एगासण, बियासण)।

(५) एकलस्थान (एगलठाण)।

(६) आयामाम्ल (आयंबिल)।

(७) उपवास (चउत्थभत्त)।

(८) चरिम (चरिम)।

(९) अभिग्रह (अभिग्गह)।

(१०) विकृतित्याग (विगइका त्याग)।

आधुनिक समयमें इन दस प्रत्याख्यानोंका व्यवहार विशेष है।

प्रश्न—कैसा प्रत्याख्यान विशेष फल देता है ?

उत्तर—छः शुद्धिपूर्वक किया हुआ प्रत्याख्यान विशेष फल देता है, वह इस प्रकार :–स्पर्शना–अर्थात् उचित समय पर विधिपूर्वक प्रत्याख्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना, (२) पालना–अर्थात् प्रत्याख्यानका हेतु लक्ष्यमें रखकर वर्तन करना, (३) शोभना–अर्थात् प्रत्याख्यान पूर्ण करनेसे पूर्व अतिथि–संविभाग करना, (४) तीरणा–अर्थात् प्रत्याख्यानका समय पूर्ण होने तक धैर्य रखकर उससे कुछ अधिक समय जाने देना, (५) कीर्तना–अर्थात् प्रत्याख्यान पूर्ण होने पर उसका उत्साहपूर्वक स्मरण करना और (६) आराधना–अर्थात् कर्मक्षयके निमित्तसे ही प्रत्याख्यान करना।

प्रश्न—प्रत्याख्यानसे कौनसे लाभ होते हैं ?

उत्तर—प्रत्याख्यानसे मनकी दृढ़ता (एकाग्रता) प्राप्त होती है, त्यागकी शिक्षा मिलती है, चारित्रगुणकी धारणा होती है, आस्रवका निरोध होता है, तृष्णाका छेद होता है, अतुलनीय उपशम गुणकी उपलब्धि होती है और क्रमशः सर्व संवरकी प्राप्ति होकर अणाहारीपदकी प्राप्ति होती है।

---

५१ श्रीवर्धमानजिन–स्तुतिः

['स्नातस्या'–स्तुति]

मूल—

(शार्दूलविक्रीडित)

स्नातस्याप्रतिमस्य मेरुशिखरे शच्या विभोः शैशवे,
रूपालोकन–विस्मयाहृत–रस–भ्रान्त्या भ्रमच्चक्षुषा।
उन्मृष्टं नयन–प्रभा–धवलितं क्षीरोदकाशङ्कया,
वक्त्रं यस्य पुनः पुनः स जयति श्रीवर्धमानो जिनः ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंसांसाहत–पद्मरेणु – कपिश – क्षीरार्णवाम्भोभृतैः,
कुम्भैरप्सरसां पयोधर–भर–प्रस्पर्धिभिः काञ्चनैः ।
येषां मन्दर–रत्नशैल–शिखरे जन्माभिषेकः कृतः,
सर्वैः सर्व–सुरासुरेश्वरगणस्तेषां नतोऽहं क्रमान् ॥२॥

(स्रग्धरा)

अर्हद्वक्त्र–प्रसूतं गणधर–रचितं द्वादशाङ्गं विशालं,
चित्रं बह्वर्थ–युक्तं मुनिगण–वृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरण–फलं ज्ञेय–भाव–प्रदीपं,
भक्त्या नित्यं प्रपद्ये श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ॥३॥
निष्पङ्क–व्योम–नील–द्युतिमलसदृशं बालचन्द्राभदंष्ट्रं,
मत्तं घण्टारवेण प्रसृत–मदजलं पूरयन्तं समन्तात् ।
आरूढो दिव्यनागं विचरति गगने कामदः कामरूपी,
यक्षः सर्वानुभूतिर्दिशतु मम सदा सर्वकार्येषु सिद्धिम् ॥४॥

शब्दार्थ—

स्नातस्य–स्नान कराये हुए, स्नात-अभिषेक कराये हुए ।

अप्रतिमस्य–अनुपम, अद्भुत ।

मेरुशिखरे–मेरुपर्वतके शिखरपर ।

शच्या–इन्द्राणीने ।

विभोः–अर्हद्देवके, प्रभुके ।

शैशवे–बाल्यावस्थामें ।

रूपालोकन – निस्मयाहृत – रस –भ्रान्त्या–रूपका अवलोकन करनेसे उत्पन्न अद्भुतरसकी भ्रान्तिसे ।

रूप–सौन्दर्य । आलोकन–अवलोकन, देखना । विस्मय–आश्चर्य, अद्भुत । आहृत–उत्पन्न हुआ । रस–उत्कट भाव । भ्रान्ति–भ्रम ।

भ्रमच्चक्षुषा–घूमते हुए नेत्रवाली, चञ्चल बने हुए नेत्रोंवाली ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्मृष्टं–पोंछा ।

नयन–प्रभा – धवलितं – नेत्रकी कान्तिसे श्वेत बना हुआ, अपनी नेत्रकान्तिसे ही उज्ज्वल बने हुए ।

नयन–नेत्र । प्रभा–कान्ति ।

धवलित–उज्ज्वल बना हुआ ।

क्षीरोदकाशङ्कया – क्षीरोदककी शङ्कासे, क्षीरसागरका जल रह तो नहीं गया ? इस शङ्कासे ।

वक्त्रं–मुखको ।

यस्य–जिनके ।

पुनः पुनः–बार–बार ।

स–वह, वे ।

जयति–जयको प्राप्त हो रहे हैं ।

श्रीवर्धमानो जिनः–श्रीमहावीर जिन ।

हंसांसाहत – पद्मरेणु – कपिश–क्षीरार्णवाम्भोभृतैः – हंसकी पाँखोंसे उड़े हुए कमल–पराग से पीत ऐसे क्षीरसमुद्रके जलसे भरे हुए ।

हंस-पक्षि–विशेष । अंस–पक्ष, पाँख । आहत–उड़ा हुआ । पद्म–कमल । रेणु–पराग । कपिश–पीत, पीला । क्षीरार्णव–क्षीर समुद्र । अम्भः–जल । भृत–भरा हुआ, पूर्ण ।

कुम्भैः–घड़ोंसे ।

अप्सरसां–अप्सराओंके

पयोधर–भर–प्रस्पर्धिभिः–स्तन–समूहकी स्पर्धा करनेवालोंसे ।

पयोधर–स्तन । भर–समूह ।

प्रस्पर्धिन्–स्पर्धा करनेवाला ।

काञ्चनैः–सुवर्णके बने हुए, सुवर्णके ।

येषां–जिनका ।

मन्दर–रत्नशैल – शिखरे – मेरु पर्वतके रत्नशैल नामक शिखर पर ।

जन्माभिषेकः–जन्माभिषेक ।

कृतः–किया है ।

सर्वैः–सबने ।

सर्व – सुरासुरेश्वरगणैः – सब जातिके सुर और असुरोंके इन्द्रोंने ।

सुर–वैमानिक और ज्योतिष्क देव । असुर–भवनपति और व्यन्तरदेव । ईश्वर–स्वामी, इन्द्र । गण–परिवार ।

तेषां–उनके ।

नतः–नमन करता हूँ ।

अहं–मैं ।

क्रमान्–चरणोंको, चरणोंमें ।

अर्हद्वक्त्र–प्रसूतं–श्रीजिनेश्वर देवके मुखसे अर्थरूपमें प्रकटित ।

अर्हद्–श्रीजिनेश्वरदेव । वक्त्र–मुख । प्रसूत–प्रकटित ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणधर – रचितं – गणधरोंद्वारा सूत्ररूपमें गुँथे हुए ।

द्वादशाङ्गं–बारह अङ्गवाले ।

विशालं–विस्तृत ।

चित्रं–अद्भुत ।

बह्वर्थ– युक्तं–बहुत अर्थोंसे युक्त ।

मुनिगण वृषभैः–श्रेष्ठमुनि–समूहसे । वृषभ–श्रेष्ठ ।

धारितं- धारण किये हुए ।

बुद्धिमद्भिः–बुद्धिनिधान ।

मोक्षाग्र – द्वारभूतं–मोक्षके द्वार समान ।

व्रत–चरण–फलं–व्रत और चारित्र-रूपी फलवाले ।

ज्ञेय–भाव – प्रदीपं–जानने योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें दीपक–समान ।

ज्ञेय – जानने योग्य । भाव– पदार्थ । प्रदीप–दीपक ।

भक्त्या–भक्तिपूर्वक ।

नित्यं–अहर्निश ।

प्रपद्ये–आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

श्रुतं–श्रुतका ।

अहं–मैं ।

अखिलं–समस्त ।

सर्वलोकैकसारम्–अखिल विश्वमें अद्वितीय सारभूत ।

सर्वलोक–अखिल विश्व । एक सार–अद्वितीय सारभूत ।

निष्पङ्क – व्योम – नील–द्युतिं– बादल–रहित (स्वच्छ) आकाश-की नील–प्रभाको धारण करने-वाले ।

निष्पङ्क–बादल रहित, स्वच्छ । व्योम–आकाश । नील – वर्ण विशेष गहरा बादली रङ्ग । द्युति–प्रभा ।

अलस – दृशं – आलस्यसे मन्द (मदपूर्ण) बनी हुई दृष्टिवाले । अलस–आलस्य । दृश्–दृष्टि ।

बालचन्द्राभ – दंष्ट्रं – द्वितीयाके चन्द्रकी तरह वक्र दाढ़ोंवाले । बालचन्द्र – द्वितीयाका चन्द्र । आभ–जैसा । दंष्ट्र–दाढ़ ।

मत्तं–मत्त ।

घण्टारवेण – घण्टाओंके नादसे, गलेमें बँधी हुई घण्टियोंके नादसे ।

प्रसृत–मदजलं – झरते हुए मद-जलको ।

पूरयन्तं–पूरित करता हुआ, फैलाते हुये ।

समन्तात्–चारों ओर ।

आरूढो–आरूढ, विराजित ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्य-नागं-दिव्य हाथी पर
विचरति-विचरण करता है, विचरण करनेवाला ।
गगने-आकाशमें ।
कामदः- सम्पूर्ण मनःकामनाओंको पूर्ण करनेवाले ।
कामरूपी-इच्छित रूपको धारण करनेवाला ।
यक्षः-यक्ष ।
सर्वानुभूतिः-सर्वानुभूति ।
दिशतु-प्रदान करे ।
मम-मुझे ।
सदा-सदा ।
सर्वकार्येषु-सब कार्योंमें ।
सिद्धिम्-सिद्धिको ।

अर्थ-सङ्कलना—

बाल्यावस्थामें मेरु पर्वतके शिखरपर स्नात-अभिषेक कराये हुए प्रभुके रूपका अवलोकन करते हुए उत्पन्न हुई अद्भुत-रसकी भ्रान्ति से चञ्चल बने हुए नेत्रोंवाली इन्द्राणीने क्षीरसागरका जल रह तो नहीं गया ? इस शङ्का से अपनी नेत्रकान्तिसे ही उज्ज्वल बने हुए जिनके मुखको बार-बार पोंछा, वे श्रीमहावीर जिन जयको प्राप्त हो रहे हैं ।। १ ।।

सर्व जातिके सुर और असुरोंके इन्द्रोंने जिनका जन्माभिषेक हंसके पाँखोंसे उड़े हुए कमल-परागसे पीत ऐसे क्षीर समुद्रके जलसे भरे हुए और अप्सराओंके स्तन-समूहकी स्पर्धा करनेवाले सुवर्णके घड़ोंसे मेरुपर्वतके रत्नशैल नामक शिखरपर किया है, उनके चरणोंमें मैं नमन करता हूँ ।। २ ।।

श्रीजिनेश्वरदेवके मुखसे अर्थरूपमें प्रकटित और गणधरोंद्वारा सूत्ररूपमें गुँथे हुए, बारह अङ्गवाले, विस्तृत, अद्भुत रचना-शैलीवाले, बहुत अर्थोंसे युक्त, बुद्धिनिधान ऐसे श्रेष्ठ मुनि-समूहसे धारण किये हुए, मोक्षके द्वार समान, व्रत और चारित्ररूपी फलवाले, जानने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें दीपकसमान और समस्त विश्वमें अद्वितीय सारभूत ऐसे समस्त श्रुतका मैं भक्तिपूर्वक अहर्निश आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

बादल–रहित स्वच्छ आकाशकी नील–प्रभाको धारण करनेवाले आलस्यसे मन्द (मदपूर्ण) दृष्टिवाले, द्वितीयाके चन्द्रकी तरह वक्र दाढ़ोंवाले, गलेमें बँधी हुई घण्टियोंके नादसे मत्त, झरते हुए मद-जलको चारों ओर फैलाते हुए ऐसे दिव्य हाथीपर विराजित मनः-कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, इच्छित रूपको धारण करनेवाले और आकाशमें विचरण करनेवाले सर्वानुभूति यक्ष मुझे सर्व कार्योंमें सिद्धि प्रदान करें ॥ ४ ॥

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें चार स्तुतियाँ हैं । उनमें पहली स्तुति श्रीमहावीर स्वामी-की है, दूसरी स्तुति सर्व जिनोंकी है, तीसरी स्तुति द्वादशाङ्गीकी है और चौथी स्तुति सर्वानुभूति यक्षकी है ।

सूत्र की चतुर्थ-स्तुतिमें आये हुए बालचन्द्र पदसे यह सूत्र श्रीबाल-चन्द्रसूरिने बनाया हो ऐसा प्रतीत होता है । सम्प्रदाय (किंवदन्ती) के अनुसार ये बालचन्द्रसूरि श्रीहेमचन्द्राचार्यके शिष्य थे और बादमें गुरुके साथ विरोध होनेसे पृथक् हो गये थे, इसलिये उनके द्वारा रचित स्तुति-की संघकी ओरसे स्वीकृति नहीं हुई; परन्तु कालधर्म प्राप्त होनेके पश्चात् वे व्यन्तर जातिके देव हुए और उन्होंने श्रीसंघमें उपद्रव करना आरम्भ किया, तब श्रीसंघने द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावका विचार करके इस स्तुतिको स्वीकृति दी थी और तबसे यह स्तुति पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्स-रिक प्रतिक्रमणके प्रसङ्गपर बोली जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२ भुवनदेवता–स्ततिः

[भुवनदेवताकी स्तुति]

मूल—

भुवणदेवयाए करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ०

[गाहा]

ज्ञानादिगुण–युतानां, नित्यं स्वाध्याय–संयम–रतानाम् ।
विदधातु भुवनदेवी, शिवं सदा सर्वसाधूनाम् ॥१॥

शब्दार्थ—

भुवणदेवयाए–भुवनदेवताके लिये, भुवनदेवीकी आराधनाके निमित्तसे ।

करेमि–मैं करता हूँ ।

काउस्सग्गं–कायोत्सर्गको ।

अन्नत्थ०–इसके अतिरिक्त० ।

ज्ञानादिगुण – युतानां – ज्ञानादि गुणोंसे युक्तका, ज्ञान, दर्शन और चारित्रसे युक्त ।

नित्यं–निरन्तर ।

स्वाध्याय – संयम – रतानाम् – स्वाध्याय और संयममें लीन ।

विदधातु–करो ।

भुवनदेवी–भुवनदेवी ।

शिवं–कल्याण, उपद्रव–रहित ।

सदा–सदा ।

सर्वसाधूनाम् – सब साधुओंका, साधुओंको ।

अर्थ–सङ्कलना—

भुवनदेवीकी आराधना के निमित्तसे मै कायोत्सर्ग करता हूँ । इसके अतिरिक्त—

ज्ञान, दर्शन, और चारित्रसे युक्त, निरन्तर स्वाध्याय और संयम-में लीन ऐसे सब साधुओंको भुवनदेवी सदा उपद्रव रहित करे ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-परिचय—

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणके समय भुवनदेवता-का कायोत्सर्ग करते हुए यह स्तुति बोली जाती है ।

---

५३ क्षेत्रदेवता-स्तुतिः

[क्षेत्रदेवताकी स्तुति]

मूल—

खित्तदेवयाए करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ०

[सिलोगो]

यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य, साधुभिः साध्यते क्रिया ।
सा क्षेत्रदेवता नित्यं, भूयान्नः सुखदायिनी ॥१॥

शब्दार्थ—

खित्तदेवयाए—क्षेत्रदेवताकी आराधनाके निमित्तसे ।
करेमि—मैं करता हूँ ।
काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग ।
अन्नत्थ०—इसके अतिरिक्त०
यस्याः—जिनके ।
क्षेत्रं—क्षेत्रका ।
समाश्रित्य—आश्रय लेकर ।
साधुभिः—साधुओंद्वारा ।
साध्यते—साधी जाती है, की जाती है ।
क्रिया—मोक्षमार्गकी आराधना ।
सा—वह ।
क्षेत्रदेवता—क्षेत्रदेवता ।
नित्यं—सदा ।
भूयात्—हो ।
नः—हमें ।
सुखदायिनी—सुख देनेवाली ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ–सङ्कलना—

क्षेत्रदेवताकी आराधनाके निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। इसके अतिरिक्त—

जिनके क्षेत्रका आश्रय लेकर साधुओंद्वारा मोक्षमार्ग की आराधना की जाती है, वह क्षेत्रदेवता हमें सदा सुख देनेवाला हो ॥ १ ॥

सूत्र–परिचय—

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणके समय क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करते हुए यह स्तुति बोली जाती है।

---

५४ चतुर्विंशति–जिन–नमस्कारः

['सकलार्हत्'–स्तोत्र]

मूल—

[अनुष्टुप्]

सकलार्हत्–प्रतिष्ठानमधिष्ठानं शिवश्रियः।
भूर्भुवः–स्वस्त्रयीशानमार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ॥१॥

शब्दार्थ—

सकलार्हत् – प्रतिष्ठानं–जो सर्व अरिहन्तोंमें स्थित है। सकल–सर्व। अर्हत् – अरिहन्तोंमें प्रतिष्ठान – प्रतिष्ठित किया हुआ है, स्थित है।

अधिष्ठानं शिवश्रियः–जो मोक्ष–लक्ष्मीका निवास-स्थान है। अधिष्ठान–निवास-स्थान। शिव-श्री–मोक्षरूपी लक्ष्मी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूर्भुवः-स्वस्त्रयीशानं – जो भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनोंपर सम्पूर्ण प्रभुत्व रखता है।

भूः–पाताल। भुवः–मर्त्यलोक। स्वः – स्वर्ग। त्रयी–तीन ईशान–प्रभुत्व रखनेवाले।

आर्हन्त्यं प्रणिदध्महे – अरिहन्तके तत्त्व (आर्हन्त्य)का हम ध्यान करते हैं।

अर्थ-सङ्कलना—

जो सर्व अरिहन्तोंमें स्थित है, जो मोक्ष–लक्ष्मीका निवासस्थान है, तथा जो पाताल, मर्त्यलोक और स्वर्गलोक इन तीनोंपर सम्पूर्ण प्रभुत्व रखता है, उस अरिहन्तके तत्त्व (आर्हन्त्य)का हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

मूल—

नामाऽऽकृति–द्रव्य–भावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ॥२॥

शब्दार्थ—

नामाऽऽकृति–द्रव्य–भावैः– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव–निक्षेपद्वारा।

नाम–नाम–निक्षेप। आकृति –स्थापना–निक्षेप। द्रव्य-द्रव्य-निक्षेप। भाव–भाव–निक्षेप।

निक्षेप अर्थात् अर्थव्यवस्था।

पुनतः–पवित्र कर रहे हैं।

त्रिजगज्जनम्-तीनों लोकके प्राणियोंको।

क्षेत्रे–क्षेत्र में।

काले–कालमें।

च–और

सर्वस्मिन्–सर्व।

अर्हतः–अर्हतोंको, अर्हतोंकी।

समुपास्महे–हम सम्यग् उपासना करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

जो सर्वक्षेत्रमें और सर्वकालमें नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव-निक्षेपद्वारा तीनों लोकके प्राणियोंको पवित्र कर रहे हैं, उन अर्हतोंकी हम सम्यग् उपासना करते हैं ।। २ ।।

मूल—

आदिमं पृथिवीनाथमादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभ-स्वामिनं स्तुमः ।। ३ ।।

शब्दार्थ—

आदिमं-पहले ।
पृथिवीनाथं-पृथ्वीनाथकी, राजाको ।
आदिमं-पहले ।
निष्परिग्रहम्-साधुको ।
आदिमं-पहले ।
तीर्थनाथं-तीर्थङ्करको ।
च-और ।
ऋषभ-स्वामिनं-श्रीऋषभदेवकी ।
स्तुमः-हम स्तुति करते हैं ।

अर्थ-सङ्कलना—

पहले राजा, पहले साधु और पहले तीर्थङ्कर ऐसे श्रीऋषभदेवकी हम स्तुति करते हैं ।। ३ ।।

मूल—

अर्हन्तमजितं विश्व-कमलाकर-भास्करम् ।
अम्लान-केवलादर्श-सङ्क्रान्त-जगतं स्तुवे ।। ४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

अर्हन्तं–पूजनीय

अजितं–श्रीअजितनाथ भगवानको।

विश्वकमलाकर – भास्करम्–जगत्के प्राणीरूप कमलोंके समूहको विकसित करनेके लिये सूर्य–स्वरूप।

विश्व–जगत्के प्राणी। कमलाकर–कमलोंका समूह। भास्कर–सूर्य।

अम्लान–केवलादर्श–सङ्क्रान्त–जगतं–जिनके केवलज्ञानरूपी दर्पणमें सारा जगत् प्रतिबिम्बित हुआ है, उनको।

अम्लान–निर्मल। केवलादर्श–केवलज्ञानरूपी दर्पण।

सङ्क्रान्त-प्रतिबिम्बित हुआ है।

स्तुवे–मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थ-सङ्कलना—

जगत्के प्राणीरूपी कमलोंके समूहको विकसित करनेके लिये सूर्य–स्वरूप तथा जिनके केवलज्ञानरूपी दर्पणमें सारा जगत् प्रतिबिम्बित हुआ है, ऐसे पूजनीय श्रीअजितनाथ भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४॥

मूल—

विश्व–भव्य–जनाराम–कुल्या–तुल्या जयन्ति ताः।
देशना–समये वाचः, श्रीसम्भव–जगत्पतेः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—

विश्व–भव्य–जनाराम – कुल्या–तुल्याः–विश्वके भव्यजनरूपी बगीचेको सींचनेके लिये नालीके समान।

आराम–बगीचा। कुल्या–नाली। तुल्या–समान।

जयन्ति – जयको प्राप्त हो रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताः–वे ।
देशना–समये–धर्मोपदेश करते समय ।
वाचः–वाणी, वचन ।
श्रीसम्भवजगत्पतेः–श्रीसम्भवनाथ भगवन्तकी ।

अर्थ–सङ्कलना—

धर्मोपदेश करते समय जिनकी वाणी विश्वके भव्यजनरूपी बगीचेको सींचनेके लिये नालीके समान है, वे श्रीसम्भवनाथ भगवन्तके वचन जयको प्राप्त हो रहे हैं ।। ५ ।।

मूल—

अनेकान्त–मताम्भोधि–समुल्लासन–चन्द्रमाः ।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवानभिनन्दनः ।।६।।

शब्दार्थ—

अनेकान्त – मताम्भोधि – समुल्लासन–चन्द्रमाः–अनेकान्त मतरूपी समुद्रको पूर्णतया उल्लसित करनेके लिये चन्द्रस्वरूप । अनेकान्तमत – वस्तुको भिन्न भिन्न दृष्टिबिन्दुसे देखनेका सिद्धान्त । अम्भोधि–समुद्र । समुल्लासन-अच्छी प्रकारसे उल्लसित करना । चन्द्रमाः –चन्द्र ।
दद्याद्–दे, प्रदान करें ।
अमन्दम्–अति, परम ।
आनन्दं–आनन्द ।
भगवान्–भगवान् ।
अभिनन्दनः–श्रीअभिनन्दन नामके चौथे तीर्थङ्कर ।

अर्थ–सङ्कलना—

अनेकान्त–मतरूपी समुद्रको पूर्णतया उल्लसित करनेके लिये चन्द्र–स्वरूप भगवान् श्रीअभिनन्दन हमें परम आनन्द प्रदान करें ।।६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

द्युसत्–किरीट–शाणाग्रोत्तेजिताङ्घ्र–नखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभितानि वः ॥७॥

शब्दार्थ—

द्युसत्–किरीट – शाणाग्रोत्तेजिताङ्घ्र–नखावलिः–देवोंके मुकुटरूपी शाण (कसौटी)के अग्रभागसे जिनके चरणकी नख पङ्क्तियाँ चकचकित हो गयी हैं। द्युसत्–देव । किरीट–मुकुट । शाण–कसौटी । अग्र–अग्रभाग । उत्तेजित–चकचकित की हुई । अङ्घ्र–चरण । आवलि-पङ्क्ति।

भगवान्–भगवान् ।

सुमतिस्वामी–श्रीसुमतिनाथ ।

तनोतु–प्रदान करें ।

अभिमतानि–मनोवाञ्छित ।

वः–तुम्हें ।

अर्थ–सङ्कलना—

जिनके चरणकी नख–पङ्क्तियाँ देवोंके मुकुटरूपी कसौटीके अग्रभागसे चकचकित हो गयी हैं, वे भगवान् श्रीसुमतिनाथ तुम्हें मनोवाञ्छित प्रदान करें ॥ ७ ॥

मूल—

पद्मप्रभ–प्रभोर्देह–भासः पुष्णन्तु वः श्रियम् ।
अन्तरङ्गारि–मथने, कोपाटोपादिवारुणाः ॥८॥

शब्दार्थ—

पद्मप्रभ-प्रभोः–श्रीपद्मप्रभस्वामीके ।

देह–भासः–शरीरकी कान्ति ।

पुष्णन्तु–पुष्ट करे ।

वः–तुम्हारी ।

श्रियम् – लक्ष्मीको, आत्म–लक्ष्मीको ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरङ्गारि – मथने – आन्तरिक शत्रुओंका हनन करने के लिये। अन्तरङ्ग – आन्तरिक। अरि—शत्रु। मथन–हनन करना।

कोपाटोपाद् – कोपके आटोपसे, क्रोधके आवेशसे।

इव–मानो।

अरुणाः–लाल रङ्गकी।

अर्थ–सङ्कलना—

आन्तरिक शत्रुओंका हनन करनेके लिये क्रोधके आवेशसे मानो लाल रङ्गकी हो गयी हो ऐसी श्रीपद्मप्रभ-स्वामी के शरीरकी कान्ति तुम्हारी आत्म–लक्ष्मीकी पुष्ट करे ॥ ८ ॥

मूल—

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय, महेन्द्र–महिताङ्घ्रये।
नमश्चतुर्वर्ण–सङ्घ–गगनाभोग–भास्वते ॥९॥

शब्दार्थ—

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय – श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान्के लिये।

महेन्द्र – महिताङ्घ्रये – महेन्द्रोंसे पूजित चरणोंवाले। महेन्द्र–बड़ा इन्द्र। महित–पूजित। अङ्घ्रि–चरण।

नमः–नमस्कार हो।

चतुर्वर्ण–सङ्घ–गगनाभोग–भास्वते–चतुर्विध संघरूपी आकाश मण्डलमें सूर्य–सदृशके लिये। चतुर्वर्ण–जिसमें चार वर्ण हैं ऐसा। चार वर्णसे यहाँ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका समझना। सङ्घ–समुदाय। गगन – आकाश। आभोग–मण्डल। भास्वत्–सूर्य।

अर्थ–सङ्कलना—

चतुर्विध सङ्घरूपी आकाशमण्डलमें सूर्यसदृश और महेन्द्रोंसे पूजित चरणवाले श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान्को नमस्कार हो ॥ ९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

चन्द्रप्रभ–प्रभोश्चन्द्र–मरीचि–निचयोज्ज्वला ।
मूर्तिर्मूर्त–सितध्यान–निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ॥१०॥

शब्दार्थ—

चन्द्रप्रभ – प्रभोः – श्रीचन्द्रप्रभ–स्वामीकी ।

चन्द्र–मरीचि – निचयोज्ज्वला– चन्द्र–किरणोंके समूह जैसी श्वेत। मरीचि–किरण। निचय–समूह। उज्ज्वल–श्वेत ।

मूर्तिः–काया शुक्लमूर्ति ।

मूर्त–सितध्यान–निर्मिता इव– मानो मूर्तिमान् शुक्लध्यानसे बनायी हो ऐसी ।

मूर्त–आकार प्राप्त किया हुआ । सितध्यान – शुक्लध्यान । निर्मिता–बनायी हुई । इव मानो ।

श्रिये–लक्ष्मीके लिये, आत्मलक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाली ।

अस्तु–हो ।

वः–तुम्हारे लिये ।

अर्थ–सङ्कलना—

चन्द्र–किरणोंके समूह जैसी श्वेत और मानो मूर्तिमान्–अर्थात् साक्षात् शुक्लध्यान से बनायी हो ऐसी श्रीचन्द्रप्रभस्वामीकी शुक्लमूर्ति तुम्हारे लिये आत्म–लक्ष्मीकी वृद्धि करने वाली हो ॥ १० ॥

मूल—

करामलकवद् विश्वं, कलयन् केवलश्रिया ।
अचिन्त्य-माहात्म्य-निधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

करामलकवद् – हाथमें स्थित आँवलेके समान ।

कर–हाथ । आमलक–आँवला ।

विश्वं–जगत्को ।

कलयन्–जानते हुए, देख रहे हैं ।

केवलश्रिया – केवलज्ञानकी सम्पत्तिसे ।

केवल–केवलज्ञान । श्री–सम्पत्ति ।

अचिन्त्य – माहात्म्य – निधिः–कल्पनातीत प्रभावके भण्डार ।

अचिन्त्य – जिसका विचार न किया जा सके, ऐसा, कल्पनातीत । माहात्म्य–प्रभाव । निधि–भण्डार ।

सुविधिः–श्रीसुविधिनाथ प्रभु ।

बोधये–बोधिके लिये, सम्यक्त्वकी प्राप्ति करानेवाले ।

अस्तु–हों ।

वः–तुम्हारे लिये ।

अर्थ–सङ्कलना—

जो केवलज्ञानकी सम्पत्तिसे सारे जगत्को हाथमें स्थित आँवलेके समान देख रहे हैं तथा जो कल्पनातीत प्रभावके भण्डार हैं, वे श्री-सुविधिनाथ प्रभु तुम्हारे लिये सम्यक्त्वको प्राप्ति करानेवाले हों ॥११॥

मूल—

सत्त्वानां–परमानन्द–कन्दोद्भेद–नवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृत–निःस्यन्दी, शीतलः पातु वो जिनः॥१२॥

शब्दार्थ—

सत्त्वानां – प्राणियोंका, प्राणियोंके लिये ।

परमानन्द – कन्दोद्भेद – नवाम्बुदः–परमानन्दरूप कन्दको प्रकटित करनेके लिये नवीन मेघस्वरूप ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम–उत्कृष्ट। कन्द–वनस्पतिका भूमिगत भाग। उद्भेद – प्रकट करना। नव–नया। अम्बुद–मेघ।

स्याद्वादामृत – निःस्यन्दी – स्याद्वादरूपी अमृतको बरसानेवाले।

स्याद्वाद–'स्यात्' पदको प्रधानतावाला वाद, अनेकान्तवाद अथवा अपेक्षावाद। निःस्यन्दी–बरसानेवाला।

शीतलः–श्रीशीतलनाथ।

पातु–रक्षा करें।

वः–तुम्हारी।

जिनः–जिनेश्वर।

अर्थ–सङ्कलना—

प्राणियोंके परमानन्दरूपी कन्दको प्रकटित करनेके लिये नवीन मेघ–स्वरूप तथा स्याद्वादरूपी अमृतको बरसानेवाले श्रीशीतलनाथ जिनेश्वर तुम्हारी रक्षा करें॥ १२॥

मूल—

भव–रोगाऽऽर्त्त–जन्तूनामगदङ्कार–दर्शनः।
निःश्रेयस–श्री–रमणः, श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु वः॥१३॥

शब्दार्थ—

भव – रोगाऽऽर्त्त – जन्तूनाम् – भव–रोगसे पीड़ित जन्तुओंके लिये।

भवरूपी जो रोग वह भवरोग। आर्त्त–पीड़ित।

अगदङ्कार – दर्शनः–वैद्यके दर्शन समान जैसे।

अगदङ्कार–रोगरहित करनेवाले, वैद्य।

निःश्रेयस-श्री-रमणः – निःश्रेयस (मुक्ति) रूपी लक्ष्मीके पति। निःश्रेयस–मुक्ति। श्री–लक्ष्मी। रमण–पति।

श्रेयांसः–श्रीश्रेयांसनाथ।

श्रेयसे–श्रेयके लिये, मुक्तिके लिये।

अस्तु–हों।

वः-तुम्हारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

जिनका दर्शन भव-रोगसे पीड़ित जन्तुओंके लिये वैद्यके दर्शन समान है तथा जो निःश्रेयस-(मुक्ति) रूपी लक्ष्मीके पति हैं, वे श्रीश्रेयांसनाथ तुम्हारे श्रेय-मुक्तिके लिये हों ॥ १३ ॥

मूल—

विश्वोपकारकीभूत-तीर्थकृत्-कर्म-निर्मितिः ।
सुरासुर-नरैः पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ॥१४॥

शब्दार्थ—

विश्वोपकारकीभूत - तीर्थकृत्-कर्म - निर्मितिः - विश्वपर महान् उपकार करनेवाले, तीर्थङ्कर नाम-कर्मको बाँधनेवाले। विश्वोपकारकीभूत - विश्वपर महान् उपकार करनेवाले। तीर्थकृत्-कर्म-तीर्थङ्कर-नाम कर्म। निर्मिति - निर्माण, बाँधना।
सुरासुर - नरैः-सुर, असुर और मनुष्योंद्वारा।
पूज्यः-पूज्य।
वासुपूज्यः-श्रीवासुपूज्यस्वामी।
पुनातु-पवित्र करें।
वः-तुम्हें।

अर्थ-सङ्कलना—

विश्वपर महान् उपकार करनेवाले, तीर्थङ्कर-नाम-कर्मको बाँधनेवाले तथा सुर, असुर और मनुष्योंद्वारा पूज्य ऐसे श्रीवासुपूज्यस्वामी तुम्हें पवित्र करें ॥ १४ ॥

मूल—

विमलस्वामिनो वाचः, कतक-क्षोद-सोदराः ।
जयन्ति त्रिजगच्चेतो-जल-नैर्मल्य-हेतवः ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

विमलस्वामिनः – श्रीविमलनाथ प्रभुकी ।

वाचः–वाणी ।

कतक–क्षोद – सोदराः–कतक – फलके चूर्ण जैसी ।

कतक–निर्मली नामकी वनस्पति । क्षोद – चूर्ण । सोदरा–बहिन जैसी ।

जयन्ति–जयको प्राप्त हो रही है ।

त्रिजगत् – चेतस् जल नैर्मल्य–हेतवः – त्रिभुवनमें स्थित प्राणियोंके चित्तरूपी जलको स्वच्छ करनेमें कारणरूप ।

त्रिजगत् – त्रिभुवन । चेतस्–चित्त । नैर्मल्य–निर्मलता, स्वच्छ । हेतु–कारण ।

अर्थ–सङ्कलना—

त्रिभुवनमें स्थित प्राणियोंके चित्तरूपी जलको स्वच्छ करनेमें कारणरूप कतक–फलके चूर्ण जैसी श्रीविमलनाथ प्रभुकी वाणी जयको प्राप्त हो रही है ॥ १५ ॥

मूल—

स्वयम्भूरमण--स्पर्द्धी, करुणारस–वारिणा ।
अनन्तजिदनन्तां वः, प्रयच्छतु सुख–श्रियम् ॥१६॥

शब्दार्थ—

स्वयम्भूरमणस्पर्द्धी – स्वयम्भूरमण समुद्रकी स्पर्धा करनेवाले ।

स्वयम्भूरमण – अन्तिम समुद्र । स्पर्द्धिन्–स्पर्धा करनेवाला ।

करुणारस – वारिणा – दयारूपी जलसे ।

करुणारस–दयारूपी (रस) । वारि- जल ।

अनन्तजिद्–श्रीअनन्तनाथ प्रभु ।

अनन्तां–अनन्त ।

वः–तुम्हारे लिये ।

प्रयच्छतु–प्रदान करें ।

सुख–श्रियम्–सुख–सम्पत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

दयारूपी जलसे स्वयम्भूरमण समुद्रकी स्पर्धा करनेवाले श्री-अनन्तनाथ तुम्हारे लिये सुख-सम्पत्ति प्रदान करें।। १६ ।।

मूल—

कल्पद्रुम-सधर्माणमिष्ट-प्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्धा धर्म-देष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ।।१७।।

शब्दार्थ—

कल्पद्रुम - सधर्माणम् - कल्प-वृक्ष-समान ।
कल्पद्रुम-कल्पवृक्ष, इच्छित फल देनेवाला एक प्रकारका वृक्ष ।
सधर्म-समान ।

इष्ट-प्राप्तौ-इष्ट-प्राप्तिमें, इच्छित फल प्राप्त करानेमें ।

शरीरिणाम्-प्राणियोंको ।

चतुर्धा-चार प्रकारकी ।

धर्म - देष्टारं - धर्मकी देशना देनेवाले ।

धर्मनाथम्-श्रीधर्मनाथ प्रभुकी ।

उपास्महे-हम उपासना करते हैं ।

अर्थ-सङ्कलना—

प्राणियोंको इच्छित फल प्राप्त करानेमें कल्पवृक्ष—समान और धर्मकी दानादि भेदसे चार प्रकारकी देशना देनेवाले श्रीधर्मनाथ प्रभुकी हम उपासना करते हैं ।। १७ ।।

मूल—

सुधा-सोदर वाक्-ज्योत्स्ना-निर्मलीकृत-दिङ्मुखः ।
मृग-लक्ष्मा तमःशान्त्यै, शान्तिनाथजिनोऽस्तु वः।।१८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

सुधा-सोदर- वाग् - ज्योत्स्ना-निर्मलीकृत - दिङ्मुखः- अमृततुल्य धर्म-देशनासे दिशाओंके मुखको उज्ज्वल करनेवाले।

सुधा-अमृत। सोदर-तुल्य। वाग्ज्योत्स्ना-वाणीरूपी चन्द्रिका। निर्मलीकृत-उज्ज्वल किये हैं। दिङ्मुख-दिशाओंके मुख।

मृग-लक्ष्मा-हरिणके लाञ्छनको धारण करनेवाले।

मृग-हरिण। लक्ष्मन्-लाञ्छन।

तमःशान्त्यै-अज्ञानका निवारण करनेके लिये।

शान्तिनाथजिनः- श्रीशान्तिनाथ भगवान्।

अस्तु-हों।

वः-तुम्हारे।

अर्थ-सङ्कलना—

अमृत-तुल्य धर्म-देशनासे दिशाओंके मुखको उज्ज्वल करनेवाले तथा हरिणके लाञ्छनको धारण करनेवाले श्रीशान्तिनाथ भगवान् तुम्हारे अज्ञानका निवारण करनेके लिये हों॥ १८॥

मूल—

श्रीकुन्थुनाथो भगवान्, सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः।
सुरासुर-नृ-नाथानामेकनाथः श्रियेऽस्तु वः॥१९॥

शब्दार्थ—

श्रीकुन्थुनाथः भगवान्-श्रीकुन्थुनाथ भगवान्।

सनाथः-सहित, युक्त।

अतिशयर्द्धिभिः-अतिशयोंकी ऋद्धिसे।

प्रत्येक तीर्थङ्करोंको ३४ अतिशयरूपी महाऋद्धि होती है।

सुरासुर-नृ - नाथानाम् - सुर, असुर और मनुष्योंके स्वामियोंके। नृ-मनुष्य। नाथ-स्वामी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकनाथः–एक मात्र स्वामी, अनन्यस्वामी।
श्रिये–लक्ष्मीके लिये, आत्म-लक्ष्मीके लिये।
अस्तु–हों।
वः–तुम्हें।

अर्थ–सङ्कलना—

अतिशयों की ऋद्धिसे युक्त और सुर, असुर तथा मनुष्योंके स्वामियोंके भी अनन्यस्वामी ऐसे श्रीकुन्थुनाथ भगवान् तुम्हें आत्म-लक्ष्मीके लिये हों ॥ १९ ॥

मूल—

अरनाथस्तु भगवान्, चतुर्थार–नभो–रविः।
चतुर्थ–पुरुषार्थ–श्री–विलासं वितनोतु वः ॥२०॥

शब्दार्थ—

अरनाथः–श्रीअरनाथ।
तु–तो।
भगवान्–भगवान्।
चतुर्थार-नभो-रविः–चतुर्थ आरा-रूपी गगनमण्डलमें सूर्यरूप। चतुर्थ–चौथा। अर-आरा। नभस्–आकाश, गगन-मण्डल। रवि–सूर्य।
चतुर्थ-पुरुषार्थ-श्री-विलासं–मोक्षरूपी लक्ष्मीका विलास। चतुर्थ–पुरुषार्थ–मोक्ष। श्री–लक्ष्मी।
वितनोतु–प्रदान करें।
वः–तुम्हें।

अर्थ–सङ्कलना—

चतुर्थ आरारूपी गगनमण्डलमें सूर्यरूप श्रीअरनाथ भगवान् तुम्हें मोक्ष–लक्ष्मीका विलास प्रदान करें ॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

सुरासुर–नराधीश–मयूर–नव–वारिदम् ।
कर्म्मद्रून्मूलने हस्ति–मल्लं मल्लिमभिष्टुमः ॥२१॥

शब्दार्थ—

सुरासुर – नराधीश – मयूर – नव–वारिदम्–सुरों, असुरों और मनुष्योंके अधिपतिरूप मयूरोंके लिये नवीन मेघ-समान। अधीश–अधिपति । नव–नवीन । वारिद–मेघ।

कर्म्मद्रु–उन्मूलने–कर्मरूपी वृक्षको मूलसे उखाड़नेके लिये। कर्म-ज्ञानावरणादि। द्रु-वृक्ष। उन्मूलन–मूलसे उखाड़ना।

हस्ति–मल्लं–ऐरावण हाथीके समान। हस्ति–हाथी मल्ल-श्रेष्ठ।

मल्लिम्–श्रीमल्लिनाथकी।

अभिष्टुमः–स्तुति करते हैं।

अर्थ–सङ्कलना—

सुरों, असुरों और मनुष्योंके अधिपतिरूप मयूरोंके लिये नवीन मेघ–समान तथा कर्मरूपी वृक्षको मूलसे उखाड़नेके लिये ऐरावण हाथी–समान श्रीमल्लिनाथकी हम स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥

मूल—

जगन्महामोह–निद्रा–प्रत्यूष–समयोपमम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशना–वचनं स्तुमः ॥२२॥

शब्दार्थ—

जगन्महामोह – निद्रा – प्रत्यूष–समयोपमम्–संसारके प्राणियोंकी महामोहरूपी निद्रा उड़ानेके लिये प्रातःकाल जैसे।

जगत्–संसार, संसारके प्राणी। महामोद–प्रबल मोहनीय कर्मका उदय। प्रत्यूष–समय–प्रातःकाल। उपम–सदृश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिसुव्रतनाथस्य – श्रीमुनिसुव्रत स्वामीके ।

देशना–वचनं–देशना–वचनकी ।

स्तुमः–हम स्तुति करते हैं ।

अर्थ–सङ्कलना—

संसारके प्राणियोंकी महामोहरूपी निद्रा उड़ानेके लिये प्रातःकाल जैसे श्रीमुनिसुव्रत स्वामीके देशना–वचनकी हम स्तुति करते हैं ॥२२॥

मूल—

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि, निर्मलीकार–कारणम्
वारिप्लवा इव नमेः, पान्तु पाद–नखांशवः ॥२३॥

शब्दार्थ—

लुठन्तः–लुढ़कती हुई, लोटती हुई ।

नमतां–नमस्कार करनेवालोंके ।

मूर्ध्नि–मस्तकपर ।

निर्मलीकार – कारणम् – निर्मल करनेमें कारणभूत ।
निर्मलीकार–अनिर्मलको निर्मल करनेकी क्रिया । कारण-हेतु ।

वारि–प्लवाः–जलका प्रवाह ।
वारि–जल । प्लव–प्रवाह ।

इव–तरह ।

नमेः–श्रीनमिनाथ प्रभुके

पान्तु–रक्षा करें ।

पाद–नखांशवः–चरणोंके नखकी किरणें ।
पाद–चरण । अंशु–किरण ।

अर्थ–सङ्कलना—

नमस्कार करनेवालोंके मस्तकपर लोटती हुई और जलके प्रवाह-की तरह निर्मल करनेमें कारणभूत, ऐसी श्रीनमिनाथ प्रभुके चरणोंके नखकी किरणें तुम्हारा रक्षण करें ॥ २३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

यदुवंश–समुद्रेन्दुः, कर्म–कक्ष–हुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान् , भूयाद् वोऽरिष्टनाशनः ॥१४॥

शब्दार्थ—

यदुवंश–समुन्द्रेन्दुः – यदुवंशरूपी समुद्रमें चन्द्र–समान ।

यदु–मथुराके हरिवंशी राजा ययाति के बड़े पुत्र । वंश–कुल । समुद्र–सागर । इन्दु–चन्द्रमा ।

कर्म–कक्ष–हुताशनः – कर्मरूपी वनको जलानेमें अग्निसमान ।

कर्म–ज्ञानावरणीय–कर्म । कक्ष वन । हुताशन–अग्नि ।

अरिष्टनेमि–श्रीअरिष्टनेमि ।
भगवान्–भगवान् ।
भूयाद्–हों ।
वः–तुम्हारे ।
अरिष्टनाशनः–अमङ्गलका नाश करनेवाले ।

अर्थ–सङ्कलना—

यदुवंशरूपी समुद्रमें चन्द्र–तथा कर्मरूपी वनको जलानेमें अग्नि-समान श्रीअरिष्टनेमि भगवान् तुम्हारे अमङ्गलका नाश करनेवाले हों ॥ २४ ॥

मूल—

कमठे धरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभुस्तुल्य–मनोवृत्तिः, पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ॥२५॥

शब्दार्थ—

कमठे–कमठासुरपर ।
धरणेन्द्रे–धरणेन्द्रपर ।
च–और ।
स्वोचितं–अपने लिए उचित ।
कर्म–कृत्य ।
कुर्वति–करनेवाले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुः–प्रभु ।
तुल्य – मनोवृत्तिः – समानभाव धारण करनेवाले
तुल्य–समान । मनोवृत्ति-भाव ।
पार्श्वनाथः–श्रीपार्श्वनाथ ।
श्रिये–लक्ष्मीके लिये, आत्म—लक्ष्मीके लिये ।
अस्तु–हों ।
वः–तुम्हें ।

अर्थ–सङ्कलना—

अपने लिए उचित ऐसा कृत्य करनेवाले, कमठासुर और धरणेन्द्रपर समानभाव धारण करनेवाले श्रीपार्श्वनाथ प्रभु तुम्हें आत्म–लक्ष्मीके लिये हों ।। २५ ।।

मूल—

श्रीमते वीरनाथाय, सनाथायाद्भुतश्रिया ।
महानन्द–सरो–राजमरालायार्हते नमः ।।२६।।

शब्दार्थ—

श्रीमते – अनन्त ज्ञानादि-लक्ष्मीसे युक्तके लिये ।
वीरनाथाय–श्रीवीरस्वामीके लिये, श्रीमहावीर स्वामीके लिये ।
सनाथाय–अद्भुत–श्रिया–अलौकिक लक्ष्मीसे युक्तके लिये । सनाथ–युक्त । अद्भुत–अलौकिक । श्री–लक्ष्मी । यहाँ अलौकिक लक्ष्मीसे चौंतीस अतिशय समझने चाहिये ।
महानन्द–सरो – राजमरालाय–परमानन्दरूपी सरोवरमें राजहंस–स्वरूप ।
सरस्–सरोवर । राजमराल-राजहंस ।
अर्हते–पूज्य ।
नमः–नमस्कार हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

परमानन्दरूपी सरोवरमें राजहंस-स्वरूप (समान) तथा अलौकिक लक्ष्मीसे युक्त ऐसे पूज्य श्रीमहावीरस्वामीके लिये नमस्कार हो।। २६।।

मूल—

कृतापराधेऽपि जने, कृपा-मन्थर-तारयोः ।
ईषद्-बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिन-नेत्रयोः ।।२७।।

शब्दार्थ—

कृतापराधेऽपि जने–अपराध किये हुए मनुष्यपर भी ।
जिसने अपराध किया है वह कृतापराध ।

कृपा-मन्थर - तारयोः – अनुकम्पासे मन्द कनीनिकावाले ।
कृपा–अनुकम्पा । मन्थर–मन्द । तारा–कनीनिका ।

ईषद् - बाष्पार्द्रयोः –कुछ अश्रुसे भीगे हुए ।
ईषद्–अल्प,कुछ । बाष्प–अश्रु । आर्द्र–भीगे हुए ।

भद्रं–कल्याण ।

श्रीवीरजिन - नेत्रयोः – श्रीवीरजिनेश्वर के दोनों नेत्रोंका, श्रीमहावीर प्रभुके नेत्रोंका ।

अर्थ-सङ्कलना—

अपराध किये हुए मनुष्यपर भी अनुकम्पासे मन्द कनीनिकावाले और कुछ अश्रुसे भीगे हुए श्रीमहावीर प्रभुके नेत्रोंका कल्याण हो।।२७।।

मूल—

[आर्या]

जयति विजितान्यतेजाः, सुरासुराधीश-सेवितः श्रीमान् ।
विमलस्त्रास-विरहितस्त्रिभुवन-चूडामणिर्भगवान्।।२८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जयति–जयको प्राप्त हो रहे हैं।

विजितान्यतेजाः – जिन्होंने अन्यका तेज जीत लिया है ऐसे, अन्य तीर्थिकोंके प्रभावको जीतनेवाले।

विजित–जीता हुआ। अन्यतेजस्–अन्यका तेज।

सुरासुराधीश – सेवितः – सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रोंसे सेवित।

अधीश–अधिपति, इन्द्र।

श्रीमान्–केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीसे युक्त।

विमलः–निर्मल, अठारह दोषोंसे रहित।

त्रास – विरहितः – भय – मुक्त, सातों प्रकारके भयसे मुक्त।

त्रिभुवन – चूडामणिः– त्रिभुवनके मुकुटमणि।

त्रिभुवन–तीनों लोक।

चूडा–मुकुट। मणि–मणि।

भगवान्–अरिहन्त भगवान्।

अर्थ–सङ्कलना—

अन्य तीर्थिकोंके प्रभावको जीतनेवाले; सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रोंसे सेवित, केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीसे युक्त, अठारह दोषोंसे रहित, सातों-प्रकारके भयसे मुक्त और त्रिभुवनके मुकुटमणि ऐसे अरिहन्त भगवान् जयको प्राप्त हो रहे हैं॥ २८॥

मूल—

वीरः सर्व–सुरासुरेन्द्र–महितो, वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्म–निचयो, वीराय नित्यं नमः।
वीरात् तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री–धृति–कीर्ति–कान्ति–निचयः श्रीवीर !
भद्रं दिश ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

वीरः-श्रीमहावीरस्वामी ।

सर्व–सुरासुरेन्द्र – महितः – सर्व सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रोंसे पूजित । महित–पूजित ।

वीरं-श्रीमहावीरस्वामीका ।

बुधाः–पण्डित, पण्डितोंने ।

संश्रिताः–अच्छी प्रकारसे आश्रय लिया है ।

वीरेण–श्रीमहावीरस्वामीद्वारा ।

अभिहतः–नष्ट किया गया है ।

स्व–कर्म–निचयः–अपना कर्म–समूह ।
स्व–अपना । कर्म ज्ञानावरणादि कर्म । निचय-समूह ।

वीराय–श्रीमहावीरस्वामीको ।

नित्यं–प्रतिदिन ।

नमः–नमस्कार हो ।

वीरात्–श्रीमहावीरस्वामीसे ।

तीर्थम्–तीर्थ ।

इदं–यह ।

प्रवृत्तम्–प्रवर्तित ।

अतुलं–अनुपम ।

वीरस्य–श्रीमहावीरस्वामीका ।

घोरं–उग्र ।

तपः–तप ।

वीरे–श्रीमहावीरस्वामीमें ।

श्री – धृति – कीर्ति – कान्ति–निचयः–ज्ञानरूपी लक्ष्मी, धैर्य कीर्ति और कान्तिका समूह (स्थित है) ।

श्रीवीर !–हे महावीरस्वामी !

भद्रं–कल्याण ।

दिश–करो ।

अर्थ–सङ्कलना—

श्रीमहावीरस्वामी सर्व सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रोंसे पूजित हैं, पण्डितोंने श्रीमहावीरस्वामीका अच्छी प्रकारसे आश्रय लिया है; श्रीमहावीर-स्वामीद्वारा अपने कर्म–समूहको नष्ट किया गया है; श्रीमहावीर स्वामीको प्रतिदिन नमस्कार हो, यह अनुपम चतुर्विध सङ्घरूपी तीर्थ श्रीमहावीर स्वामीसे प्रवर्तित है; श्रीमहावीरस्वामीका तप बहुत उग्र है; श्रीमहावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामीमें ज्ञानरूपी लक्ष्मी, धैर्य, कीर्ति और कान्तिका समूह स्थित है, ऐसे हे महावीरस्वामी ! मेरा कल्याण करो ॥ २९ ॥

मूल—

[मालिनी-वृत्त]

अवनितल–गतानां कृत्रिमाकृत्रिमानां,
वरभवन–गतानां दिव्य–वैमानिकानाम् ।
इह मनुज–कृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवर–भवनानां भावतोऽहं नमामि ॥३०॥

शब्दार्थ—

अवनितल–गतानां – पृथ्वीतलपर स्थित ।
अवनितल–पृथ्वीतल । गत–स्थित ।

कृत्रिमाकृत्रिमानां–कृत्रिम अकृत्रिम–अशाश्वत और शाश्वत । कृत्रिम–मनुष्यद्वारा बनाये हुए । अकृत्रिम–शाश्वत ।

वरभवन–गतानां – भवनपतियोंके श्रेष्ठ निवासस्थानमें ।
वर–श्रेष्ठ । भवन–भवनपतिदेवोंका निवासस्थान ।

दिव्य–वैमानिकानाम् – दिव्य विमानोंमें स्थित ।
दिव्य–देवता–सम्बन्धी । वैमानिक–विमानमें स्थित ।

इह–इस मनुष्यलोकमें ।

मनुज – कृतानां – मनुष्योंद्वारा कराये हुए ।
मनुज–मनुष्य । कृत–कराये हुए ।

देवराजार्चितानां – देव तथा राजाओंसे एवं देवराजसे पूजित ।

जिनवर–भवनानां–श्रीजिनेश्वरदेवके चैत्योंको ।

भावतः–भावपूर्वक ।

अहं–मैं ।

नमामि–नमन करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

श्रीजिनेश्वरदेवके चैत्योंको मैं भावपूर्वक नमन करता हूँ, जो अशाश्वत और शाश्वतरूपमें पृथ्वीतलपर, भवनपतियोंके श्रेष्ठ निवास-स्थानपर स्थित हैं, इस मनुष्य लोकमें मनुष्योंद्वारा कराये हुए हैं और देव तथा राजाओंसे एवं देवराज–इन्द्रसे पूजित हैं ।। ३० ।।

मूल—

[अनुष्टुप्]

सर्वेषां वेधसामाद्यमादिमं परमेष्ठिनाम् ।
देवाधिदेवं सर्वज्ञं, श्रीवीरं प्रणिदध्महे ।। ३१ ।।

शब्दार्थ—

सर्वेषाम्–सब ।
वेधसाम्–ज्ञाताओंमें ।
आद्यम्–श्रेष्ठ ।
आदिमं–प्रथम, प्रथम स्थानपर विराजित होनेवाले ।
परमेष्ठिनाम्–परमेष्ठियोंमें ।
देवाधिदेवं–देवोंके भी देव ।
सर्वज्ञं–सर्वज्ञ ।
श्रीवीरं–श्रीमहावीर स्वामीका ।
प्रणिदध्महे–उपासना करते हैं, हम ध्यान करते हैं ।

अर्थ-सङ्कलना—

सर्व ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ, परमेष्ठियोंमें प्रथम स्थानपर विराजित होनेवाले, देवोंके भी देव और सर्वज्ञ ऐसे श्रीमहावीर स्वामीका हम ध्यान करते हैं ।। ३१ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[शार्दूलविक्रीडित]

देवोऽनेक–भवार्जितोर्जित–महापाप–प्रदीपानलो ,
देवः सिद्धि–वधू–विशाल–हृदयालङ्कार–हारोपमः ।
देवोऽष्टादश–दोष–सिन्धुरघटा–निर्भेद–पञ्चाननो,
भव्यानां विदधातु वाञ्छितफलं श्रीवीतरागो जिनः ॥३२॥

शब्दार्थ—

देवः–देव ।

अनेक – भवार्जितोर्जित – महापाप – प्रदीपानलः – अनेक भवोंमें उपार्जित–इकट्ठे किये हुए तीव्र महापापोंको दहन करने के लिये अग्नि–समान । अनेक–असंख्य । भव–जन्म–मरणके फेरे । अर्जित–इकट्ठे किये हुए । ऊर्जित–बलवान्, तीव्र । महापाप–बड़ा पाप । प्रदीप-जलाना, दहन करना । अनल–अग्नि ।

देवः–देव ।

सिद्धि–वधू – विशाल – हृदयालङ्कार–हारोपमः–मुक्तिरूपी स्त्रीके विस्तृत वक्षःस्थलको अलङ्कृत करनेमें हारके समान । सिद्धि–मुक्ति । वधू–स्त्री । विशाल–विस्तृत । हृदय–वक्षः–स्थल । अलङ्कार–अलङ्कृत करना । हारोपम–हारके समान ।

देवः–देव ।

अष्टादश – दोष – सिन्धुरघटा–निर्भेद–पञ्चाननः – अठारह दूषणरूपी हाथीके समूहका भेदन करनेमें सिंहसदृश । अष्टादश–अठारह । दोष–दूषण । सिन्धुर–हाथी । घटा–समूह । निर्भेद–भेदनकी क्रिया, भेदन करना । पञ्चानन–सिंह ।

भव्यानां–भव्यप्राणियोंको ।

विदधातु–प्रदान करें ।

वाञ्छित–फलं – इच्छित फल ।

श्रीवीतरागः जिनः – श्रीवीतराग जिनेश्वर देव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

जो देव अनेक भवोंमें इकट्ठे किये हुए तीव्र महापापोंको दहन करनेके लिये अग्नि-समान हैं, जो देव मुक्तिरूपी स्त्रीके विशाल वक्षःस्थलको अलङ्कृत करनेके लिये हारके समान हैं, जो अठारह दूषणरूपी हाथीके समूहका भेदन करनेके लिये सिंहसदृश हैं, वे श्रीवीतराग जिनेश्वरदेव भव्य-प्राणियोंको इच्छित फल प्रदान करें ॥ ३२ ॥

मूल—

ख्यातोऽष्टापदपर्वतो गजपदः सम्मेतशैलाभिधः,
श्रीमान् रैवतकः प्रसिद्धमहिमा शत्रुञ्जयो मण्डपः ।
वैभारः कनकाचलोऽर्बुदगिरिः श्रीचित्रकूटादय-
स्तत्र श्रीऋषभादयो जिनवराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥३३॥

शब्दार्थ—

ख्यातः—प्रसिद्ध ।

अष्टापदपर्वतः – अष्टापद नामका पर्वत ।

गजपदः—गजपद अथवा गजाग्र-पाद नामका पर्वत, दशार्णकूट पर्वत ।

सम्मेतशैलाभिधः – सम्मेतशिखर नामका पर्वत ।

श्रीमान्-रैवतकः—शोभावान् गिरनार पर्वत ।

प्रसिद्धमहिमा – प्रसिद्ध महिमा-वाला ।

शत्रुञ्जयः—शत्रुञ्जयगिरि ।

मण्डपः—माँडवगढ ।

वैभारः—वैभारगिरि ।

कनकाचलः—सुवर्णगिरि ।

अर्बुदगिरिः—आबूपर्वत ।

श्रीचित्रकूटादयः – श्रीचित्रकूट आदि तीर्थ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र–वहाँ स्थित ।
श्रीऋषभादयः जिनवराः–
श्रीऋषभ आदि जिनेश्वर ।
कुर्वन्तु–करो ।
वः–तुम्हारा ।
मङ्गलं–मङ्गल, कल्याण ।

अर्थ-सङ्कलना—

प्रसिद्ध अष्टापद पर्वत, गजाग्रपाद अथवा दशार्णकूट पर्वत, सम्मेतशिखर, शोभावान् गिरनार-पर्वत, प्रसिद्ध महिमावाला शत्रुञ्जय गिरि, माँडवगढ़, वैभारगिरि, कनकाचल (सुवर्णगिरि), आबूपर्वत, श्रीचित्रकूट आदि तीर्थ हैं, वहाँ स्थित श्रीऋषभ आदि जिनेश्वर तुम्हारा कल्याण करें ।। ३३ ।।

सूत्र-परिचय—

इस स्तोत्रका मूल नाम 'चतुर्विंशति-जिन-नमस्कार' है, परन्तु यह प्रथमाक्षरोंके आधारपर 'सकलार्हत्-स्तोत्र' के नामसे भी प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसे बृहच्चैत्यवन्दनके नामसे पहिचानते हैं, क्यों कि पाक्षिक चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणके समय बड़ा चैत्यवन्दन करनेमें इसका उपयोग होता है ।

इस स्तोत्रके २८, २९, ३०, ३२ और ३३ वें श्लोकके अतिरिक्त सभी श्लोक कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य रचित हैं ।

इस स्तोत्रमें चौबीस जिनेश्वरोंकी स्तुति करते हुए जो उपमाएँ दी गयी हैं, वे अत्यन्त मनोहर हैं और वे जैनधर्मके महत्त्वपूर्ण विषयोंका वास्तविक निदर्शन कराती हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५ अजिय–संति–थओ

[अजित–शान्ति–स्तव] ×

मूल—

[मङ्गलादि]

अजियं जिय–सव्व–भयं, संतिं च पसंत–सव्व–गय–पावं ।
जयगुरू संति–गुणकरे, दो वि जिणवरे पणिवयामि ॥१॥

—गाहा ॥

शब्दार्थ—

अजियं–श्रीअजितनाथको ।

जिय–सव्व–भयं–समस्त भयोंको जीतनेवाले ।

जिय–जीतनेवाले । सव्व–भय–समस्त भय ।

संतिं–श्रीशान्तिनाथको ।

च–और ।

पसंत–सव्व– गय – पावं – सर्व रोगों और पापोंका प्रशमन करनेवाले ।

पसंत–पुनः न हो इस प्रकार निवृत्ति प्राप्त, प्रशमन करनेवाले । सव्व–सर्व ।

जय–गुरू–जगत्के गुरुको ।

संति–गुणकरे–विघ्नोंका उपशमन करनेवालेको ।

संति–विघ्नोंका उपशमन ।

दो वि–दोनों ही ।

जिणवरे–जिनवरोंको ।

पणिवयामि–मैं पञ्चाङ्ग प्रणिपात करता हूँ ।

× अक्षरके ऊपर दिया हुआ ˘ ऐसा चिह्न गुरुको लघु दिखलानेके लिए और–ऐसा चिह्न लघुको गुरु दिखलानेके लिये है । प्रत्येक गाथाकी उत्थापनिकाके लिये देखो–प्रबोधटीका भाग ३ रा. पृ. ४७१ से ५३१ ।

एक स्वतन्त्र पद्यको मुक्तक, दो पद्योंके समूहको सन्दानितक, तीन पद्योंके समूहको विशेषक और चार पद्योंके समूहको कलापक कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

समस्त भयोंको जीतनेवाले श्रीअजितनाथको तथा सर्व रोगों और पापोंका प्रशमन करनेवाले श्रीशान्तिनाथको, इसी तरह जगत्के गुरु और विघ्नोंका उपशमन करनेवाले इन दोनों ही जिनवरोंको मैं पञ्चाङ्ग प्रणिपात करता हूँ ॥ १ ॥

मूल—

ववगय-मंगुल-भावे, ते हं विउल-तव-निम्मल-सहावे ।
निरुवम-महप्पभावे, थोसामि सुदिट्ठ-सब्भावे ॥२॥

—गाहा ॥

शब्दार्थ—

ववगय- मंगुल- भावे – जिनका राग-द्वेषरूपी अशोभनभाव चला गया है ऐसे, वीतराग । ववगय-विशिष्ट प्रकारसे गया हुआ । मंगुल–अशोभन । भाव–भाव ।

ते–उन दोनों जिनवरोंको ।

हं–मैं (नन्दिषेण) ।

विउल-तव- निम्मल – सहावे– अति तपद्वारा निर्मलीभूत स्वभाववालोंको, विपुल तपसे आत्माके अनन्तज्ञानादि निर्मल स्वरूपको प्राप्त करनेवाले । विउल–विपुल, विस्तीर्ण । तव-तप । निम्मल-निर्मल । सहाव –स्वभाव ।

निरुवम – महप्पभावे – अनुपम माहात्म्यवालोंको । निरुवम–अनुपम ।

महप्पभाव–महाप्रभाव, माहात्म्य ।

थोसामि–स्तुति करता हूँ ।

सुदिट्ठ – सब्भावे – सर्वज्ञ और सर्वदर्शियोंको । सुदिट्ठ–जिसने सम्यक् प्रकारसे देखा और पहिचाना है । सब्भाव-वस्तुका सद्रूप भाव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ–सङ्कलना—

वीतराग, विपुल तपसे आत्माके अनन्तज्ञानादि निर्मल स्वरूपको प्राप्त करनेवाले, (चौंतीस अतिशयोंके कारण) अनुपम माहात्म्य–महाप्रभाववाले और सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी (ऐसे) दोनों जिनवरोंकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

मूल—

सव्व–दुक्ख–प्पसंतीणं, सव्व–पाव–प्पसंतीणं ।
सया अजिय–सतीणं, नमो अजिय–संतीणं ॥३॥

—सिलोगो ॥

शब्दार्थ—

सव्व – दुक्ख – प्पसंतीणं – सर्व दुःखोंका प्रशमन करने वाले । सव्व–दुक्ख–आधि-व्याधि और उपाधि ये तीनों प्रकारके दुःख । पसंति–प्रशमन ।

सव्व – पाव – प्पसंतीणं – सर्व पापोंका प्रशमन करनेवाले । पाव–पाप ।

सया–सदा ।

अजिय – संतीणं– अखण्ड शान्ति धारण करनेवाले । अजिय–जिनका रागादिद्वारा पराभव न हो सके ऐसी, अखण्ड ।

नमो–नमस्कार हो ।

अजिय – संतीणं – श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथको ।

अर्थ–सङ्कलना—

सर्व दुःखोंका प्रशमन करनेवाले, सर्व पापोंका प्रशमन करने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले और सदा अखण्ड शान्ति धारण करनेवाले श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथको नमस्कार हो ॥ ३ ॥

मूल—

(श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथकी विशेषकद्वारा स्तुति)

अजियजिण ! सुह–प्पवत्तणं,
तव पुरिसुत्तम ! नाम–कित्तणं ।
तह य धिइ–मइ–प्पवत्तणं
तव य जिणुत्तम ! संति ! कित्तणं ॥४॥

—मागहिया ॥

किरिआ–विहि–संचिय–कम्म–किलेस–विमुक्खयरं,
अजियं निचियं च गुणेहिं महामुणि–सिद्धिगयं ।
अजियस्स य संतिमहामुणिणो वि य संतिकरं,
सययं मम निव्वुइ–कारणयं च नमंसणयं ॥५॥

—आलिंगणयं ॥

पुरिसा ! जइ दुक्ख–वारणं,
जइ य विमग्गह सुक्ख–कारणं ।
अजियं संतिं च भावओ,
अभयकरे सरणं पवज्जहा ॥६॥

—मागहिआ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

अजियजिण !–हे अजितनाथ !

सुह–प्पवत्तणं–शुभका प्रवर्तन करनेवाला ।

सुह–सुख, शुभ । प्पवत्तण–प्रवर्त्तन करनेवाला ।

तव–आपका ।

पुरिसुत्तम !–हे पुरुषोत्तम !

नाम–कित्तणं–नामस्मरण ।

कित्तण–कीर्तन, स्मरण ।

तह य–वैसा ही ।

धिइ–मइ – प्पवत्तणं – धृतियुक्त मतिका प्रवर्तन करनेवाला, स्थिर बुद्धिको देनेवाला ।

धिइ–चित्तका स्वास्थ्य, स्थिरता । मइ–बुद्धि ।

तव–आपका ।

य–और ।

जिणुत्तम !–हे जिनोत्तम !

संति !–हे शान्तिनाथ !

कित्तणं–कीर्तन, नाम–स्मरण ।

किरिआ–विहि संचिय–कम्म – किलेस – विमुक्खयरं – कायिकी आदि पच्चीस प्रकारकी क्रियाओंसे सञ्चित कर्मकी पीड़ासे छुड़ाने वाला ।

किरिआ–कायिकी आदि पच्चीस प्रकारकी क्रिया । विहि–विधान, करना । सञ्चित–एकत्रित । कम्म–ज्ञानावरणीय आदि कर्म । किलेस–पीड़ा । विमुक्खयर–विशेषतापूर्वक मुक्त करनेवाला, सर्वथा छुड़ाने वाला ।

अजियं–पराभूत न हो ऐसा सर्वोत्कृष्ट ।

निच्चियं–व्याप्त, परिपूर्ण ।

च–और ।

गुणेहिं–गुणोंसे, सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे ।

महामुणि – सिद्धिगयं – महामुनियोंको (अणिमादि आठों) सिद्धियोंको प्राप्त करानेवाला ।

महामुणि–योगी । सिद्धिगय–सिद्धियोंको प्राप्त करानेवाला ।

अजियस्स–श्रीअजितनाथका ।

य–और ।

संति – महामुणिणो वि य – श्रीशान्तिनाथ भगवान्का भी ।

संतिकरं–शान्तिकर ।

सययं–सदा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मम–मुझे ।

निव्वुइ–कारणयं–मोक्षका कारण ।

निव्वुइ–मोक्ष । कारणय-कारण ।

च–और ।

नमंसणयं–पूजन ।

पुरिसा !–हे पुरुषो !

जइ–यदि ।

दुक्ख–वारणं – दुःख – निवारण,

दुःख–नाशका उपाय ।

वारण–निषेध, प्रत्युपाय ।

जइ य–और यदि ।

विमग्गह–खोजते हो ।

सुक्ख – कारणं – सुख प्राप्तिका कारण ।

अजियं–श्रीअजितनाथका ।

संतिं–श्रीशान्तिनाथका ।

च–और ।

भावओ–भावसे ।

अभयकरे–अभय प्रदान करनेवाले ।

सरणं–शरण ।

पवज्जहा–अङ्गीकृत करो ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे पुरुषोत्तम ! हे अजितनाथ ! आपका नाम-स्मरण (जैसे) शुभ (सुख) का प्रवर्त्तन करनेवाला है, वैसे ही स्थिर–बुद्धिको देनेवाला है । हे जिनोत्तम ! हे शान्तिनाथ ! आपका नाम–स्मरण भी ऐसा ही है ।। ४ ।।

कायिकी आदि पचीस प्रकारकी क्रियाओंसे सञ्चित कर्मकी पीड़ासे सर्वथा छुड़ानेवाला, सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे परिपूर्ण, महामुनियोंकी अणिमादि आठों सिद्धियोंको प्राप्त करानेवाला और शान्तिकर ऐसा श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पूजन मेरे लिए सदा मोक्षका कारण बने।। ५।।

हे पुरुषो ! यदि तुम दुःख–नाशका उपाय अथवा सुख–प्राप्तिका कारण खोजते हो तो अभयको देनेवाले श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथकी शरण भावसे अङ्गीकृत करो ।। ६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

(मुक्तकद्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

अरइ–रइ–तिमिर–विरहियमुवरय–जर–मरणं,
सुर–असुर–गरुल–भुयगवइ–पयय–पणिवइयं ।
अजियमहमवि य सुनय–नय–निउणमभयकरं,
सरणमुवसरिय भुवि–दिविज–महियं सययमुवणमे ॥७॥

—संगययं ॥

शब्दार्थ—

अरइ–रइ–तिमिर – विरहियं– विषाद और हर्षको उत्पन्न करनेवाले अज्ञानसे रहित । अरइ–विषाद । रइ–हर्ष । तिमिर–अन्धकार, अज्ञान । विरहिय–रहित ।

उवरय–जर – मरणं – वृद्धावस्था और मृत्युसे रहित । उवरय–निवृत्त, रहित । जरा–वृद्धावस्था । मरण–मृत्यु ।

सुर–असुर – गरुल – भुयगवइ–पयय-पणिवइयं–देव, असुर-कुमार, सुपर्ण (गरुड) कुमार, नागकुमार आदिके इन्द्रोंसे अच्छी तरह नमस्कार किये हुए। सुर–वैमानिक देव । असुर–असुरकुमार । गरुल – सुपर्ण-कुमार। भुयग–नागकुमार। वइ–पति, इन्द्र । पयय–अत्यन्त आदरपूर्वक । पणि-वइय–प्रणिपात – नमस्कार किये हुए ।

अजियं–श्रीअजितनाथका ।

अहमवि य–मैं भी ।

सुनय–नय – निउणं – सुनयोंका प्रतिपादन करनेमें अति कुशल। सुनय–सम्यग्नय । नय-पद्धति, प्रकार । निउण-अतिकुशल।

अभयकरं–सर्व--प्रकारके भय और उपसर्गोंको दूर करनेवाले ।

सरणं–शरण ।

उवसरिय–प्राप्तकर, स्वीकृतकर ।

भुवि–दिविज – महियं – मनुष्य और देवताओंसे पूजित ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुविज-मनुष्य। दिविज–देवता।
महिय–पूजित।

सययं–निरन्तर।

उवणमे–समीपमें जाकर नमन करता हूँ, चरणोंकी सेवा करता हूँ!

अर्थ–सङ्कलना—

मैं भी विषाद और हर्षको उत्पन्न करनेवाले, अज्ञानसे रहित, (जन्म), जरा और मृत्युसे निवृत्त; देव, असुरकुमार, सुपर्णकुमार, नागकुमार आदिके इन्द्रोंसे अच्छी तरह नमस्कार किये हुए; सुनयोंका प्रतिपादन करनेमें अतिकुशल; सर्व–प्रकारके भय और उपसर्गोंको दूर करनेवाले तथा मनुष्य और देवोंसे पूजित श्रीअजितनाथका शरण स्वीकृत कर उनके चरणोंकी सेवा करता हूँ ॥ ७ ॥

मूल—

(दूसरे मुक्तकसे श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

तं च जिणुत्तममुत्तम–नित्तम–सत्त–धरं,
अज्जव–मद्दव–खंति–विमुत्ति–समाहि–निहिं।
संतिकरं पणमामि दमुत्तम–तित्थयरं,
संतिमुणी! मम संति–समाहि–वरं दिशउ ॥८॥

—सोवाणयं ॥

शब्दार्थ—

तं–उन।

च–और।

जिणुत्तमं–जिनोत्तमको।

उत्तम–नित्तम–सत्त–धरं–श्रेष्ठ और निर्दोष पराक्रमको धारण करनेवाले।

उत्तम–श्रेष्ठ। नित्तम–निर्मल, निर्दोष। सत्त – पराक्रम। धर–धारण करनेवाले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्जव–मद्दव–खंति – विमुत्ति–समाहि–निहिं–सरलता, मृदुता, क्षमा और निर्लोभताद्वारा समाधिके भण्डार।

अज्जव–सरलता। मद्दव-मृदुता। खंति–क्षमा। विमुत्ति-निर्लोभता। समाहि–समाधि। निहि–निधि, भण्डार।

संतिकरं–शान्ति करनेवाले।

पणमामि–प्रणाम करता हूँ।

दमुत्तम – तित्थयरं – इन्द्रिय – दमनमें उत्तम ऐसे तीर्थङ्करके। दम–इन्द्रियोंका दमन।

संतिमुणी !–हे शान्तिनाथ !

मम–मुझे।

संतिसमाहि–वरं–श्रेष्ठ शान्ति–समाधि।

संति–उपद्रवरहित स्थिति। समाहि–चित्तकी प्रसन्नता। वर–श्रेष्ठ।

दिसउ–दो, देनेवाले बनो।

अर्थ–सङ्कलना—

श्रेष्ठ और निर्दोष पराक्रमको धारण करनेवाले; सरलता, मृदुता, क्षमा, और निर्लोभता द्वारा समाधिके भण्डार; शान्ति करनेवाले; इन्द्रिय–दमनमें उत्तम ऐसे तीर्थङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। हे शान्तिनाथ ! मुझे श्रेष्ठ समाधि देनेवाले बनो ॥ ८ ॥

मूल—

(सन्दानितकद्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

सावत्थि–पुव्व–पत्थिवं च वरहत्थि–मत्थय–पसत्थ–वित्थिन्न–संथियं थिर–सरिच्छ–वच्छं,

मयगल–लीलायमाण–वरगंधहत्थि – पत्थाण–पत्थियं संथ–वारिहं।

हत्थि–हत्थ–बाहुं धंत–कणग–रुअग–निरुवहय–पिंजरं पवर–लक्खणोवचिय–सोम–चारु–रूवं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुइ–सुह–मणाभिराम–परम–रमणिज्ज-वर-देव–दुंदुहि-निनाय–महुरयर–सुहगिरं ॥९॥

—वेड्ढओ (वेढो) ॥

अजियं जियारिगणं, जिय–सव्व–भयं भवोह–रिउं ।
पणमामि अहं पयओ, पावं पसमेउ मे भयवं ॥१०॥

—रासालुद्धओ ॥

शब्दार्थ—

सावत्थि – पुव्व – पत्थिवं – श्रावस्ती नगरीके पूर्व (कालमें) राजा ।

सावत्थि–श्रावस्ती (आधुनिक बहराइच जिले का सहेट ग्राम) पुव्व–पूर्व । पत्थिव–राजा ।

च–और ।

वरहत्थि–मत्थय–पसत्थ–वित्थिन्न-संथियं–श्रेष्ठ हाथीके कुम्भस्थल जैसे प्रशस्त और विस्तार्ण संस्थानवाले ।

वर-श्रेष्ठ । हत्थि-हाथी । मत्थय–कुम्भस्थान । पसत्थ–प्रशस्त । वित्थिन्न–विस्तीर्ण । संथिय–संस्थान ।

थिर–सरिच्छ – वच्छं – निश्चल और अविषम वक्षःस्थल वाले ।

थिर–निश्चल । सरिच्छ–समान, अविषम । वच्छ–वक्षस्थल ।

मयगल – लीलायमाण – वर – गंधहत्थि-पत्थाण –पत्थियं– जिनका मद झर रहा हो और लीलायुक्त श्रेष्ठ गंध हस्तिके जैसी गतिसे चलते हुए ।

मयगल–जिसका मद झर रहा हो । लीलायमाण-लीलायुक्त । वर–श्रेष्ठ । गंधहत्थि–गन्ध-हस्ती । पत्थान–प्रस्थान, गति । पत्थियं–प्रस्थित, चलते हुए ।

संथवारिहं–प्रशंसाके योग्य ।

हत्थि–हत्थ–बाहुं–हाथी की सूँड़ जैसी दीर्घ और (सुन्दर) भुजावाले ।

हत्थि–हत्थ–हाथीकी सूँड़ । बाहु–भुजा ।

धंत–कणग - रुअग - निरुवहय–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिंजरं–तपाये हुए सुवर्णकी कान्ति जैसे स्वच्छ पीत वर्णवाले। धंत–तपाया हुआ। कणग–सुवर्ण। रुअग–कान्ति। निरुबहय–स्वच्छ। पिंजर–पीतवर्ण।

पवर – लक्खणोवचिय – सोम–चारु-रूवं–श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त, शान्त और मनोहर रूपवाले। पवर–श्रेष्ठ। लक्खण–लक्षण। उवचिय–युक्त। सोम–शान्त। चारु – मनोहर। रूव–रूप।

सुइ – सुह – मणाभिराम – परम – रमणिज्ज - वर – देव–दुन्दुहि – निनाय – महुरयर – कानोंको सुखकारक, मनको आनन्द देनेवाले, अति रमणीय और श्रेष्ठ ऐसे देवदुन्दुभिके नादसे अतिमधुर और मङ्गलमय वाणीवाले। सुइ–कान। सुह–सुख। मणाभिराम–मनको आनन्द देनेवाला। रमणिज्ज–रमणीय। निनाय–नाद, ध्वनि। महुरयर–अत्यन्त मधुर। सुह–मङ्गल। गिर्–वाणी।

सुहगिरं–मंगलमय।

अजियं –श्रीअजितनाथ भगवान्को।

जियारिगणं–अन्तरके शत्रुओंपर जय प्राप्त करनेवाले।

जिय–सव्व–भयं–सर्व भयोंको जीतनेवाले।

भवोह–रिउं–भव-परम्पराके प्रबल शत्रु।

पणमामि–नमस्कार करता हूँ।

अहं–मैं।

पयओ–मन, वचन और कायाके प्रणिधानपूर्वक।

पावं–पापका, अशुभ कर्मोंका।

पसमेउ–प्रशमन करो।

मे–मेरे।

भयवं–हे भगवन्।

अर्थ–सङ्कलना—

जो दीक्षासे पूर्व श्रावस्ती (सहेट) के राजा थे, जिनका संस्थान श्रेष्ठ हाथीके कुम्भस्थल जैसा प्रशस्त और विस्तीर्ण था, जो निश्चल और अविषम वक्षःस्थलवाले थे (जिनके वक्षःस्थल पर निश्चल श्रीवत्स था), जिनकी चाल मद झरते हुए और लीलासे चलते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठ गन्धहस्तिके जैसी मनोहर थी, जो सर्व प्रकारसे प्रशंसाके योग्य थे, जिनकी भुजाएँ हाथी की सूँड़के समान दीर्घ और गठीली थीं, जिनके शरीरका वर्ण तपाये हुए सुवर्णकी कान्ति जैसा स्वच्छ पीला था, जो श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त, शान्त और मनोहर रूपवाले थे, जिनकी वाणी कानोंको प्रिय, सुखकारक, मनको आनन्द देनेवाली, अतिरमणीय और श्रेष्ठ ऐसे देवदुन्दुभिके नादसे भी अतिमधुर और मङ्गलमय थी, जो अन्तरके शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाले थे, जो सर्व भयोंको जीतनेवाले थे, जो भव-परम्पराके प्रबल शत्रु थे, ऐसे श्रीअजितनाथ भगवान्‌को मैं मन, वचन और कायाके प्रणिधान-पूर्वक नमस्कार करता हूँ और निवेदन करता हूँ कि 'हे भगवन् ! आप मेरे अशुभ कर्मोंका प्रशमन करो ॥ ९-१० ॥

मूल—

(दूसरे सन्दानितकद्वारा श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

कुरु-जणवय-हत्थिणाउर-नरीसरो य पढमं तओ महाचक्कवट्टि-भोए महप्पभावो,

जो बावत्तरि-पुरवर-सहस्स-वर-नगर-निगम-जणवय-वई-बत्तीसा-रायवर-सहस्साणुयाय-मग्गो ।

चउदस-वररयण-नव-महानिहि-चउसट्ठि- सहस्स-पवर-जुवईण-सुन्दरवई,

चुलसी-हय-गय-रह-सयसहस्स-सामी छन्नवइ-गामकोडि-सामी य आसी जो भारहंमि भयवं ॥११॥

—वेड्ढओ (वेढो) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं संतिं संतिकरं, संतिण्णं सव्वभया ।
संतिं थुणामि जिणं, संतिं (च) विहेउं मे ॥१२॥

—रासाणंदिययं ॥

शब्दार्थ—

कुरु – जणवय – हत्थिणाउर – नरीसरो–कुरुदेशके हस्तिनापुरके राजा ।

कुरु–जणवय – कुरुदेश । हत्थिणाउर–हस्तिनापुर । नरीसर–नरेश्वर, राजा ।

य–और ।

पढमं–पहले, प्रथम ।

तओ–तदनन्तर ।

महाचक्कवट्टि–भोए–महान् चक्रवर्तीके राज्यको भोगनेवाले ।

महाचक्कवट्टि–महान् चक्रवर्ती । भोअ–भोग, राज्य ।

महप्पभावो–महान् प्रभाववाले ।

जो–जो ।

बावत्तरि–पुरवर–सहस्स – वर –नगर–निगम – जणवयवई–बहत्तर हजार मुख्य शहरों और हजारों नगर तथा निगमवाले देशके पति ।

बावत्तरि–बहत्तर । पुरवर–मुख्य शहर । सहस्स–हजार । नगर–शहर । निगम–व्यापारियोंकी बस्तीवाला गाँव । जणवय – जनपद, देश । वई–पति ।

बत्तीसा–रायवर – सहस्साणु – याय–मग्गो–जिनके मार्गका बत्तीस हजार भूप अनुसरण करते थे ।

बत्तीसा–बत्तीस । रायवर–उत्तम राजा । अणुयाय–अनुसरण करना । मग्ग–मार्ग ।

चउदस–वररयण–नव – महा–निहि–चउसट्ठि – सहस्स – पवर–जुवईण–सुंदरवई – चौदह उत्तम रत्न, नव महानिधि, चौंसठ हजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके सुन्दर स्वामी ।

चउदस–चौदह । वररयण-वर रत्न । महानिहि–महानिधि । चउसट्ठि – चौंसठ । पवर–श्रेष्ठ । जुवई–स्त्री ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुलसी–हय – गय–रह – सय–सहस्स–सामी–चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख हाथी और चौरासी लाख रथके स्वामी। चुलसा–चौरासी। हय–घोड़ा। गय–हाथी। सय–सहस्स–लाख। सामी–स्वामी।

छन्नवइ–गाम– कोडि – सामी–छियानबे करोड़ गाँवोंके अधिपति। छन्नवई–छियानबे। गाम–गाँव। कोडि–करोड़। सामी–अधिपति।

य–और।

आसी–थे।

जो–जो।

भारहंमि–भरतक्षेत्रमें।

भयवं–भगवान्।

तं–उन।

संति–साक्षात् शान्ति जैसे, मूर्तिमान् उपशम जैसे।

संतिकरं–शान्ति करनेवाले।

संतिण्णं–अच्छी तरहसे तिरे हुए।

सव्वभया–सर्व प्रकारके भयोंसे।

संतिं–श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌की।

थुणामि–स्तुति करता हूँ।

जिणं–रागादि शत्रुओंको जीतनेवाले।

संतिं–शान्ति।

(**च**–और)।

विहेउं–देनेको।

मे–मुझे।

अर्थ–सङ्कलना––

जो भगवान् प्रथम भरतक्षेत्रमें कुरुदेशके हस्तिनापुरके राजा थे और तदनन्तर महाचक्रवर्तीके राज्यको भोगनेवाले महान् प्रभाववाले हुए, तथा बहत्तर हजार मुख्य शहर और हजारों नगर तथा निगमवाले देशके अधिपति बने; कि जिनके मार्गका बत्तीस हजार उत्तम भूप अनुसरण करते थे, और जो चौदह वररत्न, नव महानिधि, चौंसठ हजार सुन्दर स्त्रियोंके स्वामी बने थे, तथा चौरासी लाख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोड़े, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ और छियानबे करोड़ गाँवोंके अधिपति बने थे, तथा जो मूर्तिमान् उपशम जैसे, शान्ति करनेवाले, सर्वभयोंसे अच्छी तरह तिरे हुए और रागादि शत्रुओंको जीतनेवाले थे, उन श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌की मैं शान्तिके निमित्त स्तुति करता हूँ ॥ ११-१२ ॥

मूल—

(मुक्तकद्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

इक्खाग ! विदेह ! नरीसर ! नर-वसहा ! मुणि-वसहा !,
नव-सारय-ससि-सकलाणण ! विगय-तमा ! विहुय-रया ।
अजि ! उत्तम-तेअ ! [गुणेहिं] महामुणि ! अमिय बला !
विउल-कुला !,
पणमामि ते भव-भय-मूरण ! जग-सरणा ! मम सरणं ॥ १३ ॥

—चित्तलेहा ॥

शब्दार्थ—

इक्खाग !-हे इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न होनेवाले !
विदेह !-हे विशिष्ट देहवाले ।
नरीसर !-हे नरेश्वर !
नर-वसहा-हे नर-श्रेष्ठ ! वसह-श्रेष्ठ ।
मुणि-वसहा !-हे मुनि-श्रेष्ठ !
नव-सारय - ससि - सकलाणण !-हे शरद्‌ऋतुके नवीन चन्द्र जैसे कलापूर्ण मुखवाले । सारय-शरद्‌ऋतुका । ससि-चन्द्र । सकल-पूर्ण, कला-पूर्ण । आणण-मुख ।
विगय-तमा !-हे अज्ञान-रहित !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहुय – रया !–हे कर्म-रहित !
विहुय–दूर किया हुआ । रय–रजस्, कर्म ।

अजि !–हे अजितनाथ !

उत्तम–तेअ !–हे उत्तम तेजवाले !
[**गुणेहिं**–गुणोंसे ।]

महामुणि !–हे महामुनि !

अमिय – बला !– हे अपरिमित –बलवाले !
अमिय–अपरिमित ।

विउल – कुला !– हे विशाल कुलवाले !

पणमामि – प्रणाम करता हूँ ।

ते–आपको ।

भव – भय – मूरण !–हे भवके भयको नष्ट करनेवाले !
मूरण–नष्ट करनेवाला ।

जग–सरणा !–हे जगत्के जीवों–को शरण देनेवाले !

मम–मेरे ।

सरणं- शरण ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न होनेवाले ! हे विशिष्ट देहवाले ! हे नरेश्वर ! हे नर-श्रेष्ठ ! हे मुनि–श्रेष्ठ ! हे शरद् ऋतुके नवीन चन्द्र जैसे कलापूर्ण मुखवाले ! हे अज्ञान–रहित ! हे कर्म–रहित ! हे उत्तम तेजवाले ! (गुणोंसे) हे महामुनि ! हे अपरिमित बलवाले ! हे विशाल कुलवाले ! हे भवका भय नष्ट करनेवाले ! हे जगत्के जीवोंको शरण देनेवाले अजितनाथ प्रभु ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ; क्योंकि आप ही मुझे शरणरूप हैं ।। १३ ।।

मूल—

(दूसरे मुक्तकसे श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

देव–दाणविंद–चंद–सूर–वंद ! हट्ठतुट्ठ ! जिट्ठ !
परम–लट्ठ–रूव !,
धंत–रुप्प–पट्ट–सेय–सुद्ध–निद्ध–धवल–दंत–पंति ! ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संति ! सत्ति–कित्ति–(दित्ति)–मुत्ति–जुत्ति–गुत्ति–पवर दित्त–तेअ–वंद–धेय !,
सव्व-लोअ-भाविय-प्पभाव ! णेय ! पइस मे समाहिं ॥१४॥

—नारायओ (१)॥

शब्दार्थ—

देव–दाणविंद–चंद–सूर–वंद ! हे देवेन्द्र, दानवेन्द्र, चन्द्र तथा सूर्यद्वारा वन्दना करने योग्य !

दाणविंद–दानवेन्द्र। चंद–चन्द्र। सूर–सूर्य ।

हट्ठतुट्ठ !–हे आनन्दस्वरूप !

जिट्ठ !–हे अतिशय महान् !

परम–लट्ठरूव !–हे परम सुन्दर रूपवाले !

धतं–रुप्प – पट्ट – सेय – सुद्ध–निद्ध–धवल–दंत–पंति !–हे तपायी हुई पाटकी चाँदी जैसी उत्तम, निर्मल, चकचकित और धवल दन्तपंक्तिवाले !

धंत–तपायी हुई, गरम की हुई। रुप्प–चाँदी । पट्ट–पाट । सेय–उत्तम । शुद्ध–निर्मल । निद्ध–चिकनी, चकचकित । धवल–उज्ज्वल, श्वेत । दन्तपंति–दन्तपंक्ति ।

संति !–हे शान्तिनाथ !

सत्ति–कित्ति– (दित्ति) –मुत्ति–जुत्ति – गुत्ति – पवर !–हे शक्ति–प्रवर ! हे कीर्ति–प्रवर ! (हे दीप्ति–प्रवर!) हे मुक्ति–प्रवर ! हे युक्ति–प्रवर! हे गुप्ति–प्रवर !

सत्ति–शक्ति । कित्ति–कीर्ति । (दित्ति– दीप्ति ।)मुत्ति–मुक्ति । जुत्ति – युक्ति । गुत्ति–गुप्ति । पवर–प्रवर, श्रेष्ठ ।

दित्त–तेअ–वंद–धेय !–हे देव–समूहसे भी ध्यान करने योग्य !

दित्त–दीप्त । तेअ–तेज । यहाँ दीप्त–तेज शब्दसे देवोंको ग्रहण करना चाहिये। वंद–वृन्द, समूह । धेय–ध्येय, ध्यान करनेयोग्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्व–लोअ–भाविय – प्पभाव ! –हे समस्त विश्वमें प्रकटित प्रभाववाले !
लोअ–लोक, विश्व । भाविय–प्रकटित । प्पभाव–प्रभाव ।

णेय !–हे जानने योग्य !

पइस–प्रदान करो ।

मे–मुझे ।

समाहिं–समाधि ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे देवेन्द्र, दानवेन्द्र, चन्द्र तथा सूर्यद्वारा वन्दन करने योग्य ! हे आनन्द–स्वरूप ! (प्रसन्नता पूर्ण !), हे अतिशय महान् ! हे परम–सुन्दर रूपवाले ! हे तपायी हुई पाटकी चाँदी जैसी उत्तम, निर्मल, चकचकित और धवल दन्त–पंक्तिवाले ! हे सर्व शक्तिमान् ! हे कीर्त्तिशाली ! हे अत्यन्त तेजोमय ! हे मुक्तिमार्गको बतलानेमें श्रेष्ठ ! (अथवा हे परम त्यागी !) हे युक्ति–युक्त–वचन बोलनेमें उत्तम ! हे योगीश्वर ! हे देव–समूहसे भी ध्यान करने योग्य ! हे समस्त विश्वमें प्रकटित प्रभाववाले और जानने योग्य श्रीशान्तिनाथ भगवान् ! मुझे समाधि प्रदान करो ।। १४ ।।

मूल—

(सन्दानितकद्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

विमल–ससि–कलाइरेअ–सोमं,
वितिमिर–सूर–कलाइरेअ–तेअं ।
तिअस–वइ गणाइरेअ–रूवं,
धरणिधर–प्पवराइरेअ–सारं ।।१५।।

—कुसुमलया ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ते अ सया अजियं, सारीरे अ बले अजियं
तव–संजमे अ अजियं, एस थुणामि जिणं अजियं॥१६॥

—भुअगपरिरिंगिअं ॥

शब्दार्थ—

विमल – ससि – कलाइरेअ–सोमं–निर्मल चन्द्रकलासे भी सौम्य ।
विमल-निर्मल । ससि–चन्द्र । अइरेअ–अधिक । सोम–सौम्य ।

वितिमिर – सूर – कराइरेअ–तेअं–आवरण रहित सूर्यकी किरणोंसे भी अधिक तेजवाले ।
वितिमिर – आवरण रहित । सूर–सूर्य । कर – किरण । तेअ–तेज ।

तिअस–वइ–गणाइरेअ – रूवं–इन्द्रोंके समूहसे भी अधिक रूपवान् ।
तिअस–त्रिदश, देव । वइ–पति, स्वामी । रूव–रूप ।

धरणि–धर–प्पवराइरेअ–सारं–मेरुपर्वतसे भी अधिक दृढ़तावाले ।
धरणि–धर – पर्वत । प्पवर–श्रेष्ठ । धरणि–धर–प्पवर–मेरु–पर्वत ।

सत्ते–आत्म–बलमें ।
अ–और ।
सया–निरन्तर ।
अजियं – अजित, अन्यसे नहीं जीते हुए ।
सारीरे–शारीरिक ।
अ–और ।
बले–बलमें ।
अजियं–अजित ।
तव–संजमे–तप तथा संयममें ।
अ–और
अजियं–अजित ।
एस–यह ।
थुणामि–मैं स्तुति करता हूँ ।
जिणं–जिनकी ।
अजियं–अजितनाथको ।

अर्थ–सङ्कलना—

निर्मल—चन्द्रकलासे भी अधिक सौम्य, आवरण–रहित सूर्यकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किरणोंसे भी अधिक तेजवाले, इन्द्रोंके समूहसे भी अधिक रूपवान्, मेरु-पर्वतसे भी अधिक दृढ़तावाले तथा निरन्तर आत्म-बलमें अजित, शारीरिक बलमें भी अजित और तप-संयममें भी अजित, ऐसे श्रीअजितजिनकी मैं स्तुति करता हूँ ।। १५-१६ ।।

मूल—

(दूसरे सन्दानितकद्वारा श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

सोम-गुणेहिँ पावइ न तं नव-सरय-ससी,
तेअ-गुणेहिँ पावइ न तं नव-सरय-रवी ।
रूव-गुणेहिँ पावइ न तं तिअस-गण-वई,
सार-गुणेहिँ पावइ न तं धरणि-धर-वई ।।१७।।

—खिज्जियय ।।

तित्थवर-पवत्तयं तम-रय-रहियं,
धीर-जण-थुयच्चियं-चुय-कलि-कलुसं ।
संति-सुह-पवत्तयं तिगरण-पयओ,
संतिमहं महामुणिं सरणमुवणमे ।।१८।।

—ललियय ।।

शब्दार्थ—

सोम-गुणेहिं-आह्लादकता आदि गुणोंसे ।
पावइ न-प्राप्त नहीं हो सकता, बराबरी नहीं कर सकता ।
तं-जिनकी ।
नव-सरय-ससी-नवीन शरद्-ऋतुका पूर्णचन्द्र ।
सरय-शरद्ऋतु । ससी-चन्द्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेअ-गुणेहिं-तेज आदि गुणोंसे ।

पावइ न-बराबरी नहीं कर सकता ।

तं-जिनकी ।

नव-सरय-रवी-नवीन शरद्-ऋतुका पूर्ण किरणोंसे प्रकाशित होनेवाला सूर्य ।

रवी-सूर्य ।

रूव-गुणेहिं-रूप आदि गुणोंसे ।

पावइ न-बराबरी नहीं कर सकता ।

तं-जिनकी ।

तिअस-गण-वई-इन्द्र ।

तिअस-देव । गण-समूह । वई-स्वामी ।

सार-गुणेहिं-दृढ़ता आदि गुणोंसे ।

पावइ न-बराबरी नहीं कर सकता ।

तं-जिनकी ।

धरणि-धर-वई-मेरु पर्वत ।

तित्थवर-पवत्तयं-श्रेष्ठ तीर्थके प्रवर्त्तक ।

तित्थ-तीर्थ । पवत्तय-प्रवर्तक ।

तम-रय-रहियं-मोहनीय आदि कर्मोंसे रहित ।

तम-अन्धकार, मोहनीय । रय-रजस् , कर्म । रहिय-रहित ।

धीर-जण - थुयच्चियं - प्राज्ञ पुरुषोंद्वारा स्तुति और पूजित ।

धीर-प्राज्ञ । जण-पुरुष । थुयच्चिय-स्तुत और पूजित ।

चुय - कलि - कलुसं - कलहकी कालिमासे रहित ।

चुय-रहित । कलि-कलह ।

कलुस-कालापन ।

संति-सुह-पवत्तयं-शान्ति और शुभ (सुख)को फैलानेवाले ।

संति-शान्ति । सुह-शुभ । पवत्तय-फैलानेवाला ।

तिगरण-पयओ-तीन करणोंसे प्रयत्नवान् , मन, वचन, और कायाके प्रणिधानपूर्वक ।

तिगरण-मन, वचन और काया ।

पयअ-प्रयत्नशील ।

संतिं-श्रीशान्तिनाथके ।

अहं-मैं ।

महामुणिं-महामुनिके ।

सरणं उवणमे-शरणमें जाता हूँ, शरणको अङ्गीकृत करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

शरद्ऋतुका पूर्णचन्द्र आह्लादकता आदि गुणोंसे जिनकी बराबरी नहीं कर सकता, शरद्ऋतुका पूर्ण किरणोंसे प्रकाशित होनेवाला सूर्य तेज आदि गुणोंसे जिनकी बराबरी नहीं कर सकता, इन्द्र रूप आदि गुणोंसे जिनकी बराबरी नहीं कर सकता, मेरु-पर्वत दृढ़ता आदि गुणोंसे जिनकी बराबरी नहीं कर सकता, जो श्रेष्ठ तीर्थके प्रवर्तक हैं, मोहनीय आदि कर्मोंसे रहित हैं, प्राज्ञ पुरुषोंसे स्तुत और पूजित हैं, जो कलहकी कालिमासे रहित हैं, जो शान्ति और शुभ (सुख) के फैलानेवाले हैं, ऐसे महामुनि श्रीशान्तिनाथकी शरणको मैं मन, वचन और कायाके प्रणिधान-पूर्वक अङ्गीकार करता हूँ ॥ १७-१८ ॥

मूल—

(विशेषकद्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

विणओणय-सिर-रइअंजलि-रिसिगण-संथुयं थिमियं,
विबुहाहिव-धणवइ-नरवइ-थुय-महियच्चिअं बहुसो ।
अइरुग्गय-सरय-दिवायर-समहिय-सप्पभं तवसा,
गयणंगण-वियरण--समुइय-चारण-वंदिय सिरसा ॥१९॥

—किसलयमाला ॥

असुर-गरुल-परिवंदियं, किन्नरोरग-नमंसियं ।
देव-कोडि-सय-संथुयं, समण-संघ--परिवंदियं ॥२०॥

—सुमुहं ॥

अभयं अणहं, अरयं अरुयं ।
अजियं अजियं, परओ पणमे ॥२१॥

—विज्जुविलसियं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

विणओणय – सिर – रइअंजलि –रिसिगण–संथुयं – भक्तिसे नमे हुए मस्तकपर दोनों हाथ जोड़े हुए ऐसे ऋषियोंके समूहसे अच्छो प्रकार स्तुति किये गये।

विणय–भक्ति। ओणय–नमा हुआ रइअंजलि–दोनों हाथ जोड़े हुए। रिसि–ऋषि। गण–समूह। संथुय–स्तुति किये गये।

थिमियं–स्थिर, निश्चलता–पूर्वक।

विबुहाहिव– धणवइ – नरवइ–थुय – महियच्चियं – इन्द्र, कुबेरादि लोकपालदेवों और चक्रवर्तियोंद्वारा स्तुत, वन्दित और पूजित।

विबुहाहिव–इन्द्र। धणवइ-कुबेर, नरवइ–चक्रवर्ती। थुय-स्तुत, स्तुति किये गये। महियच्चिय-वन्दित और पूजित।

बहुसो–अनेक बार।

अइरुग्गय – सरय – दिवायर–समहिय– सप्पभं – तत्काल उदित हुए शरद्ऋतुके सूर्यसे बहुत अधिक कान्तिवाले।

अइर-अचिर, तत्काल। उग्गय-उदित हुआ। सरय-शरद् ऋतु। दिवायर–सूर्य। समहिय–बहुत अधिक। सप्पभ–प्रभाववाला, कान्ति वाला।

तवसा–तपसे।

गयणंगण – वियरण – समुइय–चारण– वंदियं – आकाशमें विचरण करते करते एकत्रित हुए–चारणमुनियोंसे वन्दित।

गयणंगण–आकाश। वियरण–विचरण करते हुए। समुइय–एकत्रित। चारण-चारणमुनि। वंदिय–वन्दित।

सिरसा–मस्तकसे।

असुर – गरुल – परिवंदियं–असुरकुमार, सुपर्णकुमार आदि भवनपति देवताओंसे उत्कृष्ट प्रणाम किये हुये।

असुर–असुरकुमार। गरुल–सुपर्णकुमार। परिवंदिय–उत्कृष्ट प्रणाम किये हुए।

किन्नरोरग – नमंसियं – किन्नर और महोरग आदि व्यन्तरदेवोंसे पूजित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्नर–व्यन्तर जातिके एक प्रकारके देव । उरग–महोरग । ये भी एक प्रकारके व्यन्तरदेव ही हैं । नमंसिय–नमस्कार किये हुए, पूजित ।

देव – कोडि – सय संथुयं–शत-कोटि (एक अरब) देवोंद्वारा अच्छी प्रकार स्तुति किये हुए ।

देव–वैमानिक देव । कोडि–करोड़ । सय–सौ । संथुय–स्तुति किये हुए ।

समण–संघ–परिवंदियं – श्रमण-प्रधान चतुर्विध सङ्घसे विधि-पूर्वक वन्दित ।

समण–श्रमण ।

अभयं–भय–रहित ।

अणहं–पाप–रहित

अरयं–कर्म–रहित ।

अरुयं–रोग–रहित ।

अजियं–किसीसे पराजित नहीं होनेवाले ।

अजियं–श्रीअजितनाथको ।

पयओ–मन, वचन और कायाके प्रणिधान–पूर्वक ।

पणमे–प्रणाम करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

निश्चलता-पूर्वक भक्तिसे नमे हुए तथा मस्तकपर दोनों हाथ जोड़े हुए ऐसे ऋषियोंके समूहसे अच्छी तरह स्तुति किये गये; इन्द्र-कुबेरादि लोकपालदेव और चक्रवर्तियोंसे अनेक बार स्तुत, वन्दित और पूजित; तपसे तत्काल उदित हुए शरद्ऋतुके सूर्यसे भी अत्यधिक कान्तिवाले;–आकाशमें विचरण करते करते एकत्रित हुए चारण-मुनियोंसे मस्तकद्वारा वन्दित, असुरकुमार, सुपर्णकुमार आदि भवन-पति देवोंद्वारा उत्कृष्ट प्रणाम किये हुए, किन्नर और महोरग आदि व्यन्तर देवोंसे पूजित; शत–कोटि (एक अरब) वैमानिक देवोंसे स्तुति किये हुए, श्रमण–प्रधान चतुर्विध सङ्घद्वारा विधि–पूर्वक वन्दित, भय–रहित, पाप–रहित, कर्म–रहित, रोग–रहित और किसीसे भी पराजित नहीं होनेवाले देवाधिदेव श्रीअजितनाथको मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन, वचन और कायाके प्रणिधान—पूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥ १९–२०–२१ ॥

मूल—

(दूसरे विशेषकद्वारा श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

आगया वर–विमाण–दिव्व–कणग–रह–तुरय–
पहकर--सएहिं हुलियं,
ससंभमोयरण – खुभिय–लुलिय–चल–कुंडलंगय–तिरीड–
सोहंत–मउलि–माला ॥२२॥

—वेड्ढो (वेढो) ॥

जं सुर--संघा सासुर--संघा वेर--विउत्ता भत्ति–सुजुत्ता,
आयर–भूसिय-संभम-पिंडिय--सुट्ठु-सुविम्हिय-सव्व-बलोघा ।
उत्तम--कंचण--रयण--परूविय--भासुर--भूसण--भासुरियंगा,
गाय--समोणय--भत्ति--वसागय--पंजलि -- पेसिय -- सीस--
पणामा ॥२३॥

—रयणमाला ॥

वंदिऊण थोऊण तो जिणं, तिगुणमेव य पुणो पयाहिणं ।
पणमिऊण य जिणं सुरासुरा, पमुइया सभवणाइं तो गया ॥
[२४]×

—खित्तयं ॥

× [ ] कोष्ठकमें प्रदर्शित क्रमाङ्क गाथाके प्रचलित–क्रमका सूचन करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं महामुणिमहं पि पंजली, राग–दोस–भय–मोह–वज्जियं ।
देव–दाणव–नरिंद–वंदियं,संतिमुत्तमं महातवं नमे।२४।[२५]

— खित्तयं ॥

शब्दार्थ—

आगया–आये हुए ।

वर – विमाण – दिव्व – कणग – रह–तुरह– पहकर – सएहिं –सैंकड़ों श्रेष्ठ विमान, सैंकड़ों दिव्य मनोहर सुवर्णमय रथ और सैंकड़ों घोड़ोंके समूहसे । वर–श्रेष्ठ । विमाण=विमान । दिव्य-दिव्य । कणग–सुवर्ण । रह-रथ । तुरय–घोड़ा । पहकर–समूह । सअ–सैंकड़ों।

हुलियं–शीघ्र ।

ससंभमोयरण– खुभिय – लुलिय चल–कुंडलंगय – तिरीड – सोहंत - मउलि – माला – वेगपूर्वक नीचे उतरनेके कारण क्षोभको प्राप्त हुए, डोलते और चञ्चल ऐसे कुण्डल, भुजबंध, मुकुट तथा मस्तकपर सुन्दर मालाएँ धारण करनेवाले। ससंभम-वेगपूर्वक । ओयरण–नीचे उतरनेकी क्रिया । खुभिय–क्षोभको प्राप्त । लुलिय–डोलते हुए । चल–चञ्चल । कुंडलंगय – कुण्डल – अङ्गद, कुण्डल–कानमें पहननेके आभूषण । अङ्गद–भुजबन्ध । तिरिड–मुकुट । सोहंत - शोभित, सुन्दर । मउलि–मस्तक । माला–माला ।

जं–जो ।

सुर–संघा–सुरोंके सङ्घ ।

सासुर–संघा – असुरोंके सङ्घ सहित ।

वेर–विउत्ता–वैरवृत्तिसे मुक्त । वैर–वैमनस्य, वैर । विउत्त–मुक्त ।

भत्ति–सुजुत्ता–पूर्ण भक्तिसे युक्त, पूर्ण भक्तिवाले ।

आयर भूसिय-संभम–पिंडिय–सुट्ठु – सुविम्हिय–सव्व – बलोघा–सम्मानकी भावनासे युक्त, शीघ्रतासे एकत्रित हुए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त आश्चर्यान्वित और सकल परिवारसे युक्त।

आयर–आदर, सम्मानकी भावना। भूसिय–अलङ्कृत, युक्त, संभम-शीघ्रतापूर्वक। पिंडिय–एकत्रित। सुट्ठु–अच्छी तरह अत्यन्त। सुविम्हिय–आश्चर्यान्वित। सव्व–सर्व, सकल। बल–सैन्य, परिवार। ओघ–समूह।

उत्तम–कंचण–रयण –परूविय–भासुर–भूसण– भासुरियंगा––उत्तम जातिके सुवर्ण और रत्नोंसे बने हुए तेजस्वी अलङ्कारोंसे देदीप्यमान अङ्गवाले। कंचण–सुवर्ण। रयण–रत्न। परूविय–बने हुए। भासुर–तेजस्वी। भूसण–अलङ्कार। भासुरियंगा-देदीप्यमान अङ्ग।

गाय–समोणय–भत्ति– वसागय–पंजलि–पेसिय–सीस पणामा––शरीरद्वारा सम्यग् प्रकारसे नमे हुए, भक्तिके वशीभूत होकर आये हुए तथा अञ्जलिपूर्वक मस्तकसे नमस्कार करते हुए।

गाय–गात्र, शरीर। समोणय–अच्छी तरह नमे हुए। भत्ति–भक्ति। वस–काबू, वश। आगय–आये हुए। पंजलि-अञ्जलि-पूर्वक। पेसिय-किया हुआ। सीस-मस्तक। पणाम,–प्रणाम, नमस्कार।

वंदिऊण–वन्दन कर।

थोऊण–स्तुति कर।

तो–बादमें।

जिणं–जिनको।

तिगुणमेव–वस्तुतः तीनबार।

य–और।

पुणो–पुनः।

पयाहिणं–प्रदक्षिणा देकर।

पणमिऊण–प्रणाम कर।

य–और।

जिणं–जिनको।

सुरासुरा–सुर और असुर।

पमुइया–प्रमुदित, हर्षित होकर।

सभवणाइं–अपने स्थानको।

तो–तदनन्तर।

गया–गये।

तं–उन।

महामुणि–महामुनिको।

अहं पि–मैं भी।

पंजली–अञ्जलि–पूर्वक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग – दोस – भय – मोह – वज्जियं–राग, द्वेष, भय और मोहसे रहित ।

देव – दाणव–नरिंद – वंदियं – देवेन्द्र, दानवेन्द्र और नरेन्द्रोंसे वन्दित ।

दाणव–दानव । नरिंद–नरेन्द्र । वंदिय–वन्दित ।

संतिं–श्रीशान्तिनाथको ।

उत्तमं–उत्तम, श्रेष्ठ ।

महातवं–महान् तपस्वीको ।

नमे–नमस्कार करता हूँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

सैकड़ों श्रेष्ठ विमान, सैकड़ों दिव्य–मनोहर सुवर्णमय रथ और सैकड़ों घोड़ोंसे समूहके जो शीघ्र आये हुए हैं और वेग–पूर्वक नीचे उतरनेके कारण जिनके कानके कुण्डल, भुजबन्ध और मुकुट क्षोभको प्राप्त होकर डोल रहे हैं और चञ्चल बने हैं; तथा जो (परस्पर) वैर–वृत्तिसे मुक्त और पूर्ण भक्तिवाले हैं; जो शीघ्रतासे एकत्रित हुए हैं और बहुत आश्चर्यान्वित हैं तथा सकल–सैन्य परिवारसे युक्त हैं; जिनके अङ्ग उत्तम जातिके सुवर्ण और रत्नोंसे बने हुए तेजस्वी अलङ्कारोंसे देदीप्यमान हैं; जिनके गात्र भक्तिभावसे नमे हुए हैं तथा दोनों हाथ मस्तकपर जोड़कर अञ्जलि–पूर्वक प्रणाम कर रहे हैं, ऐसे सुर और असुरोंके सङ्घ जो जिनेश्वर प्रभुको वन्दन कर, स्तुति कर, वस्तुतः तीन बार प्रदक्षिणा–पूर्वक नमनकर अत्यन्त हर्षपूर्वक अपने भवनोंमें वापस लौटते हैं, उन राग, द्वेष, भय और मोहसे रहित और देवेन्द्र, दानवेन्द्र एवं नरेन्द्रोंसे वन्दित श्रेष्ठ महान् तपस्वी और महामुनि श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को मैं भी अञ्जलिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ २२–२३–२४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

(कलापकद्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

अंबरंतर–विआरणिआहिं,
ललिय–हंस–वहु–गामिणिआहिं ।
पीण–सोणि–थण–सालिणिआहिं,
सकल–कमल–दल–लोअणिआहिं ॥ २५ ॥ [२६]

—दीवयं ॥

पीण–निरंतर–थणभर–विणमिय–गाय–लयाहिं,
मणि–कंचण–पसिढिल–मेहल–सोहिय–सोणि–तडाहिं ।
वर–खिंखिणि–नेउर–सतिलय–वलय–विभूसणिआहिं,
रइकर–चउर–मणोहर–सुंदर–दंसणिआहिं ॥२६॥ [२७]

—चित्तक्खरा ॥

देव–सुंदरीहिं पाय–वंदिआहिं वंदिया य जस्स ते
सुविक्कमा कमा,
अप्पणो निडालएहिं मंडणोड्डण–प्पगारएहिं
केहिं केहिं वि ?
अवंग–तिलय–पत्तलेह–नामएहिं चिल्लएहिं संगयंगयाहिं
भत्ति–संनिविट्ठ–वंदणागयाहिं हुंति ते (य) वंदिया
पुणो पुणो ॥२७॥ [२८]

—नारायओ (२) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमहं जिणचंदं, अजियं जिय–मोहं ।
धुय–सव्व–किलेसं, पयओ पणमामि ॥ २८ ॥ [२९]

नंदिययं ॥

शब्दार्थ—

अंबरंतर – विआरणिआहिं – आकाशके मध्यमें विचरण करनेवाली ।

अंबर–आकाश । अंतर–मध्यभाग । विआरणिआ-विचरण करनेवाली ।

ललिय–हंस–वहु– गामिणिआहिं –मनोहर हंसीकी तरह सुन्दर गतिसे चलनेवाली ।

ललिय–मनोहर । हंस–वहु–हंसी। गामिणिआ–चलनेवाली ।

पीण–सोणि–थण–सालिणिआहिं पुष्ट नितम्ब और भरावदार स्तनोंसे शोभित ।

पीण–भरावदार, पुष्ट । सोणि-नितम्ब, कटिके नीचेका भाग । थण–स्तन । सालिणिआ–शोभित ।

सकल – कमल – दल– लोअणिआहिं – कलामय विकसित कमलपत्रके समान नयनोंवाली।

सकल–कलासे युक्त, विकसित । कमल-दल–कमलपत्र । लोअणिआ–नयनोंवाली ।

पीण–निरंतर – थणभर – विणमिय – गाय – लयाहिं–पुष्ट और अन्तर–रहित स्तनोंके भारसे अधिक झुकी हुई गात्र लतावाली ।

पीण–पुष्ट । निरंतर–अन्तर–रहित । थण–स्तन । भार–भार । विणमिअ–अधिक झुकी हुई । गाय–लया–गात्रलता ।

मणि–कंचण - पसिढिल–मेहल–सोहिय – सोणि–तडाहिं – रत्न और सुवर्णकी झूलती हुई मेखलाओंसे शोभायमान नितम्ब प्रदेशवाली ।

मणि–रत्न । कंचण–सुवर्ण । पसिढिल–प्रशिथिल । मेहल–मेखला, कटिका आभूषण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोहिय–शोभायमान। सोणि–तड–नितम्ब–प्रदेश।

वर–खिखिणि–नेउर–सतिलय–वलय–विभूसणिआहिं–उत्तम प्रकारकी करधनीवाले नूपुर और टिपकियोंवाले कङ्कण आदि अनेक प्रकारके आभूषणों-को धारण करनेवाली।

वर–श्रेष्ठ, उत्तम। खिखिणि–किङ्किणी, घूघरियाँ। नेउर–नूपुर। सतिलय–बिन्दी अथवा टिपकियोंवाले। वलय–कङ्कण। विभूसणिआ–अनेक प्रकारके आभूषणों-को धारण करनेवाली।

रइकर–चउर–मणोहर–सुन्दर–दंसणिआहिं–प्रीति उत्पन्न करनेवाली, चतुरोंके मनको हरण करनेवाली और सुन्दर दर्शनवाली।

रईकर–प्रीतिकर। चउर–चतुर। मणोहर–मनोहर। दंसणिआ–दर्शनवाली।

देव–सुंदरीहिं–देवाङ्गनाओंसे।

पाय–वंदियाहिं–चरणोंको नमन करनेके लिये तत्पर।

वंदिया–वन्दित हैं।

य–और।

जस्स–जिनका।

ते–वे।

सुविक्कमा–बहुत पराक्रमवाले, सम्यग् पराक्रमवाले।

कमा–चरण, दोनों चरण।

अप्पणो–अपने।

निडालएहिं–ललाटोंसे।

मंडणोड्डण–प्पगारएहिं–शृङ्गार-के बड़े प्रकारोंसे।

मंडण–शृङ्गार। उड्डुण–बड़ा। प्पगारअ–प्रकार।

केहिं केहिं वि–किन्हीं, किन्हीं, विविध।

अवंग–तिलय–पत्तलेह–नामएहिं–अपाङ्ग–तिलक और पत्रलेखा नामक, आँखोंमें कज्जल, ललाटपर तिलक और स्तन–मण्डलपर पत्रलेखा।

अवंग–नेत्रका अन्तिम भाग। तिलय–चन्दन आदि पदार्थों-द्वारा ललाटपर किया जाने-वाला एक प्रकारका चिह्न, टीका, बिन्दी आदि। पत्त-लेह–कपोल तथा स्तन–मण्डलपर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थोंसे बनायी जानेवाली आकृतियाँ। नामअ–नामवाली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिल्लएहिं–देदीप्यमान ।

संगयंगयाहिं–प्रमाणोपेत अङ्गवाली अथवा नाटच करनेके लिये सज्जित ।

संगय–सुन्दर, प्रमाणोपेत । अंगया–अङ्गवाली ।

भत्ति – संनिविट्ठ – वंदणाग – याहिं–भक्तिपूर्वक वन्दन करनेके लिये आयी हुई ।

भत्ति–भक्ति । संनिविट्ठ–व्याप्त, पूर्ण । वंदण–वन्दन । आगया-आयी हुई ।

हुंति–होते हैं ।

ते–उन दोनों ।

(**य**–और)

वंदिया–वन्दित ।

पुणो पुणो–बार-बार ।

तं–उनको ।

अहं–मैं ।

जिणचन्दं–जिनचन्द्रको, जिनेश्वरको ।

अजियं–श्रीअजितनाथको ।

जियमोहं–जिन्होंने मोहको जीत लिया है उनको, मोहको सर्वथा जीतनेवालेको ।

धुय–सव्व–किलेसं–सर्व क्लेशोंका नाश करनेवालेको ।

पयओ–प्रणिधानपूर्वक ।

पणमामि–नमस्कार करता हूँ !

अर्थ–सङ्कलना—

आकाशमें विचरण करनेवाली, मनोहर हंसी जैसी सुन्दर गतिसे चलनेवाली, पुष्ट नितम्ब और भरावदार स्तनोंसे शोभित, कलायुक्त–विकसित कमलपत्रके समान नयनोंवाली, पुष्ट और अन्तर–रहित स्तनोंके भारसे अधिक झुकी हुई गात्रलताओंवाली, रत्न और सुवर्णकी झूलती हुई मेखलाओंसे शोभायमान नितम्ब–प्रदेशवाली, उत्तम प्रकारके करधनीवाले नूपुर और टिपकीवाले कङ्कण आदि विविध आभूषण धारण करनेवाली, प्रीति उत्पन्न करनेवाली, चतुरोंके मनका हरण करनेवाली, सुन्दर दर्शनवाली, जिन–चरणोंको नमन करनेके लिये तत्पर, आँखमें कज्जल, ललाटपर तिलक और स्तन–मण्डलपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्रलेखा तथा विविध प्रकारके बड़े आभूषणोंवाली, देदीप्यमान, प्रमाणोपेत अङ्गवाली अथवा विविध नाट्य करनेके लिये सज्जित तथा भक्ति–पूर्ण वन्दन करनेको आयी हुई देवाङ्गनाओंने अपने ललाटोंसे जिनके सम्यक् पराक्रमवाले चरणोंको वन्दन किया है तथा बार-बार वन्दन किया है, ऐसे मोहको सर्वथा जीतनेवाले, सर्व क्लेशोंका नाश करनेवाले जिनेश्वर श्रीअजितनाथको मन, वचन और कायाके प्रणिधान–पूर्वक मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २५–२६–२७–२८ ॥

मूल—

(दूसरे कलापकद्वारा श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

थुय–वंदियस्सा, रिसि–गण–देव–गणेहिं ।
तो देव–वहुहिं, पयओ–पणमियअस्सा ॥ २९ ॥

—माङ्गलिका ॥

जस्स–जगुत्तम–सासण–अस्सा,
भत्ति–वसागय–पिंडियआहिं ।
देव–वरच्छरसा–बहुआहिं,
सुर–वर–रइगुण–पंडियआहिं ॥ ३० ॥ [३०]

—भासुरयं ॥

वंस–सद्द–तंति–ताल–मेलिए तिउक्खराभिराम–सद्द–मी ँसए–कए [अ] सुइ–समाणणे अ सुद्ध–सज्ज–गीय–पाय–जाल–घंटिआहिं ँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलय–मेहला–कलाव–नेउराभिराम–सद्द–मीसए–कए–अ,
देव–नट्टिआहिं हाव–भाव–विब्भम–प्पगारएहिं
नच्चिऊण अंगहारएहिं ॥ ३१ ॥

(—नारायओ (३) ॥)

वंदिया य जस्स ते सुविक्कमा कमा,
तयं तिलोय–सव्व–[सत्त]–संतिकारयं ।
पसंत–सव्व–पाव–दोसमेस हं,
नमामि संतिमुत्तमं जिणं ॥ ३२ ॥ [३१]

—(अद्ध) नारायओ (४) ॥

शब्दार्थ—

थुय – दियस्सा –स्तुत और वन्दित ।

रिसि–गण–देव – गणेहिं – ऋषि और देवताओंके समूहसे ।
रिसि–गण–ऋषियोंका समूह ।
देवगण–देवताओंका समूह ।

तो–बादमें ।

देव–बहुहिं–देवाङ्गनाओंसे ।

पयओ–प्रणिधानपूर्वक ।

पणमियअस्सा – प्रणाम किये जाते हैं ।

जस्स – जगुत्तम–सासणअस्सा– जिनका जगत् में उत्तम शासन है ।
जस्स–जिनका । जगुत्तम-जगत्-में उत्तम । सासण–शासन ।

भत्ति – वसागय – पिंडयआहिं– भक्तिवश एकत्र हुई ।
भत्ति–भक्ति । वसागय–वशीभूत होकर आयी हुई ।
पिंडियआ–एकत्र हुई ।

देव-वरच्छरसा – बहुआहिं–स्वर्गकी अनेक सुन्दरियाँ ।
देव–विमानवासी देव । वरच्छरसा–श्रेष्ठ अप्सराएँ, स्वर्गकी सुन्दरियाँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुर-वर-रइगुण -,पंडियआहिं- देवोंको उत्तम प्रकारकी प्रीति उत्पन्न करनेमें कुशल।

रइ-प्रीति। पंडियआ-कुशल।

वंस-सद्द-तंति-ताल - मेलिए- वंशी आदिके शब्दमें वीणा और ताल आदिके स्वरको मिलाती हुई।

वंस-वंशी। सद्द-शब्द। तंति-वीणा। मेलिअ-मिलाना।

तिउक्खराभिराम - सद्द - मीसए-कए - आनद्ध वाद्योंके नादका मिश्रण करती।

तिउक्खर-मृदङ्ग, पणव और दर्दुरक नामके चमड़ेके मढ़े हुए वाद्य। अभिराम-प्रिय। सद्द-शब्द। मीसअ-कअ-मिश्रण करना।

[अ-और।]

सुइ-समाणणे अ- और श्रुतियोंको समान करती हुई।

सुइ-स्वरका सूक्ष्म भेद। समाणण-सममें लानेकी क्रिया।

शुद्ध-सज्ज-गीय-पाय - जाल-घंटिआहिं-दोष-रहित प्रकृष्ट गुणवाले गीत गाती तथा पाद-जाल - पायजेबकी घुँघरू बजाती।

सुद्ध-दोष-रहित। सज्ज-प्रकृष्ट गुणवाला। गीय-गीत। पाय-जाल-पायजेब, पाँवका एक प्रकारका आभूषण। घंटिआ-घुँघरू।

वलय - मेहला - कलाव-नेउ-राभिराम-सद्द-मीसए कए- कङ्कण, मेखला, कलाप और झाँझरके मनोहर शब्दोंका मिश्रण करती।

वलय-कङ्कण। मेहला-मेखला। कलाव-कलाप। नेउर-नूपुर, झाँझर। अभिराम-मनोहर। सद्द-शब्द। मीसए कए-मिश्रण करती।

अ-और।

देव-नट्टिआहिं-देवनर्तिकाओंसे।

देवलोकमें नृत्य-नाट्य आदिका कार्य करनेवाली देवनर्तिका कहलाती है।

हाव-भाव - विब्भम - ण्गार-एहिं-हाव, भाव और विभ्रमके प्रकारोंसे।

हाव-मुखसे की जानेवाली चेष्टा। भाव-मानसिक भावोंसे दिखायी जानेवाली चेष्टा। विब्भम-नेत्रके प्रान्तभागसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखाया जानेवाला विकार विशेष ।

नच्चिऊण अंगहारएहिं – अङ्गहारोंसे नृत्य करके ।

नच्चिऊण-नृत्य करके । अंगहारअ–अङ्गहार । शरीरके अङ्गोपाङ्गोंसे विविध अभिनय करनेको अङ्गहार कहते हैं ।

वंदिया–वन्दित ।

य–और ।

जस्स–जिनके ।

ते–वे (दोनों) ।

सुविक्कमा कमा–उत्तम पराक्रमशाली चरण ।

तयं–उन ।

तिलोय– सव्व–(सत्त)– संतिकारयं–तीनों लोकके सर्व प्राणियोंको शान्ति करनेवाले ।

तिलोय- तीन लोक । सव्व-सर्व । सत्त–प्राणी । संति–कारय-शान्ति करनेवाले ।

पसंत – सव्व– पाव – दोसं – जो सर्व पाप और दोषों–रोगोंसे रहित हैं ।

पसंत–प्रशान्त, रहित । पाव–पाप । दोस–दोष, रोग ।

एस हं–यह मैं ।

नमामि–नमन करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ।

संतिं–श्रीशान्तिनाथको ।

उत्तमं–उत्तम ।

जिणं–जिन भगवान् ।

अर्थ-सङ्कलना—

देवोंको उत्तम प्रकारकी प्रीति उत्पन्न करनेमें कुशल ऐसी स्वर्गकी सुन्दरियाँ भक्तिवश एकत्रित होती हैं । उनमेंसे कुछ वंशी आदि सुषिर वाद्य बजाती हैं, कुछ ताल आदि घनवाद्य बजाती हैं और कुछ नृत्य करती जाती हैं और पाँवमें पहने हुए पायजेबके घुँघरुओंके शब्दको कङ्कण, मेखला–कलाप और नूपुरकी ध्वनिमें मिलाती जाती हैं, उस समय जिनके मुक्ति देने योग्य, जगत्में उत्तम शासन करनेवाले तथा सुन्दर पराक्रमशाली चरण पहले ऋषि और देवताओंके समूहसे स्तुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं–वन्दित हैं, बादमें देवियोंद्वारा प्रणिधानपूर्वक प्रणाम किये जाते हैं और तत्पश्चात् हाव, भाव, विभ्रम और अङ्गहार करती हुई देवनर्तिकाओंसे वन्दन किये जाते हैं, ऐसे तीनों लोकके सर्व जीवोंको शान्ति करनेवाले, सर्व पाप और दोषसे रहित उत्तम जिन भगवान् श्रीशान्तिनाथको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २९-३०-३१-३२ ॥

मूल—

(विशेषकद्वारा श्रीअजितनाथ और शान्तिनाथकी स्तुति)

छत्त–चामर –पडाग– जूअ–जव– मंडिआ,
झयवर–मगर–तुरय–सिरिवच्छ–सुलंछणा ।
दीव – समुद्द– मंदर– दिसागय– सोहिया,
सत्थिअ–वसह– सीह–रह–चक्क– वरंकिया ॥३३॥[३२]

—ललिययं ॥

सहाव–लट्ठा सम–प्पइट्ठा, अदोस–दुट्ठा गुणेहिं जिट्ठा ।
पसाय–सिट्ठा तवेण पुट्ठा, सिरीहिं इट्ठा रिसीहिं जुट्ठा
॥ ३४ ॥ [३३]

—वाणवासिआ ॥

ते तवेण धुय–सव्व–पावया, सव्वलोअ–हिय–मूल–पावया ।
संथुया अजिय–संति–पायया, हुंतु मे सिव–सुहाण–दायया ॥
३५ ॥ [३४]

—अपरांतिआ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

छत्त – चामर – पडाग – जूअ– जव–मंडिआ–छत्र, चामर, पताका, स्तम्भ और जव-द्वारा शोभित ।

छत्त–छत्र। चामर–चँवर । पडाग – पताका, ध्वजा । जूव–यूप, स्तम्भ विशेष । जव–यव नामक धान्यकी आकृति । मंडिअ–शोभित ।

झयवर- मगर– तुरय– सिरि – वच्छ–सुलंछणा–श्रेष्ठ ध्वज, मगर (घड़ियाल), अश्व और श्रीवत्सरूप सुन्दर लाञ्छनवाले।

झयवर–श्रेष्ठ ध्वज । मगर–घड़ियाल । तुरय–अश्व ।

सिरिवच्छ–श्रीवत्स । सुलक्षणा–सुन्दर लाञ्छनवाले।

दीव– समुद्द– मंदर– दिसागय– सोहिया–द्वीप, समुद्र, मन्दर पर्वत और ऐरावत हाथीके लाञ्छनसे सुशोभित ।

दीव–द्वीप । समुद्द–समुद्र ।

मंदर–मन्दर पर्वत । दिसागय–दिशाओंके हाथी, ऐरावतादि। सोहिय–शोभित ।

सत्थिअ – वसह – सीह– रह – चक्क– वरंकिया– स्वस्तिक, बैल, सिंह, रथ और श्रेष्ठ चक्रके चिह्नवाले ।

सत्थिअ–स्वस्तिक । वसह–बैल । सीह–सिंह । रह–रथ । चक्क–चक्र । वर–श्रेष्ठ । अंकिय–चिह्नवाले ।

सहाव–लट्ठा–स्वरूपसे सुन्दर ।

सहाव–स्वरूप । लट्ठ–सुन्दर ।

सम–प्पइट्ठा–समभावमें स्थिर

सम–समभाव । प्पइट्ठ–स्थिर ।

अदोस–दुट्ठा–दोष रहित ।

गुणेहिं जिट्ठा–गुणोंसे अत्यन्त महान् ।

पसाय– सिट्ठा– कृपा करनेमें उत्तम ।

पसाय–कृपा । सिट्ठ–उत्तम ।

तवेण पुट्ठा–तपके द्वारा पुष्ट ।

तव–तप । पुट्ठ–पुष्ट ।

सिरीहिं इट्ठा–लक्ष्मीसे पूजित ।

रिसीहिं जुट्ठा–ऋषियोंसे सेवित ।

ते–वे ।

तवेण–तपके द्वारा ।

धुय–सव्व–पावया–सर्व पापोंको दूर करनेवाले ।

धुय–दूर करना ।

सव्व – लोअ – हिय – मूल – पावया–समग्र प्राणि–समूहको हितका मार्ग दिखानेवाले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्व–समग्र । लोअ–प्राणी । हिय–कल्याण, हित । मूल–पावय–प्राप्त करानेवाले, मार्ग दिखानेवाले ।

संथुआ–अच्छी प्रकार स्तुत ।

अजिय–संति–पायया–पूज्य श्री–अजितनाथ और श्रीशान्तिनाथ ।

हुंतु–हों ।

मे–मुझे ।

सिव–सुहाण–मोक्ष सुखके ।

दायया–देनेवाले ।

अर्थ–सङ्कलना–

जो छत्र, चँवर, पताका, स्तम्भ, यव, श्रेष्ठ ध्वज, मकर (घड़ियाल), अश्व, श्रीवत्स, द्वीप, समुद्र, मन्दर पर्वत और ऐरावत हाथी आदिके शुभ लक्षणोंसे शोभित हो रहे हैं, जो स्वरूपसे सुन्दर, समभावमें स्थिर, दोष–रहित, गुण–श्रेष्ठ, बहुत तप करनेवाले, लक्ष्मीसे पूजित, ऋषियोंसे सेवित, तपके द्वारा सर्व पापोंको दूर करनेवाले और समग्र प्राणि-समूहको हितका मार्ग दिखानेवाले हैं, वे अच्छी तरह स्तुत, पूज्य श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथ मुझे मोक्षसुखके देनेवाले हों ॥ ३३–३४–३५ ॥

मूल–

(दूसरे विशेषकद्वारा उपसंहार)

एवं तव–बल–विउलं, थुयं मए अजिय–संति–जिण–जुअलं ।
ववगय–कम्म–रय–मलं, गइं गयं सासयं विउलं॥३६।[३५]

—गाहा ॥

तं बहु–गुण–प्पसायं, सुक्ख–सुहेण परमेण अविसायं ।
नासेउ मे विसायं, कुणउ अपरिसाविअ–पसायं ॥३७॥[३६]

—गाहा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं मोएउ अ नंदिं, पावेउ अ नंदिसेणमभिनंदिं ।
परिसा वि अ नंदिं, मम य दिसउ संजमे नंदिं ॥३८॥[३७]

—गाहा ॥

शब्दार्थ—

एवं–इस प्रकार ।
तव–बल – विउलं – तपोबलसे महान् ।
थुयं–स्तुत ।
मए–मेरेद्वारा ।
अजिय–संति–जिण – जुअलं– श्रीअजितनाथ और श्रीशांतिनाथका युगल ।
ववगय–कम्म– रय–मलं–कर्मरूपी रज और मलसे रहित । ववगय–रहित । कम्म–कर्म । रय–रज । मल–मल ।
गइं गयं–गतिको प्राप्त ।
सासयं–शाश्वत ।
विउलं–विशाल ।
तं–उन ।
बहु–गुण–प्पसायं–अनेक गुणोंसे युक्त ।
मुक्ख–सुहेण–मोक्षसुखसे ।
परमेण–परम ।
अविसायं-क्लेश रहित ।
नासेउ–नष्ट करो ।
मे–मेरे ।
विसायं–क्लेशको ।
कुणउ–करो ।
अपरिसाविअ – पसायं – कर्मका आस्रव दूर करनेवाला प्रसाद ।
तं–वह (युगल) ।
मोएउ–हर्षप्रदान करे ।
अ–और ।
नंदिं–नन्दिको, सङ्गीतविशारदोंको ।
पावेउ–प्राप्त कराये ।
नंदिसेणं–नन्दिषेणको ।
अभिनंदिं–अति आनन्द ।
परिसा वि–परिषद्को भी ।
अ–और ।
सुह–नंदिं–सुख और समृद्धि ।
मम–मुझे ।
य–और ।
दिसउ–प्रदान करो ।
संजमे–संयममें ।
नंदिं–वृद्धि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

तपोबलसे महान्, कर्मरूपी रज और मलसे रहित, शाश्वत और पवित्र गतिको प्राप्त श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथके युगलकी मैंने इस प्रकार स्तुति की; अतः अनेक गुणोंसे युक्त और परम-मोक्ष-सुखके कारण सकल क्लेशोंसे रहित (श्रीअजितनाथ और श्रीशान्ति-नाथका युगल) मेरे विषादका नाश करे, और यह युगल इस स्तोत्र-का अच्छी तरह पाठ करनेवालोंको हर्ष प्रदान करे, इस स्तोत्रके रचयिता श्रीनन्दिषेणको अति आनन्द प्राप्त कराये और इसके सुनने-वालोंको भी सुख तथा समृद्धि देवे; तथा अन्तिम अभिलाषा यह है कि मेरे (नन्दिषेणके) संयममें वृद्धि करे ॥ ३६-३७-३८ ॥

मूल—

(स्तवकी महिमा दिखलानेवाली अन्यकृत गाथाएँ)

[गाहा]

पक्खिअ-चाउम्मासिअ-संवच्छरिए अवस्स-भणियव्वो ।
सोअव्वो सव्वेहिं, उवसग्ग-निवारणो एसो ॥३९॥ [३८]

शब्दार्थ—

पक्खिअ - चाउम्मासिअ - संवच्छरिए-पाक्षिक, चातु-र्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें ।

पक्खिअ-पाक्षिक । चाउम्मा-सिअ-चातुर्मासिक । संव-च्छरिअ-सांवत्सरिक ।

अवस्स-अवश्य ।

भणियव्वो-पढ़ना चाहिये ।

सोअव्वो-सुनना चाहिए ।

सव्वेहिं-सबको ।

उवसग्ग-निवारणो - उपसर्गका निवारण करनेवाला ।

एसो-यह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

उपसर्गका निवारण करनेवाला यह (अजित-शान्ति-स्तव) पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें अवश्य पढ़ना और सबको सुनना चाहिये ॥ ३९ ॥

मूल—

जो पढइ जो अ निसुणइ, उभओ कालं पि अजिय-संति-थयं ।
न हु हुंति तस्स रोगा, पुव्वुप्पन्ना वि नासंति ॥४०॥[३९]

शब्दार्थ—

जो-जो ।
पढइ-पढ़ता है ।
जो-जो ।
अ-और
निसुणइ-नित्य सुनता है ।
उभओ कालं पि-प्रातःकाल और सायङ्काल ।
अजिय - संति - थयं - अजित-शान्ति-स्तवको ।
न हु हुंति-होते ही नहीं ।
तस्स-उसको ।
रोगा-रोग ।
पुव्वप्पन्ना-पूर्वोत्पन्न ।
वि-भी ।
नासंति-नष्ट होते हैं ।

अर्थ-सङ्कलना—

"**यह अजित-शान्ति--स्तव**" जो मनुष्य प्रातःकाल और सायङ्काल पढ़ता है अथवा दूसरोंके मुखसे नित्य सुनता है, उसको रोग होते ही नहीं और पूर्वोत्पन्न हों, वे भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥

मूल—

जइ इच्छह परम-पयं, अहवा कित्तिं सुवित्थडं भुवणे ।
तो तेलुक्कुद्धरणे, जिण-वयणे आयरं कुणह ॥४१॥ [४०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

जइ–यदि ।

इच्छह–तुम चाहते हो ।

परम–पयं–परम–पदको ।

अहवा–अथवा ।

कित्ति–कीर्तिको ।

सुवित्थडं–अत्यन्त विशाल ।

भुवणे–जगत् में ।

तो–तो ।

तेलुक्कुद्धरणे–तीनों लोकका उद्धार करनेवाले ।

जिण–वयणे–जिन–वचनके प्रति ।

आयरं–आदर ।

कुणह–करो ।

अर्थ–सङ्कलना—

यदि परम पदको चाहते हो अथवा इस जगत्में अत्यन्त विशाल कीर्तिको प्राप्त करना चाहते हो तो तीनों लोकका उद्धार करनेवाले जिनवचन के प्रति आदर करो ।। ४१ ।।

सूत्र–परिचय—

स्वसमय और परसमयके जानकार, मन्त्र और विद्याका परिपूर्ण रहस्य पहचाननेवाले, अध्यात्म रसका उत्कृष्ट पान करनेवाले और काव्यकलामें अत्यन्त कुशल ऐसे त्यागी–विरागी महर्षि नन्दिषेण एक समय श्रीशत्रुञ्जय गिरिराजकी यात्राके लिये पधारे थे । और वहाँके गगनचुम्बी भव्य जिन-प्रासादोंमें स्थित जिनप्रतिमाओंके दर्शन कर कृतकृत्य हुए । तदनन्तर वे एक ऐसे रमणीय स्थानमें आये जहाँ द्वितीय तीर्थङ्कर श्रीअजितनाथ और सोल-हवें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथके मनोहर चैत्य विराजित थे । वहाँ इन दोनों तीर्थङ्करोंकी साथ स्तुति करनेसे अजित–शान्ति–स्तवकी रचना हुई ।

इस स्तवका गुम्फन संवादी है, वह अधोदर्शित तालिकासे समझ सकेंगे :—

गाथा	१ से ३		मङ्गलादि ।
,,	४ से ६	विशेषक	श्रीअजित--शान्ति--संयुक्त स्तुति ।
,,	७ वीं	मुक्तक	श्रीअजितनाथकी स्तुति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

,,	८वीं	मुक्तक	श्रीशान्तिनाथकी स्तुति ।
,,	९–१०	सन्दानितक	श्रीअजितनाथकी स्तुति ।
,,	११–१२	,,	श्रीशान्तिनाथकी स्तुति ।
,,	१३वीं	मुक्तक	श्रीअजितनाथकी स्तुति ।
,,	१४वीं	,,	श्रीशान्तिनाथकी स्तुति ।
,,	१५–१६	सन्दानितक	श्रीअजितनाथकी स्तुति ।
,,	१७–१८	,,	श्रीशान्तिनाथकी स्तुति ।
,,	१९–२०–२१	विशेषक	श्रीअजितनाथकी स्तुति ।
,,	२२–२३–२४	,,	श्रीशान्तिनाथकी स्तुति ।
,,	२५ से २८	कलापक	श्रीअजितनाथकी स्तुति ।
,,	२९ से ३२	,,	श्रीशान्तिनाथकी स्तुति ।
,,	३३–३४–३५	विशेषक	श्रीअजित-शान्ति-संयुक्तस्तुति
,,	३६–३७–३८	,,	उपसंहार
[,,	३९–४०–४१	गाथा	अन्यकृत]

इस स्तवमें नीचे लिखे अनुसार २८ छन्द × प्रयुक्त हुए हैं :—

१ गाहा (गाथा–आर्या) १, २, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१ ।

२ सिलोगो (श्लोक) ३ ।

३ मागहिआ (मागधिका) ४, ६ ।

४ आलिंगणयं (आलिङ्गनकम्) ५ ।

५ संगययं (सङ्गतकम्) ७ ।

६ सोवाणयं (सोपानकम्) ८ ।

७ वेड्ढओ–वेढो (वेष्टकः) ९, ११, १२ ।

८ रासालुद्धओ (रासालुब्धकः) १० ।

९ रासाणंदिययं (रासानन्दितकम्) १२ ।

× इन छन्दोंके स्वरूपकी विशेष चर्चाके लिये देखो **प्रबोधटीका** भा. ३ पृष्ठ ४६४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० चित्तलेहा (चित्रलेखा) १३ ।
११ नारायओ १–२–३–४ (नाराचकः) १४, २७, ३१, ३२ ।
१२ कुसुमलया (कुसुमलता) १५ ।
१३ भुअगपरिरिंगियं (भुजगपरिरिङ्गितम्) १६ ।
१४ खिज्जिययं (खिद्यतकम्) १७ ।
१५ ललिययं (१) (ललितकम्) १८ ।
१६ किसलयमाला (किसलयमाला) १९ ।
१७ सुमुहं (सुमुखम्) २० ।
१८ विज्जुविलसियं (विद्युद्विलसितम्) २१ ।
१९ रयणमाला (रत्नमाला) २३ ।
२० खित्तयं (क्षिप्तकम्) २४ ।
२१ दीवयं (दीपकम्) २५ ।
२२ चित्तक्खरा (चित्राक्षरा) २६ ।
२३ नंदिययं (नन्दितकम्) २८ ।
२४ .... (माङ्गलिका) २९ ।
२५ भासुरयं (भासुरकम्) ३० ।
२६ ललियय (·) (ललितकम्) ३३ ।
२७ वाणवासिआ (वानवासिका) ३४ ।
२८ अपरांतिआ (अपरान्तिका) ३५ ।

यह स्तव भक्तिरससे परिपूर्ण है और इसको विविध राग–रागिनियों-में गानेसे हृदयका प्रत्येक तार झनझना उठता है ।

यह स्तव पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणके प्रसङ्ग-पर स्तवनके अधिकारमें बोला जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६ बृहच्छान्तिः

[बड़ी शान्ति]

मूल—

[१ मङ्गलाचरण]

[मन्दाक्रान्ता]

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्,
ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादि-प्रभावा-
दारोग्य-श्री-धृति-मति-करी क्लेश-विध्वंसहेतुः ॥१॥

शब्दार्थ—

भोः भोः–हे ! हे !
भव्याः !–भव्यजनो !
शृणुत–सुनिये ।
वचनं–वचन ।
प्रस्तुतं–प्रासङ्गिक ।
सर्वम्–सब ।
एतद्–यह ।
ये–जो ।
यात्रायां–यात्रामें, रथयात्रामें ।
त्रिभुवन- गुरोः– त्रिभुवनके गुरुकी, जिनेश्वरकी ।
आर्हताः–श्रावक ।
भक्तिभाजः–भक्तिवाले ।
तेषां–उनके ।
भवतु–हो, प्राप्त हो ।
भवताम्–आप श्रीमानोंको ।
अर्हदादि – प्रभावात् – अर्हत् आदिके **प्रभावसे ।**
अर्हदादि–अर्हत् आदि । प्रभावात्–प्रभावसे ।
आरोग्य-श्री-धृति-मति-करी– आरोग्य, लक्ष्मी, चित्तकी स्वस्थता और बुद्धिको देनेवाली ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्लेश–विध्वंस – हेतुः – पीड़ाका नाश करनेमें कारणभूत ।	क्लेश–पीड़ा । विध्वंस–नाश । हेतु–कारणभूत ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे हे भव्यजनो ! आप सब मेरा यह प्रासङ्गिक वचन सुनिये । जो श्रावक जिनेश्वरकी रथयात्रामें भक्तिवाले हैं, उन आप श्रीमानों-को अर्हद् आदिके प्रभावसे आरोग्य, लक्ष्मी, चित्तकी स्वस्थता और बुद्धिको देनेवाली सब क्लेश–पीड़ाका नाश करनेमें कारणभूत ऐसी शान्ति प्राप्त हो ।। १ ।।

मूल—

[२ पीठिका]

भो भो भव्यलोकाः ! इह हि भरतैरावत-विदेह-सम्भवानां समस्त–तीर्थकृतां जन्मन्यासन–प्रकम्पानन्तरमवधिना विज्ञाय, सौधर्माधिपतिः, सुघोषा–घण्टा–चालनानन्तरं, सकलसुरासुरेन्द्रैः सह समागत्य, सविनयमर्हद्–भट्टारकं गृहीत्वा, गत्वा कनकाद्रिशृङ्गे, विहित–जन्माभिषेकः शान्तिमुद्घोषयति यथा, ततोऽहं कृतानुकारमिति कृत्वा "महाजनो येन गतः स पन्थाः" इति भव्यजनैः सह समेत्य, स्नात्रपीठे स्नात्रं विधाय शान्तिमुद्घोषयामि, तत्पूजा–यात्रा–स्नात्रादि–महोत्सवानन्तरमिति कृत्वा कर्णं दत्त्वा निशम्यतां निशम्यतां स्वाहा ।।२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

भोः भोः भव्यलोकाः !–हे भव्यजनो !

इह हि–इसी जगत्में, इसी ढाई द्वीपमें ।

भरतैरावत-विदेह – सम्भवानां–भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रमें प्रादुर्भूत ।

समस्त–तीर्थकृतां–सर्व तीर्थङ्करोंके ।

समस्त -सर्व । तीर्थकृत्–तीर्थङ्कर ।

जन्मनि–जन्मपर, जन्मके समयपर ।

आसन-प्रकम्पानन्तरं – आसनका प्रकम्प होनेके पश्चात्, सिंहासन कम्पित होनेके पश्चात् ।

अवधिना-अवधिज्ञानसे ।

विज्ञाय–जानकर ।

सौधर्माधिपतिः–सौधर्मेन्द्र ।

सुघोषा–घण्टा – चालनानन्तरं–सुघोषा नामक घण्टा बजानेके बाद ।

सुघोषा–घण्टा–सुघोषा नामक देवलोकका घण्टा । चालन-बजाना । अनन्तर–बाद ।

सकल–सुरासुरेन्द्रैः सह–सब सुरेन्द्र और असुरेन्द्रोंके साथ ।

समागत्य–आकर ।

सविनयम्–विनयपूर्वक ।

अर्हद्भट्टारकं–पूज्य अरिहन्त देवको ।

गृहीत्वा–हाथमें ग्रहण करके ।

गत्वा–जाकर ।

कनकाद्रि–शृङ्गे – मेरु – पर्वतके शिखरपर ।

विहित–जन्म–अभिषेकः – जिसने जन्माभिषेक किया है !

शान्तिम् उद्घोषयति–शान्तिकी उद्घोषणा करता है ।

यथा–जैसे ।

ततः–इसलिये ।

अहं–मैं ।

कृतानुकारमिति कृत्वा – किये हुएका अनुकरण करना ऐसा मानकर ।

कृत–किया हुआ । अनुकार–अनुकरण । इति–ऐसा । कृत्वा–करके, मानकर ।

'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इति–महाजन जिस मार्गसे जाय, वही मार्ग' ऐसा मानकर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्यजनैः सह–भव्यजनोंके साथ ।
समेत्य–आकर ।
स्नात्रपीठे–स्नात्र पीठपर ।
स्नात्रं-स्नात्र ।
विधाय–करके ।
शान्तिम्–शान्तिकी ।
उद्घोषयामि – उद्घोषणा करता हूँ ।
ततः–तो ।
पूजा–यात्रा – स्नात्रादि – महोत्सवान्तरमिति कृत्वा – पूजा–महोत्सव (रथ) यात्रा–महोत्सव, स्नात्र–यात्रा महोत्सव आदिकी पूर्णाहुति करके ।
कर्णं दत्त्वा–कान देकर ।
निशम्यतां निशम्यतां–सुनिये सुनिये ।
स्वाहा–स्वाहा ।
यह पद शान्तिकर्मका पल्लव है ।

अर्थ–सङ्कलना—

हे भव्यजनो ! इसी ढाई द्वीपमें भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न सर्व तीर्थङ्करोंके जन्मके समयपर अपना आसन कम्पित होनेसे सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञानसे (तीर्थङ्करका जन्म हुआ) जानकर, सुघोषा घण्टा बजवाकर (सूचना देते हैं, फिर) सुरेन्द्र और असुरेन्द्र साथ आकर विनय–पूर्वक श्रीअरिहन्त भगवान्को हाथमें ग्रहणकर मेरुपर्वतके शिखरपर जाकर जन्माभिषेक करनेके पश्चात् जैसे शान्तिकी उद्घोषणा करते हैं, वैसे ही मैं (भी) किये हुएका अनुकरण करना चाहिये ऐसा मानकर 'महाजन जिस मार्गसे जाय, वही मार्ग,' ऐसा मानकर भव्यजनोंके साथ आकर, स्नात्र पीठपर स्नात्र करके, शान्तिकी उद्घोषणा करता हूँ, अतः आप सब पूजा–महोत्सव, (रथ) यात्रा–महोत्सव, स्नात्र–महोत्सव आदिकी पूर्णाहुति करके कान देकर सुनिये ! सुनिये ! स्वाहा ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[३ शान्तिपाठ]

(१) ॐपुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां, भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकपूज्यास्त्रिलोकेश्वरास्त्रिलोकोद्योतकराः ॥३॥

शब्दार्थ—

ॐ—ॐकार परमतत्त्वकी विशिष्ट संज्ञा, प्रणवबीज।
एक अक्षरके रूपमें यह परमतत्त्वका वाचक है और पृथक् पृथक् करें तो पञ्चपरमेष्ठीका वाचक हैं। ×

पुण्याहं पुण्याहं—आजका दिन पवित्र है, यह अवसर माङ्गलिक है।
पुण्य—पवित्र। अहन्—दिन।

प्रीयन्तां प्रीयन्तां—प्रसन्न हों प्रसन्न हों।

भगवन्तः—भगवान्।

अर्हन्तः—अरिहन्त।

सर्वज्ञाः—सर्वज्ञ।

सर्वदर्शिनः—सर्वदर्शी।

त्रिलोकनाथाः—त्रिलोकके नाथ।

त्रिलोक – महिताः – त्रिलोकसे पूजित!

त्रिलोक – पूज्याः – त्रिलोकके पूज्य।

त्रिलोकेश्वराः—त्रिलोकके ईश्वर।

त्रिलोकोद्द्योतकराः – त्रिलोकमें उद्द्योत करनेवाले।

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ आजका दिन पवित्र है, आजका अवसर माङ्गलिक है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकके नाथ, त्रिलोकसे पूजित, त्रिलोकके पूज्य, त्रिलोकके ईश्वर, त्रिलोकमें उद्द्योत करनेवाले अरिहन्त भगवान् प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ॥ ३ ॥

× ॐकारके विशेष विवेचनके लिये देखो **प्रबोधटीका** भाग २ रा, पृ. ४६८ **प्रबोधटीका** भाग ३ रा, पृ. ५८४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

ॐ ऋषभ–अजित–सम्भव–अभिनन्दन–सुमति–पद्मप्रभ–सुपार्श्व–चन्द्रप्रभ–सुविधि–शीतल–श्रेयांस-वासुपूज्य–विमल–अनन्त–धर्म–शान्ति–कुन्थु–अर–मल्लि–मुनिसुव्रत–नमि–नेमि–पार्श्व–वर्द्धमानान्ता जिनाः शान्ताः शान्तिकरा भवन्तु स्वाहा ॥४॥

शब्दार्थ—

स्पष्ट है।

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दनस्वामी, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यस्वामी, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतस्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमानस्वामी जिनमें अन्तिम हैं, ऐसे चौबीस शान्त जिन हमें शान्ति प्रदान करनेवाले हों। स्वाहा ॥ ४ ॥

मूल

(२) ॐ मुनयो मुनिप्रवरा रिपुविजय–दुर्भिक्ष–कान्तारेषु दुर्गमार्गेषु रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥५॥

शब्दार्थ—

ॐ–ॐ।

मुनयो मुनिप्रवराः – मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे मुनि।

रिपुविजय–दुर्भिक्ष–कान्तारेषु – शत्रुओंद्वारा किये गये विजयमें, दुष्कालमें (प्राण धारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेके प्रसङ्गमें), गहन अटवीमें (प्रवास करनेके प्रसङ्गमें)।

दुर्गमार्गेषु–विकट मार्गोंका उल्लङ्घन करते समय।

रक्षन्तु–रक्षण करें।

वः–तुम्हारा।

नित्यं–नित्य।

स्वाहा–स्वाहा।

अर्थ–सङ्कलना—

ॐ शत्रुओंद्वारा किये गये विजय–प्रसङ्गमें दुष्कालमें (प्राण धारण करनेके प्रसङ्गमें), गहन–अटवीमें (प्रवास करनेके प्रसङ्गमें) तथा विकट मार्गका उल्लङ्घन करते समय मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे मुनि तुम्हारा नित्य रक्षण करें। स्वाहा ॥ ५ ॥

मूल—

(३) ॐ श्री–ह्री–धृति–मति–कीर्ति–कान्ति–बुद्धि–लक्ष्मी–मेधा–विद्या–साधन–प्रवेश–निवेशनेषु सुगृहीतनामानो जयन्तु ते जिनेन्द्राः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—

ॐ–ॐ।

श्री–ह्री– धृति– मति– कीर्ति– कान्ति बुद्धि लक्ष्मी - मेधा - विद्या– साधन– प्रवेश–निवेशनेषु–श्री, ह्री, धृति, मति, कीर्ति, कान्ति, बुद्धि, लक्ष्मी और मेधा इन नौ स्वरूपवाली सरस्वतीकी साधनामें योगके प्रवेशमें तथा मन्त्र–जपके निवेशनमें।

सुगृहीत–नामानः–अच्छी तरह उच्चारण किये गये नामवाले, जिनके नामोंका आदरपूर्वक उच्चारण किया जाता है।

जयन्तु–जयको प्राप्त हों, सान्निध्य करनेवाले हों।

ते–वे।

जिनेन्द्राः–जिनवर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ श्री, ह्री, धृति, मति, कीर्ति, कान्ति, बुद्धि, लक्ष्मी और मेधा इन नौ स्वरूपवाली सरस्वतीकी साधनामें, योगके प्रवेशमें तथा मंत्र-जपके निवेशनमें जिनके नामोंका आदर-पूर्वक उच्चारण किया जाता है, वे जिनवर जयको प्राप्त हों-सान्निध्य करनेवाले हों ॥ ६ ॥

मूल—

(४) रोहिणी-प्रज्ञप्ति- वज्रशृङ्खला-वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा - पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी-गान्धारी-सर्वास्त्र-महाज्वाला-मानवी - वैरोट्या-अच्छुप्ता -मानसी- महामानसी-षोडशविद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—

स्पष्ट है ।

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृङ्खला, वज्राङ्कुशी, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गान्धारी, सर्वास्त्रमहाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी ये सोलह विद्यादेवियाँ तुम्हारा रक्षण करें ।

मूल—

(५) ॐ आचार्योपाध्याय-प्रभृति-चातुर्वर्णस्य श्री-श्रमण-सङ्घस्य शान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

ॐ—ॐ ।

आचार्योपाध्याय – प्रभृति – चातुर्वर्णस्य—आचार्य, उपाध्याय आदि चार प्रकारके ।

श्रीश्रमण – सङ्घस्य – श्रीश्रमण सङ्घके लिये ।

शान्तिः—शान्ति ।

भवतु—हो ।

तुष्टिः—तुष्टि ।

भवतु—हो ।

पुष्टिः—पुष्टि (पोषण, वृद्धि) ।

भवतु—हो ।

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ आचार्य; उपाध्याय आदि चार प्रकारके श्रीश्रमण-सङ्घके लिये शान्ति हो, तुष्टि हो, पुष्टि हो ॥ ८ ॥

मूल—

(६) ॐ ग्रहाश्चन्द्र-सूर्याङ्गारक-बुध-बृहस्पति- शुक्र--शनैश्चर--राहु--केतु--सहिताः सलोकपालाः सोम-यम-वरुण--कुबेर--वासवादित्य-स्कन्द-विनायकोपेता ये चान्येऽपि ग्राम-नगर-क्षेत्र-देवताऽऽदयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् अक्षीण-कोश-कोष्ठागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ॥९॥

शब्दार्थ—

ॐ—ॐ ।

ग्रहाः—ग्रह ।

चन्द्र – सूर्याङ्गारक- बुध- बृहस्पति-शुक्र- शनैश्चर-राहु-केतु-सहिताः—चन्द्र, सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु सहित ।

सलोकपालाः—लोकपाल सहित ।

सोम – यम – वरुण – कुबेर – वासवादित्य – स्कन्द – विनायकोपेताः—सोम, यम, वरुण, कुबेर, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय और विनायक सहित ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये–जो ।
च–और ।
अन्ये अपि–दूसरे भी ।
ग्राम– नगर–क्षेत्र– देवतादयः– ग्रामदेवता, नगरदेवता, क्षेत्र-देवता आदि ।
ते–वे ।
सर्वे–सब ।
प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् – प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ।
अक्षीण – कोश – कोष्ठागाराः– अक्षय कोश और कोठारवाले ।
नरपतयः–राजा ।
च–और ।
भवन्तु–हों ।
स्वाहा–स्वाहा ।

अर्थ–सङ्कलना—

ॐ चन्द्र, सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु आदि ग्रह; लोकपाल—सोम, यम, वरुण, (और) कुबेर, तथा, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय, विनायक आदि देव एवं ग्रामदेवता, नगरदेवता, क्षेत्रदेवता आदि दूसरे भी जो देव हों, वे सब प्रसन्न हों, प्रसन्न हों और राजा अक्षय कोश और कोठारवाले हों । स्वाहा ॥ ९ ॥

मूल—

(७) ॐ पुत्र–मित्र–भ्रातृ–कलत्र–सुहृत्–स्वजन–सम्बन्धि–बन्धुवर्ग–सहिता नित्यं चामोद--प्रमोद-कारिणः (भवन्तु स्वाहा) ॥१०॥

शब्दार्थ—

ॐ–ॐ ।
पुत्र – मित्र– भ्रातृ – कलत्र – सुहृत् – स्वजन–सम्बन्धि – बन्धु – वर्ग – सहिताः–पुत्र, मित्र, भाई, स्त्री, हितैषी, स्वजातीय, स्नेहीजन तथा सम्बन्धी परिवारवाले ।
नित्यं–नित्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च–और ।

आमोद – प्रमोद – कारिणः–आनन्द – प्रमोद करनेवाले–सुखी ।

भवन्तु–हों ।

स्वाहा–स्वाहा ।

अर्थ–सङ्कलना—

ॐ आप पुत्र (पुत्री), मित्र, भाई (बहिन), स्त्री, हितैषी, स्वजातीय, स्नेहीजन और सम्बन्धी परिवारवालोंके सहित आनन्द-प्रमोद करनेवाले हों–सुखी हों ॥१०॥

मूल—

(८) अस्मिंश्च भूमण्डले, आयतन–निवासि–साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविकाणां रोगोपसर्ग–व्याधि – दुःख–दुर्भिक्ष–दौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ॥११॥

शब्दार्थ—

अस्मिन्–इस ।

च–और ।

भूमण्डले–भूमण्डलपर ।

भू–अनुष्ठान भूमिका मध्यभाग । मण्डल – उसके आसपासकी भूमि । स्नात्रविधि करते समय जिस भूमिकी मर्यादा बाँधी हो, उसको भूमण्डल कहते हैं ।

आयतन – निवासि – साधु–साध्वी – श्रावक – श्राविकाणां–अपने अपने स्थानमें रहे हुए साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओंके ।

रोगोपसर्ग – व्याधि – दुःख–दुर्भिक्ष – दौर्मनस्योपशमनाय–रोग, उपसर्ग, व्याधि, दुःख, दुष्काल और विषादके उपशमनद्वारा ।

शान्तिः–शान्ति ।

शान्ति–अरिष्ट अथवा कषायोदयका उपशमरूप ।

भवतु–हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

और इस भूमण्डलपर अपने अपने स्थानपर रहे हुए साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओंके रोग, उपसर्ग, व्याधि, दुःख, दुष्काल और विषादके उपशमनद्वारा शान्ति हो ॥ ११ ॥

मूल—

(९) ॐ तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः सदा (भवन्तु) प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु, (शाम्यन्तु) दुरितानि, शत्रवः पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ॥१२॥

शब्दार्थ—

ॐ—ॐ ।

तुष्टि - पुष्टि - ऋद्धि - वृद्धि - माङ्गल्योत्सवाः—तुष्टि, पुष्टि, ऋद्धि, वृद्धि, माङ्गल्य और अभ्युदय ।

सदा—सदा ।

(भवन्तु—हों ।)

प्रादुर्भूतानि - प्रादुर्भूत, उत्पन्न हुए ।

पापानि—पापकर्म ।

शाम्यन्तु—शान्त हों, नष्ट हों ।

(शाम्यन्तु—शान्त हों ।)

दुरितानि—भय, कठिनाइयाँ ।

शत्रवः—शत्रुवर्ग ।

पराङ्मुखाः—विमुख ।

भवन्तु—हों ।

स्वाहा—स्वाहा ।

अर्थ-सङ्कलना—

ॐ आपको सदा तुष्टि हो, पुष्टि हो, ऋद्धि मिले, वृद्धि मिले, माङ्गल्यकी प्राप्ति हो और आपका निरन्तर अभ्युदय हो । आपके प्रादुर्भूत पापकर्म नष्ट हों, भय-कठिनाइयाँ शान्त हों तथा आपका शत्रुवर्ग विमुख बने । स्वाहा ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[४. श्रीशान्तिनाथ–स्तुतिः]

[अनुष्टुप्]

(१) श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश–मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥१३॥

शब्दार्थ—

श्रीमते–श्रीमान्, पूज्य ।
शान्तिनाथाय – श्रीशान्तिनाथ भगवान्को ।
नमः–नमस्कार हो ।
शान्तिविधायिने – शान्ति करने वाले ।
त्रैलोक्यस्य – तीन लोकके प्राणियोंको ।
अमराधीश – मुकुटाभ्यर्चिता – ङ्घ्रये – देवेन्द्रोंके मुकुटोंसे पूजित चरणवालेको ।
जिनके चरण देवेन्द्रोंके मुकुटोंसे पूजित हैं उनको ।
अमराधीश–देवेन्द्र । मुकुट । अभ्यर्चिताङ्घ्रि – पूजित चरणवाले ।

अर्थ–सङ्कलना—

तीन लोकके प्राणियोंको शान्ति करनेवाले और देवेन्द्रोंके मुकुटोंसे पूजित चरणवाले, पूज्य श्रीशान्तिनाथ भगवान्को नमस्कार हो ॥ १३ ॥

मूल—

(२) शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्तिं दिशतु मे गुरुः ।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

शान्तिः—श्रीशान्तिनाथ भगवान् ।

शान्तिकरः – जगत्में शान्ति करनेवाले ।

श्रीमान् – ज्ञानादिक लक्ष्मीवाले, पूज्य ।

शान्ति—शान्ति ।

दिशतु—प्रदान करें ।

मे—मुझे ।

गुरुः—जगद्गुरु, जगत्को धर्मका उपदेश करनेवाले ।

शान्तिः—शान्ति ।

एव—ही ।

सदा—सदा ।

तेषां—उनके ।

येषां—जिनके ।

शान्तिः—श्रीशान्तिनाथ ।

गृहे गृहे—घर घरमें ।

अर्थ-सङ्कलना—

जगत्में शान्ति करनेवाले, जगत्को धर्मका उपदेश देनेवाले; पूज्य शान्तिनाथ भगवान् मुझे शान्ति प्रदान करें। जिनके घर घरमें श्रीशान्तिनाथकी पूजा होती है उनके (यहाँ) सदा शान्ति ही होती है ॥ १४ ॥

मूल—

[गाथा]

(३) उन्मृष्ट–रिष्ट–दुष्ट–ग्रह–गति–दुःस्वप्न–दुर्निमित्तादि ।
सम्पादित–हित–सम्पन्नाम–ग्रहणं जयति शान्तेः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—

उन्मृष्ट – रिष्ट – दुष्ट – ग्रह–गति–दुःस्वप्न – दुर्निमित्तादि – जिन्होंने उपद्रव, ग्रहोंके दुष्ट प्रभाव, दुष्ट स्वप्न, दुष्ट अङ्गस्फुरणरूप अपशकुन आदि निमित्तोंका नाश किया है, ऐसा ।

उन्मृष्ट—नाश किया है जिसने ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिष्ट–उपद्रव । दुष्ट–ग्रह–गति–ग्रहोंका बुरा असर ।

सम्पादित–हित-सम्पत् – जिसके-द्वारा आत्महित और सम्पत्ति-को प्राप्त करानेवाला ।

नाम–ग्रहणं–नामोच्चारण ।

जयति–जयको प्राप्त होता है ।

शान्तेः–श्रीशान्तिनाथ भगवान्का ।

अर्थ–सङ्कलना—

उपद्रव, ग्रहोंकी दुष्टगति, दुःस्वप्न, दुष्ट अङ्गस्फुरण और दुष्ट निमित्तादिका नाश करनेवाला तथा आत्महित और सम्पत्तिको प्राप्त करानेवाला श्रीशान्तिनाथ भगवान्का नामोच्चारण जयको प्राप्त होता है ।। १५ ।।

मूल—

[५ शान्ति–व्याहरणम्]

[गाथा]

(१) श्रीसङ्घ–जगज्जनपद–राजाधिप–राज–सन्निवेशानाम् ।
गोष्ठिक–पुरमुख्यानां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छान्तिम् ।।१६।।

शब्दार्थ—

श्रीसघ– जगज्जनपद–राजाधिप-राज–सन्निवेशानाम् – श्री-सङ्घ, जगत्के जनपद, महा-राजा और राजाओंके निवास-स्थानोंके ।

गोष्ठिक–पुरमुख्यानां– विद्वन्मण्ड-लीके सभ्य तथा अग्रगण्य नागरिकोंके ।

गोष्ठिक–गोष्ठीके सभ्य । प्राचीन-कालमें विद्वन्मण्डलीको गोष्ठीके रूपमें पहचाननेकी रीति प्रचलित थी । पुरमुख्य–नगरके प्रधान कार्यकर्ता, अग्रगण्य नागरिक ।

व्याहरणैः–नामोच्चारण – पूर्वक, नाम लेकर ।

व्याहरेत्–बोलनी चाहिये ।

शान्तिम्–शान्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

श्रीसङ्घ, जगत्के जनपद, महाराजा और राजाओंके निवास-स्थान, विद्वन्मण्डलीके सभ्य तथा अग्रगण्य नागरिकोंके नाम लेकर शान्ति बोलनी चाहिये ।। १६ ।।

मूल—

(२) श्रीश्रमणसङ्घस्य शान्तिर्भवतु ।
श्रीजनपदानां शान्तिर्भवतु ।
श्रीराजाधिपानां शान्तिर्भवतु ।
श्रीराजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु ।
श्रीगोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु ।
श्रीपौरमुख्यानां शान्तिर्भवतु ।
श्रीपौरजनस्य शान्तिर्भवतु ।
श्रीब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु ।।१७।।

शब्दार्थ—

स्पष्ट है ।

अर्थ-सङ्कलना—

श्रीश्रमणसङ्घके लिये शान्ति हो ।
श्रीजनपदों (देशों) के लिये शान्ति हो ।
श्रीराजाधिपो (महाराजाओं) के लिये शान्ति हो ।
श्रीराजाओंके निवासस्थानोंके लिये शान्ति हो ।
श्रीगोष्ठिकोंके-विद्वन्मण्डलीके सभ्योंके लिये शान्ति हो ।
श्रीअग्रगण्य नागरिकोंके लिये शान्ति हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीनगरजनोंके लिये शान्ति हो ।
श्रीब्रह्मलोकके लिये शान्ति हो । ॥ १७ ॥

मूल

[६ आहुति–त्रयम्]

ॐ स्वाहा ॐ स्वाहा ॐ श्रीपार्श्वनाथाय ॥१८॥

शब्दार्थ—

स्पष्ट है ।

अर्थ–सङ्कलना—

ॐ स्वाहा, ॐ स्वाहा, ॐ श्रीपार्श्वनाथाय स्वाहा ॥ १८ ॥

मूल—

[७ विधि–पाठ]

एषा शान्तिः प्रतिष्ठा–यात्रा–स्नात्राद्यवसानेषु शान्ति-कलशं गृहीत्वा कुङ्कुम–चन्दन–कर्पूरागुरु–धूप–वास–कुसुमाञ्जलि–समेतः स्नात्र–चतुष्किकायां श्रीसङ्घसमेतः शुचि–शुचि–वपुः पुष्प–वस्त्र–चन्दनाभरणालङ्कृतः पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा शान्तिमुद्घोषयित्वा शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति । ॥१९॥

शब्दार्थ—

एषा–यह ।

शान्तिः–शान्तिपाठ ।

प्रतिष्ठा–यात्रा – स्नात्राद्यवसानेषु–प्रतिष्ठा, यात्रा और स्नात्र आदि उत्सवके अन्तमें ।

शान्ति–कलशं–शान्ति कलश ।

गृहीत्वा–धारण करके ।

कुङ्कुम – चन्दन – कर्पूरागुरु–धूप–वास – कुसुमाञ्जलि–समेतः–केसर, चन्दन,[1]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपूर[२], अगरका धूप[३], वास[४], और कुसुमाञ्जलि[५] लेकर ।

स्नात्र–चतुष्किकायां–स्नात्र बोलनेके मण्डपमें ।

श्रीसंघसमेतः–श्रीसङ्घके साथ । श्रीसङ्घ–श्रावक–श्राविकाओंका समुदाय ।

शुचि–शुचि–वपुः–बाह्य और अभ्यन्तर मलसे रहित ।

पुष्प – वस्त्र – चन्दनाभरणालङ्कृतः–श्वेतवस्त्र, चन्दन और आभरणोंसे अलङ्कृत होकर । पुष्प–श्वेत ।

पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा–फूलोंके हारको गलेमें धारण करके ।

शान्ति–पानीयं – शान्तिकलशका जल ।

मस्तके दातव्यम् – मस्तकपर लगाना चाहिये ।

इति–इस प्रकार ।

अर्थ–सङ्कलना—

यह शान्तिपाठ, जिनबिम्बकी प्रतिष्ठा, रथयात्रा और स्नात्र आदि महोत्सवके अन्तमें (बोलना, इसकी विधि इस प्रकार है कि:–) केसर–चन्दन, कपूर, अगरका धूप, वास और कुसुमाञ्जलि–अञ्जलिमें विविधरंगोंके पुष्प रखकर, बाँये हाथमें शान्ति–कलश ग्रहण करके (तथा उसपर दाँया हाथ ढककर) श्रीसङ्घके साथ स्नात्र मण्डपमें खड़ा रहे । वह बाह्य–अभ्यन्तर मलसे रहित होना चाहिये तथा श्वेतवस्त्र, चन्दन, और आभरणोंसे अलङ्कृत होना चाहिये। फूलोंका हार गलेमें धारण करके शान्तिकी उद्घोषणा करे और उद्घोषणाके पश्चात् शान्ति–कलशका जल देवे, जिसको (अपने तथा अन्यके) मस्तक पर लगाना चाहिये ।। १९ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[८ प्रास्ताविक–पद्यानि]

[उपजाति]

(१) **नृत्यन्ति नृत्यं मणि–पुष्प–वर्षं,**
सृजन्ति गायन्ति च मङ्गलानि ।
स्तोत्राणि गोत्राणि पठन्ति मन्त्रान्,
कल्याणभाजो हि जिनाभिषेके ॥२०॥

शब्दार्थ—

नृत्यन्ति नृत्यं–विविध प्रकारके नृत्य करते हैं ।

मणि – पुष्प – वर्षं – रत्न और पुष्पोंकी वर्षा ।

सृजन्ति–करते हैं ।

गायन्ति–गाते हैं ।

च–और ।

मङ्गलानि–मङ्गल, माङ्गलिक । अष्टमङ्गलमें आठ आकृतियोंका आलेखन भी होता है–वह इस प्रकारः–(१) स्वस्तिक, (२)श्रीवत्स, (३)नन्द्यावर्त्त (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य-युगल और (८) दर्पण।

स्तोत्राणि–स्तोत्र ।

गोत्राणि–गोत्र, तीर्थङ्करके गोत्र और वंशावलि ।

पठन्ति–बोलते हैं ।

मन्त्रान्–मन्त्रोंको।

कल्याणभाजः–पुण्यशाली ।

हि–वस्तुतः ।

जिनाभिषेके–जिनाभिषेकके समयमें, स्नात्रक्रियाके प्रसङ्गपर ।

अर्थ–सङ्कलना—

पुण्यशाली जन जिनेश्वरकी स्नात्रक्रियाके प्रसङ्गपर विविध प्रकारके नृत्य करते हैं, रत्न और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, (अष्टमङ्गलादिका आलेखन करते हैं तथा) माङ्गलिक–स्तोत्र गाते हैं और तीर्थङ्करके गोत्र, वंशावलि एवं मन्त्र बोलते हैं ॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[गाथा]

(२) शिवमस्तु सर्वजगतः, पर–हित–निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥२१॥

शब्दार्थ—

शिवम्–कल्याण ।
अस्तु–हो ।
सर्व–जगतः–अखिल विश्वका ।
पर– हित– निरताः– परोपकारमें तत्पर ।
भवन्तु–हों ।
भूतगणाः–प्राणी ।
दोषाः–व्याधि, दुःख, दौर्मनस्यादि।
प्रयान्तु नाशं–नष्ट हों ।
सर्वत्र–सर्वत्र ।
सुखी–सुख भोगनेवाले ।
भवतु–हों ।
लोकः–मनुष्यजाति, मनुष्य ।

अर्थ–सङ्कलना—

अखिल विश्वका कल्याण हो, प्राणी परोपकारमें तत्पर बनें; व्याधि–दुःख–दौर्मनस्य आदि नष्ट हों और सर्वत्र मनुष्य सुख भोगनेवाले हों ॥ २१ ॥

मूल—

(३) अहं तित्थयर–माया, सिवादेवी तुम्ह नयर–निवासिनी।
अम्ह सिवं तुम्ह सिवं, असिवोवसमं सिवं भवतु स्वाहा॥२२॥

शब्दार्थ—

अहं–मैं ।
तित्थयर-माया-तीर्थङ्करकी माता।
सिवादेवी–शिवादेवी ।
श्रीअरिष्टनेमि तीर्थङ्करकी माता का नाम शिवादेवी है ।
तुम्ह–तुम्हारे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयर – निवासिनी – नगरकी रहनेवाली ।

अम्ह–हमारा ।

सिवं–श्रेय ।

तुम्ह–तुम्हारा ।

सिवं–कल्याण ।

असिवोवसमं – उपद्रवका नाश करनेवाला ।

सिवं–कल्याण ।

भवतु–हो ।

स्वाहा–स्वाहा ।

अर्थ–सङ्कलना—

मैं श्रीअरिष्टनेमि तीर्थङ्करकी माता शिवादेवी तुम्हारे नगरकी रहनेवाली हूँ—नगरमें रहती हूँ। अतः हमारा और तुम्हारा श्रेय हो, तथा उपद्रवोंका नाश करनेवाला कल्याण हो ॥ २२ ॥

मूल—

[अनुष्टुप्]

(४) उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न–वल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥२३॥

शब्दार्थ—

पूर्ववत् ।

अर्थ–सङ्कलना—

श्रीजिनेश्वरदेवका पूजन करनेसे समस्त प्रकारके उपसर्ग नष्ट हो जाते हैं, विघ्नरूपी लताएँ कट जाती हैं और मन प्रसन्नताको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

मूल—

(५) सर्व–मङ्गल–माङ्गल्यं, सर्व–कल्याण–कारणम् ।
प्रधानं सर्व–धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

पूर्ववत् ।

अर्थ-सङ्कलना—

सर्व मङ्गलोंमें मङ्गलरूप, सर्व कल्याणोंका कारणरूप और सर्व धर्मोंमें श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन (प्रवचन) सदा विजयी हो रहा है ॥ २४ ॥

सूत्र-परिचय—

महर्षि नन्दिषेण कृत 'अजित-शान्ति-स्तव' अपनी मङ्गलमय रचनाके कारण उपसर्ग-निवारक और रोग-विनाशक माना जाता है; श्रीमानदेवसूरिकृत 'शान्ति-स्तव' अपनी मन्त्रमय रचनाके कारण सलिलादि-भयविनाशी और शान्त्यादिकर माना जाता है; और वादिवेताल श्रीशान्ति-सूरि कृत यह शान्तिपाठ जो सामान्यतया 'बृहच्छान्ति' अथवा 'वृद्धशान्ति (बड़ी शान्ति)'के नामसे पहचाना जाता है, यह इसके अन्तर्गत शान्तिमन्त्रोंके कारण शान्तिकर, तुष्टिकर और पुष्टिकर माना जाता है ।

यह सूत्र जिनबिम्बकी प्रतिष्ठा, रथयात्रा एवं स्नात्रके अन्तमें बोला जाता है तथा पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणके प्रसङ्गपर शान्तिस्तव (लघुशान्ति) के स्थानपर बोला जाता है ।

---

५७ संतिनाह-सम्मद्दिट्ठिय-रक्खा

['संतिकरं-स्तवन']

मूल—

[गाहा]

संतिकरं संतिजिणं, जग-सरणं जय-सिरीइ दायारं ।
समरामि भत्त-पालग-निव्वाणी-गरुड-कय-सेवं ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

संतिकरं–शान्ति करनेवालेको ।

संतिजिणं–श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को ।

जग–सरणं – जगत्‌के जीवोंके शरणरूप ।

जय–सिरीइ–जय और श्रीके ।

दायारं–दातारको, देनेवालेको ।

समरामि–स्मरण करता हूँ, ध्यान धरता हूँ ।

भत्त–पालग–निव्वाणी – गरुड़–कय–सेवं–भक्तजनोंके पालक, निर्वाणीदेवी तथा गरुड–यक्ष-द्वारा सेवित ।

भत्त–भक्त। पालग–पालन करनेवाले । निव्वाणी–निर्वाणी-देवी । गरुड–गरुड़ नामका यक्ष । कय–कृत । सेव–सेवा ।

अर्थ–सङ्कलना—

जो शान्ति करनेवाले हैं, जगत्‌के जीवोंके लिए शरणरूप हैं, जय और श्रीके देनेवाले हैं तथा भक्तजनोंका पालन करनेवाले, निर्वाणी-देवी और गरुड़–यक्षद्वारा सेवित हैं, ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌का मैं स्मरण करता हूँ, ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥

मूल—

ॐ सनमो विप्पोसहि–पत्ताणं संतिसामि–पायाणं ।
झ्रौं स्वाहा मंतेणं सव्वासिव–दुरिय–हरणाणं ॥ २ ॥
ॐ संति–नमुक्कारो, खेलोसहिमाइ–लद्धि–पत्ताणं ।
सौँ ह्रीँ नमो य सव्वोसहि–पत्ताणं च देइ सिरिं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—

ॐ सनमो–ॐ नमः सहित ।

विप्पोसहि–पत्ताणं–विप्रुडोषधि-नामकी लब्धि प्राप्त करनेवालोंको ।

विप्रुड्–विष्ठा । जिस लब्धि के प्रभावसे विष्ठा सुगन्धित होती है, उस लब्धिको विप्रुडोषधि–लब्धि कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संति–सामि–पायाणं–पूज्य श्री–शान्तिनाथ भगवान्‌को ।

सामि–स्वामि । पाय–पूज्य ।

झ्रौं स्वाहा मंतेणं–'झ्रौं स्वाहा' –वाले मन्त्रसे ।

सव्वासिव–दुरिय–हरणाणं–सर्व उपद्रव और पापका हरण करनेवालोंको ।

असिव–उपद्रव । दुरिय–पाप ।

ॐ संति – नमुक्कारो – श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को ॐपूर्वक किया हुआ नमस्कार ।

खेलोसहिमाइ–लद्धि–पत्ताणं–श्लेष्मौषधि आदि लब्धि प्राप्त करनेवालोंको ।

खेल–कफ । ओसहि–ओषधि ।

लद्धि–लब्धि । पत्त–प्राप्त ।

सौँ ह्रीँ नमो–'सौँ ह्रीँ नमः 'यह मन्त्र ।

सव्वोसहि–पत्ताणं–सर्वौषधि नामक लब्धि प्राप्त करनेवालोंको । जिसके शरीरके सर्व–पदार्थ ओषधिरूप हों उसे सर्वौषधि-लब्धिमान् कहते हैं ।

च–और ।

देइ–देते हैं ।

सिरिं–श्रीको ।

अर्थ–सङ्कलना—

विप्रुडोषधि, श्लेष्मौषधि, सर्वौषधि आदि लब्धियाँ प्राप्त करनेवाले सर्व उपद्रव और पापका हरण करनेवाले, ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को 'ॐ नमः', झ्रौं स्वाहा' तथा 'सौँ ह्रीँ नमः' ऐसे मन्त्राक्षर–पूर्वक नमस्कार हो; ऐसा श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌को किया हुआ नमस्कार जय और श्रीको देता है ।। २–३ ।।

मूल—

वाणी–तिहुयण–सामिणी–सिरिदेवी–जक्खराय–गणिपिडगा ।
गह–दिसिपाल–सुरिंदा, सया वि रक्खंतु जिणभत्ते ।।४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

वाणी–तिहुयण-सामिणि–सिरि-देवी–जक्खराय–गणिपि-डगा–सरस्वती देवी, त्रिभुवन-स्वामिनी देवी, श्रीदेवी और यक्षराज गणिपिटक।

वाणी–सरस्वती देवी। तिहुयण-सामिणी–त्रिभुवन–स्वामिनी देवी। सिरिदेवी–श्रीदेवी। जक्खराय=यक्षराय। गणि-पिडग–गणिपिटक।

गह–दिसिपाल – सुरिंदा – ग्रह, दिक्पाल और देवेन्द्र।

सया-सदा।

वि–ही।

रक्खंतु–रक्षा करें।

जिणभत्ते-जिन–भक्तोंकी।

अर्थ–सङ्कलना—

सरस्वती, त्रिभुवनस्वामिनी, श्रीदेवी, यक्षराज गणिपिटक, ग्रह, दिक्पाल एवं देवेन्द्र सदा ही जिनभक्तोंकी रक्षा करें॥ ४॥

मूल—

रक्खंतु ममं रोहिणि–पन्नत्ती वज्जसिंखला य सया।
वज्जंकुसि-चक्केसरि–नरदत्ता–कालि–महकाली ॥५॥
गोरी तह गंधारी, महजाला माणवी य वइरुट्टा।
अच्छुत्ता माणसिआ, महमाणसिया उ देवीओ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—

रक्खंतु–रक्षण करें।

ममं–मुझे, मेरा।

रोहिणि–पन्नत्ती – रोहिणी और प्रज्ञप्ति।

वज्जसिंखला–वज्रशृङ्खला।

य–और।

सया–सदा।

वज्जंकुसि–चक्केसरि–नरदत्ता–कालि-महकाली–वज्राङ्कुशी, चक्रेश्वरी, नरदत्ता, काली और महाकाली।

गोरी–गौरी।

तह–तथा।

गंधारी–गान्धारी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महजाला-महाज्वाला ।
माणवी–मानवी ।
य–और ।
वैरोट्या–वैरोट्या ।
अच्छुत्ता–अच्छुप्ता ।
माणसिआ–मानसी ।
महमाणसिआ–महामानसी ।
उ–और ।
देवीओ–देवियाँ, विद्यादेवियाँ ।

अर्थ–सङ्कलना—

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृङ्खला, वज्राङ्कुशी, चक्रेश्वरी, नरदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गान्धारी, महाज्वाला, मानवी, वैरोट्या; अच्छुप्ता, मानसी, महामानसी ये सोलह विद्यादेवियाँ मेरा रक्षण करें ।। ५–६ ।।

मूल—

जक्खा गोमुह–महजक्ख–तिमुह–जक्खेस–तुंबरू कुसुमो ।
मायंग–विजय–अजिआ, बंभो मणुओ सुरकुमारो ।।७।।
छम्मुह पयाल किन्नर, गरुडो गंधव्व तह य जक्खिदो ।
कूबर–वरुणो भिउडी, गोमेहो पास–मायंगा ।। ८ ।।

शब्दार्थ—

जक्खा–यक्ष ।
गोमुह – महजक्ख – तिमुह – जक्खेस तुंबरू–गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश और तुंबरु ।
कुसुमो–कुसुम ।
मायंग–विजय–अजिआ–मातङ्ग, विजय और अजित ।
बंभो–ब्रह्मयक्ष ।
मणुओ–मनुज ।
सुरकुमारो–सुरकुमार ।
छम्मुह–षण्मुख ।
पयाल–पाताल ।
किन्नर–किन्नर ।
गरुडो–गरुड ।
गंधव्व–गन्धर्व ।
तह य–वैसे ही ।
जक्खिदो–यक्षेन्द्र ।
कूबर–कुबेर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरुणो–वरुण ।
भिउडी–भृकुटि ।
गोमेहो–गोमेध ।
पास–मायंगा–पार्श्व और मातङ्ग ।

अर्थ–सङ्कलना—

गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश, तुम्बरु, कुसुम, मातङ्ग, विजय, अजित, ब्रह्म, मनुज, सुरकुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व और मातङ्ग ये चौबीस यक्ष ।। ७–८ ।।

मूल—

देवीओ चक्केसरि–अजिआ–दूरिआरि–कालि–महकाली ।
अच्चुअ–संता–जाला, सुतारयासोय–सिरिवच्छा ।। ९ ।।
चंडा विजयंकुसि–पन्नइत्ति–निव्वाणि–अच्चुआ धरणी ।
वइरुट्ट–छुत्त–गंधारि–अंब–पउमावई–सिद्धा ।।१०।।
इय तित्थ–रक्खण–रया, अन्ने वि सुरा सुरीउ चउहा वि ।
वंतर–जोइणि–पमुहा, कुणंतु रक्खं सया अम्हं ।। ११ ।।

शब्दार्थ—

देवीओ–देवियाँ ।
चक्केसरि–अजिआ– दुरिआरि–कालि–महकाली–चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली ।
अच्चुअ–संता–जाला–सुतारया–सोय–सिरिवच्छा –अच्युता, शान्ता, ज्वाला, सुतारका, अशोका, श्रीवत्सा ।
चंडा–चण्डा ।
विजयंकुसि–पन्नइत्ति–निव्वाणि–अच्चुआ–विजया, अङ्कुशी, प्रज्ञप्ति (पन्नगी), निर्वाणी और अच्युता ।
धरणी–धारिणी ।
वइरुट्ट–छुत्त – गंधारी – अंब–पउमावई–सिद्धा – वैरोट्या, अच्छुप्ता, गन्धारी, अम्बा, पद्मावती और सिद्धायिका ।
इय–इस प्रकार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्थ-रक्खण-रया–तीर्थका रक्षण करनेमें तत्पर ।

तित्थ–तीर्थ । रक्खण–रक्षण । रया–तत्पर ।

अन्ने–दूसरे ।

वि–भी ।

सुरा–देव ।

सुरीउ–देवियाँ ।

चउहा–चार प्रकारके ।

वि–भी ।

वंतर-जोइणि – पमुहा–व्यन्तर, योगिनी आदि ।

वंतर – व्यन्तर । जोइणि–योगिनी । पमुहा–आदि ।

कुणंतु–करें ।

रक्खं–रक्षा ।

सया–सदा ।

अम्हं–हमारी ।

अर्थ-सङ्कलना—

चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली, अच्युता, शान्ता, ज्वाला, सुतारका, अशोका, श्रीवत्सा, चण्डा, विजया, अङ्कुशी, प्रज्ञप्ति (पन्नगी), निर्वाणी, अच्युता (बला), धारिणी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, गान्धारी, अम्बा, पद्मावती और सिद्धायिका ये शासनदेवियाँ तथा भगवान्‌के शासनका रक्षण करनेमें तत्पर ऐसे अन्य चारों प्रकारकी देव–देवियाँ तथा व्यन्तर, योगिनी आदि दूसरे भी हमारी रक्षा करें ॥ ९–१०–११ ॥

मूल—

एवं सुदिट्ठि–सुरगण–सहिओ संघस्स संति–जिणचन्दो ।
मज्झ वि करेउ रक्खं, मुणिसुंदरसूरि–थुय–महिमा ॥१२॥

शब्दार्थ—

एवं–इस प्रकार ।

सुदिट्ठि–सुरगण – सहिओ–सम्यग्दृष्टि–देवोंके समूह सहित ।

सुदिट्ठि–सम्यग्दृष्टि । सुरगण–देवोंका समूह । सहिअ–सहित ।

संघस्स–श्रीसङ्घकी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संति – जिणचंदो – श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वर ।
मज्झ वि–मेरी भी ।
करेउ–करें ।
रक्खं–रक्षा ।
मुणि–सुन्दरसुरि–थुय–महिमा– श्रीमुनिसुन्दरसूरिने जिनकी महिमाकी स्तुति की है ऐसे ।

अर्थ–सङ्कलना—

इस प्रकार श्रीमुनिसुन्दरसूरिने जिनकी महिमाकी स्तुति की है, ऐसे श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वर सम्यग्दृष्टि देवोंके समूह सहित श्रीसंघकी और मेरी भी रक्षा करें ॥ १२ ॥

मूल—

इय 'संतिनाह–सम्मद्दिट्ठिय–रक्खं' सरइ तिकालं जो ।
सव्वोवद्दव–रहिओ, स लहइ सुह–संपयं परमं ॥१३॥

शब्दार्थ—

इय–इस प्रकार ।
संतिनाह–सम्मद्दिट्ठिय – रक्खं– शान्तिनाथ–सम्यग्दृष्टिक–रक्षा (स्तोत्र) का ।
सरइ–स्मरण करता है ।
तिकालं–तीनों काल, प्रातः काल, मध्याह्न और सायङ्काल ।
जो–जो ।
सव्वोवद्दव–रहिओ–सर्व उपद्रवोंसे रहित ।
स–वह ।
लहइ–प्राप्त करता है ।
सुह–संपयं–सुख सम्पदाको ।
परमं–उत्कृष्ट ।

अर्थ–सङ्कलना—

इस प्रकार 'शान्तिनाथ–सम्यग्दृष्टिक–रक्षा' (स्तोत्र) का जो तीनों काल स्मरण करता है, वह सर्व उपद्रवोंसे रहित होकर उत्कृष्ट सुख–सम्पदाको प्राप्त करता है ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल—

[तवगच्छ–गयण–दिणयर–जुगवर–सिरिसोमसुंदरगुरूणं ।
सुपसाय–लद्ध–गणहर–विज्जासिद्धि भणइ सीसो ॥१४॥]

शब्दार्थ—

तवगच्छ–गयण–दिणयर–जुग–वर-सिरिसोमसुन्दरगुरूणं– तपागच्छरूपी आकाशमें सूर्य–समान युगप्रधान श्रीसोमसुन्दर गुरुके ।

तवगच्छ–तपागच्छ । गयण–गगन । दिणयर–सूर्य । जुग-वर–युगप्रधान ।

सुपसाय–लद्ध–गणहर–विज्जा–सिद्धि–सुप्रसादसे जिन्होंने गणधर विद्याकी (सूरिमन्त्रकी) सिद्धि प्राप्त की है, ऐसे ।

सुपसाय-सुप्रसाद । लद्ध-लब्ध । गणहर-विज्जा-गणधर विद्या सूरिमन्त्र । सिद्धि-सिद्धि ।

भणइ–पढ़ता है ।

सीसो–शिष्य ।

अर्थ–सङ्कलना—

तपागच्छरूपी आकाशमें सूर्य–समान ऐसे युगप्रधान श्रीसोम-सुन्दर–गुरुके सुप्रसादसे जिन्होंने गणधर विद्या (सूरिमन्त्र)की सिद्धि की है, ऐसे उनके शिष्य (श्रीमुनिसुन्दरसूरि) ने यह स्तोत्र बनाया है ॥१४॥

सूत्र-परिचय—

सहस्रावधानी श्रीमुनिसुन्दरसूरिद्वारा रचित इस स्तवनके प्रयोगसे सिरोही राज्यमें उत्पन्न टिड्डियोंका उपद्रव शान्त हुआ था, अतः ये नित्य स्मरण करने योग्य माना जाता है और प्रचलित नव स्मरणमें इसका स्थान तीसरा है । इस स्तवनका मूल नाम इसकी तेरहवीं गाथाके अनुसार 'संतिनाह–सम्मद्दिट्ठिय–रक्खा' है, परन्तु इसके प्रथम शब्दसे 'संतिकरं' स्तवनके नामसे प्रसिद्ध है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*नवस्मरणानि

(४–अथ चतुर्थं तिजयपहुत्तस्मरणम्)

तिजयपहुत्तपयासय–अट्ठमहापाडिहेरजुत्ताणं, समयक्खित्त-ठिआणं, सरेमि चक्कं जिणंदाणं ॥१॥ पणवीसा य असीआ, पनरस पन्नास जिणवरसमूहो । नासेउ सयलदुरिअं, भवि-आणं भत्तिजुत्ताणं ॥२॥ वीसा पणयाला वि य, तीसा पन्नत्तरी जिणवरिंदा । गहभूअरक्खसाइणिघोरुवसग्गं पणासंतु ॥३॥ सत्तरि पणतीसा वि य, सट्ठी पंचेव जिणगणो एसो । वाहिजलजलणहरिकरिचोरारिमहाभयं हरउ ॥४॥ पणपन्ना य दसेव य, पन्नट्ठी तह य चेव चालीसा । रक्खंतु मे सरीरं, देवासुरपणमिआ सिद्धा ॥५॥ ॐ हरहुँहः सरसुंसः, हरहुँहः तह य चेव सरसुंसः । आलिहियनामगब्भं, चक्कं किर सव्वओभद्दं ॥६॥ ॐ रोहिणी पन्नत्ती, वज्जसिंखला तह य वज्जअंकुसिआ । चक्केसरि नरदत्ता, कालि महाकालि तह गोरी ॥७॥ गंधारी महजाला, माणवी वइरुट्ट तह य अच्छुत्ता । माणसि महमाणसिआ, विज्जादेवीओ रक्खंतु॥८॥ पंचदसकम्मभूमिसु, उप्पन्नं सत्तरिं जिणाण सयं । विविहर-

---

* प्रथम द्वितीय तथा तृतीय स्मरण के लिये देखो क्रमशः पृष्ठ १, ६१ तथा ३९१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यणाइवन्नोवसोहिअं हरउ दुरिआइं ॥९॥ चउतीसअइसयजुआ, अट्ठमहापाडिहेरकयसोहा । तित्थयरा गयमोहा, झाएअव्वा पयत्तेणं ॥१०॥ ॐ वरकणयसंखविद्दुम-मरगयघणसन्निहं विगयमोहं । सत्तरिसयं जिणाणं, सव्वामरपूइअं वंदे ॥११॥ स्वाहा । ॐ भवणवइवाणवंतरजोइसवासी विमाणवासी अ । जे के वि दुट्ठदेवा, ते सव्वे उवसमंतु मम ॥१२॥ स्वाहा । चंदणकप्पूरेणं, फलए लिहिऊण खालिअं पीअं । एगंतराइगह-भूअसाइणिमुग्गं पणासेइ ॥१३॥ इअ सत्तरिसयजंतं, सम्मं मंतं दुवारि पडिलिहिअं । दुरिआरिविजयवंतं, निब्भंतं निच्च-मच्चेह ॥१४॥

●

(५–अथ पंचमं नमिऊण स्मरणम्)

नमिऊण पणयसुरगणचूडामणिकिरणरंजिअं मुणिणो । चलणजुअलं महाभयपणासणं संथवं वुच्छं ॥१॥ सडियकर-चरणनहमुह-निवुड्डनासा विवन्नलायन्ना । कुट्ठमहारोगानल-फुलिंगनिदड्ढसव्वंगा ॥२॥ ते तुह चलणाराहणसलिलं-जलिसेयवुड्ढिउच्छाहा । वणदवदड्ढा गिरिपायवव्व पत्ता पुणो लच्छिं ॥३॥ दुव्वायखुभियजलनिहिउब्भडकल्लोल भीसणारावे । संभंतभयविसंठुल-निज्जामयमुक्कवावारे ॥४॥ अविदलियजाणवत्ता, खणेण पावंति इच्छिअं कूलं । पास-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिणचलणजुअलं, निच्चं चिअ जे णमंति नरा ॥५॥ खरपवणुद्धूअवणदवजालावलिमिलियसयलदुमगहणे। डज्झंत-मुद्धमयवहुभीसणरवभीसणम्मि वणे ॥६॥ जगगुरुणो कम-जुअलं, निव्वाविअसयलतिहुअणाभोअं। जे संभरंति मणुआ, न कुणइ जलणो भयं तेसिं ॥७॥ विलसंतभोगभीसणफुरिआ-रुणनयणतरलजीहालं। उग्गभुअंगं नवजलयसत्थहं भीसणा-यारं ॥८॥ मन्नंति कीडसरिसं, दूरपरिच्छूढविसमविसवेगा। तुह नामक्खरफुडसिद्धमंतगुरुआ नरा लोए ॥९॥ अडवीसु भिल्लतक्करपुलिंदसद्दूलसद्दभीमासु। भयविहुरवुन्नकायर ऊल्लूरियपहिअसत्थासु ॥१०॥ अविलुत्तविहवसारा, तुह नाह! पणाममत्तवावारा। ववगयविग्घा सिग्घं पत्ता हिय-इच्छियं ठाणं ॥११॥ पज्जलिआनलनयणं, दूरवियारियमुहं महाकायं। णहकुलिसघायविअलिअ-गइंदकुंभत्थलाभोअं ॥१२॥ पणयससंभमपत्थिवनहमणिमाणिक्कपडिअपडिमस्स। तुह वयणपहरणधरा, सीहं कुद्धंपि न गणंति ॥१३॥ ससि-धवलदंतमुसलं, दीहकरुल्लालवुड्ढिउच्छाहं। महुपिंगनयण-जुअलं, ससलिलनवजलहरारावं ॥१४॥ भीमं महागइंदं, अच्चासन्नं पि ते न वि गणंति। जे तुम्ह चलणजुअलं, मुणिवइ! तुंगं समल्लीणा ॥१५॥ समरंमि तिक्खखग्गा-भिघायपव्विद्धउद्धयकबंधे। कुंतविणिभिन्नकरिकलह-मुक्क-सिक्कारपउरंमि ॥१६॥ निज्जियदप्पुद्धुररिउ-नरिंदनिवहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भडा जसं धवलं । पावंति पावपसमिण!, पासजिण ! तुह प्पभावेण ॥१७॥ रोगजलजलणविसहरचोरारिमइंदगयरणभयाइं । पासजिणनामसंकित्तणेण, पसमंति सव्वाइं ॥१८॥ एवं महाभयहरं, पासजिणिंदस्स संथवमुआरं । भवियजणाणंदयरं, कल्लाणपरंपरनिहाणं ॥१९॥ रायभयजक्खरक्खसकुसुमिणदुस्सउणरिक्खपीडासु । संझासु दोसु पंथे, उवसग्गे तह य रयणीसु ॥२०॥ जो पढइ जो अ निसुणइ, ताणं कइणो य माणतुंगस्स । पासो पावं पसमेउ, सयलभुवणच्चियचलणो ॥२१॥ उवसग्गंते कमठासुरम्मि, झाणाओ जो न संचलिओ । सुरनरकिन्नरजुवइहिं, सथुओ जयउ पासजिणो ॥२२॥ एअस्स मज्झयारे, अट्ठारसअक्खरेहिं जो मंतो । जो जाणइ सो झायइ, परमपयत्थं फुडं पासं ॥२३॥ पासह समरण जो कुणइ, संतुट्ठहिअएण । अट्ठुत्तरसयवाहिभय नासइ तस्स दूरेण ॥२४॥

(६–अथ षष्ठं अजितशान्तिस्मरणम्)

अजिअं जियसव्वभयं, संतिं च पसंतसव्वगयपावं । जयगुरु संतिगुणकरे, दो वि जिणवरे पणिवयामि ॥ १ ॥ गाहा ॥ ववगयमंगुलभावे, ते हं विउलतवनिम्मलसहावे ॥ निरुवममहप्पभावे, थोसामि सुदिट्ठसब्भावे ॥२॥ गाहा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वदुक्खप्पसंतीणं- सव्वपावप्पसंतीणं । सया अजियसंतीणं, नमो अजियसंतीणं ॥३॥ सिलोगो ॥ अजियजिण ! सुहप्पवत्तणं, तव पुरिसुत्तम ! नामकित्तणं । तह य धिइमइप्पवत्तणं, तव य जिणुत्तम ! संति ! कित्तणं ॥४॥ मागहिआ॥ किरिआविहिसंचिअकम्मकिलेसविमुक्खयरं, अजियं निचियं च गुणेहिं महामुणिसिद्धिगयं । अजियस्स य संतिमहामुणिणो वि य संतिकरं, सययं मम निव्वुइकारणयं च नमंसणयं ॥५॥ आलिंगणयं ॥ पुरिसा ! जइ दुक्खवारणं, जइ य विमग्गह सुक्खकारणं । अजियं संतिं च भावओ, अभयकरे सरणं पवज्जहा ॥६॥ मागहिआ ॥ अरइरइतिमिरविरहियमुवरयजरमरणं, सुरअसुरगरुलभुयगवइपययपणिवइयं । अजियमहमवि य सुनयनयनिउणमभयकरं, सरणमुवसरिअ भुविदिविजमहियं सययमुवणमे ॥७॥ संगययं ॥ तं च जिणुत्तममुत्तमनित्तमसत्तधरं, अज्जवमद्दवखंतिविमुत्तिसमाहिनिहिं । संतिकरं पणमामि दमुत्तमतित्थयरं, संतिमुणी मम संतिसमाहिवरं दिसउ ॥८॥ सोवाणयं ॥ सावत्थिपुव्वपत्थिवं च वरहत्थिमत्थयपसत्थवित्थिन्नसंथिअं थिरसरिच्छवच्छं मयगललीलायमाणवरगंधहत्थिपत्थाणपत्थियं संथवारिहं । हत्थिहत्थबाहुं धंतकणगरुवगनिरुवहयपिंजरं पवरलक्खणोवचिअसोमचारुरूवं, सुइसुहमणाभिरामपरमरमणिज्जवरदेवदुंदुहिनिनायमहुरयरसुहगिरं ॥९॥ वेड्ढओ ॥ अजियं जियारिगणं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जियसव्वभयं भवोहरिउं । पणमामि अहं पयओ, पावं पसमेउ मे भयवं ! ॥१०॥ रासालुद्धओ ॥ कुरुजणवयहत्थिणाउरनरीसरो य पढमं तओ महाचक्कवट्टिभोए महप्पभावो, जो बावत्तरिपुरवरसहस्सवरनगरनिगमजणवयवई बत्तीसारायवरसहस्साणुयायमग्गो । चउदसवररयणनवमहानिहिचउसट्ठिसहस्सपवरजुवईण सुन्दरवई, चुलसीहयगयरहसयसहस्ससामी छन्नवइगामकोडिसामी य आसी जो भारहंमि भयवं ॥११॥ वेड्ढओ । तं संतिं संतिकरं, संतिण्णं सव्वभया । संतिं थुणामि जिणं, संतिं विहेउ मे ॥१२॥ रासाणंदियय ॥ इक्खाग ! विदेह ! नरीसर ! नरवसहा ! मुणिवसहा !, नवसारयससिसकलाणण ! विगयतमा ! विहुअरया ! । अजि ! उत्तमतेअगुणेहिं महामुणि ! अमियबला ! विउलकुला ! पणमामि ते भवभयमूरण! जगसरणा ! मम सरणं ॥१३॥ चित्तलेहा ॥ देवदाणविंदचंदसूरवंद ! हट्ठतुट्ठ ! जिट्ठ ! परमलट्ठरूव ! धंतरुप्पपट्टसेयसुद्धनिद्धधवलदंतपंति ! संति ! सत्तिकित्तिमुत्तिजुत्तिगुत्तिपवर! दित्ततेअवंदधेय ! सव्वलोअभावियप्पभाव ! णेय ! पइस मे समाहिं ॥१४॥ नारायओ ॥ विमलससिकलाइरेअसोमं, वितिमिरसूरकराइरेअतेअं । तिअसवइगणाइरेअरूवं, धरणिधरप्पवराइरेअसारं ॥१५॥ कुसुमलया ॥ सत्ते अ सया अजियं, सारीरे अ बले अजियं । तवसंजमे अ अजियं, एस थुणामि जिणं अजियं ॥१६॥ भुअगपरिरिंगिअं ॥ सोमगुणेहिं पावइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न तं नवसरयससी, तेअगुणेहिं पावइ न तं नवसरयरवी। रूवगुणेहिं पावइ न तं तिअसगणवई, सारगुणेहिं पावइ न तं धरणिधरवई ॥ १७ ॥ खिज्जिययं ॥ तित्थवरपवत्तयं तमरयरहियं, धीरजणथुयच्चियं चुयकलिकलुसं। संतिसुहपवत्तयं तिगरणपयओ, संतिमहं महामुणिं सरणमुवणमे ॥१८॥ ललिययं ॥ विणओणयसिररइअंजलिरिसिगणसंथुअं थिमियं, विबुहाहिवधणवइनरवइथुयमहियच्चियं बहुसो। अइरुग्गयसरयदिवायरसमहियसप्पभं तवसा, गयणंगणवियरणसमुइयचारणवंदियं सिरसा ॥ १९ ॥ किसलयमाला ॥ असुरगरुलपरिवंदियं, किन्नरोरगणमंसिअं। देवकोडिसयसंथुयं, समणसंघपरिवंदियं ॥२०॥ सुमुहं ॥ अभयं अणहं, अरयं अरुयं। अजियं अजियं, पयओ पणमे ॥२१॥ विज्जुविलसिअं ॥ आगया वरविमाणदिव्वकणगरहतुरयपहकरसएहिं हुलियं। ससंभमोयरण खुभियलुलियचलकुंडलंगयतिरीडसोहंतमउलिमाला ॥ २२ ॥ वेड्ढओ ॥ जं सुरसंघा सासुरसंघा वेरविउत्ता भत्तिसुजुत्ता, आयरभूसिअसंभमपिंडिअसुट्ठुसुविम्हिअसव्वबलोघा। उत्तमकंचणरयणपरूवियभासुरभूसणभासुरियंगा, गायसमोणयभत्तिवसागयपंजलिपेसियसीसपणामा ॥२३॥ रयणमाला ॥ वंदिऊण थोऊण तो जिणं तिगुणमेव य पुणो पयाहिणं। पणमिऊण य जिणं सुरासुरा, पमुइया सभवणाइं तो गया ॥२४॥ खित्तयं ॥ तं महामुणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महं पि पंजली, रागदोसभयमोहवज्जियं। देवदाणवनरिंद-वंदियं, संतिमुत्तमं महातवं नमे ॥२५॥ खित्तयं ॥ अवरंतर-विआरणिआहिं, ललियहंसबहुगामिणिआहिं। पीणसोणि-थणसालिणिआहिं, सकलकमलदललोअणिआहिं ॥२६॥ दीवयं ॥ पीणनिरंतरथणभरविणमियगायलयाहिं, मणिकंचण-पसिढिलमेहलसोहिअसोणितडाहिं। वरखिंखिणिणेउरसति-लयवलयविभूसणिआहिं, रइकरचउरमणोहरसुंदरदंसणिआहिं ॥२७॥ चित्तक्खरा ॥ देवसुंदरीहिं पायवंदिआहिं वंदिया य जस्स ते सुविक्कमा कमा, अप्पणो निडालएहिं मंडणोड्डण-प्पगारएहिं केहिं केहिं वि ? अवंगतिलयपत्तलेहनामएहिं चिल्लएहिं संगयंगयाहिं, भत्तिसंनिविट्ठवंदणागयाहिं हुंति ते वंदिया पुणो पुणो ॥२८॥ नारायओ ॥ तमहं जिणचंदं, अजियं जियमोहं। धुयसव्वकिलेसं, पयओ पणमामि ॥२९॥ नंदिययं ॥ थुयवंदियस्सा रिसिगणदेवगणेहिं, तो देवबहुहिं पयओ पणमिअस्सा। जस्सजगुत्तमसासणअस्सा भत्तिवसा-गयपिंडिअयाहिं। देववरच्छरसाबहुआहिं, सुरवररइगुण-पंडियआहिं ॥३०॥ भासुरयं ॥ वंससद्दतंतितालमेलिए तिउक्खराभिरामसद्दमीसए कए अ, सुइसमाणणे अ सुद्ध-सज्जगीयपायजालघंटिआहिं। वलयमेहलाकलावनेउ-राभिरामसद्दमीसए कए अ, देवनट्टिआहिं हावभाव-विब्भमप्पगारएहिं नच्चिऊण अंगहारएहिं वंदिया य जस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते सुविक्कमा कमा, तयं तिलोय–सव्व–सत्त–संतिकारयं पसंत–सव्व–पाव–दोस–मेस हं नमामि संतिमुत्तमं जिणं ॥३१॥ नारायओ ॥ छत्त-चामर-पडाग-जूअ-जव-मंडिया, झयवर–मगर–तुरय-सिरिवच्छ-सुलंछणा । दीव-समुद्द-मंदरे दिसागय-सोहिया, सत्थिअ-वसह सीह-रह-चक्क-वरंकिया ॥ ३२॥ ललिअयं ॥ सहाव-लट्ठा सम-प्पइट्ठा, अदोस-दुट्ठा गुणेहिं जिट्ठा । पसाय-सिट्ठा तवेण पुट्ठा, सिरीहिं इट्ठा रिसीहिं जुट्ठा ॥ ३३ ॥ वाणवासिया ॥ ते तवेण धुअ-सव्व-पावया, सव्व-लोअ-हिअ-मूल-पावया । संथुआ अजिअ-संति पायया, हुंतु मे सिव-सुहाण-दायया ॥३४॥ अपरांतिका ॥ एवं तव-वल-विउलं, थुअं मए अजिअ-संति-जिन-जुअलं । ववगय-कम्म-रय-मलं, गइं गयं सासयं विउलं ॥३५॥ गाहा ॥ तं बहु-गुण-प्पसायं मुक्ख-सुहेण परमेण अविसायं । नासेउ मे विसायं, कुणउ अ परिसा वि अ पसायं ॥३६॥ गाहा ॥ तं मोएउ अ नंदिं, पावेउ नंदिसेणमभिनंदिं । परिसा वि अ सुहनंदिं, मम व दिसउ संजमे नंदिं ॥३७॥ गाहा ॥ पक्खिअ-चाउम्मासिअ-संवच्छरिए अवस्स-भणिअव्वो । सोअव्वो सव्वेहिं, उवसग्ग-निवारणो एसो ॥३८॥ गाहा ॥ जो पडइ जो अ निसुणइ, उभओ कालं पि अजिअ-संति-थयं । न हु हुंति तस्स रोगा, पुव्वुपन्ना वि नासंति ॥ ३९ ॥ गाहा ॥ जइ इच्छह परम-पयं, अहवा कित्तिं सुवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्थडं भुवणे । ता तेलुक्कुद्धरणे, जिण-वयणे आयरं कुणह ॥ ४० ॥ गाहा ॥

(७-अथ सप्तमं भक्तामरस्तोत्र स्मरणं)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् । सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादावालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥ १ ॥ यः संस्तुतः सकल-वाङ्-मय-तत्त्व-बोधा-दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ !, स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम् । बालं विहाय जल-संस्थि-तमिन्दु-विम्ब-मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥ वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र ! शशांक-कांतान्, कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या । कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं, को वा तरीतुमलमम्बु-निधिं भुजाभ्याम् ॥४॥ सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश ! कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः । प्रीत्याऽऽत्म-वीर्य-मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं, नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरी-कुरुते बलान् माम् । यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चारु-चूत-कलिका-निकरैक-हेतु ॥६॥ त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं, पापं क्षणात् क्षय-मुपैति शरीर-भाजाम् ! आक्रांत-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥ ७ ॥ मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् । चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु मुक्ता-फल-द्युतिमुपैति ननूद-बिंदुः ॥ ८ ॥ आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति । दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकाश-भांजि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !, भूतैर्गुणैर्भुवि-भवंतम-भिष्टुवंतः । तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा, ? भूत्याश्रितं य इह नात्म-समं करोति ॥१०॥ दृष्ट्वा भवंत-मनिमेष-विलोकनीयं, नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः । पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिंधोः, क्षारं जलं जल-निधेरशितुं क इच्छेत् ? ॥११ ॥ यैः शांत–राग--रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं, निर्मापितस्त्रि–भुवनैक–ललाम-भूत ! । तावंत एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां, यत्ते समानमपरं न हि रूप-मस्ति ॥१२॥ वक्त्रं क्व ते सुर–नरोरग-नेत्र-हारि, निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम् !। बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशा-करस्य !, यद्वासरे भवति पांडु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥ संपूर्ण-मंडल-शशांक-कला-कलाप-शुभ्रा गुणास्त्रि-भुवनं तव लंघयंति। ये संश्रितास्त्रि-जगदीश्वर ! नाथमेकं, कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥ १४ ॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांग-नाभि-नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ? । कल्पान्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल-मरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥ निर्धूम-वर्त्तिरपवर्जित-तैल-पूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी-करोषि । गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥ नास्तं कदाचिदपयासि न राहुगम्यः, स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति । नांभोधरो-दर-निरुद्ध-महा-प्रभावः, सूर्यातिशायि-महिमासि मुनींद्र लोके ॥ १७ ॥ नित्योदयं दलितमोह-महांधकारं गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् । विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प-कांति, विद्योतय-ज्जगद-पूर्व-शशांक-बिंबम् ॥ १८ ॥ किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा, युष्मन्मुखेंदु-दलितेषु तमस्सु नाथ ? । निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः? ॥१९॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं, नैवं तथा हरि—हरादिषु नायकेषु । तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं तु काच-शकले किरणा-कुलेऽपि ॥ २० ॥ मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति । किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवांतरेऽपि ॥ २१ ॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता । सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिम्, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥२२॥ त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस-मादित्य-वर्णममलं तमसः पर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं, नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनींद्र ! पंथाः ॥ २३ ॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यम-संख्यमाद्यं, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंग-केतुम् । योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं, ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदंति संतः ।२४। बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि-बोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात् । धाताऽसि धीर ! शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ ! तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय ! तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥ २६ ॥ को विस्मयोऽत्र ? यदि नाम गुणैरशेषै-स्त्वं संश्रितो निरवकातशया मुनीश ! । दोषैरुपात्त-विबुधाश्रय-जात-गर्वैः, स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि. ॥ २७ ॥ उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं भवतो नितांतम् । स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं, बिंबं रवेरिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ॥ २८ ॥ सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे, विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् । बिंबं वियद्विलसदंशु-लता-वितानं, तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥ २९ ॥ कुंदावदात-चल-चामर-चारु-शोभं, विभ्राजते तव वपुः कल-धौतकान्तम् । उद्यच्छशांक-शुचि-निर्झर-वारि-धार-मुच्चैस्तटं सुर-गिरेरिव शात-कौंभम् ॥ ३० ॥ छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कांत-मुच्चैः स्थितं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थगित-भानु-कर प्रतापम् । मुक्ता-फल-प्रकरजालविवृद्धशोभ, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥ ३१ ॥ उन्निद्र-हेम-नव-पंकज-पुंज-कांति, पर्यल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेद्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥ ३२ ॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जनेंद्र ! धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य । यादृक्प्रभा-दिन-कृतः प्रहतांधकारा, तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि ॥३३॥ श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम् । ऐरावताभमिभमुद्धत-मापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥ ३४ ॥ भिन्नेभ-कुंभ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः । बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥ ३५ ॥ कल्पांत-काल-पवनोद्धत-वह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वल-मुत्फुलिंगम् । विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतंतं, त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्य-शेषम् ॥ ३६ । रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कंठ-नीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम् । आक्रामति क्रम-युगेन निरस्त-शंक-स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ३७ ॥ वल्गत्तुरंग-गज-गर्जित-भीम-नाद-माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् । उद्य-द्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं, त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ३८ ॥ कुंताग्रभिन्नगज शोणित-वारिवाह, वेगावतार-तरणातुर-योध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीमे । युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-स्त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभंते ॥ ३९ ॥ अंभो-निधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-पाठीन-पीठ-भयदोल्वण-वाडवाग्नौ । रंगत्तरंग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजंति॥४०॥ उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः, शोच्यां दशामुपगत-श्च्युत-जीविताशाः । त्वत्पाद-पङ्कजरजोऽमृत-दिग्ध-देहा, मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वजतुल्यरूपाः ॥ ४१ ॥ आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा, गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः । त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः, सद्यः स्वयं विगत-बंध-भया भवंति ॥ ४२ ॥ मत्त-द्विपेंद्र-मृगराज-दवानलाऽहि, -संग्रामवारिधि-महोदर-बंधनोत्थम् । तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४३ ॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र ! गुणैर्निबद्धां भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ! धत्ते जनो य इह कंठ-गतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४४ ॥

(८–अथ श्री अष्टमं कल्याणमन्दिर–स्तोत्रम्)

कल्याण-मंदिरमुदारमवद्य-भेदि, भीता-भय-प्रदमनिंदि-तमंघ्रि-पद्मम् । संसार-सागर-निमज्जदशेष-जंतु,-पोतायमानम-मभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ १ ॥ यस्य स्वयं सुर-गुरुर्गरिमांबु-राशेः स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्न विभुर्विधातुम् । तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूम-केतो-स्तस्याहमेष किल संस्तवनं-करिष्ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ २ ॥ युग्मम् ॥ सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं-स्वरूप-मस्मादृशाः कथमधीश ? भवंत्यधीशाः । धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवांधो, रूपं प्ररूपयति किं किल घर्म-रश्मेः ? ॥ ३ ॥ मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो, नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत । कल्पांत वान्त पयसः प्रकटो ऽपि यस्मान्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ? ॥ ४ ॥ अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि, कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य । बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य, विस्तीर्णतां कथयति स्वधियांबुराशेः ? ॥ ५ ॥ ये योगिनामपि न यांति गुणास्तवेश ! । वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ? । जाता तदेवम-समीक्षि-तकारितेयं जल्पंति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥ ६ ॥ आस्तामचिंत्य-महिमा जिन ! संतवस्ते, नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगंति । तीव्रातपोपहतपांथ-जनान्निदाघे, प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥ ७ ॥ हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवंति, जंतोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बंधाः । सद्यो भुजंगममया इव मध्य-भाग-मभ्यागते वन-शिखंडिनि चंदनस्य ॥ ८ ॥ मुच्यंत एव मनुजाः सहसा जिनेंद्र रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि । गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्ट-मात्रे, चौरैरिवाशु पशवः प्रप-लायमानैः ॥ ९ ॥ त्वं तारको जिन ! कथं भविनां ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त एव, त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरंतः यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नूनमंतर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥ यस्मिन् हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः, सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन । विध्यापिता हुत-भुजः पयसाथ येन, पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥ ११ ॥ स्वामिन्ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नास्त्वां जन्तवः कथमहो! हृदये दधानाः। जन्मोदधिं लघु तरंत्यति-लाघवेन ? चिंत्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥ क्रोधस्त्वया यदि विभो ! प्रथमं निरस्तो, ध्वस्तास्तदा बत कथं किल कर्म-चौराः ? ॥ प्लोष-त्यमुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ? ॥१३॥ त्वां योगिनो जिन ! सदा वरमात्म-रूप-मन्वेषयंति हृदयांबुज-कोश देशे । पूतस्य निर्मल-रुचे-र्यदि वा किमन्य—दक्षस्य संभवि पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥ ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन, देहं विहाय वरमात्म-दशां व्रजन्ति । तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके, चामी-करत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥ १५ ॥ अंतः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं, भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ? । एतत्स्व-रूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि, यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥ आत्मा मनीषिभिरयं त्वद-भेद-बुद्ध्या, ध्यातो जिनेंद्र ! भवतीह भवत्प्रभावः । पानी-यमप्यमृतमित्यनुचिंत्यमानं, किं नाम नो विष-विकारमपा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करोति ? ॥१७॥ त्वामेव वीत-तमसं पर-वादिनोऽपि, नूनं विभो ! हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः । किं काच-कामलिभि-रीश ! सितोऽपि शंखो, नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ? ॥ १८ ॥ धर्मोपदेश-समये स-विधानुभावा—दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः । अभ्युद्गते दिन-पतौ स-महीरुहो-ऽपि, किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः ? ॥१९॥ चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुख-वृन्तमेव, विष्वक् पतत्यविरला सुर-पुष्पवृष्टिः ? । त्वद्गोचरे सु-मनसां यदि वा मुनीश ! गच्छ-न्ति नूनमध एव हि बंधनानि ॥२०॥ स्थाने गभीर—हृदयो-दधि-संभवायाः, पीयूषतां तव गिरः समुदी-रयन्ति । पीत्वा यतः परम-संमद-संग-भाजो, भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजराम-रत्वम् ॥२१॥ स्वामिन् ! सु-दूरमवनम्य समुत्पतन्तो, मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः । येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुंगवाय, ते नूनमूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः ॥२२॥ श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-सिंहासन-स्थमिह भव्य-शिखं-डिनस्त्वाम् । आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै-श्चामी-कराद्रि-शिरसीव नवांबु-वाहम् ॥२३॥ उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मंडलेन, लुप्त-च्छद-च्छविरशोक-तरुर्बभूव । सान्निध्य-तोऽपि यदि वा तव वीत-राग !' नीरागतां व्रजति को न चेतनोऽपि ॥ २४ ॥ भो भोः ! प्रमादमवधूय भजध्वमेन—मागत्य निर्वृति—पुरीं प्रति सार्थ-वाहम् । एतन्निवेदयति देव !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगन्त्रयाय, मन्ये नदन्नभि-नभः सुर-दुन्दुभिस्ते ॥ २५ ॥ उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ! तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः । मुक्ता-कलाप-कलितोच्छ्वसितात-पत्र—व्याजास्त्रिधा धृत-तनुध्रुवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिंडितेन, कांति-प्रताप-यशसामिव संचयेन । माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन, साल-त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २७ ॥ दिव्य-स्रजो जिन ! नमस्त्रि-दशाधिपानामुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बंधान् । पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र, त्वत्संगमे सु-मनसो न रमन्त एव ॥ २८ ॥ त्वं नाथ ! जन्म-जलधेर्विपराङ्मुखोऽपि, यत्तारयस्यसु-मतो निजपृष्ठ-लग्नान् । युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव, चित्रं विभो । यदसि कर्म-विपाकशून्यः ॥ २९ ॥ विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक ! दुर्गतस्त्वं, किं वाऽक्षर-प्रकृतिरप्य-लिपिस्त्वमीश ! । अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव, ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकाश-हेतुः ॥ ३० ॥ प्राग्भार-संभृतनभांसि रजांसि रोषा—दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि । छायापि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो, ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥ यद् गर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीमं, भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोर-धारम् । दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे, तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारि-कृत्यम् ॥ ३२ ॥ ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृता-कृति-मर्त्य-मुंड-प्रालंब-भृद्भय-दवक्त्र-विनिर्यदग्निः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेत–व्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः, सोऽस्या-भवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥ ३३ ॥ धन्यास्त एव भुवताधिप ! ये त्रि-सन्ध्य-माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः । भक्त्योल्ल-सत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः, पाद-द्वयं तव विभो ! भुवि जन्म-भाजः ॥३४॥ अस्मिन्न-पार-भर-वारि-निधौ मुनीश !, मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि। आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे, किं वा विपद्विष-धरी सविधं समेति ? ॥३५॥ जन्मां-तरेपि नव पाद युगं न देव,! मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम् । तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानां, जातो निकेत-नमहं मथिताशयानाम् ॥ ३६ ॥ नूनं न मोह-तिमिरा-वृत-लोचनेन, पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि । मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंध-गतयः कथमन्यथैते ? ॥ ३७ ॥ आकर्णितोऽपि, महितोऽपि निरीक्षितोऽपि नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या । जातोऽस्मि तेन जन-बांधव ! दुःख-पात्रं, यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः ॥३८॥ त्वं नाथ ! दुःखि-जन-वत्सल ! हे शरण्य !; कारुण्य-पुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य ! । भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय, दुःखांकुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥ निःसंख्य-सार शरणं शरणं शरण्य–मासाद्य सादित-रिपु प्रथितावदातम् । त्वत्पाद-पंकजमपि प्रणिधान-वंध्यो, वध्यो-ऽस्मि चेद्भुवन-पावन ! हा हतोऽस्मि ॥४०॥ देवेन्द्र-वन्द्य !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदिताखिल-वस्तु-सार !, संसार-तारक ! विभो ! भुवनाधि-नाथ ! । त्रायस्व देव ! करुणा-ह्रद ! मां पुनीहि, सीदंतमद्य भयदव्यसनांबु-राशेः ॥४१॥ यद्यस्ति नाथ ! भवदंघ्रि-सरो-रुहाणां, भक्तेः फलं किमपि संतति-संचितायाः । तन्मे त्व-देक-शरणस्य शरण्य ! भूयाः, स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवा-न्तरेऽपि ॥ ४२ ॥ इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेंद्र !, सांद्रोल्लसत्पुलक-कंचुकिताङ्गभागाः । त्वद्बिंब-निर्मल-मुखां-बुज-बद्ध-लक्ष्या, ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥ ४३ ॥ जन-नयन-कुमुद-चंद्र ! प्रभास्वराः स्वर्ग-संपदो भुक्त्वा । ते विगलित-मल-निचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥ युग्मम् ॥ ४४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८ पाक्षिकादि-अतिचार

मूल—

नाणम्मि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तह य वीरियम्मि।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ॥ १ ॥

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ये पंचविध आचारमांहि ❀ जे कोइ अतिचार पक्ष दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचने, कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ १ ॥

तत्र ज्ञानाचारे आठ अतिचार—

काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे।
वंजण–अत्थ–तदुभये, अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥

ज्ञान काल–वेलाए भण्यो–गुण्यो नहीं, अकाले भण्यो, विनय–हीन, बहुमान–हीन, योग–उपधान–हीन, अनेरा कन्हे भणी अनेरो गुरु कह्यो।

देव–गुरु–वांदणे, पडिक्कमणे; सज्झाय करतां, भणतां–गुणतां कूडो अक्षर काने मात्राए अधिको–ओछो भण्यो, सूत्र कूडुं कह्युं, अर्थ कूडो कह्यो, तदुभय कूडां कह्यां, भणीने विसार्यां।

साधु–तणे धर्मे काजो अणउद्धर्ये; दांडो अणपडिलेहे, वसति

★ यहां 'अनेरो' ऐसा अधिक पाठ देखने में आता है, किन्तु वह अर्थकी दृष्टिसे सङ्गत नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणशोधे, अणपवेसे, असज्झाय–अणो (ण)ज्झाय-मांहे श्रीदशवैकालिक–प्रमुख सिद्धांत भण्यो–गुण्यो, श्रावक–तणे धर्मे स्थविरावली, पडिक्कमण, उपदेशमाला–प्रमुख सिद्धांत भण्यो–गुण्यो; काल–वेलाए काजो अणउद्धर्ये पढ्यो ।

ज्ञानोपगरण पाटी, पोथी, ठवणी, कवली, नोकारवाली, सांपडा, सांपडी, दस्तरी, वही ओलिया–प्रमुख प्रत्ये पग लाग्यो, थूंके करी अक्षर मांज्यो, ओशीसे धर्यो, कन्हे छतां आहार–नीहार कीधो ।

ज्ञान–द्रव्य भक्षतां उपेक्षा कीधी, प्रज्ञापराधे विणास्यो, विणसतो उवेख्यो, छती शक्तिए सार–संभाल न कीधी ।

ज्ञानवंत प्रत्ये द्वेष–मत्सर चिंतव्यो, अवज्ञा–आशातना कीधी, कोई प्रत्ये भणतां–गणतां अंतराय कीधो, आपणा जाणपणा–तणो गर्व चिंतव्यो, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ए पंचविध ज्ञान–तणी असद्दहणा कीधी ।

कोई तोतडो, बोबडो [देखी] हस्यो, वितर्क्यो, अन्यथा प्ररूपणा कीधी ।

ज्ञानाचार–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि सूक्ष्म, बादर जाणतां, अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचने, कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ १ ॥

दर्शनाचारे आठ अतिचार—

निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी अ ।
उववूह–थिरीकरणे, वच्छल्ल–पभावणे अट्ठ ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव–गुरु–धर्म–तणे विषे निःशंकपणुं न कीधुं, तथा एकान्त निश्चय न कीधो, धर्म–सम्बन्धीयां फलतणे विषे निःसन्देह बुद्धि धरी नहीं, साधु–साध्वीनां मल–मलिन गात्र देखी दुगंछा नीपजावी, कुचारित्रीया देखी चारित्रीया ऊपर अभाव हुओ, मिथ्यात्वी–तणी पूजा–प्रभावना देखी मूढ़दृष्टिपणुं कीधुं ।

तथा संघमांहे गुणवंत–तणी अनुपबृंहणा कीधी; अस्थिरीकरण, अवात्सल्य, अप्रीति, अभक्ति नीपजावी, अबहुमान कीधुं ।

तथा देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य, भक्षित, उपेक्षित, प्रज्ञापराधे विणास्यां, विणसतां उवेख्यां, छती शक्तिए सार–संभाल न कीधी; तथा साधर्मिक साथे कलह–कर्म–बंध कीधो ।

अधोती, अष्टपड मुखकोश–पाखे देव–पूजा कीधी; बिंब–प्रत्ये वासकूंपी, धूपधाणुं, कलश–तणो ठबको लाग्यो, बिंब हाथ–थकी पाड्युं, ऊसास–नीसास लाग्यो ।

देहरे उपाश्रये मल–श्लेष्मादिक लोह्युं, देहरामांहे हास्य, खेल, केलि, कुतूहल, आहार–नीहार कीधां, पान, सोपारी, निवेदीयां खाधां ।

ठवणायरिय हाथ–थकी पाड्या, पडिलेहवा विसार्या ।

जिन–भवने चोराशी आशातना, गुरु–गुरुणी प्रत्ये तेत्रीस आशातना कीधी, गुरु–वचन 'तह त्ति' करी पडिवज्युं नहीं ।

दर्शनाचार–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवस–मांहि० ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्राचारे आठ अतिचार—

एणिहाण–जोग–जुत्तो, पंचहि समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठाविहो होइ नायव्वो ॥ १ ॥

ईर्या–समिति ते अणजोये हींड्या, भाषा–समिति ते सावद्य वचन बोल्या, एषणा–समिति ते तृण, डगल, अन्नपाणी, असूजतुं लीधुं, आदान–भंडमत्त–निक्खेवणा–समिति ते आसन, शयन, उपकरण, मातरुं प्रमुख अणपुंजी जीवाकुल भूमिकाए मूक्युं, लीधुं, पारिष्ठापनिका–समिति ते मलमूत्र, श्लेष्मादिक अणपुंजो जीवाकुल भूमिकाए परठव्युं ।

मनो–गुप्ति—मनमां आर्त्त–रौद्रध्यान ध्याथां, वचन–गुप्ति–सावद्य वचन बोल्यां; काय–गुप्ति—शरीर अणपडिलेह्युं हलाव्युं, अणपुंजे बेठा ।

ए अष्ट प्रवचन–माता साधु–तणे धर्म सदैव अने श्रावक–तणे धर्मे सामायिक पोसह लीधे रूडी पेरे पाल्यां नहीं, खंडणा–विराधना हुई ।

चारित्राचार–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवस–मांहि० ॥ १ ॥

विशेषतः श्रावक–तणे धर्मे श्रीसम्यक्त्व–मूल बार व्रत [तेमां] सम्यक्त्व–तणा पांच अतिचार—

'संकाकंखविगिच्छा०' ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका—श्रीअरिहंत–तणां बल, अतिशय, ज्ञानलक्ष्मी, गांभीर्यादिक गुण, शाश्वती प्रतिमा, चारित्रीयानां चारित्र, श्रीजिनवचन–तणो संदेह कीधो !

आशंका—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्षेत्रपाल, गोगो, आसपाल, पादर–देवता, गोत्र–देवता, ग्रह–पूजा, विनायक, हनुमंत, सुग्रीव, वालीनाह इत्येवमादिक देश, नगर, ग्राम, गोत्र, नगरी, जूजूआ देव–देहराना प्रभाव देखी, रोग–आतंक–कष्ट आव्ये इहलोक परलोकार्थे पूज्या–मान्या, प्रसिद्ध–विनायक जीराउलाने मान्युं, इच्छ्युं, बौद्ध, सांख्यादिक, संन्यासी, भरडा, भगत, लिंगिया, जोगिया, जोगी, दरवेश, अनेरा दर्शनीया–तणो कष्ट, मंत्र, चमत्कार देखी परमार्थ जाण्या बिना भूलाया, मोह्या, कुशास्त्र शीख्या, सांभल्या ।

श्राद्ध, संवत्सरी, होली, बलेव, माही–पूनम, अजा–पडवो, प्रेत–बीज, गौरी–त्रीज, विनायक–चोथ, नाग–पंचमी, झीलणा–छट्ठी, शील (शीतला)–सातमी, ध्रुव–आठमी, नौली नवमी, अहवा–दशमी, व्रत–अग्यारशी, वच्छ–बारशी, धन–तेरशी, अनंत–चउदशी, अमावास्या, आदित्यवार, उत्तरायण नैवेद्य कीधां ।

नवोदक, याग, भोग, उतारणां कीधां, कराव्यां, अनुमोद्यां, पींपले पाणी घाल्यां–घलाव्यां, घर–बाहिर–क्षेत्र–खले कूवे, तलावे, नदीए, द्रहे, वाविए, कुंडे, पुण्यहेतु स्नान कीधां, कराव्यां, अनुमोद्या, दान दीधां, ग्रहण, शनैश्चर, माहमासे नवरात्रि न्हाया, अजाणतां थाप्यां, अनेराई व्रत–व्रतोलां कीधां–कराव्यां ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचिकित्सा—धर्म–संबंधीया फलतणे विषे संदेह कीधो, जिन अरिहंत, धर्मना आगर, विश्वोपकार सागर, मोक्षमार्गना दातार, इस्या गुण भणी न मन्या, न पूज्या, महासती महात्मानी इहलोक परलोक संबंधीया भोग–वांछित पूजा कीधी।

रोग, आतंक, कष्ट आव्ये खीण वचन भोग मान्या, महात्माना भात, पाणी, मल, शोभा–तणी निंदा कीधी, कुचारित्रीया देखी चारित्रीया उपर कुभाव हुओ, मिथ्यात्वी–तणी पूजा–प्रभावना देखी प्रशंसा कीधी, प्रीति मांडी, दाक्षिण्य–लगे तेहनो धर्म मान्यो, कीधो। श्रीसम्यकत्व–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि० ॥ १ ॥

पहेले स्थूल प्राणातिपात–विरमण–व्रते पांच अतिचार—

वह–बंध–छविच्छेए० ॥

द्विपद, चतुष्पद प्रत्ये रीस–वशे गाढो घाव घाल्यो, गाढे बंधने बांध्यो, अधिक भार घाल्यो, निर्लांछन–कर्म कीधां, चारा–पाणी–तणी वेलाए सार–संभाल न कीधी, लेहणे–देहणे किणही प्रत्ये लंघाव्यो, तेणे भूख्ये आपणे जम्या, कन्हे रही मराव्यो, बंदीखाने घलाव्यो।

सल्यां धान्य तडके नांख्यां, दलाव्यां, भरडाव्यां, शोधी न वावर्यां; ईंधण–छाणां अणशोध्यां बाळ्यां, तेमांहि साप, विंछी, खजूरा, सरवला, मांकड, जूआ, गींगोडा साहतां मुआ, दुहव्या, रूडे स्थानके न मूक्या; कीडी–मंकोडोनां इंडां विछोह्यां, लीख फोडी, उद्देही, कीडी, मंकोडी, घीमेल, कातरा, चूडेल, पतंगीयां, देडकां, अलसीयां, ईयल, कुंतां, डांस, मसा, बगतरा, माखी, तीड–प्रमुख जीव विणट्ठा; माला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हलावतां, चलावतां, पंखी, चकला, काग–तणां इंडां फोड्यां ।

अनेरा एकेन्द्रियादिक, जीव विणास्या, चांप्या, दुहव्या, कांइ हलावतां, चलावतां, पाणी छांटतां, अनेरा कांइ काम–काज करतां निर्ध्वंसपणुं कीधुं, जीव–रक्षा रूडी न कीधी, संखारो सूकव्यो, रूडुं गलणुं न कीधुं, अणगल पाणी वावर्युं, रूडी जयणा न कीधी, अण-गल पाणीए झील्या, लूगडां धोयां, खाटला तडके नाख्या, झाटक्या, जीवाकुल भूमि लिपी, वाशी गार राखी, दलणे, खांडणे, लिपणे रूडी जयणा न कीधी, आठम, चउदसना नियम भांग्या, धूणी करावी ।

पहेले स्थूल–प्राणातिपात–विरमण व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि० ॥ १ ॥

बीजे स्थूल–मृषावाद–विरमण व्रते पांच अतिचार—

सहसा–रहस्स–दारे ॥

सहसात्कारे कुणह प्रत्ये अजुगतुं आल–अभ्याख्यान दीधुं, स्वदारा–मंत्रभेद कीधो, अनेरा कुणहनो मंत्र, आलोच, मर्म प्रकाश्यो, कुणहने अनर्थ पाडवा कूडी बुद्धि दीधी, कूडो लेख लख्यो, कूडी साख भरी, थापण–मोसो कीधो ।

कन्या, गौ, ढोर, भूमि–संबंधी लेहणे–देहणे व्यवसाये वाद— वढवाड करतां मोटकुं जूठुं बोल्या, हाथ-पगतणी गाली दीधी, कड-कडा मोड्या, ममंवचन बोल्या ।

बीजे स्थूल–मृषावाद–विरमण व्रत–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि० ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रीजे स्थूल–अदत्तादान–विरमण व्रते पांच अतिचार—

तेनाहडप्पओगे० ॥

घर–बाहिर क्षेत्र खले पराई वस्तु अणमोकली लीधी, वापरी, चोराई वस्तु वहोरी, चोर-धाड-प्रत्ये संकेत कीधो, तेहने संबल दीधुं, तेहनी वस्तु लीधी, विरुद्ध राज्यातिक्रम कीधो, नवा, पुराणा, सरस, विरस, सजीव, निर्जीव वस्तुना भेल–संभेल कीधा, कूडे काटले, तोले, माने, मापे, वहोर्या, दाण–चोरी कीधी, कुणहने लेखे वरांस्यो, साटे लांच लीधी, कूडो करहो काढ्यो, विश्वासघात कीधो, पर–वंचना कीधी, पासंग कूडां कीधां, दांडी चडावी, लहके-त्रहके कूडां काटलां, मान, मापां कीधां ।

माता, पिता, पुत्र, मित्र, कलत्र वंची कुणहिने दीधुं, जुदी गांठ कीधी, थापण ओळवी, कुणहिने लेखे–पलेखे भूलव्युं, पडी वस्तु ओळवो लीधो ।

त्रीजे स्थूल–अदत्तादान–विरमण व्रत–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष -दिवसमांहि० ॥ ३ ॥

चोथे स्वदारासंतोष–परस्त्रीगमन–विरमण व्रते पांच अतिचार–

अपरिग्गहिया–इत्तर० ॥

अपरिगृहीता–गमन, इत्वर–परिगृहीता–गमन कीधुं, विधवा, वेश्या, परस्त्री, कुलांगना, स्वदारा शोक (क्य)–तणे विषे दृष्टि–विपर्यास कीधो, सराग वचन बोल्यां, आठम चोदश अनेरी पर्वतिथिना लई भांग्या, घरघरणां कीधां कराव्यां, वर–बहू वखाण्यां, कुविकल्प

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतव्यो, अनंग–क्रीडा कीधी, स्त्रीनां अंगोपांग नीरख्यां, पराया विवाह जोड्या, ढींगला–ढींगली परणाव्या, काम–भोग तणे विषे तीव्र अभिलाष कीधो ।

अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, सुहणे–स्वप्नांतरे हुआ, कुस्वप्न लाध्यां, नट, विट, स्त्रीशुं हांसुं कीधुं ।

चोथे स्वदारा–संतोष० व्रत–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि० ॥ ४ ॥

पांचमे परिग्रह–परिमाण–व्रते–पांच अतिचार—

धण–धन्न–खित्त–वत्थू० ॥

धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, रूप्य, सुवर्ण, कुप्य, द्विपद, चतुष्पद ए नवविध परिग्रह–तणा नियम उपरांत वृद्धि देखी मूर्छा–लगे संक्षेप न कीधो, माता, पिता, पुत्र, स्त्री–तणे लेखे कीधो, परिग्रह–परिमाण लीधुं नहीं, लइने पढीयुं नही, पढवुं विसार्युं, अलीधुं मेल्युं, नियम विसर्या ।

पांचमे परिग्रह–परिमाण–व्रत–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि० ॥ ५ ॥

छट्ठे दिक्–परिमाण–व्रते पांच अतिचार—

गमणस्स य परिमाणे० ॥

ऊर्ध्वदिशि, अधोदिशि, तिर्यग्–दिशिए जवा आववा–तण नियम लई भांग्या, अनाभोगे विस्मृति लगे अधिक भूमि गया, पाठवणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आघो-पाछी मोकली, वहाण-व्यवसाय कीधो, वर्षाकाले गामतरुं कीधुं, भूमिका एकगमा संक्षेपी, बीजी गमा वधारी।

छट्ठे दिक्-परिमाण–व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि० ॥ ६ ॥

सातमे भोगोपभोग–विरमण–व्रते भोजन आश्री पांच अतिचार अने कर्म–हुंती पंदर अतिचार, एवं वीश अतिचार—

सचित्ते पडिबद्धे० ॥

सचित्त–नियम लीधे अधिक सचित्त लीधुं; अपक्वाहार, दुष्पक्वाहार, तुच्छौषधि–तणुं भक्षण कीधुं, ओळा, उंबी, पोंक, पापडी खाधां।

सचित्त[१]-दव्व[२]-विगइ[३]-वाणह[४]-तंबोल[५]-वत्थ[६]-कुसुमेसु[७]।
वाहण[८]-सयण[९]-विलेवण[१०]-बंभ[११]-दिसि[१२]न्हाण[१३]-भत्तेसु[१४] ॥

ए चौद नियम दिनगत रात्रिगत लीधा नहीं, लइने भांग्या, बावीश अभक्ष्य, बत्रीश अनन्तकायमांहि आदु, मूला, गाजर, पिंड, पिंडालु, कचूरो, सुरण, कुंळि आंबली, गलो, वाघरडां खाधां।

वासी कठोळ, पोली रोटली, त्रण दिवसनुं ओदन लीधुं; मधु, महुडां, माखण, माटी, वेंगण, पीलु, पीचु, पंपोटा, विष, हिम, करहा, घोलवडां, अजाण्यां फल, टिंबरू, गुंदां, महोर, अथाणुं, आंबलबोर, कांचुं मीठुं, तिल, खसखस, कोठिंबडां खाधां, रात्रि–भोजन कीधां, लगभग–वेलाए वाळु कीधुं, दिवस विण ऊगे शीराव्या।

तथा कर्मतः पन्नर कर्मादान–इंगाल–कम्मे, वण–कम्मे, साडी–कम्मे, भाडी–कम्मे, फोडी–कम्मे, ए पांच कर्म; दंत–वाणिज्जे, लक्ख–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणिज्जे, रस–वाणिज्जे, केस–वाणिज्जे, विस–वाणिज्जे, ए पांच वाणिज्य; जन्त-पिल्लणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गि-दावणया, सर-दह-तलाय-सोसणया, असई-पोसणया; ए पांच कर्म, पांच वाणिज्य, पांच सामान्य; एवं पन्नर कर्मादान बहु सावद्य–महारंभ, रांगण–लिहालो[1] कराव्या, ईंट–निभाडा पकाव्या, धाणी, चणा, पक्वान्न करी वेच्या, वाशी माखण तवाव्यां, तिल वहोर्या, फागण मास उपरांत राख्या, दलीदो कीधो, अंगीठा कराव्या, श्वान, बिलाडा, सूडा, सालही पोष्या।

अनेरा जे कांई बहु–सावद्य खरकर्मादिक, समाचर्या, वाशी गार राखी, लिंपणे–गुंपणे महारंभ कीधो, अणशोध्या चूला संध्रूक्या, घो, तेल, गोल, छाश–तणां भाजन उघाडां मूक्यां, तेमांहि माखी, कुंती, उंदर, गीरोली पडी, कीडी चडी तेनी जयणा न कीधी।

सातमे भोगोपभोग–विरमण–व्रत–विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष–दिवसमांहि० ॥ ७ ॥

आठमे अनर्थदंड–विरमण–व्रते पांच अतिचार—

कंदप्पे कुक्कुइए० ॥

कंदर्प–लगे विट–चेष्टा, हास्य, खेल, [केलि] कुतूहल कीधां, पुरुष–स्त्रीना हाव–भाव, रूप, शृंगार, विषय–रस वखाण्या, राज–कथा, भक्त–कथा, देश–कथा, स्त्री–कथा कीधी, पराई तांत कीधी, तथा पैशुन्यपणुं कीधुं, आर्त–रौद्र ध्यान ध्यायां।

खांडां कटार, कोश, कुहाडा, रथ, ऊखल, मुसल, अग्नि,

---

१ मूलमें 'बहुरंगिणो लिहला आंगरणि' ऐसा पाठ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घरंटी, निशाह (सार), दातरडां प्रमुख, अधिकरण, मेली-दाक्षिण्यं-लगे माग्यां आप्यां, पापोपदेश दीधो, अष्टमी, चतुर्दशीए खांडवा-दलवा-तणा नियम भांग्यां, मुखरपणा-लगे असंबद्ध वाक्य बोल्या, प्रमादाचरण सेव्यां ।

अंघोले, न्हाणे, दातणे, पग-धोअणे, खेल, पाणी, तेल छांट्यां, झीलणे झील्या, जुवटे रम्या, हिंचोले हिंच्या, नाटक-प्रेक्षणक जोयां, कण, कुवस्तु, ढोर लेवराव्यां, कर्कश वचन बोल्या; आक्रोश कीधा, अबोला लीधा, करकडा मोड्या, मच्छर धर्यो, संभेडा लगाड्या, शाप दीधा ।

भेंसा, सांढ, हुडु, कूकडा, श्वानादिक झूझार्या, झूझता जोया, खादीलगे अदेखाइ चिंतवी, माटी, मीठुं, कण, कपाशिया, काज विण चांप्या, ते पर बेठा, आलो वनस्पति खुंदी, सूई-शस्त्रादिक नीपजाव्या, घणी निद्रा कीधी, राग-द्वेष लगे एकने ऋद्धि-परिवार वांछी; एकने मृत्यु-हानि-वांछी ।

आठमे अनर्थदण्ड-विरमण-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अति-चार पक्ष-दिवसमांहि० ॥ ८ ॥

नवमे सामायिक-व्रते पांच अतिचार—

तिविहे दुप्पणिहाणे० ॥

सामायिक लीधे मने आहट्ट-दोहट्ट चिंतव्युं, सावद्य वचन बोल्या, शरीर अणपडिलेह्युं हलाव्युं, छती वेलाए सामायिक न लीधुं, सामायिक लई उघाडे मुखे बोल्या, उंघ आवी, वात-विकथा घर तणी चिंता कीधी, वीज दीवा-तणी उज्जेही हुई; कण, कपाशीया, माटी, मीठुं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खडो, धावडी, अरणेट्टो, पाषाण प्रमुख चांप्या; पाणी, नील, फूलो, सेवाल, हरियकाय, बीज काय इत्यादिक आभड्यां, स्त्री-तिर्यंच-तणा निरंतर परंपर संघट्ट हुआ, मुहपत्तिओ संघट्टी, सामायिक अणपूग्युं पार्युं, पारवुं विसार्युं ।

नवमे सामायिक-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि० ॥ ९ ॥

दशमे देशावकाशिक–व्रते पांच अतिचार—

आणवणे पेसवणे० ॥

आणवण-प्पयोगे, पेसवण-प्पयोगे, सद्दाणुवाई, रुवाणुवाई, बहिया-पुग्गल-पक्खेवे, नियमित-भूमिकामांहि वाहेरथी कांइ अणाव्युं, आपण कन्हे थकी बाहेर कांई मोकल्युं, अथवा रूप देखाडी, कांकरो नाखी, साद करी आपणपणुं छतुं जणाव्युं ।

दशमे देशावकाशिक-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि० ॥ १० ॥

अग्यारमे पौषधोपवास-व्रते पांच अतिचार—

संथारुच्चारविही० ॥

अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय, सिज्जा-संथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय, उच्चार-पासवण-भूमि पोसह लीधे संथारा-तणो भूमि न पुंजी ।

बाहिरलां लहुडां वडां स्थंडिल दिवसे शोध्यां नहीं, पडिलेह्यां नहीं, मातरूं अणपुंज्युं हलाव्युं, अणपुंजी भूमिकाए परठव्युं, परठवतां,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अणुजाणह जस्सुग्गहो' न कह्यो, परठव्यां पुंठे वार त्रण 'वोसिरे वोसिरे' न कह्यो ।

पोसहशालामांहि पेसतां 'निसीहि' निसरतां 'आवस्सहि' वार त्रण भणी नहीं ।

पुढवी, अप्, तेउ, वाउ, वनस्पति, त्रसकाय-तणा संघट्ट, परिताप, उपद्रव हुआ ।

संथारा-पोरिसी-तणो विधि भणवो विसार्यो, पोरिसी-मांहि उंघ्या, अविधे संथारो पाथर्यो, पारणादिक-तणी चिंता कीधी, काल-वेलाए देव न वांद्या, पडिक्कमणुं न कीधुं, पोसह असूरो लीधो, सवेरो पार्यो, पर्वतिथे पोसह लीधो नहीं ।

अग्यारमे पौषधोपवास-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि० ॥ ११ ॥

बारमे अतिथि संविभाग-व्रते पांच अतिचार—

सचित्ते निक्खिवणे० ॥

सचित्त वस्तु हेठ उपर छतां महात्मा महासती प्रत्ये असूझतुं दान दीधुं, देवानी बुद्धे असूझतुं फेडी सूझतुं कीधुं, परायुं फेडी आपणुं कीधुं, अणदेवानी बुद्धे सूझतुं फेडी असूझंतुं कीधुं, आपणुं फेडी परायुं कीधुं, वहोरवा वेला टली रह्या, असूर करी महात्मा तेड्या, मत्सर धरी दान दीधुं, गुणवत आव्ये भक्ति न साचवी, छती शक्ते साहम्मि-वच्छल्ल (साधर्मि-वात्सल्य) न कीधुं, अनेरां धर्मक्षेत्र सीदातां छती शक्तिए उद्धर्या नहीं, दीन, क्षीण प्रत्ये अनुकंपादान न दीधुं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारमे अतिथि-संविभाग-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि० ॥ १२ ॥

संलेखणा तणा पांच अतिचार—

इह लोए परलोए० ॥

इहलोगासंस-प्पओगे, परलोगासंस-प्पओगे, जीविआसंस-प्पओगे; मरणासंस-प्पओगे, कामभागासंस-प्पओगे ।

इह लोके धर्मना प्रभाव-लगे राज-ऋद्धि, सुख, सौभाग्य, परिवार वांछ्या, परलोके देव, देवेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्तीतणी पदवी वांछी, सुख आव्ये जीवितव्य वांछ्युं, दुःख आव्ये मरण वांछ्युं, काम-भोग-तणी वांछा कीधी ।

संलेखणा विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस-मांहि० ॥ १३ ॥

तपाचार बार भेद-छ बाह्य, छ अभ्यन्तर —

अणसणमूणोअरिआ० ॥

अणसण भणी उपवास-विशेष पर्वतिथे छती शक्तिए कीधो नहीं, ऊणोदरी व्रत ते कोलिआ पांच सात ऊणा रह्या नहीं, वृत्ति-संक्षेप ते द्रव्य भणी सर्व वस्तुनो संक्षेप कीधो नहीं, रस-त्याग ते विषयत्याग न कीधो, काय-क्लेश लोचादिक कष्ट सह्यां नहीं, संली-नता अंगोपांग संकोची राख्यां नहीं, पच्चक्खाण भांग्यां, पाटलो डग-डगतो फेड्यो नहीं, गंठसी, पोरिसी, पुरिमड्ढ, एकासणुं, बेआसणुं, नीवि, आंबिलप्रमुख पच्चक्खाण पारवुं विसार्युं, बेसतां नवकार न भ(ग)ण्यो, उठतां पच्चक्खाण करवुं विसार्युं, गंठसीयुं, भाग्यं नीवि आंबिल उपवासादि तप करी काचुं पाणी पीधुं, वमन हुओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाह्यतप-विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष-दिवस-मांहि० ॥ १४ ॥

अभ्यंतर तप—

पायच्छित्तं विणओ० ॥

मन-शुद्धे गुरु-कन्हे आलोअण लीधी नहीं; गुरु-दत्त प्रायश्चित्त-तप लेखा शुद्धे पहुँचाड्यो नहीं, देव, गुरु, संघ, साहम्मी प्रत्ये विनय साचव्यो नहीं; बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी-प्रमुखनुं वेयावच्च न कोधुं, वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा-लक्षण पंचविध स्वाध्याय न कीधो, धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्यायां, आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्यायां, कर्मक्षय-निमित्ते लोगस्स दश-वीशनो काउस्सग्ग न कोधो ।

अभ्यंतर तप-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवस-मांहि० ॥ १५ ॥

वीर्याचारना त्रण अतिचार—

अणिगूहिअ–बल–वीरिओ० ॥

पढवे, गुणवे, विनय, वेयावच्च, देव–पूजा, सामायिक, पोसह, दान, शील, तप, भावनादिक धर्म–कृत्यने विषे मन, वचन, काया-तणुं छतुं वीर्य गोपव्युं ।

रूडां पंचांग खमासमण न दीधां, वांदणा-आवर्त्तविधि साचव्या नहीं, अन्यचित्त निरादर पणे बेठा, उतावळुं देव-वंदन पडिक्कमणुं कीधुं ।

वीर्याचार-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवस-मांहि० ॥ १६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणाइ–अट्ठ पइवय, सम्मसंलेहण–पण–पन्नर–कम्मेसु ।
बारस–तप–वीरिअ–तिगं, चउवीस–सयं अइआरा ॥
पडिसिद्धाणं करणे० ॥

प्रतिषेध अभक्ष्य, अनंतकाय, बहुबीज-भक्षण, महारंभ-परिग्रहादिक कीधां, जीवाजीवादिक सूक्ष्म-विचार सद्दह्या नहीं, आपणी कुमति लगे उत्सूत्र-प्ररूपणा कीधी ।

तथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति, अरति, पर-परिवाद, माया-मृषावाद, मिथ्यात्वशल्य ए अढार पाप-स्थान कीधां, कराव्यां अनुमोद्यां होय ।

दिनकृत्य, प्रतिक्रमण, विनय, वेयावच्च न कीधां, अनेरुं जं कांइ वीतरागनी आज्ञा-विरुद्ध कीधुं कराव्युं, अनुमोद्युं होय ।

ए चिहुं प्रकारमांहे अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म-बादर जाणतां-अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचने कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ १७ ॥

एवकारे श्रावकतणे धर्मे श्रीसम्यक्त्व-मूल बार व्रत एकसो चोवीश अतिचारमांहि जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म-बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचने, कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥

॥ इति अतिचार ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—

इस सूत्रमें जो शब्द नवीन तथा कठिन हैं, उनके अर्थ यहाँ दिये जाते हैं।

नाणम्मि-भणिओ० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८ गाथा १।

सविहु–सब ही।

काले विणए-नाणमायारो ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८ गाथा २।

काल-वेलाए–पढनेके समय।

भण्यो गुण्यो नहीं–पढ़ा नहीं और पढ़े हुएकी पुनरावृत्ति भी नहीं की।

कूडो–झूंठा, असत्य।

तदुभय–सूत्र और अर्थ।

काजो–कचरा, निरर्थक वस्तु। देश्य **कज्जल** शब्दसे बना हुआ है।

अणउद्धर्ये–निकाले बिना।

दांडो–साधुके रखने योग्य दण्ड।

अणपडिलेहे – पडिलेहण किये बिना।

वसति–उपाश्रयके चारों ओर सौ-सौ कदम दूर तकका स्थान।

अणशोध्ये–शोधन किये बिना, उसके अन्तर्गत अशुद्धिमय पदार्थको दूर किये बिना।

अणपवेसे – योगोद्वहनादि क्रिया-द्वारा सिद्धान्त पढ़नेमें प्रवेश किये बिना।

असज्झाय – अण्णो (ण) ज्झाय-मांहे–अस्वाध्याय और अन-ध्यायके समय में।

जो संयोग पढ़नेके लिये अयोग्य हो, वह अस्वाध्याय कह-लाता है और जो दिन पढ़नेके लिये अयोग्य हो वह अनध्याय – दिवस कहलाता है।

प्रमुख–इत्यादि, वगैरा।

पहले काजो उद्धरना चाहिये, फिर दण्ड यथाविधि पडि-लेहना चाहिये, तदनन्तर वसतिका बराबर शोधन करना चाहिये और क्रिया-पूर्वक स्वाध्यायमें प्रवेश करना चाहिये। यदि अ-स्वाध्यायका काल हो अथवा अनध्यायका दिन हो, तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय सूत्र पढ़नेसे दोष लगता है। जैसे साधु धर्ममें दशवैकालिक आदि सूत्रोंके पढ़नेका नियम है वैसे ही श्रावकधर्ममे भी स्थविरावलि आदि सूत्रोंके पढ़नेका नियम है। विधिका पालन न किया जाय तो दोष लगे।

ज्ञानोपगरण–ज्ञानके उपकरण, ज्ञानके साधन।

पाटी–लकड़ीकी पट्टी।

पोथी–हस्तलिखित ग्रन्थ अथवा पुस्तक।

ठवली–स्थापनिका।

कवली–बाँसकी सलाइयोंका पुस्तक पर लपेटनेका साधन। पाठान्तर **कमली** शब्द है।

दस्तरी–छुट्टे कागज रखनेके लिये पुट्ठेका साधन, सम्पुटिका।

वही–कोरे कागजोंकी किताब, वही, चोपड़े।

ओळियुं–लिखे हुए कागजोंका टिप्पण अथवा रेखा खींचनेकी पट्टी।

मांज्यो–साफ किया, मिटाया।

ओशीसे धर्यो–मस्तकके नीचे तकिया दिया। मूलमें **'सीसह दीधउं'** ऐसा पाठ है!

कन्हें–पासमें।

नीहार–मल-विसर्जन।

प्रज्ञापराधे विणास्यो–मन्द बुद्धिके कारण नष्ट किया।

विणसतो उवेख्यो – कोई नष्ट करता हो, तो भी उपेक्षा की हो।

असद्दहणा कीधी–अश्रद्धा की हो, श्रद्धा न रखी हो।

तोतडो–तुतलाता हुआ बोला। रुकते–रुकते अक्षर बोलने को तोतड़ा–तोतला कहते हैं।

बोबडो–अस्पष्ट गुनगुनाकर बोला।

हस्यो–हँस–हँस कर बोला।

वितर्क्यो–मिथ्या तर्क किया हो।

अन्यथा प्ररूपणा कीधी–शास्त्रके मूल भावका त्याग कर दूसरी तरह प्रतिपादन किया हो।

विषइयो–विषयक, सम्बन्धी।

अनेरो–अन्य।

निःसंकिय....अट्ठ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८ गाथा ३।

संबंधीया–सम्बन्धी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल-मलिन–मैलसे युक्त, मलिन ।

दुगंछा नीपजावी–जुगुप्सा की ।

कुचारित्रीया – कुत्सित चारित्र-वाले ।

चारित्रीया–चारित्रवाले, चारित्रशील ।

अभाव-हुओ–अप्रीति हुई ।

अनुपबृंहणा कीधो–उपबृंहणा न की, समर्थन न किया हो ।

अस्थिरीकरण – स्थिरीकरण न किया हो, धर्मीको गिरते देख धर्म मार्गमें स्थिर न किया हो।

देव-द्रव्य–देव–निमित्तका द्रव्य, देवके लिये कल्पित द्रव्य ।

गुरु-द्रव्य–गुरु – निमित्तका द्रव्य, गुरुके लिये कल्पित द्रव्य ।

ज्ञान-द्रव्य–श्रुतज्ञानके निमित्तका द्रव्य ।

साधारण-द्रव्य–जो द्रव्य जिन–बिम्ब, जिन-चैत्य, जिनागम, साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका इन सातों क्षेत्र में वापरने योग्य हो; वह साधारण द्रव्य ।

भक्षित-उपेक्षित – भक्षण करते समय उपेक्षा की हो। किसीके द्वारा उक्त द्रव्यका भक्षण होता हो तो उसको रोकनेका अपना उत्तरदायित्व पूरा न किया हो ।

अधोती–धोती बिना ।

अष्टपड--मुखकोश – पाखे – आठ पड़वाले मुखकोश बिना ।

बिंब प्रत्ये–बिम्ब के प्रति, मूर्ति–के प्रति ।

वासकुंपी–वासक्षेप रखनेका पात्र ।

धूपधाणुं–धूपदानी ।

केलि–क्रीडा ।

निवेदियां–नैवेद्य ।

ठवणायरिय–स्थापनाचार्य ।

पडिवज्युं नहीं–अङ्गीकार नहीं किया ।

पणिहाण जोग-जुत्तो नायव्वो ।।
इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८, गाथा ४ ।

ईर्या -- समिति – ईर्या – समिति सम्बन्धी अतिचार ।
अन्य समिति और गुप्तियोंके जहाँ नाम आये वहाँ भी ऐसा ही अर्थ समझना ।

डगल–अचित्त मिट्टीके ढेले आदि ।

जीवाकुल – भूमिकाए – जीवसे व्याप्त भूमिपर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषतः–खास कर ।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार और चारित्राचार इन तीन आचारोंका पालन प्रथम सामान्य रीतिसे किया, कारण कि इन तीनों अतिचारोंकी बात साधु और श्रावकोंके लिये प्रायः समान ही लागू होती है । अब श्रावकके योग्य अतिचारका वर्णन करनेका आरम्भ होनेसे विशेषतः ऐसा शब्द प्रयोग किया है ।

संका–कंख–विगिच्छा ।। इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२ गाथा ६ ।

क्षेत्रपाल–लौकिक देव जो कुछ क्षेत्रोंकी रक्षा करते हैं ।

गोगो–नागदेव ।

आसपाल–आशा–दिशाके पालनेवाले इन्द्रादिक दिक्पाल देव ।

पादर–देवता–गाँव–पादरके देव–देवी ।

गोत्र–देवता–गोत्रके देव–देवी ।

ग्रह–पूजा–ग्रहोंकी शान्तिके लिये की जानेवाली पूजा ।

विनायक–गणेश, गणपति ।

हनुमंत–हनुमान ।

सुग्रीव–प्रसिद्ध राम–सेवक ।

वालीनाह–एक क्षेत्रपालका नाम है । (आबू तीर्थकी स्थापनामें मन्त्रीश्वर विमलके कार्यमें जिसने विघ्न किया, और बादमें वश हुआ ।)

जूजूआ–पृथक् पृथक् ।

आतंक–सन्ताप, रोग, भय ।

सिद्ध–लोकमें 'सिद्ध' के रूपमें प्रसिद्ध ।

जीराउला–मिथ्यात्वी देव (तीर्थ) विशेष ।

भरडा–एक प्रकारके साधु ।

[शिव भक्तोंकी एक जाति । जिसकी मूढताके सम्बन्धमें 'भरटक–द्वात्रिंशिका' आदि में कथाएँ हैं]

भगत–देवीको माननेवाले अथवा लोकमें इस नामसे प्रसिद्ध व्यक्ति ।

पाठान्तरमें 'भगवंत' शब्द है ।

लिंगिया–साधुका वेष धारण करनेवाले ।

जोगिया–जोगीके नामसे प्रसिद्ध साधु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोगी–योगकी साधना करनेवाले ।

दरवेश–मुसलमान फकीर ।
पाठान्तरमें 'दूरवेश' शब्द है ।

भूलाव्या–भुलाया ।

संवच्छ(त्स)री–मरे हुएकी वार्षिक तिथिके दिन ब्राह्मण आदिको भोजन कराना ।

माही–पूनम–माघमासकी पूर्णिमा। इस दिन विशिष्ट विधिसे स्नान किया जाता है ।

अजा–पडवो–(आजो पडवो) –आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाका दिन ।
जिस दिन आजो अर्थात् माता–महका श्राद्ध किया जाता है।

प्रेतबीज–कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीया, जो यम-द्वितीया भी कहलाती है ।

गौरी–त्रीज–चैत्र शुक्ल तृतीया जब पुत्रकी इच्छावाली स्त्रियाँ गौरीव्रत करती है ।

विनायक–चोथ–भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीका दिन, जब विनायक अर्थात् गणपतिकी मुख्य पूजा होती है, उसको गणपति चोथ भी कहते हैं ।

नाग-पंचमी–श्रावण शुक्ला पञ्चमी का दिन जब कि नाग–सर्पकी खास तौर पर पूजा की जाती है। कुछ श्रावण कृष्णा पञ्चमी को भी नागपञ्चमी कहते हैं ।

झीलणा=छट्ठी–श्रावण कृष्णा षष्ठी, जिसे राँधन छठ भी कहते हैं ।

शील–सातमी–श्रावण शुक्ला (कृष्णा) सप्तमीका दिन, जब कि ठण्डा भोजन किया जाता है, तथा शीतलादेवीकी पूजा की जाती है। कुछ प्रान्तोंमें चैत्र कृष्णा सप्तमीको भी यह पर्व मनाते हैं ।

ध्रुव–आठमी–भाद्रपद शुक्ला-अष्टमी, जिस दिन स्त्रियाँ गौरी–पूजा आदि करती हैं ।

नौली–नोमी–(नकुल–नवमी)–श्रावण शुक्ला नवमीका दिन ।

अहवा–दशमी–अथवा (अधवा) दशमी ।

व्रत–अग्यारसी–एकादशीके व्रत ।

वच्छ–बारसी–आश्विन कृष्णा द्वादशी ।

धन–तेरसी–आश्विन कृष्णा त्रयो-दशीका दिन ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस दिन धन (रुपयों) को स्नान करा कर उसको पूजा की जाती है ।

अनन्त–चउदसी–भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीका दिन ।

आदित्यवार–रविवार, ग्रह पीड़ादि दूर करनेके लिये कुछ रविवारों-को एकाशन अथवा उपवास करना ।

उत्तरायण – मकर – सङ्क्रान्तिका दिन मानना ।

नवोदक–वर्षाका नया पानी आये, तब उसकी खुशीमें मनाया जानेवाला पर्व ।

याग–यज्ञ कराना ।

भोग–ठाकुरजीको भोग-नैवेद्य धरना ।

उतारणां कीधां–उतार कराया ।

ग्रहण–सूर्य – ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहणका दिन ।

शनैश्चर–शनिवारका दिन (शनि-वारका व्रत करना) ।

अजाणतां थाप्यां–अजान मनुष्यों-द्वारा स्थापित ।

अनेराइ–दूसरे भी ।

व्रत–व्रतोलां–छोटे–बड़े व्रत ।

आगर–खान, जत्था–समूह ।

ईस्या–ऐसे ।

भोग–वांछित–भोगकी इच्छासे ।

खीण–वचन – दीनतापूर्ण वचन बोलकर ।

दाक्षिण्य–लगे–दाक्षिण्यसे, विवेक से, लोक–लज्जाके कारण ।

वह – बंध – छविच्छेए० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा १० ।

गाढो घाव घाल्यो–गहरा घाव किया हो, बहुत पीटा हो ।

तावडे–धूपमें ।

खजूरा–कानखजूरा ।

सरवला–जन्तुविशेष ।

साहतां–पकड़ते हुए ।

विणट्ठा–नष्ट हुए हों ।

निर्ध्वंसपणुं–निर्दयता ।

झील्या–नहाये ।

सहसा रहस्सदारे० ॥ इस गाथा-के अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा १० ।

कुणह प्रत्ये–किसीके प्रति ।

मंत्र–मन्त्रणा, विचार–विमर्श ।

आलोच–आलोचना–विचारणा ।

अनर्थ पाडवा–कष्टमें डालना ।

थापण मोसोकीधो – धरोहरके बारेमें झूठ बोला हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कडकडा मोड्या – तिरस्कारसे कडाके किये ।

तेनाहडप्पओगे० ।। इस गाथा के अर्थके लिये देखो सूत्र ३२ गाथा १४ ।

अणमोकली – मालिकके भेजे बिना ।

वहोरी–खरीद की ।

संबल–कलेवा, मार्गमें खाने योग्य सामान ।

विरुद्ध – राज्यातिक्रम कीधो–राज्यके नियमसे विरुद्ध वर्तन किया ।

लेखे वरांस्यो – लेखेमें ठगा, हिसाबमें खोटा गिनाया ।

सांटे लांच लीधी–अदला–बदली करनेमें रिश्वत ली ।

कूडो करहो काढ्यो–झूठा बटाव (कटौती) लिया ।

पासंग कूडां कीधां–झूठा धड़ा किया ।

पासंग–अर्थात् वजन करनेके लिये एक ओर रखा जाने-वाला माप, धड़ा ।

अपरिग्गहिया इत्तर० ।। इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा १६ ।

शोक्यतणे विषे–सौतके सम्बन्धमें ।

दृष्टि–विपर्यास कीधो – अनुचित दृष्टि डाली ।

घरघरणां–नाता–गन्धर्व विवाह ।

सुहणे–स्वप्नमें ।

नट–नृत्य करनेवाला, वेष बनाने-वाला (बहुरूपिया) ।

विट – वेश्याका अनुचर, यार, कामुक ।

हांसुं कीधुं–हँसी की ।

धण–धन्न–खित्त–वत्थू० ।। इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा १८ ।

मूर्च्छा लगे–मूर्च्छा आनेसे, मोह होनेसे ।

गमणस्स य परिमाणे० ।। इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा १९ ।

पाठवणी–प्रस्थानके लिये रखनेकी-भेजनेकी वस्तु ।

एकगमा–एक ओर ।

हुंती–सम्बन्धी ।

सचित्ते–पडिबद्धे० ।।–इस गाथा के अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा २१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओला–सिके हुए हरे चने, होले ।

उंबी–गेहूँ, बाजरी, जव आदि धान्यके सिके हुए डूँडिये ।

पोंक–जुवार, बाजरी आदिके कच्चे धान्यको सेक कर या भूनकर निकाले हुए कण ।

पापडी–वालकी फली, वालोरकी फली ।

सचित्त–दव्व–विगई० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा २८ का अर्थ विस्तार ।

वाघरडां–सर्वथा नरम ककड़ी ।

वासी–एक दिन पूर्व बनाया हुआ, बासी ।

अधिक समय रहनेसे बिगड़ा हुआ पर्युषित अन्न । वासित शब्दसे बासी शब्द बना है । यह विशेषण–कठोल, पूरणपूरी और रोटी इन तीनोंको उद्देश करके कहा गया है ।

ओदन–राँधे हुए चावल ।

करहा–ओले, बरसाती बर्फके टुकड़े ।

महोर–आम आदिकी मञ्जरी ।

आँवल बोर–बड़े बेर ।

लगभग वेला–सूर्य अस्त होनेके समय ।

वालू–साँझका भोजन ।

शीराव्या–कलेवा किया, प्रातः-कालका नाश्ता किया ।

रांगण–रङ्गका काम कराया ।

लिहाला कराव्या – कोलसे बनवाये ।

दलीदो कीधो–तिल, गुड और धानी एक साथ कूट कर खाद्य सामग्री बनायी ।

अंगीठा–सिगड़ी, भट्ठी, चूल्हा आदि ।

सालही–वनके तोता–मैंना ।

खरकर्मादिक–बहुत उग्र हिंसा हो ऐसे कार्य ।

संध्रूक्या–फूँक कर जलाया ।

कदप्पे कुक्कुइए०–इस गाथाके अर्थके लिए देखो सूत्र ३२, गाथा २६ ।

कंदर्प लगे–काम–वासनासे ।

विटचेष्टा–अधम कोटिकी शृङ्गार–चेष्टा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तांत–निन्दा (दूसरेकी पञ्चायत)। चिकना तार ताँत कहलाता है। उसी परसे जो बात खूब बार-बार छान–बीन कर फिर कही जाय, उसे भी ताँत कहते हैं।

निसाह (र)–चटनी आदि पीसने की शिला।

दाक्षिण्य लगे – दाक्षिण्यसे, लज्जासे।

अंघोले–सामान्य स्नान करनेसे।

न्हाणे–विधि–पूर्वक स्नान करनेसे।

दांतणे–दतौन – दन्तधावन करते समय।

पग धोवणे–पाँव धोनेके समय।

खेल–नाक साफ करते समय।

झीलणे झील्या–तालाबमें नहाये।

संभेडा लगाड्या–परस्पर झगड़ा करवाया।

हुडु–भेड़।

झूझार्या–लड़ाये।

खादी लगे–हार जानेसे।

आली–गोली।

तिविहे दुप्पणिहाणे० ।।–इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा २७।

आहट्ट दोहट्ट–आर्त–रौद्र प्रकारका। चाहे जैसा अनुचित।

उज्जोही–प्रकाश।

आभड्यां–स्पर्श किया।

अणपूग्यूं–पूर्ण हुये बिना।

आणवणे पेसवणे० ।।–इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा २८।

छतुं–प्रकट।

संथारुच्चारविहि० ।। इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा २९।

बाहिरला–बाहरके।

लहुडां वडां स्थण्डिल–लघु नीति और बड़ी नीति मलमूत्र) करनेकी भूमि।

'अणुजाणह जस्सुग्गहो'–जिनके अवग्रहमें जगह हो, वे मुझे उपयोगमें लेनेकी आज्ञा दें।

वोसिरे–त्याग करता हूँ।

पोरिसीमांहि – रात्रिके पहले प्रहरमें।

असूरो लीधो–विलम्बसे ग्रहण किया।

सवेरो–जल्दी, समयसे पूर्व।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्तें निक्खिवणे० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२ गाथा ३० ।

बुद्धें–बुद्धिसे ।

टली–दूसरे काम पर गया (निवृत्त हुआ ।

क्षीण–दुःखी ।

अनुकंपा–दान–दयाकी भावनासे प्रेरित होकर दान देना ।

इए लोए परलोए० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र ३२, गाथा ३३ ।

अणसणमूणोअरिआ० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८, गाथा ६ ।

फेडचो नहि–रोका नहीं ।

काचुं पाणी–तीन उफान नहि आया हुआ गरम पानी अथवा अचित्त नहीं किया हुआ पानी ।

पायच्छित्तं विणओ० ॥ इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८, गाथा ७ ।

लेखां शुद्धें–पूरी गिनतीपूर्वक ।

अणिगूहिअ – बल – वीरिओ०– इस गाथाके अर्थके लिये देखो सूत्र २८, गाथा ८ ।

निरादरपणे–आदर विना, बहुमान विना ।

नाणाइ–अट्ठ–ज्ञानादिक आठ । अर्थात् ज्ञानाचार, दर्शनाचार और चारित्राचार इन प्रत्येकके आठ आठ, कुल चौबीस ।

पइवय–प्रतिव्रत, प्रत्येक व्रतके, स्थूल- प्राणातिपात – विरमण आदि बारह व्रतोंके ।

सम्म–संलेहण – सम्यक्त्व तथा संलेखनाके ।

पण-पाँच

बारह व्रत, सम्यक्त्व और संलेखना, इन प्रत्येकके पाँच पाँच, इस तरह कुल सत्तर ।

पन्नर कम्मेसु–पन्द्रह कर्मादानके पन्द्रह ।

बारस-तव–बारह प्रकारके तपके बारह ।

वीरिअतिगं–वीर्याचारके तीन ।

चउवीस-सयं– अइआरा – इस प्रकार सब मिलाकर एकसौ चौबीस अतिचार ।

२४+७०+१५+१२+३=१२४ ।

प्रतिषेध–निषिद्ध किये हुए ।

कुमति लगे–मिथ्या बुद्धिसे ।

चिहुँ–चार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-सङ्कलना—

स्पष्ट है।

सूत्र-परिचय—

इस सूत्रमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व, बारह व्रत, संलेखना तप और वीर्यके अतिचारोंका विस्तारसे वर्णन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी पाक्षिक-अतिचार

नाणम्मि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तह य वीरियम्मि।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ॥१॥

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, इन पांचों आचारों में जो कोई अतिचार पक्ष, दिवस में* सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

तत्र ज्ञानाचार के आठ अतिचार—

"काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे।
वंजण-अत्थ-तदुभये अट्ठ-विहो नाणमायारो" ॥२॥

ज्ञान नियमित समय में पढ़ा नहीं। अकाल समय में पढ़ा। विनय रहित, बहुमान रहित योगोपधानरहित पढ़ा। ज्ञान जिस से पढ़ा उससे अतिरिक्त को गुरु माना या कहा। देववंदन, गुरुवंदन करते हुए तथा प्रतिक्रमण, सज्झाय पढ़ते या गुणते अशुद्ध अक्षर कहा। काना, मात्रा न्यूनाधिक कही, सूत्र असत्य कहा।

---

*चउमासी प्रतिक्रमण में इन पांचों आचारों में जो कोई अतिचार चउमासीअ दिवस से सूक्ष्म आदि, संवच्छरीअ प्रतिक्रमण में इन पांचों आचारों में जो कोई अतिचार संवच्छरीअ दिवस में सूक्ष्म आदि पढ़ना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ अशुद्ध किया। अथवा सूत्र और अर्थ दोनों असत्य कहे। पढ़कर भूला। असज्झाय के समय में थविरावली, प्रतिक्रमण, उपदेशमाला आदि सिद्धांत पढ़ा। अपवित्र स्थान में पढ़ा या बिना साफ की हुई घृणित (खराब) भूमि पर रखा। ज्ञान के उपकरण तख्ती, पोथी, ठवणी, कवली, माला, पुस्तक रखने की रील, काग़ज़, कलम, दवात, आदि के पैर लगा, थूक लगा, अथवा थूक से अक्षर मिटाया, ज्ञान के उपकरण को मस्तक के नीचे रखा, अथवा पास में लिए हुए आहार, निहार किया, ज्ञान-द्रव्य भक्षण करने वाले की उपेक्षा की, ज्ञान-द्रव्य की सार–संभाल न की, उल्टा नुकसान किया, ज्ञानवान के ऊपर द्वेष किया, ईर्ष्या की, तथा अवज्ञा, आसातना की, किसी के पढ़ने-गुणने में विघ्न डाला, अपने जानपने का मान किया। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवल-ज्ञान, इन पांचों ज्ञानों में श्रद्धा न की। गूंगे, तातले की हँसी की। ज्ञान में कुतर्क किया, ज्ञान के विपरीत प्ररूपणा की। इत्यादि ज्ञानाचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्षदिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

दर्शनाचार के आठ अतिचार–

"निस्संकिय निक्कंखिय, निव्विउिगिच्छा अमूढदिट्ठी अ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥३॥

देव गुरु-धर्म में निःशंक न हुआ। एकांत निश्चय न किया। धर्मसंबंधी फल में संदेह किया। साधु-साध्वी की जुगुप्सा-निंदा की। मिथ्यात्वियों की पूजा प्रभावना देख कर मूढ़दृष्टिपना किया। कुचारित्री को देख कर चारित्र-वान पर भी अश्रद्धा की। संघ में गुणवान् को प्रशंसा न की। धर्म से पतित होते हुए जीव को स्थिर न किया। साधर्मी का हित न चाहा। भक्ति न की। अपमान किया। देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारण द्रव्य की हानि होते हुए उपेक्षा की। शक्ति होने पर भी भली प्रकार सार-संभाल न की। साधर्मी से कलह-क्लेश करके कर्मबंधन किया। मुखकोश बांधे विना वीतराग देव की पूजा की। धूपदानी, खसकूची, कलश आदिक से प्रतिमा जी को ठपका लगाया, जिन बिंब हाथ से गिरा। श्वासोच्छ्वास लेते हुए आसा-तना हुई। जिन मन्दिर तथा पोषधशाला में थूका, तथा मल-श्लेष्म किया, हँसी मस्करी की, कुतूहल किया। जिन-मन्दिर संबंधी चौरासी आसातनाओं में से और गुरु महाराज संबंधी तैंतीस आसातनाओं में से कोई आसातना हुई हो! स्थापनाचार्य हाथ से गिरे हों या उन की पडिलेहणा न की हो। गुरु के वचन को मान न दिया हो, इत्यादि दर्शना-चार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या वादर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानते, अजानते लगा हो वह सब मन-वचन-काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

चारित्राचार के आठ अतिचार—

"पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समईहिं तीहिं गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठ विहो होइ नायव्वो" ॥४॥

ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-भंडमत्त-निक्षेपणा-समिति और पारिष्ठा-पनिका-समिति, मनो-गुप्ति, वचन-गुप्ति और काया-गुप्ति, ये आठ प्रवचन-माता सामायिक पौषधादिक में अच्छी तरह पाली नहीं। चारित्राचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते आजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

विशेषतः श्रावक-धर्म संबंधी श्री-सम्यक्त्व मूल बारह व्रत । सम्यक्त्व के पाँच अतिचार—"संका कंख विगिच्छा" शंका :—श्री अरिहंत प्रभु के बल अतिशय ज्ञान, लक्ष्मी, गांभीर्यादि-गुण शाश्वती—प्रतिमा चरित्रवान् के चारित्र में तथा जिनेश्वर देव के वचन में संदेह किया । आकांक्षा :—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्षेत्रपाल, गरुड, गूगा, दिक्पाल, गोत्र-देवता, नव-ग्रह पूजा, गणेश, हनुमान, सुग्रीव, वाली, माता मसानी, आदिक तथा देश, नगर, ग्राम, गोत्र के अलग अलग देवादिकों का प्रभाव देखकर, शरीर में रोगांतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कष्टादि आने पर इहलोक परलोक के लिए पूजा मानता की। बौद्ध, सांख्यादिक संन्यासी, भगत, लिंगिये जोगी, फ़कीर, पीर इत्यादि अन्य दर्शनियों के मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र के चमत्कार देखकर परमार्थ जाने बिना मोहित हुआ। कुशास्त्र पढ़ा, सुना। श्राद्ध, संवत्सरी, होली, राखडी पूनम (राखी) अजा-एकम, प्रेत दूज, गौरी तीज, गणेश चौथ, नागपंचमी स्कंद षष्ठ, झीलणा छठ, शील सप्तमी, दुर्गाष्टमी, रामनौमी, विजया-दशमी, एकादशी-व्रत, वामन-द्वादशी, वत्स-द्वादशी, धन-तेरस, अनंत-चौदस, शिव-रात्री, काली-चौदस, अमावस्या, आदित्यवार, उत्तरायण याग-भोगादि किये, कराये, करते हुए को भला माना। पीपल में पानी डाला, डलवाया। कुआँ, तालाब, नदी, द्रह, बावड़ी, समुद्र, कुड ऊपर पुण्य निमित्त स्नान तथा दान किया, कराया, या अनुमोदन किया। ग्रहण, शनिश्चर, माघ मास, नव-रात्रि का स्नान किया। नव-रात्रि व्रत किया। अज्ञानियों के माने हुए व्रतादि किये, कराये। वितिंगिच्छाः—धर्म संबंधी फल में संदेह किया। जिन वीतराग अरिहंत भगवान् धर्म के आगार विश्वोपकार-सागर, मोक्षमार्ग दातार इत्यादि गुणयुक्त जान कर पूजा न की। इस-लोक परलोक सम्बन्धी भोग-वांछा के लिए पूजा की। रोगांतिक कष्ट के आने पर क्षीण वचन बोला। मानता मानी। महात्मा, महासती के आहार पानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि की निंदा की। मिथ्यादृष्टि की पूजा-प्रभावना देख कर प्रशंसा तथा प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना। मिथ्यात्व को धर्म कहा। इत्यादि श्री-सम्यक्त्व व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

पहले स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पाँच अतिचार--"वह बंध छव्विच्छेए" द्विपद, चतुष्पद आदि जीव को क्रोध-वश ताडन किया, घाव लगाया, जकड़ कर बांधा। अधिक बोझ लादा। निर्लांछन-कर्म, नासिका छिदवायी, कर्ण छेदन करवाया, खस्सी किया। दाना घास पानी की समय पर सार-संभाल न की, लेन देन में किसी बदले किसी को भूखा रखा, पास खड़ा होकर मरवाया, कैद करवाया। सड़े हुए धान को बिना सोधे काम में लिया, तथा अनाज बिना शोधे पिसवाया, धूप में सुखाया। पानी यतना से न छाना। ईंधन, लकड़ी, उपले, गोहे आदि बिना देखे जलाये उनमें सर्प, बिच्छू, कानखजूरा, कीड़ी, मकौड़ी, सरोला, मांकड, जुआ, गिंगोड़ा आदि जीवों का नाश हुआ। किसी जीव को दबाया, दुःख दिया। दुःखी जीव को अच्छी जगह पर न रखा। चूंटी (कोड़ी) मकोड़ी के अंडे नाश किये लीख, फोडा, दीमक, कीड़ी, मकोड़ी, घीमेल, कातरा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूडेल, पतंगिआ, देडका, अलसियां, ईअल, कूंदा, डांस, मसा, मगतरां, माखी, टिड्डी प्रमुख जीव का नाश किया। चील, काग, कबूतर आदि के रहने की जगह का नाश किया। घौंसले तोड़े। चलते फिरते या अन्य कुछ काम काज करते निर्दयपना किया। भली प्रकार जीव रक्षा न की। बिना छाने पानी से स्नानादि काम-काज किया, कपड़े धोये। यतना-पूर्वक काम-काज न किया। चारपाई, खटोला, पीढ़ा, पीढ़ी आदि धूप में रखे। डंडे आदि से झटकाये। जीवाकुल (जीव संसक्त) जमीन को लीपा। दलते, कूटते, लीपते या अन्य कुछ काम-काज करते यतना न की। अष्टमी, चौदस, आदि तिथि का नियम तोड़ा। धूनी करवाई, इत्यादि पहले स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

दूसरे स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रत के पाँच अतिचार—"सहसा रहस्सदारे" सहसाकार—बिना विचारे एक दम किसी को अयोग्य आल कलंक दिया। स्व-स्त्री सम्बन्धी गुप्त बात प्रगट की, अथवा अन्य किसी का मंत्र-भेद, मर्म प्रकट किया। किसी को दुःखी करने के लिए खोटी सलाह दी, झूठा लेख लिखा, झूठी साक्षी दी। अमानत ते खयानत की। किसी की धरोहर रखी हुई वस्तु वापिस न दी। कन्या,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौ, भूमि सम्बन्धी लेन-देन में लड़ते-झगड़ते, वाद-विवाद में मोटा झूठ बोला। हाथ-पैर आदि की गाली दी। मर्म वचन बोला। इत्यादि दूसरे स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

तीसरे स्थूल-अदत्तादान-विरमण-व्रत के पाँच अतिचार—"तेनाहडप्पओगे०" घर, बाहिर, खेत, खला में, बिना मालिक के भेजे वस्तु ग्रहण की, अथवा आज्ञा बिना अपने काम में ली। चोरी की वस्तु ली। चोर को सहायता दी। राज्य-विरुद्ध कर्म किया। अच्छी, बुरी, सजीव, निर्जीव नई पुरानी वस्तु का मेल संमेल किया। जकात की चोरी की, लेते देते तराजू की डंडी चढ़ाई। अथवा देते हुए कमती दिया, लेते हुए अधिक लिया, रिश्वत खाई। विश्वास-घात किया, ठगी की, हिसाब-किताब में किसी को धोखा दिया। माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री आदिकों के साथ ठगी कर किसी को दिया, अथवा पूंजी अलहदा रखी। अमानत रखी हुई वस्तु से इन्कार किया। पड़ी हुई चीज उठाई, इत्यादि तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण-व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथे स्वदारा-संतोष-परस्त्री-गमन-विरमण-व्रत के पाँच अतिचार—"अप्परिगहिया इत्तर" परस्त्री गमन किया। अविवाहिता, कुमारी, विधवा, वेश्यादिक से गमन किया। अनंगक्रीड़ा की। काम आदि की विशेष जागृति की अभिलाषा से सराग वचन कहा। अष्टमी, चौदस आदि पर्वतिथि का नियम तोड़ा। स्त्री के अंगोपांग देखे, तीव्र अभिलाषा की। कुविकल्प चिंतन किया। पराये नाते जोड़े। गुड्डे-गुड्डियों (ढींगला ढींगली) का विवाह किया या कराया। अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, स्वप्न, स्वप्नांतर हुआ। कुस्वप्न आया। स्त्री, नट, विट, भांड, वेश्यादिक से हास्य किया। स्वस्त्री में सन्तोष न किया, इत्यादि चौथे स्वदारा-संतोष-परस्त्री-गमन-विरमण-व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

पांचवें स्थूल-परिग्रह-परिमाण-व्रत के पांच अतिचार—"धण-धन्न-खित्त-वत्थू०" धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, सोना चांदी, बर्तन आदि द्विपद्—दास, दासी,—चतुष्पद—गौ, बैल, घोड़ा आदि, नव प्रकार के परिग्रह का नियम न लिया, लेकर बढ़ाया। अथवा अधिक देखकर मूर्च्छा-वश माता, पिता, पुत्र, स्त्री के नाम किया। परिग्रह का परिमाण नहीं किया। करके भुलाया। याद न किया। इत्यादि पांचवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थूल-परिग्रह-परिमाण-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ।

छट्ठे दिक्-परिमाण-व्रत के पांच अतिचार—"गमणस्स उ परिमाणे०" ऊर्ध्व–दिशि, अधो-दिशि, तिर्यग्-दिशि जाने-आने के नियमित परिमाण उपरांत भूल से गया । नियम तोड़ा । परिमाण उपरांत सांसारिक कार्य के लिये अन्य देश से वस्तु मँगवाई । अपने पास से वहाँ भेजी । नौका–जहाज़ आदि द्वारा व्यापार किया । वर्षाकाल में एक ग्राम से दूसरे ग्राम में गया । एक दिशा से परिमाण को कम करके दूसरी दिशा में अधिक गया । इत्यादि छट्ठे दिक्-परिमाण व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ।

सातवें भोगोपभोग-व्रत के भोजन आश्रित पाँच अतिचार और कर्म आश्रित पंद्रह अतिचार—"सच्चित्ते पडिबद्धे०" सचित्त, खान-पान की वस्तु नियम से अधिक स्वीकार की। सचित्त से मिली हुई वस्तु खाई । तुच्छ औषधि का भक्षण किया । अपक्व आहार, दुपक्व आहार किया । कोमल इमली, बूँट,* भुट्टे, फलियां आदि वस्तु खाईं । सचित्त१- दव्व२-

* हरे चने ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विगई,३-वाणह४-तंबोल५-वत्थ६-कुसुमेसु७। वाहण८-सयण९-विलेवण१०-बंभ११-दिसि१२-णहाण१३-भत्तेसु१४ ॥ १ ॥ ये चौदह नियम लिये नहीं, ले कर भुलाये। बड़,१ पीपल,२ पिलंखण३ कठुंबर,४ गूलर,५ ये पाँच फल, मदिरा,६ मांस,७ शहद,८ मक्खन९ ये चार महाविगई, बरफ,१० ओले११ कच्ची मिट्टी, (विष)१२ रात्रि-भोजन,१३ बहु-बीजा-फल,१४ अचार,१५ घोलवडे, १६ द्विदल,१७ बेंगण,१८ तुच्छ-फल, १९ अजाना-फल,२० चलित-रस,२१ अनंतकाय,२२ ये बाईस अभक्ष्य। सूरन-जिमीकंद, कच्ची-हलदी, सतावरी, कच्चा नरकचूर, अदरक, कुवांरपाठा, थोर, गिलोय, लसुन, गाजर, गठा-प्याज, गोंगलू, कोमल-फल-फूल-पत्र, थेगी, हरा मोत्था, अमृत वेल, मूली, पदबहेडा, आलू, कचालू, रतालू, पिंडालू, आदि अनंतकाय का भक्षण किया। दिवस अस्त होने पर भोजन किया। सूर्योदय से पहले भोजन किया। तथा कर्मतः पंद्रह—कर्मादान :—इंगाल-कम्मे, वण-कम्मे, साडि-कम्मे, आडी-कम्मे फोडी-कम्मे, ये पांच कर्म। दंत-वाणिज्ज, लक्ख-वाणिज्ज, रस-वाणिज्ज, केस-वाणिज्ज, विस-वाणिज्ज, ये पांच वाणिज्ज। जंत पिल्लण-कम्म, निल्लंछन-कम्म, दवग्गिदावणिया, सर-दह-तलाय-सोसणया, असइ पोसणया ये पाँच सामान्य, कुल पंद्रह कर्मादान महा आरम्भ किये कराये करते हुए को अच्छा समझा। श्वान बिल्ली आदि पोषे वाले महासावद्य पापकारी कठोर काम किया। इत्यादि सातवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगोपभोग व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

आठवें अनर्थदंड के पांच अतिचार—"कंदप्पे कुक्कुइए०" कंदर्पः—कामाधीन होकर नट, विट वेश्या आदि से हास्य खेल क्रीडा कुतूहल किया। स्त्री पुरुष के हाव-भाव, रूप, शृंगार संबंधी वार्ता की। विषय-रस-पोषक कथा की, स्त्री-कथा, देश-कथा, भक्त-कथा, राज-कथा, ये चार विकथाएँ कीं। पराई भांजगढ़ की। किसी की चुगलखोरी की। आर्त्त-ध्यान, रौद्र-ध्यान ध्याया। खांडा, अटार, कशि, कुल्हाड़ी, रथ, ऊखल, मूसल, अग्नि, चक्की आदि वस्तुएँ दाक्षिण्यता-वश किसी को मांगी दीं। पापोपदेश दिया। अष्टमी चतुर्दशी के दिन दलने—पीसने आदि का नियम तोड़ा। मूर्खता से असंबद्ध वाक्य बोला। प्रमादाचरण सेवन किया। घी, तैल, दूध, दही, गुड़, छाछ आदि का भाजन खुला रखा, उसमें जीवादि का नाश हुआ। बासी मक्खन रखा और तपाया। नहाते-धोते दातुन करते जीव आकुलित मोरी में पानी डाला। झूले में झूला। जुआ खेला। नाटक आदि देखा। ढोर (डंगर) खरीदवाये। कर्कश बचन कहा। किचकिची ली। ताडना-तर्जना की। मत्सरता धारण की। शाप दिया। भैंसा, साँढ, मेंढा, मुरगा, कुत्ते, आदि लड़वाये या इनकी लड़ाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखी। ऋद्धिमान् की ऋद्धि देख ईर्षा की। मिट्टी, नमक, धान, बिनोले बिना कारण मसले। हरी वनस्पति खूंदी। शस्त्रादि बनवाये। रागद्वेष के वश से एक का भला चाहा एक का बुरा चाहा। मृत्यु की वांछा की। मैना, तोते, कबूतर, बटेर, चकोर आदि पक्षियों को पिंजरे में डाला। इत्यादि आठवें अनर्थ-दंड-विरमण-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

नवमें सामायिक व्रत के पांच अतिचार—"तिविहे दुप्पणिहाणे०" सामायिक में संकल्प विकल्प किया। चित्त स्थिर न रखा। सावद्य वचन बोला। प्रमार्जन किये बिना शरीर हिलाया, इधर उधर किया। शक्ति होने पर भी सामायिक न किया। सामायिक में खुले मुंह बोला। नींद ली। विकथा की। घर संबंधी विचार किया। दीपक या बिजली का प्रकाश शरीर पर पड़ा। सचित्त वस्तु का संघट्टन हुआ। स्त्री तिर्यंच आदि का निरंतर परस्पर संघट्टन हुआ। मुहपत्ति संघट्टी। सामायिक अधूरा पारा, बिना पारे उठा। इत्यादि नवमें सामायिक व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

दसवें देशावकाशिक व्रत के पांच अतिचार—"आणवणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेसवणे० आणवण-प्पओगे, पेसवण-प्पओगे, सद्दाणुवाई, रूवाणुवाई बहिया-पुग्गल-पक्खेवे। नियमित भूमि में बाहिर से वस्तु मंगवाई। अपने पास से अन्यत्र भिजवाई। खुंखारा आदि शब्द करके, रूप दिखाके या कंकर आदि फेंक कर अपना होना मालूम कराया। इत्यादि दसवें देशावकाशिक व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत के पांच अतिचार 'संथारुच्चार विही ०' अप्पडिलेहिअ, दुप्पडि-लेहिअ, सिज्जासंथारए। अप्पडिलेहिय दुप्पडि-लेहिय उच्चार पासवण भूमि। पौषध लेकर सोने की जगह बिना पूंजे–प्रमार्जे सोया। स्थंडिल आदि की भूमि भली प्रकार शोधी नहीं। लघु-नीति बड़ी-नीति करने या परठने के समय "अणुजाणाह जस्सुग्गहो" न कहा। परठे बाद तीन बार 'वोसिरे' न कहा। जिनमंदिर और उपाश्रय में प्रवेश करते हुए 'निसीहि' और बाहिर निकलते हुए 'आवस्सही' तीन बार न कही। वस्त्र आदि उवधि की पडिलेहणा न की। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय का संघट्टन हुआ। संथारा पोरिसी पढ़नी भुलाई। बिना संथारे ज़मीन पर सोया। पोरिसी में नींद ली, पारना आदि की चिंता की। समय पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देववंदन न किया, प्रतिक्रमण न किया। पौषध देरी से लिया और जल्दी पारा, पर्व-तिथि को पोसह न लिया। इत्यादि ग्यारहवें पौषध व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

बारहवें अतिथि-संविभाग व्रत के पाँच अतिचार—'सचित्ते निक्खिवणे०' सचित्त वस्तु के संघट्टे वाला अकल्पनीय आहार पाती साधु–साध्वी को दिया। देने की इच्छा से सदोष वस्तु को निर्दोष कही। देने की इच्छा से पराई वस्तु को अपनी कही। न देने की इच्छा से निर्दोष वस्तु को सदोष कही। न देने की इच्छा से अपनी वस्तु को पराई कहा। गोचरी के समय इधर-उधर हो गया। गोचरी का समय टाला। बेवक्त साधु महाराज से प्रार्थना की। आये हुए गुणवान् की भक्ति न की। शक्ति के होते हुए स्वामी-वात्सल्य न किया। अन्य किसी धर्मक्षेत्र को पड़ता देख कर मदद न की। दीन–दुखी पर अनुकंपा न की। इत्यादि बारहवें अतिथि-संविभाग-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

संतोषणा के पांच अतिचार—"इहलोए परलोए०" इहलोगासंसप्पओगे परलोगा-संसप्पओगे। जीविआसंसप्पओगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरणासं-सप्पओगे । कामभोगासंसप्पओगे । धर्म के प्रभाव से इह लोक संबंधी राजऋद्धि भोगादि की वांछा की । परलोक में देव, देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि पदवी की इच्छा की । सुखी अवस्था में जीने की इच्छा की । दुःख आने पर मरने की वांछा की । इत्यादि संलेखणा-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

तपाचार के बारह भेद—छः बाह्य छः आभ्यंतर। "अणसणमूणोअरिया०" अनशनः—शक्ति के होते हुए पर्वतिथि को उपवास आदि तप न किया । ऊनोदरीः—दो चार ग्रास कम न खाये । वृत्तिसंक्षेपः—द्रव्य—खाने की वस्तुओं का संक्षेप न किया । रस-विगय त्याग न किया। कायक्लेश—लोच आदि कष्ट न किया। संलीनता-अंगोपांग का संकोच न किया । पच्चक्खाण तोड़ा । भोजन करते समय एकासणा, आयंबिल, प्रमुख में चौकी, पटड़ा, अखला आदि हिलता ठीक न किया। पच्चक्खाणा पारना भुलाया, बैठते नवकार न पढ़ा । उठते पच्चक्खाण न किया । निवि, आयंबिल, उपवास आदि तप में कच्चा पानी पीया । वमन हुआ । इत्यादि बाह्य तप संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभ्यंतर तप–"पायछित्तं विणओ०" शुद्ध अंतःकरण पूर्वक गुरु महाराज से आलोचना न ली। गुरु की दी हुई आलोचना संपूर्ण न की। देव, गुरु, संघ, साधर्मी का विनय न किया। बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी आदि की वेयावच्च (सेवा) न की। वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा रूप पांच प्रकार का स्वाध्याय न किया। धर्म-ध्यान, शुक्ल-ध्यान ध्याया नहीं। आर्त्त-ध्यान, रौद्र-ध्यान ध्याया। दुःख-क्षय, कर्म-क्षय निमित्त दस बीस लोगस्स का काउस्सग्ग न किया। इत्यादि आभ्यंतर (भीतरी) तप संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

वीर्याचार के तीन अतिचार—'अणिगूहिअ बल-विरिओ०' पढ़ते, गुणते, विनय वेयावच्च, देवपूजा, सामायिक, पौषध, दान, शील, तप, भावनादिक धर्म-कृत्य में, मन, वचन, काया का बल-वीर्य पराक्रम फोरा नहीं। विधिपूर्वक पंचांग खमा-समण न दिया। द्वादशावर्त्त वंदन की विधि भली प्रकार न की। अन्य चित्त निरादर से बैठा। देव वंदन, प्रतिक्रमण में जल्दी की, इत्यादि वीर्याचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

"नाणाई अट्ठ पइवय, समसंलेहण पण पन्नर कम्मेसु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारस तब विरिअ तिगं, चउव्वीसं सय अइयारा ॥"

"पडिसिद्धाणं करणे०" प्रतिषेध—अभक्ष्य अनंतकाय बहुबीज भक्षण, महारंभ, परिग्रहादि किया। देवपूजन आदि षट्कर्म, सामायिकादि छह आवश्यक, विनयादिक, अरिहंत की भक्ति प्रमुख करणीय कार्य किये नहीं। जीवाजीवादि सूक्ष्म विचार की सद्दहणा न की। अपनी कुमति से उत्सुत्र प्ररूपणा की तथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति-अरति, परपरिवाद, माया-मृषावाद, मिथ्यात्व-शल्य, ये अठारह पाप-स्थान किये, कराये, अनुमोदे। दिनकृत्य प्रति-क्रमण, विनय, वैयावृत्य न किया। और भी जो कुछ वीतराग की आज्ञा से विरुद्ध किया, कराया या अनुमोदन किया। इन चार प्रकार के अतिचारों में जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

एवंकारे श्रावकधर्म सम्यक्त्व मूल बारह व्रत संबंधी एक सौ चौबीस अतिचारों में से जो कोई अतिचार पक्ष-दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपयोगी विषयोंका सङ्ग्रह

[१]

मुहपत्तीके पचास बोल

मुहपत्ती पडिलेहणके सम्बन्धमें अधोलिखित पचास बोल विचारे जाते हैं:—

सूत्र, अर्थ, तत्त्व करी सद्दहूँ।	१
सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय परिहरूँ।	३
कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरूँ।	३
सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, आदरूँ।	३
कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरूँ।	३
ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरूँ।	३
ज्ञान–विराधना, दर्शन–विराधना, चारित्र–विराधना परिहरूँ।	३
मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरूँ।	३
मनो–दण्ड, वचन–दण्ड, काय–दण्ड–परिहरूँ।	३
	२५
हास्य, रति, अरति परिहरूँ।	३
भय, शोक, जुगुप्सा परिहरूँ।	३
कृष्ण–लेश्या, नील–लेश्या, कापोत–लेश्या परिहरूँ।	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसगारव, ऋद्धिगारव, सातागारव परिहरूँ।	३
मायाशल्य, नियाणशल्य, मिथ्यात्वशल्य परिहरूँ।	३
क्रोध, मान परिहरूँ।	२
माया, लोभ परिहरूँ।	२
पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकायकी रक्षा करूँ।	३
वायुकाय, वनस्पतिकाय त्रसकायकी जयणा करूँ।	३
	५०

वृद्धसम्प्रदायके अनुसार ये 'बोल' मनमें बोले जाते हैं और इनका अर्थ विचारा जाता है। इसमें 'उपादेय' और 'हेय' वस्तुओं-का विवेक अत्यन्त बुद्धिमानीसे किया गया जैसे कि—प्रवचन यह तीर्थस्वरूप है, इसलिए प्रथम इसके अङ्गरूप 'सूत्र और अर्थको तत्त्वपूर्वक श्रद्धा करनी' अर्थात् सूत्र और अर्थ दोनोंका तत्त्व-रूप–सत्यरूप मानकर उसमें श्रद्धा रखनी चाहिये और उस श्रद्धामें अन्तरायरूप "सम्यक्त्व–मोहनीय, मिश्र–मोहनीय और मिथ्यात्व–मोहनीय" ये तीन प्रकारके मोहनीय कर्म होनेसे इनका त्याग करनेकी भावना करनी चाहिये। मोहनीय कर्ममें भी राग मुख्य-रूपेण परिहरणीय है। उसमें प्रथम 'कामराग, फिर स्नेहराग और अन्तमें दृष्टिरागको छोड़ना चाहिये; क्योंकि उक्त प्रकारका राग दूर हुए बिना सुदेव, सुगुरु और सुधर्मका आदर नहीं हो सकता। यहाँ सुदेव, सुगुरु और सुधर्मकी महत्ताका विचार कर उनका आदर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेकी भावना करनी चाहिये। तथा कुदेव, कुगुरु और कुधर्मको परिहरनेका दृढ़ सङ्कल्प करना चाहिये। यदि इतना हो तो ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी आराधना जिसका कि दूसरा नाम 'सामायिक' है, उसकी साधना यथार्थरूपमें हो सके। ऐसी आराधना करनेके लिये 'ज्ञान–विराधना, दर्शन–विराधना और चारित्र–विराधनाका परिहरण आवश्यक है। संक्षेपमें 'मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और काय-गुप्ति' आदरणीय अर्थात् उपादेय है और 'मनोदण्ड, वचनदण्ड एवं कायदण्ड' परिहरणीय हैं।

इस प्रकार 'उपादेय' और 'हेय' के सम्बन्धमें भावना करके फिर जो वस्तुएँ खास तौरपर त्याज्य हैं तथा जिनके बारेमें यतना करने खास आवश्यकता है, उसका विचार 'शरीरकी पडिलेहणा' के प्रसङ्गपर करना चाहिये, जो इस प्रकार है।

'हास्य, रति, अरति परिहरूँ", तथा "भय, शोक, जुगुप्सा परिहरूँ" अर्थात् हास्यादि षट्क जो चारित्र मोहनीय–कषाय–प्रकृतिसे उत्पन्न होता है, उसका त्याग करूँ; जिससे मेरा चारित्र सर्वांशमें निर्मल बने।

"कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या परिहरूँ क्योंकि इन तीनों लेश्याओं में अशुभ अध्यवसाओंकी प्रधानता है और उसका फल आध्यात्मिक पतन है।

"रसगारव, ऋद्धिगारव और सातागारव परिहरूँ" क्योंकि इसका फल भी साधनामें विक्षेप और आध्यात्मिक पतन है।

इसके साथ "मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यात्वशल्य भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहरूं" क्यों कि ये धर्मकरणीके अमूल्य फलका नाश करने-वाले हैं।

इन सबका उपसंहार करते हुए मैं ऐसी भावना रखता हूं कि 'क्रोध और मान तथा माया और लोभ; परिहरूँ' जो कि क्रमशः राग और द्वेषके स्वरूप हैं। और सामायिक साधनाको सफल बनानेवाली जो मैत्री–भावना है, उसको मैं यथाशक्य प्रयोगमें लाकर 'पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय' इन छः कायोंके जीवोंकी यतना करूँ।' यदि इतना करूँ तो यह मुहपत्तीरूपी साधुताका प्रतीक जो मैंने हाथमें लिया है, वह सफल हुआ गिना जाय।

मुहपत्ती तथा अङ्गकी प्रतिलेखना करते समय ये बोल नीचे लिखे अनुसार बोलने चाहिये :—

मुहपत्ति पडिलेहते समय विचारने योग्य बोलः—

(१) प्रथम घुटनोंके बल बैठो, दोनों हाथ दोनों पाँवोंके बीचमें रखो, मुहपत्तीकी घड़ी खोलो, दोनों हाथोंसे उसके दोनों कोने पकड़ो और मुहपत्तीके सामने दृष्टि रखो। फिर मनमें बोलो कि (नीचे जो बड़े अक्षर दिये हैं वे मनमें बोलने के हैं और उनका अर्थ विचारना चाहिये)।

सूत्र

[इस समय मुहपत्तीके एक भागकी प्रतिलेखना होती है अर्थात उसके एक ओरके भागका बराबर निरीक्षण किया जाता है।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र

[इस समय मुहपत्तीके एक भागकी प्रतिलेखना होती है अर्थात् उसके एक ओरके भागका बराबर निरीक्षण किया जाता है।]

२. फिर उसको बाँये हाथपर रखकर बाँये हाथमें पकड़ा हुआ कोना दाँये हाथमें पकड़ो और दाँये हाथमें पकड़ा हुआ कोना बाँये हाथमें पकड़कर फिर सामने लाकर मनमें बोलो कि :—

अर्थ, तत्त्व करी सद्दहुं ।

[सूत्र और अर्थ दोनोंको तत्त्वरूप अर्थात् सत्यस्वरूप समझूँ और उसकी प्रतीति करके उसपर श्रद्धा करूँ। उस समय मुहपत्तीके दूसरे भागकी प्रतिलेखना होती है अर्थात् मुहपत्तीके दूसरे भागका बराबर निरीक्षण किया जाता है।]

३. फिर मुहपत्तीका बाँये हाथकी ओरका भाग तीन बार हिलाओ, उस समय मनमें धीरेसे बोलो कि :—

सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय परिहरूँ ।

[दर्शनमोहनीय–कर्मकी तीन प्रकृतियाँ दूर करने योग्य हैं, अर्थात् मुहपत्ती यहाँ तीन बार हिलायी जाती है।]

४. फिर बाँये हाथपर मुहपत्ती रख, पलटकर, दाँये हाथकी ओरका भाग तीन बार हिलाओ। उस समय मनमें बोलो कि :—

कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरूँ ।

[तीनों प्रकारके राग दूर करने योग्य हैं अर्थात् मुहपत्ती यहाँ तीन बार हिलायी जाती है।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. मुहपत्तीका मध्य भाग बाँये हाथपर डालकर बीचका आवरण पक कर उसे दुहरी करो। [यहाँसे मुहपत्तीका समेटना आरम्भ होता है।]

६. फिर दाँये हाथकी चार अँगुलियोंके तीनों मध्यभागमें मुहपत्तीको भरो।

७. फिर बाँये हाथकी हथेलीका स्पर्श न हो इस तरह तीन बार कोनी तक लाओ और प्रत्येक बार बोलो कि—

सुदेव, सुगुरु, सुधर्म आदरूँ।

[सुदेव, सुगुरु और सुधर्म सम्बन्धी श्रद्धा अपनेमें प्रविष्ट हो ऐसी इच्छा है। अतः मुहपत्तीको अँगुलियोंके अग्रभागसे अन्दर लानेकी क्रिया की जाती है। इसमें पहली बार मुहपत्ती प्रायः अँगुलीके मूल तक लानी चाहिये और उस समय **'सुदेव'** बोलना चाहिये। फिर दूसरी बार मुहपत्तीको हथेलीके मध्यभाग तक लानी चाहिये और उस समय **'सुगुरु'** बोलना चाहिये। तथा तीसरी बारमें मुहपत्ती हाथकी कोनी तक लानी चाहिये और उस समय **'सुधर्म आदरूँ'**। इतने शब्द बोलने चाहिये।]

८. अब ऊपरकी रीतिसे विपरीत मुहपत्तीको तीन बार कोनीसे अँगुलीके अगले पर्व तक ले जाओ और कुछ निकाल देते हो उस तरह से बोलो कि—

कुदेव, कुगुर, कुधर्म, परिहरूँ।

[यह एक प्रकारकी प्रमार्जन-विधि हुई। इसलिये इसकी क्रिया भी ऐसी ही रखी गयी है।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. इसी प्रकार तीन बार हथेलीसे कोनी तक मुहपत्तीको ऊपर रखकर अन्दर लो और बोलो कि :—

ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरूँ ।

[इन तीनों वस्तुओंको अपने भीतर लेनेके लिए इनका व्यापक न्यास किया जाता है ।]

१०. अब ऊपरकी क्रियासे विपरीत तीन बार कोनीसे हाथकी अँगुली तक मुहपत्ती ले जाओ और बोलो कि—

ज्ञान-विराधना, दर्शन-विराधना, चारित्र-विराधना परिहरूँ ।

[ये तीन वस्तुएँ बाहर निकालने की हैं, तदर्थ उसका घिसकर प्रमार्जन किया जाता है ।]

११. अब मुहपत्तीको तीन बार अन्दर लो और बोलो कि—

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरूँ ।

[इन तीनों वस्तुओंको अपने भीतर लेने के लिए इनका व्यापक न्यास किया जाता है ।]

१२. अब तीन बार मुहपत्तीको कोनीसे हाथकी अँगुली तक ले जाओ और बोलो कि—

मनो-दण्ड, वचन-दण्ड, काय-दण्ड परिहरूँ ।

[ये तीनों वस्तुएँ बाहर निकालनेकी हैं इसलिए इनका प्रमार्जन किया जाता है ।]

शरीरका पडिलेहण करते समय विचारनेके २५ बोल ।

[इन बोलोंके समय अभ्यन्तर प्रमार्जन करना आवश्यक होनेसे हर समय प्रमार्जनको क्रिया की जाती है ।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. अब अँगुलीमें भरी हुई मुहपत्ती प्रदक्षिणाकारसे अर्थात् दाँये हाथपर दोनों तरफ तथा नीचे इस तरह तीन बार प्रमार्जन करो और बोलो कि—

हास्य, रति, अरति परिहरूँ ।

२. इसी प्रकार बाँये हाथकी अंगुलियोंके मध्यमें मुहपत्ती रखकर दाँये हाथमें प्रदक्षिणाकारसे बीचमें और दोनों तरफ प्रमार्जन करो और मनमें बोलो कि—

भय, शोक, जुगुप्सा परिहरूँ ।

३. फिर अँगुलीके मध्य भागसे मुहपत्ती निकालकर दुहरी ही लेकर, मुहपत्तीके दोनों भाग दोनों हाथोंसे पकड़कर मस्तकपर बीचमें और दाँये–बाँये दोनों भागोंपर तीन बार प्रमार्जना करते हुए अनुक्रमसे मनमें बोलो कि—

कृष्ण–लेश्या, नील–लेश्या, कापोत–लेश्या परिहरूँ ।

४. फिर बीचमें और दाँये–बाँये दोनों भागोंमें तीन बार मुख-पर प्रमार्जना करो और मनमें बोलो कि—

रसगारव, ऋद्धिगारव, सातागारव परिहरूँ

५. ऐसे ही बीचमें और दाँये–बाँये दोनों भागोंमें छातीपर तीन बार प्रमार्जना करो और क्रमशः मनमें बोलो कि—

मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यात्वशल्य परिहरूँ ।

६. अब मुहपत्ती दोनों हाथमें चौड़ी पकड़कर दाँये कन्धेपर प्रमार्जना करो और बोलो कि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध परिहरूँ ।

७. इसी प्रकार मुहपत्ती बाँये हाथमें रखकर बाँये कन्धेपर प्रमार्जन करो और बोलो कि—

मान परिहरूँ ।

८. इसी तरह मुहपत्ती बाँये हाथमें रखकर दाँयी कोखमें प्रमार्जना करो और बोलो कि—

माया परिहरूँ ।

९. फिर मुहपत्ती दाँये हाथमें पकड़कर बाँयी कोखमें प्रमार्जन करते हुए बोलो कि—

लोभ परिहरूँ ।

१०. फिर दाँये पैरके बीचमें और दोनों भागोंमें चरवलेसे तीन बार प्रमार्जना करते हुए बोलो कि—

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकायकी रक्षा करूँ ।

११. इसी प्रकार बाँये पैरके बीचमें और दोनों भागोंमें प्रमार्जना करते हुए बोलो कि—

वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकायकी जयणा करूँ ।

सूचना

(१) 'मुहपत्तीका पडिलेहण' वस्तुतः अनुभवी व्यक्तिके पाससे सीखना चाहिये । यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र कराया है ।

(२) दसवें नियममें दाँया पैर बतयाया है, वहाँ बाँया पैर और ग्यारहवें नियममें बाँया पैर बतलाया है, वहाँ दाँया पैर, ऐसा विधि-भेद अन्य ग्रन्थोंमें मिलता है ।

(३) साध्वीजी को छातीकी ३ और कन्धे तथा कोंखकी ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमार्जना मिलकर कुल ७ नहीं होती और शेष १८ होती हैं। स्त्रियोंको मस्तककी तीन भी नहीं होता हैं अतः कुल १५ होती है।

ध्यान रहे कि मुहपत्ती पडिलेहणकी इस विधिका सामायिक करते समय तथा पूर्ण करते समय बराबर उपयोग हो।

[२]

प्रतिक्रमण सम्बन्धी उपयोगी सूचनाएँ

१–समय

दैवसिक प्रतिक्रमण दिनके अन्तिम भागमें अर्थात् सूर्यास्त समय में करना चाहिये। शास्त्रोंमें कहा है कि—

"अद्ध निवुड्ढे बिंबे, सुत्तं कड्ढन्ति गीयत्था।
इय वयण–पमाणेणं, देवसियावस्सए कालो॥"

सूर्यबिम्बका अर्धभाग अस्त हो तब गीतार्थ प्रतिक्रमण-सूत्र कहते हैं। इस वचन–प्रमाणसे दैवसिक–प्रतिक्रमणका समय जानना। तात्पर्य यह है कि प्रतिक्रमण सूर्यास्तके समय करना चाहिये।

शास्त्रमें **'उभओ–कालमावस्सयं करेइ'** ऐसा जो पाठ आता है, वह भी प्रतिक्रमण सन्ध्या–समयमें करनेका सूचन करता है।

अपवाद–मार्गमें दैवसिक–प्रतिक्रमण दिनके तीसरे प्रहरसे मध्य-रात्रि होनेसे पूर्व तक हो सकता है और योगशास्त्रवृत्तिके अभिप्राया-नुसार मध्याह्नसे अर्धरात्रि पर्यन्त हो सकता है।

रात्रिक–प्रतिक्रमण मध्यरात्रिसे मध्याह्न तक हो सकता है— कहा है कि:—

'उग्घाडपोरिसिं जा, राइअमावस्सयस्स चुन्नीए।
ववहाराभिप्पाया, भणंति जाव पुरिमड्ढं॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक चूर्णिके अभिप्रायसे रात्रिक–प्रतिक्रमण उग्घाड–पोरिसी तक अर्थात् सूत्र–पोरिसी पूर्ण होने तक और व्यवहार–सूत्रके अभिप्रायसे मध्याह्न तक कर सकते हैं।

पाक्षिक–प्रतिक्रमण पक्षके अन्तमें अर्थात् चतुर्दशीके दिन किया जाता है। चातुर्मासिक–प्रतिक्रमण चातुर्मासके अन्तमें अर्थात् कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी, फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी और आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीके दिन किया जाता है तथा सांवत्सरिक–प्रतिक्रमण संवत्सरके अन्तमें अर्थात् भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीके दिन किया जाता है।

२–स्थान

गुरु महाराजका योग हो तो प्रतिक्रमण उनके साथ करना, अन्यथा उपाश्रयमें या अपने घरपर करना। आ. चू. में कहा है कि– **"असइ-साहु-चेइयाणं पोसहसालाए वा सगिहे वा सामाइयं वा आवस्सयं वा करेइ।"** साधु और चैत्यका योग न हो तो श्रावक पोषधशालामें अथवा अपने घरपर भी सामायिक अथवा आवश्यक (प्रतिक्रमण) करे।" चिरन्तनाचार्यकृत प्रतिक्रमण–विधिकी गाथामें कहा है कि—

"पंचविहायार–विसुद्धि–हेउमिह साहु सावओ वा वि।
पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरु–विरहे कुणइ इक्को वि॥

साधु और श्रावक पाँच प्रकारके आचारकी विशुद्धिके लिए गुरुके साथ प्रतिक्रमण करे और वैसा योग न हो तो अकेला भी करे।" (परन्तु उस समय गुरुकी स्थापना अवश्य करे। स्थापनाचार्यकी विधि पहले बतला चुके हैं।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३–शुद्धि

शुद्धिपूर्वक की हुई क्रिया अत्यन्त फलदायक होती है, इसलिए प्रतिक्रमण करनेवालेको शरीर, वस्त्र, और उपकरणकी शुद्धिका ध्यान रखना चाहिये।[1]

४–भूमि–प्रमार्जन

प्रतिक्रमणके लिए कटासन बिछानेसे पूर्व चरवलेसे भूमिका प्रमार्जन करना चाहिये।

५–अधिकार

प्रतिक्रमण साधु और श्रावकको प्रातः और सायं नियमित करना चाहिये। उसमें जो श्रावक व्रतधारी न हो उसको भी प्रतिक्रमण करना चाहिये, क्योंकि वह तृतीय वैद्यकी ओषधिके समान अत्यन्त हितकारी है। एक राजाके पास तीन वैद्य आये। उनमें पहले वैद्यके पास ऐसा रसायन था कि जो व्याधि हो तो उसको मिटा दे और न हो तो नवीन रोग उत्पन्न कर दे। दूसरे वैद्यके पास ऐसी ओषधि थी कि जिससे व्याधि हो तो मिट जाय और न हो तो नयो उत्पन्न न करे और तीसरे वैद्यके पास ऐसी औषधि थी कि जिससे व्याधि हो तो मिट जाय और न हो तो सर्व अंगोंको पुष्टिकर भविष्यमें होनेवाले रोगोंको भी रोक दे। इसी प्रकार प्रतिक्रमण भी अतिचार लगे हों तो उनको शुद्धि करता है और न लगें हों तो चारित्रधर्मकी पुष्टि करता है।[2]

---

१. उपकरणोंके बारेमें देखो–प्रबोधटीका भाग १ ला, परिशिष्ट पाँचवाँ।

२. प्रतिक्रमणका परमार्थ समझनेके लिए देखो–"प्रबोधटीका" भाग–२, परिशिष्ट तीसरा, 'प्रतिक्रमण अथवा पापमोचनकी पवित्र क्रिया'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६–प्रकीर्ण सूचना

प्रतिक्रमण समुदायके साथ बैठकर करना हो, तब अपनेसे बड़ोंका यथोचित विनय करना, शान्ति और शिष्टता का पालन करना तथा अपनेको आदेश मिला हो उस सूत्रके बोलनेमें सावधान रहना।

सूत्र संहिता–पूर्वक बोलना और उस समय अर्थका भी ध्यान रखना।

जहाँ–जहाँ जिस–जिस प्रकारकी मुद्राएँ करनेके लिये कहा हो, वहाँ–वहाँ उस–उस प्रकारकी मुद्राएँ करनी।

प्रतिक्रमणकी विधिके हेतुओंको बराबर समझकर उनके अनुसार लक्ष्य रखकर वर्तन करनेका प्रयत्न करना।

आन्तरिक उल्लास–पूर्वक किया हुआ प्रतिक्रमण कर्मके कठिन बन्धनोंको शीघ्र काट डालता है, यह लक्ष्यमें रखना चाहिये।

रात्रिका प्रतिक्रमण अत्यन्त मन्द स्वरसे करना।

सङ्केत

खमा० प्रणि० = खमासमण बोलकर प्रणिपात करके।

इच्छा = इच्छाकारेण संदिसह भगवान् !

[३]

दैवसिक प्रतिक्रमणकी विधि

(१) सामायिक

प्रथम सामायिक लेना।

(२) दिवस–चरिम–प्रत्याख्यान

फिर पानी पिया हो तो खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० मुह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्ती पडिलेहूं ?' ऐसा कहकर मुहपत्ती पडिलेहनेकी आज्ञा माँगनी और आज्ञा मिलनेपर 'इच्छं' कहकर मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनी।

यदि आहार किया हो तो मुहपत्तीका पडिलेहण करनेके पश्चात् दो बार 'सुगुरु–वंदण' सुत्त बोलकर द्वादशावर्त्त वन्दन करना। दूसरी बार सूत्र बोलते समय 'आवस्सियाए' यह पद नहीं कहना।

फिर अवग्रहमें खड़े रहकर ' इच्छकारी भगवन् ! पसाय करी पच्चक्खाणनो आदेश देशोजी' ऐसा कहना अर्थात् उस समय गुरु हों तो वे अथवा ज्येष्ठ व्यक्ति हों तो वे 'दिवस–चरिमं' का पाठ बोलकर पच्चक्खाण कराएँ।

यदि वैसा योग न हो तो स्वयं ही 'दिवस–चरिमं' पाठ बोलकर कर यथाशक्ति पच्चक्खाण करे और अवग्रहसे बाहर निकले।

(३) चैत्यवन्दनानि

तदनन्तर खमा० प्रणि० करके ' इच्छा० चेइयवंदणं करेमि ?' ऐसा कहकर गुरुके समक्ष चैत्यवन्दन करनेकी आज्ञा माँगनी। गुरु कहें–'करेह' तब 'इच्छं' कहकर ज्येष्ठ व्यक्ति अथवा स्वयं नीचे लिखे अनुसार पाठ बोलकर चैत्यवन्दन करे।

प्रथम योगमुद्रासे मङ्गलरूप आद्य स्तुति (चैत्यवन्दन) करनी। फिर 'जं किंचि' सूत्र तथा 'नमो त्थु णं' सूत्रके पाठ क्रमशः बोलकर खड़े होकर 'अरिहंत चेइआणं' सूत्र तथा 'अन्नत्थ' सूत्रके पाठ बोलने। बादमें एक नमस्कारका कायोत्सर्ग करना और उसको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाविधि पूर्णकर 'नवोऽर्हत्०' का पाठ बोलकर 'कल्लाणकंदं' थुइकी प्रथम गाथा बोलनी।[1]

फिर 'लोगस्स०' सूत्रका पाठ बोलकर, 'सव्वलोए अरिहन्त-चेइआणं करेमि काउस्सग्गं' सूत्र कहकर, 'अन्नत्थ०' सूत्र बोल-कर; एक नमस्कारका काउस्सग्ग करके 'कल्लाणकंदं' थुइकी दूसरी गाथा बोलनी।

तदनन्तर 'पुक्खरवरदीवड्ढे' सूत्र बोलकर 'सुअस्स भगवओ करेमि काउसग्गं, वंदणवत्तियाए' व 'अन्नत्थ०' सूत्र कहकर, एक नमस्कारका काउस्सग्ग कर, उसे पूर्णकर 'कल्लाणकंदं' थुइकी तीसरी गाथा बोलनी।

बादमें 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र कहकर 'वेयावच्चगराणं' सूत्र कहकर; फिर 'अन्नथ' सूत्र कहकर एक नमस्कारका काउसग्ग करके तथा उसे पूर्ण करके 'नमोऽर्हत्०' कहकर 'कल्लाणकंदं' थुइकी चौथी गाथा बोलनी।

फिर योगमुद्रासे बैठकर 'नमो त्थु णं' सूत्रका पाठ बोलना तथा 'भगवदादिवंदन' सूत्रका पाठ बोलकर चार खमा० प्रणि० करके भगवान्, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओंके लिये 'थोभ वंदन' करना।

फिर 'इच्छकारी समस्त श्रावकको वन्दन करता हूँ' ऐसे कहना।

(४) प्रतिक्रमणकी स्थापना

फिर 'इच्छा० देवसिअ-पडिक्कमणे ठाउं ?' ऐसा कहकर प्रति-

---

१. यहाँ दूसरी भी थोय बोल सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमणकी स्थापनाके सम्बन्धमें आज्ञा माँगनी और गुरु 'ठाएह' ऐसा कहें, तब 'इच्छं' कहकर दाहिना हाथ चरवलेपर अथवा कटासन-पर रखकर तथा मस्तक नीचा झुकाकर 'सव्वस्स वि' सूत्र बोलना।

(५) **प्रथम और द्वितीय आवश्यक** (सामायिक और चतुर्विंशति-स्तव)

फिरे खड़े होकर 'करेमि भंते' सूत्र तथा 'अइआरालोअण' सूत्र अर्थात् 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं, जो मे देवसिओ' सूत्र 'तस्स उत्तरी' सूत्र तथा 'अन्नत्थ' सूत्र बोलकर 'अइयार–वियारण–गाहा' (अतिचार विचार करनेकी गाथाओं) का काउस्सग्ग करना। यहाँ ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, तथा वीर्याचार में लगे हुए अतिचारोंका चिन्तन करके वे अतिचार याद रखने चाहिए। ये गाथाएँ नहीं आती हों तो आठ नमस्कारका काउस्सग्ग करना चाहिए। यह काउस्सग्ग पूर्ण करके 'लोगस्स' सूत्र प्रकट रीतिसे बोलना।

(६) **तीसरा आवश्यक** (गुरु-वन्दन)

इसके पश्चात् बैठकर तीसरे आवश्यककी मुहपत्ती पडिलेहना और द्वादशावर्त्त–वन्दन करना। उसमें दूसरी बार सूत्र बोलकर अवग्रहसे बाहर नहीं निकलना।

(७) **चौथा आवश्यक** (प्रतिक्रमण)

फिर 'इच्छा देवसिअं आलोउं' कहकर दैवसिक अतिचारोंकी आलोचना करनेकी अनुज्ञा माँगनी। गुरु कहें–'आलोएह' तब 'इच्छं' कहकर 'अइआरालोअण' –सुत्तका पाठ बोलना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादमें 'सात लाख' और 'अठारह पापस्थानक'का पाठ बोलना।

इसके पश्चात् 'सव्वस्स वि देवसिअ दुच्चिंतिअ, दुब्भासिअ, दुच्चिट्ठिअ इच्छा०' कहना और (गुरु कहें–'पडिक्कमेह' तब बोलना कि) 'इच्छं, तस्स मिच्छामि दुक्कडं' फिर वीरासनसे बैठना और न आता हो तो दाँया घुटना ऊँचा रखना। फिर एक नमस्कार, 'करेमि भंते' सूत्र तथा 'अइआरालोअण' सुत्तके पाठ–पूर्वक 'सावग–पडिक्कमण'–सुत्त ('वंदित्तु' सूत्र) बोलना। उसमें 'तस्स धम्मस्स केवलि–पन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओ मि' यह पद बोलते हुए खड़ा होना और अवग्रहसे बाहर निकलकर सूत्र पूरा करना।

फिर द्वादशावर्त्त वन्दन करना। उसमें दूसरे वन्दनके समय अवग्रहमें खड़े हों, तब 'इच्छा० अब्भुट्ठिओ मि अब्भिंतर देवसिअं खामेउं?' कहकर गुरुको खमानेको आज्ञा माँगनी। गुरु कहें—'खामेह' तब 'इच्छं' कहकर 'खामेमि देवसिअं' कहकर दाहिना हाथ० चरवलेपर रखकर 'जं किंचि अपत्तिअं' आदि पाठ बोलकर गुरुको खमाना।

फिर अवग्रहसे बाहर निकलकर द्वादशावर्त्त–वन्दन करना और दूसरी बारका पाठ पूरा हो तब वहीं खड़े रहकर 'आयरिय-उवज्झाए' सूत्र बोलना और अवग्रहसे बाहर निकलना।

(८) पाँचवाँ आवश्यक (कायोत्सर्ग)

तदनन्तर 'करेमि भंते' सूत्र 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जोमे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवसिओ०' सूत्र 'तस्स उत्तरी' सूत्र तथा 'अन्नत्थ' सूत्र बोलकर दो लोगस्सका अथवा आठ नमस्कारका काउस्सग्ग करना।

बादमें काउस्सग्ग पूर्णकर 'लोगस्स' तथा 'सव्वलोए अरिहंत-चेइआणं'का पाठ बोलना और एक लोगस्स अथवा चार नमस्कार-का काउस्सग्ग करना।

फिर वह काउस्सग्ग पूर्णकर 'पुक्खरवर-दीवड्ढे' सूत्र बोलकर 'सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण०' कहकर, एक लोगस्स अथवा चार नमस्कारका काउस्सग्ग करना।

यह काउस्सग्ग पूर्ण करके 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र बोलना।

'फिर 'सुअदेवयाए करेमि काउस्सग्गं' तथा 'तस्स उत्तरी' व 'अन्नत्थ०' सूत्र बोलकर एक नमस्कारका कायोत्सर्ग करना और वह पूरा करके 'नमोऽर्हत्०' कहकर पुरुषको 'सुअदेवया' को थोय (स्तुति) बोलनी और स्त्रीको 'कमलदल०' स्तुति बोलनी चाहिये।

तदनन्तर 'खित्तदेवयाए करेमि काउस्सग्गं' तथा 'काउस्सग्ग' सुत्त कहकर एक नमस्कारका काउस्सग्ग पूर्ण करके, 'नमोऽर्हत्०' कहकर, पुरुषको 'जीसे खित्ते साहू'की थोय बोलनी और स्त्रीको यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य'की थोय बोलनी चाहिये।

(९) छट्ठा आवश्यक (प्रत्याख्यान)

इसके बाद नवकार गिनकर, बैठकर मुहपत्ती पडिलेहनी, तथा द्वादशावर्त-वन्दन करना और अवग्रहमें खड़े-खड़े ही 'सामायिक, चउवीसत्थओ, वंदण, पडिक्कमण, काउस्सग्ग, पच्चक्खाण किया है', ऐसा बोलना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) स्तुति मङ्गल

बादमें 'इच्छामो अणुसट्ठि' ऐसा कहकर, बैठकर, 'नमो खमासमणाणं, नमोऽर्हत्०' इत्यादि पाठ कहकर 'वर्धमान–स्तुति' अर्थात् 'नमोऽस्तु वर्धमानाय' सूत्र बोलना। यहाँ स्त्रीको 'संसार–दावानल०' स्तुतिकी तीन गाथाएँ बोलनी चाहिये।

फिर 'नमोत्थुणं' सूत्र बोलकर स्तवन कहना। यह स्तवन पूर्वाचार्य द्वारा रचित तथा कमसे–कम पाँच गाथाओंका होना चाहिए।

इसके अनन्तर 'सप्तति–शत–जिनवन्दन' ('वरकनक–'स्तुति) बोलकर पहलेकी तरह भगवान् आदि चारको चार खमा० प्रणि० द्वारा थोभवंदन करना।

फिर दाहिना हाथ चरवलेपर अथवा भूमि पर रखकर 'अड्ढाईज्जेसु' सूत्र कहना।

(११) प्रायश्चित्त–विशुद्धिका कायोत्सर्ग

फिर खड़े होकर 'इच्छा० देवसिअ–पायच्छित्त–विसोहणत्थं काउस्सग्गं करूँ ?'' ऐसा बोलकर काउस्सग्गकी आज्ञा माँगनी और वह मिले तब 'इच्छं' कहकर, 'देवसिय–पायच्छित्त–विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं' तथा 'तस्स उत्तरी०' व 'अन्नत्थ०' सूत्र कहकर, चार 'लोगस्स' अथवा सोलह नमस्कारका काउस्सग्ग पूर्णकर, प्रकट 'लोगस्स' बोलना।

(१२) सज्झाय (स्वाध्याय)

इसके पश्चात् खमा० प्रणि० द्वारा वन्दन करके 'इच्छा० सज्झाय संदिसाहुं ?' इस प्रकार कहकर सज्झायका आदेश माँगना। तथा यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदेश मिलने पर 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० कहकर 'इच्छा० सज्झाय करूं ?' ऐसी इच्छा प्रकट करनी और उनकी अनुज्ञा मिलने-पर 'इच्छं' कहकर, बैठकर, एक नमस्कार गिनकर गुरु अथवा उनके आदेशसे किसी भी साधुको और साधुकी अनुपस्थितिमें स्वयंको सज्झाय बोलनी चाहिये।

(१३) दुःख-क्षय तथा कर्म-क्षयका कायोत्सर्ग

फिर एक नमस्कार गिनकर खड़े होकर खमा० प्रणि० कहकर 'इच्छा० दुक्खखय-कम्मखय-निमित्तं करेमि काउस्सग्गं ?' ऐसा कहकर आज्ञा मिलनेपर 'इच्छं' कहकर 'तस्स-उत्तरी' व 'अन्नत्थ०' सूत्र बोलना और सम्पूर्ण चार 'लोगस्स' का अथवा सोलह नमस्कार का काउस्सग्ग कर, 'नमोऽर्हत्' कहकर 'शान्तिस्तव (लघु-शान्ति)' बोलना। अन्य सब काउस्सग्गमें रहकर उसका श्रवण करें। फिर काउस्सग्ग पूरा करके, 'लोगस्स' बोलकर, खमा० प्रणि० करके अविधि-आशातनाके बारेमें 'मिच्छामि दुक्कडं' कहना।

(१४) सामायिक पारनेकी विधि

खमा० प्रणि० करके 'इरियावही' सूत्र 'तस्स उत्तरी०' सूत्र तथा 'अन्नत्थ०' सूत्र बोलकर एक 'लोगस्स' अथवा चार नमस्कारका काउस्सग्ग कर, पूर्णकर, 'लोगस्स' का पाठ बोलना।

फिर बैठकर 'चउक्कसाय' सूत्र 'जं किंचि' सूत्र 'नमो त्थु णं' सूत्र, 'जावंति चेइयाइं' सूत्र बोलकर, खमा० प्रणि० करके, 'जावंत के वि साहू' सूत्र, नमोऽर्हत्' सूत्र तथा 'उवसग्गहरं' का पाठ बोलकर दोनों हाथ मस्तकपर जोड़ कर 'जय वीयराय' सूत्र बोलना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० सामायिक पारूं ?' ऐसा कहकर सामायिक पारनेका आदेश माँगना और गुरु कहें 'पुणो वि कायव्वं[1]' तब यथाशक्ति कहकर 'इच्छा० सामायिक पार्युं, ऐसा कहना और गुरु कहें कि-'आयारो न मोत्तव्वो[2]' तब तह त्ति' कह कर सामायिक पारनेकी विधिके अनुसार 'सामाइय-पारण-गाहा,' (सामाइयवय-जुत्तो') तक सर्व कहना। फिर स्थापना स्थापी हो तो वह उठा लेनेके लिये उत्थापनी मुद्रासे (दाहिना हाथ सीधा रखकर) एक नमस्कार गिनना। इति।

[४]

रात्रिक प्रतिक्रमणकी विधि

(१) सामायिक

सामायिक लेना।

(२) कुस्वप्न-दुःस्वप्नके निमित्त काउस्सग्ग

फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० कुसुमिण-दुसुमिण-उड्डावणियं राइअ-पायच्छित्त-विसोहणत्थं काउस्सग्गं करूं ?' कहकर काउस्सग्गकी आज्ञा माँगनी और आज्ञा मिलनेपर 'इच्छं' कहकर 'कुसुमिण-दुसुमिण-उड्डावणियं राइअ-पायच्छित्त-विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं' ऐसा कहना। बादमें 'काउस्सग्गं' सुत्त बोलकर उस रात्रिमें काम-भोगादिकके दुःस्वप्न आये हों, तो 'सागरवर-

---

१. फिरसे भी (सामायिक) करने योग्य है।

२. (सामायिक) का आचार छोड़ने जैसा नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंभीरा' तक और अन्य दुःस्वप्न आये हों या न आये हों तो भी 'चंदेसु निम्मलयरा' तक चार 'लोगस्स' का अथवा सोलह नमस्कार-का काउस्सग्ग करके, पार कर, प्रकट 'लोगस्स' कहना।

(३) चैत्यवन्दनादि

फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० चेइयवंदणं करेमि' ऐसा कहकर चैत्यवन्दन करनेकी आज्ञा माँगनी और आज्ञा मिलने पर 'इच्छं' कहकर बैठकर 'जगचिंतामणि' सुत्त, 'जं किंचि' सुत्त आदि 'जय वीयराय' सूत्र तक बोलना।

फिर 'भगवदादि-वन्दन' सूत्र बोलकर चार खमा० प्रणि० करके भगवान्, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुको थोभवंदन करना।

(४) सज्झाय-स्वाध्याय

फिर खड़े होकर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० सज्झाय संदिसाहुं ?' कहकर सज्झाय करनेका आदेश माँगना और वह मिलने पर 'इच्छं' कहकर, एक खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० सज्झाय करूँ ?' ऐसी इच्छा प्रकट करनी और अनुज्ञा मिलनेपर 'इच्छं' कहकर, बैठकर, एक नमस्कार गिनकर 'भरहेसर०' की सज्झाय बोलनी और बादमें एक नमस्कार गिनना।

(५) रात्रिक प्रतिक्रमणकी स्थापना

इसके पश्चात् 'इच्छकार सुहराइ सुखतप०' का पाठ बोलना। फिर 'इच्छा० राइअ-पडिक्कमणे ठाउं ?' ऐसा कहकर प्रतिक्रमणकी स्थापना करनेकी आज्ञा माँगनी और आज्ञा मिलनेपर 'इच्छं' कहकर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाहिना हाथ चरवले पर अथवा कटासणाके ऊपर रखकर 'सव्वस्स वि राइअ–दुच्चितिय०' का पाठ बोलना।

(६) देव–वन्दन

फिर 'नमो त्थु णं' सूत्रका पाठ बोलना।

(७) पहला और दूसरा आवश्यक

(सामायिक और चतुर्विंशति–स्तव)

तदनन्तर खड़े होकर 'करेमि भंते' सूत्र, 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं, जो मे राइयो०' 'तस्स उत्तरी०' सूत्र और 'अन्नत्थ०' सूत्र बोलकर एक 'लोगस्स' अथवा चार नमस्कार का काउस्सग्ग करना।

फिर 'लोगस्स, सव्वलोए अरिहंत–चेइआणं० तथा काउस्सग्ग' –सुत्तके पाठ बोलकर एक लोगस्स अथवा चार नमस्कारका काउस्सग्ग करना।

फिर 'पुक्खरवर–दीवड्ढे०, सुअस्स भगवओ, वंदण०, अन्नत्थ०' कहकर काउस्सग्गमें 'अइयार–वियारण–गाहा' विचारनी। ये गाथाएँ न याद हों तो आठ नमस्कारका काउस्सग्ग करना।

फिर 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र बोलना।

(८) तीसरा आवश्यक (वन्दन)

फिर बैठ कर तीसरे आवश्यककी मुहपत्ती पडिलेहनी और खड़े होकर द्वादशावर्त्त—वन्दन करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) चौथा आवश्यक (प्रतिक्रमण)

फिर 'इच्छा० राइअं आलोउं ?' ऐसा कह कर रात्रिमें हुए पापोंकी आलोचना करनेकी अनुज्ञा माँगनी और वह मिलनेपर 'इच्छं' कहकर, 'आलोएमि जो मे राइओ०' पाठ बोलना।

फिर 'सात लाख,' 'अढार पापस्थानक' और 'सव्वस्स वि राइअ०' का पाठ बोलना।

फिर वीरासनसे बैठ कर अथवा वह नहीं आता हो तो दाँया घुटना खड़ा रखकर 'नमस्कार,' 'करेमि भंते !,' 'इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे राइओ०' बोलकर 'सावग—पडिक्कमण'—सुत्त ('वंदित्तु' सूत्र) बोलना। उसमें ४३ वीं गाथामें 'अब्भुठ्ठिओ मि' पद कहते हुए खड़े होकर सूत्र पूरा करना।

फिर द्वादशावर्त्त—वन्दन करना और अवग्रहमें खड़े रहकर, आदेश माँग करके 'अब्भुट्ठिओ०' सूत्र बोलकर गुरुको खमाना और अवग्रहसे बाहर निकलकर पुनः द्वादशावर्त्त–वन्दन करना। तत्पश्चात् 'आयरिय—उवज्झाए' सूत्र बोलना। फिर अवग्रहसे बाहर निकलना।

(१०) पाँचवाँ आवश्यक (कायोत्सर्ग)

तदनन्तर 'करेमि भंते' सूत्र, 'इच्छामि ठामि०', 'तस्स उत्तरी' सूत्र, 'अन्नत्थ' सूत्र बोलकर तपका चिन्तन करना और वह नहीं आता हो तो सोलह नमस्कारका काउस्सग्ग कर, उसे पूर्ण कर 'लोगस्स' का पाठ बोलना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) छठा आवश्यक (प्रत्याख्यान)

इसके बाद बैठकर छठे आवश्यककी मुहपत्ती पडिलेहनी और द्वादशावर्त्त–वन्दन करना तथा अवग्रहमें रहकर ही 'सकलतीर्थ–वन्दना' सूत्र बोलना। फिर पच्चक्खाणका आदेश लेकर यथाशक्ति पच्चक्खाण करके, दैवसिक प्रतिक्रमणकी तरह छः आवश्यक करना।

(१२) मङ्गल स्तुति

फिर 'इच्छामो अणुसट्ठिं' ऐसा कहकर, बैठकर 'नमो खमा–समणाणं' 'नमोऽर्हत्०' इत्यादि पाठ कहकर 'विशाल—लोचन—दलं' सूत्र बोलना।

(१३) देव–वन्दन

फिर 'नमो त्थु णं' सूत्र कह कर खड़े होकर 'अरिहंत चेइआणं' सूत्र और 'अन्नत्थ' सूत्र कह कर, एक नमस्कारका काउस्सग्ग करके, पार कर, 'नमोऽर्हत्०' कह कर 'कल्लाणकंदं' थुइकी पहली गाथा बोलनी, और चौथी गाथा तककी सम्पूर्ण विधि दैवसिक प्रतिक्रमणकी तरह करनी।

फिर बैठ कर 'नमो त्थु णं' सूत्रका पाठ बोलकर चार खमा० प्रणि० पूर्वक भगवान् आदि चारको थोभवंदन करना।

फिर दाहिना हाथ चरवला अथवा कटासणा के ऊपर रखकर 'अड्ढाइज्जेसु' सूत्र बोलना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१४) श्रीसीमन्धर स्वामीका चैत्यवन्दन

फिर दोनों घुटने भूमिपर रखकर ईशान कोणकी ओर बैठ कर अथवा दिशाका मनमें चिन्तन कर खमा० प्रणि० करके श्रीसीमन्धर स्वामीका चैत्यवन्दन तथा स्तवन बोलकर सब विधि थोय—पर्यन्त करनी। उसमें 'अरिहंत चेइआणं' सूत्रसे खड़ा होना।

(१५) श्रीसिद्धाचलजीका चैत्यवन्दन

इसी प्रकार खमा० प्रणि० करके श्रीसिद्धाचलजीका चैत्यवन्दन श्रीसिद्धाचलजीकी दिशाके सम्मुख अथवा उस दिशाकी मनमें कल्पना करके स्थापनाजी सम्मुख करना। उसमें चैत्यवन्दन, स्तवन और स्तुति श्रीसिद्धाचलजीकी कहनी।

(१६) सामायिक पारना

फिर सामायिक पारनेकी विधिके अनुसार सामायिक पारना। इति।

[५]

पाक्षिक प्रतिक्रमणकी विधि

(१) प्रथम दैवसिक प्रतिक्रमणमें 'सावग—पडिक्कमण—सुत्त' बोलने तककी जो विधि है, वह करनी। परन्तु उसमें चैत्यवन्दन 'सकलार्हत्– स्तोत्र' का करना और स्तुति 'स्नातस्या' की बोलनी।

(२) फिर खमा० प्रणि० करके 'देवसिअ आलोइअ पडिक्कंता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छा० पक्खि–मुहपत्ती पडिलेहुँ ?' ऐसा कहकर पाक्षिक प्रतिक्रमणका मुहपत्ती पडिलेहनेका आदेश माँगना और वह मिलने पर 'इच्छं' कहकर मुहपत्ती पडिलेहनी। फिर द्वादशावर्त्त–वन्दन करना। इसके बाद 'इच्छा० अब्भुट्ठिओ हं संबुद्धा खामणेणं अब्भिंतर पक्खिअं खामेउं ?' ऐसे कहना० गुरु कहें–'खामेह' तब 'इच्छं खामेमि पक्खिअं, एक (अंतो) पक्खस्स पन्नरस राइआणं, पन्नरस दिवसाणं जं किंचि अपत्तिअं०' आदि पाठ बोलना।

(३) फिर 'इच्छा० पक्खिअं आलोऊं ?' कहकर पाक्षिक आलोचनाका आदेश माँगना और गुरु कहें–'आलोएह' तब 'इच्छं' कह पक्खी (पाक्षिक) अतिचार बोलना। (मण्डलीमें एक बोले और अन्य उसका चिन्तन करें। अतिचार न आता हो तो 'सावग–पडिक्कमण–सुत्त' बोलना।)

(४) फिर 'सव्वस्स वि पक्खिअ दुच्चिंतिअ, दुब्भासिअ, दुच्चिट्ठिअ इच्छाकारेण संदिसह भगवान् ! इच्छं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' ऐसा कहना।

(५) बादमें 'इच्छकारी भगवन् ! पसायकरी पक्खि–तप प्रसाद करनाजी' ऐसा कहना। तब गुरु अथवा कोई बड़ा व्यक्ति इस प्रकार कहे :–'पक्खी लेखे एक उपवास, दो आयंबिल, तीन निव्वी, चार एकाशन, आठ बियाशन, या दो हजार सज्झाय, यथाशक्ति तप करके पहुँचाना।' इस समय तप पूर्ण किया तो 'पइट्ठिओ' कहना और यदि ऐसा तप निकटमें ही कर देना हो तो 'तह त्ति' कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) फिर द्वादशावर्त्त–वन्दन करना और 'इच्छा० अब्भुट्ठिओ हं पत्तेअ–खामणेणं अब्भिंतर–पक्खिअं, खामेडं ? बोलकर आज्ञा एक (अंतो) पक्खस्स मिल जानेपर 'इच्छं' कहकर 'खामेमि पक्खिअं, एक (अंतो) पक्खस्स पन्नरस–राइ–दिअहाणं जं किंचि अपत्तिअं०' आदि पाठ बोलकर द्वादशावर्त्त–वन्दन करना।

(७) फिर 'देवसिअ आलोइअ पडिक्कंता इच्छा० पक्खिअं पडिक्कमावेह ?' कहकर आदेश माँगना और गुरु कहें–'सम्मं पडिक्कमेह' फिर 'इच्छं' कहकर 'करेमि भन्ते' सूत्र तथा 'इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे पक्खिओ०' आदि पाठ बोलना ! फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० पक्खि–सूत्र कढूं' ऐसा कहकर साधु हो तो 'पक्खि–सूत्र' कहें और साधु न हो तो श्रावक खड़े होकर तीन नमस्कार–पूर्वक 'सावग–पडिक्कमण–सुत्त' (वंदित्तु–सूत्र) कहें।

(८) फिर 'सुय–देवया' की थोय कहनी।

(९) इसके पश्चात् नीचे बैठकर दाँया घुटना खड़ा रखकर, एक नमस्कार 'करेमि भन्ते' सूत्र तथा 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे पक्खिओ०' बोलकर 'सावग–पडिक्कमण–सुत्त' कहना।

(१०) फिर 'करेमि भन्ते' सूत्र, 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे पक्खिओ०' 'तस्स उत्तरी' सूत्र, 'अन्नत्थ' सूत्र, बोलकर बारह 'लोगस्स' का काउस्सग्ग करना। ये लोगस्स 'चंदेसु निम्मलयरा' तक गिनना अथवा अड़तालीस नमस्कारका काउस्सग्ग करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारना। बादमें 'लोगस्स' सूत्रका पाठ बोलना और मुहपत्तीका पडिलेहण करके द्वादशावर्त्त-वन्दन करना।

(११) फिर 'इच्छा० अब्भुट्ठिओ हं संमत्त-खामणेणं अब्भिंतर पक्खिअं खामेउं ?' ऐसा कहकर गुरुकी आज्ञा मिलनेपर 'इच्छं' बोलकर, 'खामेमि पक्खिअं एक (अंतो) पक्खस्स, पन्नरस दिवसाणं, पन्नरस राइआणं जं किंचि अपत्तिअं०' आदि पाठ बोलकर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा०' पक्खिअ-खामणां खामुं ?' ऐसा कहकर चार खामणां खामना। मुनिराज हों तो खामणां कहना और मुनिराज न हों तो, खमा० प्रणि० करके 'इच्छामि खमासमणो !' कहकर दाहिना हाथ उपधिपर रखकर, एक नमस्कार, कह 'सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि' कहना। केवल तीसरे खामणां के अन्तमें 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' कहना। फिर 'पक्खिअं समत्तं, देवसिअं पडिक्कमामि' ऐसा कहना।

(१२) फिर दैवसिक प्रतिक्रमणमें 'सावग-पडिक्कमण-सुत्त' कहनेके बाद द्वादशावर्त्त-वन्दन किया जाता है, वहाँसे सामायिक पारसे तककी सब विधि करनी। किन्तु 'सुयदेवया' की थोयके स्थानपर भुवनदेवताका काउस्सग्ग करना, और ज्ञानादि० थोय कहनी। तथा क्षेत्रदेवताके काउस्सग्गमें 'यस्याः क्षेत्रं' स्तुति बोलनी। स्तवनमें 'अजिय-संति-थओ' बोलना। सज्झायके स्थानपर 'नमस्कार', 'उवसग्गहरं' स्तोत्र तथा 'संसार-दावानल' स्तुतिकी चार गाथाएँ बोलनी। उसमें चौथी स्तुतिके अन्तिम तीन चरण सकल सङ्घ एक साथ उच्च स्वरसे कहें और 'शान्ति-स्तव (लघु शान्ति)' के स्थानपर 'बृहच्छान्ति' कहनी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६]

चातुर्मासिक–प्रतिक्रमणकी विधि

चातुर्मासिक–प्रतिक्रमणकी विधि पाक्षिक–प्रतिक्रमणके जैसी ही है परन्तु उसमें विशेषता इतनी है कि बारह लोगस्सके काउस्सग्गके स्थानपर बीस लोगस्सका अथवा अस्सी नमस्कारका काउस्सग्ग करना। 'पक्खी' के स्थानपर 'चउमासी' शब्द बोलना और तपकी जगह 'छट्ठेणं दो उपवास, चार आयंबिल, छः निव्वी, आठ एकाशन, सोलह बियाशन, चार हजार सज्झाय', ऐसा कहना।

[७]

सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधि

सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधि भी हरतरहसे पाक्षिक प्रतिक्रमणकी विधिके अनुसार ही है, परन्तु इसमें विशेषता इतनी है कि बारह लोगस्सके काउस्सग्गके स्थानपर चालिस लोगस्स और एक नमस्कारका अथवा एकसौ साठ नमस्कारका काउस्सग्ग करना, 'पक्खी' के स्थानपर 'संवत्सरी' शब्द बोलना और तपके स्थानपर 'अट्ठमभत्तं' तीन उपवास, छः आयंबिल, नौ निव्वी, बारह एकाशन, चौबीस बियाशन और छः हजार सज्झाय' ऐसा कहना।

[८]

छींक आवे तो करनेकी विधि

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें जो अतिचारसे पूर्व छींक आवे तो चैत्यवन्दनसे फिर आरम्भ करना चाहिये और दुक्ख–खय कम्म–खयके काउस्सग्गसे पूर्व छींकका काउस्सग्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहिये तथा माङ्गलिकके लिये श्रीसकलचन्द्रजी उपाध्याय-रचित 'सत्तरभेदी पूजा' पढ़नी चाहिये। अतिचारके पश्चात् छींक आवे तो केवल छींकका काउस्सग्ग करना और ऊपर कहे अनुसार 'सत्तरभेदी पूजा' पढ़नी, ऐसा सम्प्रदाय है।

छींक के काउस्सग्गकी विधि

इरियावही पडिक्कमण करके लोगस्स० 'इच्छा० क्षुद्रापद्रव-ओहडावणत्थं काउस्सग्गं करूँ?' गुरु कहें-'करेह' तब 'इच्छं' कहकर क्षुद्रोपद्रव० 'अन्नत्थ' सूत्र कहकर, चार लोगस्सका 'सगर-वर-गंभीरा' तकका अथवा सोलह नमस्कारका काउस्सग्ग करना और नीचे लिखी हुई थोय (स्तुति) कहनी।

"सर्वे यक्षाम्बिकाद्या ये, वैयावृत्त्यकरा जिने।
क्षुद्रोपद्रव-सङ्घातं, ते द्रुतं द्रावयन्तु नः ॥३॥"

फिर 'लोगस्स' सूत्र कहकर प्रतिक्रमणकी आगेकी विधि करनी।

[९]

पच्चक्खाण पारनेकी विधि

१. प्रथम इरियावही पडिक्कमण करके 'जगचिंतामणि' का चैत्य वन्दन कर 'जय-वीयराय' सूत्र तकके सब पाठ कहने, फिर 'मन्नह जिणाणं' की सज्झाय कहकर मुहपत्ती पडिलेहनी।

२. फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० पच्चक्खाण पारूँ?' 'यथाशक्ति' कहकर फिर खमा० 'इच्छा० पच्चाक्खाण पायुँ' 'तह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति' कहकर दहिना हाथ कटासणा अथवा चरवले पर रखकर, एक नमस्कार गिनकर जो पच्चक्खाण किया हो, उसका नाम बोलकर पारना। वह इस प्रकार—

"उग्गए सूरे नमुक्कार–सहिअं, पोरिसिं, साढपोरिसिं, गंठिसहिअं, मुट्ठि–सहिअं पच्चक्खाण कर्युं, चउव्विहार, आयंबिल, निव्वि, एगासण, बियासण, पच्चक्खाण कर्युं, तिविहार पच्चक्खाण फासिअं, पालिअं, सोहिअं, तीरिअं, किट्टिअं आराहिअं, जं च न आराहिअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।"

अन्तमें एक नमस्कार गिनना।

[१०]

पोषध–विधि

(१) पोषधके प्रकारः—पोषधके[1] मुख्य चार प्रकार हैं–(१) आहार–पोषध, (२) शरीर–सत्कार–पोषध, (३) ब्रह्मचर्य–पोषध और (४) अव्यापार–पोषध। इन चारों प्रकारोंके देश और सर्वसे दो दो भेद हैं, परन्तु वर्तमान सामाचारीमें आहार–पोषध देश और सर्वसे किया जाता है। शेष अन्य तीनों पोषध सर्वसे किये जाते हैं। तिविहार उपवास, आयंबिल, निव्वी तथा एकाशन करना वह देश–आहार–पोषध है और चोविहार उपवास करना वह सर्व आहार–पोषध है।

(२) पोषधमें प्रतिक्रमणादिः—पोषध करनेकी इच्छावाले को

---

१. पोषध के अर्थ आदिके लिये देखो प्रबोध–टीका, भाग २ रा, सूत्र ३२ की गाथा २९।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य तथा अभयदेवसूरि आदिने 'पोषध' शब्दको शुद्ध मानकर उसका व्यवहार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभातमें जल्दी उठकर रात्रिक–प्रतिक्रमण करना। फिर उपाश्रयमें आकर गुरुके समक्ष पोषध उच्चरना। वर्तमान सामाचारी इस प्रकार है, परन्तु मुख्य रूपसे प्रातः पोषध लेकर फिर प्रतिक्रमण करना चाहिये। इस प्रतिक्रमणमें 'जीवहिंसा-आलोयणा' सुत्त ('सात लाख') और 'अट्ठारस पाव ठाणाणि' सूत्रके बदलेमें 'गमणागमणे' सूत्र कहना (जो आगे दिया हुआ है)। और "साहु–वंदण–सुत्त' (अड्ढाइज्जेसु' सूत्र) से पूर्व 'बहुवेल' का आदेश लेना। फिर चार खमा० प्रणि० द्वारा आचार्यादिको वन्दन करके 'साहू–वंदण' सुत्त (अड्ढाइज्जेसु' सूत्र) कहना और प्रतिक्रमण पूर्ण करना[1]। फिर खमा० प्रणि० पूर्वक इरियावहियं करके खमा० प्रणि० पूर्वक आदेश माँगना। 'इच्छा० पडिलेहण करूँ ?' फिर 'इच्छं' कहकर पाँच वस्तु पडिलेहनी–मुहपत्ती, चरवला, कटासणा, कंदोरा और धोती। फिर इरिया० कहकर बाकीके वस्त्र पडिलेहने। उसके बाद देववन्दन करना।

(३) फिर उपाश्रयमें आकर पोषधके लिए गुरु–सम्मुख नीचे लिखी अनुसार विधि करनोः–(इसमें प्रतिक्रमणके साथमें पडिलेहण करनेवालको निम्न प्रकारसे विधि तो करना, किन्तु वस्त्र नहीं पडिलेहने; क्यों कि उनकी पडिलेहणा प्रथम की हुई है।)

(१) खमा० प्रणि० करके, 'इरियावही' पडिक्कमी, तस्स उत्तरी, सूत्र तथा 'अन्नत्थ' सूत्र बोलकर, काउस्सग्ग करना। उसमें 'चउवीसत्थय' सुत्त ('लोगस्स' सूत्र) का स्मरण करके काउस्सग्ग पूर्ण

---

१ रात्रिक–पोषधमें भी दूसरे दिन प्रातःकालके प्रतिक्रमणमें इस प्रकार विधि करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर वह सूत्र प्रकट बोलना (२) फिर 'इच्छा० पोसह–मुहपत्ती पडिलेहुं ?' ऐसी कहकर मुहपत्ती पडिलेहनेकी आज्ञा माँगनी। गुरु कहें 'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर बैठकर मुहपत्ती पडिलेहनी। (३) फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा–पोसह संदिसाहु ?' ऐसा कहकर आज्ञा माँगनी। गुरु कहें–'संदिसामि' तब 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० करके कहना कि 'इच्छा० पोसह ठाउं ?' गुरु कहें–'ठाएह' तब 'इच्छं' कहकर खड़े–खड़े एक नमस्कार गिनना। (४) फिर इच्छ–कारी भगवन् ! पसाय करी पोसह दंडक उच्चरावोजी' ऐसे कहकर गुरु महाराजके पास या किसी पूज्य व्यक्तिके पास अथवा वैसा योग न हो तो स्वयंको 'पोसह लेनेका' सूत्र (क्रमाङ्क ४४) बोलना। (५) फिर सामायिक मुहपत्ती पडिलेहणके आदेशसे लेकर तीन नमस्कार गिनकर सज्झाय करने तक सामायिक लेनेकी सारी विधि करनी। उसमें विशेषता इतनी है कि 'जाव नियमं' के स्थान पर 'जाव पोसहं' कहना। (६) फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० बहुवेल संदिसाहुं ?' कहना। गुरु कहें–'संदिसामि' तब 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० बहुवेल करूँगा' ऐसा कहना। गुरु कहें–'करना' तब 'इच्छं' कहना। (७) खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० पडिलेहण करूँ ?' इस तरह कहना। गुरु कहें–'करेह' तब 'इच्छं' कहकर, पाँच वस्तुका पडिलेहण करना। उसमें मुहपत्तीका ५० बोलसे, चरवलाका १० बोलसे, कटासणका २५ बोलसे, सूतकी मेखलाका (कंदोरेका) १० बोलसे और धोतीका २५ बोलसे पडिलेहण करना। (८) फिर पडिलेहना की हुई धोती पहनकर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंदोरा बाँध कर, इरियावही प्रतिक्रमण करके खमा० प्रणि० 'इच्छा० पडिलेहणा पडिलेहावोजी' ऐसा कहना। गुरु कहें–'पडिलेहादेमि' तब 'इच्छं' कहना। (९) फिर स्थापनाचार्यजी की पडिलेहणा करके (स्थापित हो तो पुनः स्थापित करके अथवा बड़े व्यक्तिके उत्तरीय वस्त्रका प्रतिलेखना करके) खमा० प्रणि० 'इच्छा० उपधि–मुहपत्ती पडिलेहुं ?' ऐसा कहना। गुरु कहें–'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनी। (१०) फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० उपधि संदिसाहुं ?' ऐसा कहना। गुरु कहें–'संदिसावेमि' तब 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० उपधि पडिलेहुं ?' ऐसा कहना। गुरु कहें–पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर शेष वस्त्रोंकी पडिलेहना करनी। (११) फिर एक आदमीको दण्डासन याच लेना चाहिये[1] और उसकी पडिलेहना करके, इरियावही पडिक्कमण करके काजा[2] लेना चाहिये। फिर उसे शुद्ध कर, जीव–जन्तु मृत या जीवित हो तो उसकी तपास कर दंडासन द्वारा प्रमार्जन करते हुए निरवद्य भूमिका पर जाकर 'अणुजाणह जस्सुग्गहो' कहकर काजा परठवना और तीनबार 'वोसिरे' कहना। (१२) फिर मूल स्थान पर आकर सबके साथ देव–वन्दन और सज्झाय करना।

---

१. वस्तु याचनेका अर्थ अन्य गृहस्थोंसे 'यह वस्तु हम वापरते हैं' ऐसा आदेश लेनेका है।

२ काजामें सचित्त–एकेन्द्रिय (अनाज तथा हरी वनस्पति) तथा कलेवर निकले तो गुरुसे आलोयणा लेनी। त्रसजीव निकले तो यतना करनी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) देव–वन्दनकी विधि इस प्रकार जाननी—

(१) प्रथम खमा० प्रणि० करके इरियावही पडिक्कमण कर, 'लोगस्स' कहकर उत्तरासन डालकर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० चेइयवंदणं करेमि' ऐसे कहना। बादमें 'इच्छं' कहकर चैत्य–वन्दन, 'तित्थ–वंदण–सुत्त' (जं किंचि' सूत्र) 'सक्कत्थय–सुत्त' ('नमो त्थु णं' सूत्र) और 'पणिहाण–सुत्त' ('जय–वीयराय' सूत्र) 'आभवमखंडा' तक कहकर खमा० प्रणि० करके चैत्यवन्दन करके, 'सक्कत्थय सुत्त' कहकर चार थोय (स्तुतियाँ) बोलने तककी सब विधि करनी। (२) फिर 'सक्कत्थय–सुत्त' आदि बोलकर दूसरी बार चार स्तुतियाँ बोलनी। (३) फिर 'सक्कत्थय–सुत्त' तथा 'सव्व–चेइय–वंदण–सुत्त' ('जावंति चेइआइं') और 'सव्व–साहू–वंदण–सुत्त' ('जावंत के वि साहू') का पाठ बोलकर स्तवन बोलकर 'पणिहास–सुत्त' का पाठ 'आभवमखंडा' तक बोलना। (४) फिर खमा० प्रणि० करके 'चैत्य–वन्दन,' 'तित्थ–वंदण–सुत्त' ('जं किंचि' सूत्र) 'सक्कत्थय–सुत्त' बोलकर 'पणिहाण–सुत्त' पूरा बोलना। इसके पश्चात् विधि करते हुए अविधि हुई हो उसका आत्माको 'मिच्छा मि दुक्कडं' द्वारा दण्ड देकर प्राभातिक देव–वन्दनके अन्तमें सज्झाय कहनी। (मध्याह्न तथा सायङ्कालको नहीं कहनी।)

(५) सज्झायकी विधि इस प्रकार जाननी–प्रथम खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० सज्झाय करूँ ?' ऐसा कहना। गुरु कहें– 'करेह' तब 'इच्छं' कहकर नमस्कार गिनकर पैरोंपर बैठकर एक व्यक्ति 'सड्ढ–निच्चकिच्च–सज्झाओ'। ('मन्नह जिणाणं' की सज्झाय सूत्र–४५) बोले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) छः घड़ी दिन चढ़नेके बाद पोरिसी पढ़ानी। वह इस प्रकार—खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० बहु-पडिपुन्ना पोरिसी ?' ऐसा कहना। गुरु कहें 'तह त्ति' तब 'इच्छं' कहना। फिर खमा० प्रणि० करके इरियावही पडिक्कमण कर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० पडिलेहण करूँ ?' ऐसा कहना। गुरु कहें 'करेह' तब इच्छं' कहना और मुहपत्ती पडिलेहनी।

(७) गुरु हों तो उनके समक्ष राइय-मुहपत्ती पडिलेहनी। [1]वह इस प्रकारः—प्रथम खमा० प्रणि० करके इरियावही पडिक्कमण कर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० राइय-मुहपत्ती पडिलेहुं ?' ऐसा कहना। गुरु कहें-'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कह कर मुहपत्ती पडिलेहनी। फिर द्वादशावर्त-वन्दन करना। बादमें 'इच्छा० राइअं आलोउं ? इस प्रकार कहना। गुरु कहें-'आलोएह' तब 'इच्छं' कहकर 'आलोएमि, जो मे राइओ अइआरो' तथा सव्वस्स वि राइअ०' कहकर पदस्थ हों तो उनको द्वादशावर्त्त-वन्दन करना और पदस्थ न हों तो एक ही खमा० प्रणि० करना। फिर 'इच्छकार सुहराइ०' कहकर खमा० प्रणि० करके 'गुरु-खामणा-सुत्त' ('अब्भुट्ठिओ हं' सूत्र) द्वारा गुरुको खमाना। फिर द्वादशार्त्त-वन्दन करके 'इच्छकारी भगवन्! पसाय करी पच्चक्खाणका आदेश देनाजी' ऐसा कहकर पच्चक्खाण लेना। यहाँ चोविहार या तिविहार उपवास अथवा पुरिमड्ढ आयंबिल या एकाशनका पच्च-

---

१. जिन्होंने गुरुके साथ रात्रिक-प्रतिक्रमण न किया हो उनके लिये यह विधि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खाण करना चाहिये। खास कारण हो तो गुरुकी आज्ञासे साड्ढ-पोरिसी–आयंबिल–एकाशनका पच्चक्खाण भी कर सकते हैं।

(८) फिर सर्व मुनिराजोंको दो बार खमा० प्रणिपात करके, इच्छकार तथा 'गुरुखामणा–सुत्त' का पाठ बोलकर वन्दन करना।

(९) फिर लघुशङ्का करनी हो (मातरा करनी हो) तो कुण्डी, पूंजणी और अचित्त जलकी याचना करनी। तथा मातरीया पहन-कर पूंजणी द्वारा कुण्डी पूंजकर, उसमें लघुशङ्का करके परठवनेके स्थानपर जाना। वहाँ कुण्डी नीचे रखकर निर्जीव भूमि देखकर 'अणुजाणह जस्सुग्गहो' कहकर मूत्र परठवना। परठवनके बाद फिरसे कुण्डी नीचे रखकर तीन बार 'वोसिरे' कहकर कुण्डी मूल स्थानपर रखकर, अचित्त जलसे हाथ धोकर वस्त्र बदलकर स्थाप-नाचार्यके सम्मुख आना और खमा० प्रणि० करके इरियावही पडि-क्कमण करना। यहाँ इतना याद रखना कि जब जब पोषधशाला अथवा उपाश्रयके बाहर जानेका प्रसङ्ग आये तब तीन बार 'आव-स्सही' कहना और अन्दर प्रवेश करते समय तीन बार 'निसीहि' कहना।

(१०) पोसह लेनेके पश्चात् जिनमंदिरमें दर्शन करने जाना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है–कटासण बाँये कन्धेपर डाल-कर उत्तरासन करके चरवला बाँयी कोंखमें और मुहपत्ती दाँये हाथमें रखकर ईर्यासमिति शोधते हुए मुख्य जिनमन्दिरमें जाना। वहाँ तीन बार 'निसीहि' कहकर मन्दिरके प्रथमद्वारमें प्रवेश करना और मूलनायकजीके सम्मुख जाकर दूरसे प्रणाम करके तीन प्रदक्षिणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देनी। फिर दूसरी बार 'निसीही' बोलकर रङ्गमण्डपमें प्रवेश करके, दर्शन–स्तुति करके, खमा० प्रणि० करके, इरियावही पडिक्कमण करना। फिर मन्दिर सौ हाथसे अधिक दूर हो तो 'गमणागमणे' आलोचना और तीन बार खमा० प्रणि० करके 'निसीहि' कहकर चैत्यवन्दन करना। वह पूर्ण होनेपर जिनमन्दिरसे बाहर निकलते समय तीन बार 'आवस्सही' कहकर उपाश्रयमें आना। वहाँ तीन बार 'निसीहि' कहकर प्रवेश करना और सौ हाथसे अधिक जाना हुआ हो, तो इरियावही पडिक्कमण करना तथा 'गमणागमणे' 'आलोचना।[1]

(११) यदि चातुर्मास हो तो मध्याह्नके देव–वन्दन से पहले दूसरी बारका काजा लेना चाहिये। उसके लिये एक व्यक्तिको इरियावही पडिक्कमण करके काजाको लेना चाहिये और उसे शुद्ध करके योग्य स्थान पर परठवना चाहिये। (तदनन्तर इरियावही पडिक्कमण नहीं करना)। फिर मध्याह्नका देववन्दन करना। उसकी विधि पूर्ववत् जाननी। फिर जिसको पानीका उपयोग करना हो अथवा आयंबिल, एकाशन करने जाना हो उसको पच्चक्खाण पूर्ण करना चाहिये। (पच्चक्खाण पूर्ण करनेकी विधि अन्यत्र दी हुई है।)

(१२) पानी पीना हो उसको[2] घड़ा तथा कटोरी (ग्लास)

---

१. जब सौ हाथसे अधिक जाना हुआ हो, अथवा कुछ भी परठवना हो तब इरियावही पडिक्कमण करना और 'गमणागमणे' आलोचना।

२. वापरनेके पात्र अक्षरोंसे अङ्कित नहीं होने चाहिये, क्यों कि अक्षर पर होठ लगनेसे अथवा झूंठे पानीका स्पर्श होनेसे ज्ञानावरणीय कर्म बँधता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याचकर उसका पडिलेहण करके उसमें याचा हुआ अचित्त जल कटासणपर बैठकर पीना और पानी पीनेका पात्र पोंछकर रखना। पानावाला पात्र खुला नहीं रखना।

(१३) यदि आयंबिल, निव्वी अथवा एकाशन करनेके लिये अपने घर जाना हो तो इर्यासमिति शोधते हुए जाना और घरमें प्रवेश करते हुए 'जयणा–मंगल' बोलकर आसन (कटासण) डालकर, बैठकर, स्थापनाचार्य स्थापित कर, इरियावही पडिक्कमण करना। फिर खमा० प्रणि० करके 'गमणागमणे' आलोचना। फिर काजा लेकर परठनकर इरियावही करके, पटिया तथा थाली आदि बरतन याचकर उसका प्रमार्जन कर, फिर आहार याचकर संभव हो तो अतिथि–संविभाग करके, निश्चल आसनपर बैठकर मौनपूर्वक आहार करना। यथा सम्भव आहार प्रणीत (रस–कसवाला) नहीं होना चाहिये, और 'चब–चब' आवाज हो ऐसा नहीं होना चाहिये। ली हुई वस्तुमेंसे कोई भी वस्तु जूँठी नहीं छोड़नी और परोसनेवाला 'वापरो' ऐसा कहे, फिर वापरना। जिसको घर नहीं जाना हो, वह पोषधशालामें पूर्वप्रेरित पुत्रादिद्वारा लाया हुआ आहार कर सकता है, किन्तु साधुकी तरह बहोरनेके लिये नहीं जा सकता। इसके लिये प्रथम स्थानका प्रमार्जन करना और उसपर कटासन बिछाना। फिर पात्र आदिका प्रमार्जन कर, स्थापना स्थापितकर इरियावही पडिक्कमण करके निश्चल आसनपर बैठकर मौनपूर्वक आहार करना।

विशिष्ठ प्रकारके कारण बिना मोदकादि स्वादिष्ट वस्तु तथा लवङ्ग ताम्बूल आदि मुखवास वापरना नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर मुख–शुद्धि करके तिविहारका पच्चक्खाण करना और नमस्कार गिनकर उठना तथा काजा लेकर परठवना। बादमें पोषध, शालामें आकर स्थापनाजीके सम्मुख इरियावही पडिक्कमण करके चैत्यवन्दन करना ! उसमें 'जगचिंतामणि' सुत्त बोलना और 'पणिहाणसुत्त' ('जय वीयराय')–तककी सब विधि करनी।

(१४) इसके बाद स्वाध्याय और ध्यानमें प्रवृत्त होना।

(१५) तीसरे प्रहरके बाद मुनिराजने स्थापनाचार्यका पडिलेहण किया हो तो उनके समक्ष (दूसरी बारका) पडिलेहण करना। वह इस प्रकार—

(१) प्रथम खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० बहुपडिपुन्ना पोरिसी ?' ऐसे कहना। तब गुरु कहें–'तह त्ति' तब 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० करके इरियावही पडिक्कमण करना। (२) फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० गमणागमणे आलोऊँ ?' ऐसा कहना। गुरु कहें— 'आलोएह' तब 'इच्छं' कहकर 'गमणागमणे' आलोवना। (३) फिर खमा० प्राणि० करके इच्छा० पडिलेहण करूँ ?' गुरु कहें– 'करेह' तब 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० करके कहना कि 'इच्छा० पोसहसाला प्रमार्जूं ?' गुरु कहें–'पमज्जेह' तब 'इच्छं' कहकर उपवासवालेको मुहपत्ती, कटासणा और चरवला ये तीनों और आयंबिल–एकाशनवालेको इन तीनोंके अतिरिक्त कंदोरा और धोती इस प्रकार पाँचकी पडिलेहणा करनी। (४) फिर खमा० प्रणि० करके इ'रियावही' पडिक्कमण कर (उपवासवालेको इरियावही पडिक्कमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करना।) और खमा० प्रणि० करके 'इच्छकारी भगवन्! पसाय करो पडिलेहणा पडिलेहावोजी!' ऐसे कहकर बड़े व्यक्तिका उत्तरीय-वस्त्र पडिलेहना। (५) फिर खमा० प्रणि० करके कहना कि 'इच्छा० उपाधि-मुहपत्ती पडिलेहुं ? गुरु कहें-'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कह कर मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनी। (६) फिर खमा० प्रणि० करके इच्छा० सज्झाय करूँ ?' ऐसा कहकर सज्झायका आदेश माँगना। गुरु कहें-'करेह' तब घुटनोंपर बैठकर, एक नमस्कार गिन, 'मन्नह-जिणाणं' की सज्झाय बोलनी। (७) फिर भोजन किया हो उसको 'द्वादशावर्त्त-वन्दन' करके और अन्यको खमा० देकर पाणहारका पच्चक्खाण करना। प्रातः तिविहार उपवासका पच्चक्खाण लिया हो और पानी नहीं पिया हो तो इस समय चउविहारका पच्चक्खाण करना और चउविहार उपवासवाले को 'पारिट्ठावणिया' आगार रहितका 'सूरे उग्गए' चोविहारका पच्चक्खाण करना और कारण हो तो गुरुकी आज्ञासे 'मुट्ठि-सहियं' का पच्चक्खाण करना। (८) फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० उपधि संदिसाहु ?' ऐसा कहना और गुरु कहें-'संदिसावेमि' तब 'इच्छं' कहकर खमा० प्रणि० करके फिर कहना कि 'इच्छा० उपधि पडिलेहउं ?' गुरु कहें-'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर प्रथम पडिलेहनसे अवशिष्ट वस्त्रोंकी पडिलेहणा करनी। उसमें रात्रि-पोषध करनेवालेको प्रथम कमलीका पडिलेहण करना और फिर सर्व उपधि (वस्त्रादि) लेकर खड़ा होना। (९) फिर दंडासण याचकर काजा लेनेके नियमानुसार काजा लेना। ('मुट्ठि-सहियं' का पच्चक्खाण करनेवालेको पानी वापरना हो तो नमस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिनकर पच्चक्खाण पारके वापरना। फिर सबको देव-वन्दन करना चाहिये।

(१६) पोसह पारनेसे पूर्व याचे हुए दंडासन, कुण्डी, पानी आदि गृहस्थको फिर सँभला देने।

(१७) फिर यथावसर दैवसिक अथवा पाक्षिकादि प्रतिक्रमण करना। उसमें प्रथम सिर्फ इरियावही पडिक्कमण करना और फिर खमा० प्रणि० करके चैत्य-वन्दन करना। 'जीवहिंसा-आलोयण' सुत्त ('सात-लाख' सूत्र) तथा 'अट्ठारस-पावठाणाणि' ('अठारह-पापस्थानक') सूत्रके बदलेमें 'गमणागमण' आलोचना और 'सामाइय-सुत्त' ('करेमि भंते' सूत्र) 'जाव-नियमं' के स्थान पर 'जाव-पोसहं' कहना।

(१८) प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् सामायिक पूरा करनेके बदले चार प्रहरके पोसहवाले पोसह पारें। उसकी विधि इस प्रकार है—

खमा० प्रणि० करके इरियावही पडिक्कमण कर 'चउक्कसाय-सुत्त'से 'जय वीयराय' सूत्र तक कहना। फिर खमा० प्रणि०-करके 'इच्छा० मुहपत्ती पडिलेहुं? ऐसा कहना और गुरु कहें-'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर मुहपत्ती पडिलेहनी। बादमें खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० पोसह पारूँ? ऐसे कहना। गुरु कहें 'पुणो वि कायव्वो' तब 'यथाशक्ति' कहना। इसके बाद खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० पोसह पार्यो' ऐसा कहना। गुरु कहें-'आयारो न मोत्तव्वो' तब 'तह त्ति' कहकर चरवले पर हाथ रखकर एक नमस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलकर 'पोसह पारनेका सूत्र' (*'सागरचंदो कामो'*) *बोलना।* फिर सामायिक पारनेकी विधिके अनुसार सामायिक पारना।

(१९) रात्रि–पोषध करनेकी इच्छावालेका कमसे--कम एकाशन किया हुआ होना ही चाहिये; उसको चूनेका पानी, कुण्डल, रुई, दण्डासण याच लेने चाहिये और कामली तथा संथारिया साथ रखना चाहिये। पहले पडिलेहण, देव–वन्दन किया हुआ हो तो बादमें पोषध लेनेकी विधिके अनुसार, पोषध तथा सामायिक लेकर सब आदेश माँगे।[1] और उस समय केवल मुहपत्तीका ही पडिलेहण करना। परन्तु पोषध उच्चारणके बाद पडिलेहण तथा देव–वन्दन किया जाय वह अधिक योग्य है।

(२०) जिसने प्रातः आठ प्रहरका ही पोषध लिया हो वह सायङ्कालीन देव–वन्दनके पश्चात् कुण्डल जाँच ले, अर्थात् रुईके दो फोहे दोनों कानोंमें रखे। यदि उनको खो दे तो आलोयणा लगती है। फिर दण्डासण तथा रात्रिके लिये चूना डाला हुआ अचित्त पानी याचकर रख ले तथा सौ हाथ वसति देख आये जिसमें रात्रिको मातरा आदि परठव सके। बादमें खमा० प्रणि० करके इरियावही कहकर 'इच्छा० स्थंडिल पडिलेहुं ?' ऐसा कहकर आदेश माँगे। गुरु कहें 'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर चौबीस मांडला करे। इन मांडलोंकी मनमें धारणा की जाती है वह इस प्रकारः—

प्रथम संथारेकी जगहके पास छः मांडले करना.

---

१. नवीन पोषध लेनेवालेको 'बहुपडिपुन्ना पोरिसी' का आदेश नहीं माँगना परन्तु पोषधशालाके प्रमार्जनका आदेश माँगना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आघाडे[1] आसन्ने[2] उच्चारे[3] पासवणे[4] अणहियासे[5] ।

(२) आघाडे आसन्ने पासवणे अणहियासे ।

(३) आघाडे मज्झे[6] उच्चारे पासवणे अणहियासे ।

(४) आघाडे मज्झे पासवणे अणहियासे ।

(५) आघाडे दूरे[7] उच्चारे पासवणे अणहियासे ।

(६) आघाडे दूरे पासवणे अणहियासे ।

दूसरे छः मांडले उपाश्रयके अन्दर ऊपरके अनुसार ही कहने, किन्तु वहाँ 'अणहियासे' के स्थानपर 'अहियासे'[8] कहना ।

तीसरे छः मांडले उपाश्रयके द्वारके बाहर अथवा समीपमें रहकर करने तथा चौथे छः मांडले उपाश्रयसे करीब-सौ हाथ दूर रहकर करने । उन बारह मांडलोंमें आघाडेके स्थानपर अणाघाडे[9] शब्द बोलना । शेष शब्द ऊपर लिखे अनुसार कहने ! ये मांडलेवाली जगह पहलेसे ही देख लेनी और मांडला स्थापनाजीके पास रहकर बोलते समय उस-उस स्थानपर दृष्टिका उपयोग करना । इस प्रकार चौबीस मांडला करनेके बाद इरियावही पडिक्कमण करके चैत्य-वन्दन-पूर्वक प्रतिक्रमण करना ।

(२१) रात्रि-पोषधवाला प्रहर रात्रि-पर्यन्त स्वाध्याय करे । फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० बहुपडिपुन्ना-पोरिसी ?' ऐसा

---

१ खास कठिनाईके समय । २ पासमें । ३ बड़ी नीतिके प्रसंगमें । ४ लघुनीतिके प्रसंगमें । ५ असह्य होनेपर । ६ मध्यमें । ७ दूर । ८ सह्य होनेपर । ९ खास कठिनाई न हो उस समय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोले। गुरु कहे 'तह त्ति' तब खमा० प्रणि० करके इरियावही-पडिक्कमण करे। फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० बहुपडिपुन्ना पोरिसी राइय-संथारे ठाऊं (मि) ?' ऐसा कहे। गुरु कहे 'ठाओ' तब 'पणिहाण-सुत्त' तकके पाठ बोल कर चैत्यवन्दन करे। उसमें चैत्य-वन्दनके अधिकारमें 'पासनाह-जिण थुई' ('चउक्कसाय-सूत्र') बोले। फिर खमा० प्रणि० करके 'इच्छा० संथारा-विधि भणवा मुहपत्ती पडिलेहूं ?' ऐसा कह कर आदेश माँगे और गुरु कहें 'पडिलेहेह' तब 'इच्छं' कहकर मुहपत्तीका पडिलेहण करे और 'निसीहि निसीहि निसीहि, नमो खमासमणाणं गोयमाईणं महामुणीणं' इतना पाठ 'नमस्कार' तथा 'सामाइय-सुत्त' तीन बार कहे। फिर 'संथारा-पोरिसी' पढ़ावें। उसमें 'अरिहंतो मह देवो' यह गाथा तीन बार बोले। बादमें सात नमस्कार गिनकर शेष गाथाएँ बोले।

(२२) इस प्रकार 'संथारा-पोरिसी' कह लेनेके बाद स्वाध्याय-ध्यान करे और जब निद्रा-पीड़ित होवे तब लघुशङ्काकी बाधा दूरकर इरिया० 'गमणागमणे' करके दिनमें पडिलेही हुई भूमि पर संथारा करे। वह इस प्रकार:-'प्रथम भूमि पडिलेहकर संथारिया बिछाये। उसके ऊपर उत्तरपट (चादर) बिछाये, मुहपत्ती कमरमें लगा दे, कटासना, चरवला दाँयी ओर रखे और मातरिया पहन-कर बाँयी करवटसे तकिया रख कर सोये।'

(२२) रात्रिमें चलना पड़े तो दंडासणसे पडिलेहते हुए चले—बीचमें जागे तो बाधा टालकर इरिया० करके कम से कम तीन गाथाका स्वाध्याय करके सोये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२४) पिछली रातमें जागकर नमस्कारका स्मरणकर भावना करके, मातरेकी बाधा दूर करे। फिर इरियावही पडिक्कमण कर 'कुसुमिण दुसुमिण' का काउस्सग्ग करके चैत्य० स्वाध्याय करके प्रतिक्रमणके अवसरपर रात्रिक प्रतिक्रमण करे।

(२५) फिर स्थापनाचार्यजीका पडि० होनेके पश्चात् पूर्वोक्त विधिसे पडिलेहण करे और इरिया० पूर्वक काजाको लेकर पूर्वोक्त विधिसे देव-वन्दन तथा सज्झाय करे।

(२६) फिर इरियावही पडिक्कमण कर 'इच्छा० मुहपत्ती पडिलेहूं ?' वहाँसे पोसह पारनेकी विधिमें बताये अनुसार 'सामाइय-वय-जुत्तो' कहने तककी सारी विधि करके पोसह पारे और अविधि हुई हो उसका 'मिच्छा मि दुक्कडं' दे।

गमणागमणे

ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदानभंड-मत्त-निक्खेवणा-समिति, पारिष्ठापनिका-समिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, ये पाँच समिति, तीन गुप्ति; आठ प्रवचन-माता श्रावकके धर्ममें सामायिक पोसह लेकर उसका अच्छी तरह पालन नहीं किया और खण्डन-विराधना हुई हों, ते सविहूं मन, वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं। इति।

[११]

सामायिक लेनेकी विधिके हेतु

योग और अध्यात्मका विषय अतिसूक्ष्म होनेसे तथा प्रायः वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक होनेसे ऐसे प्रसङ्ग अनेक बार आते हैं कि जब साधक संशय अथवा खेदके विषम जालमें फँस जाता है। ऐसे प्रसङ्गपर सद्गुरुके अतिरिक्त कौन संशयका निवारण करे? कौन खेदको दूर करे? इन्द्रभूति गौतमके संशय श्रीवीरप्रभुने दूर किये थे, अतः सद्गुरुका सान्निध्य सामायिक जैसे योगानुष्ठानके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

शरीर, वस्त्र और उपकरणकी शुद्धिपूर्वक सामायिककी साधना करनेको तत्पर हुआ साधक भूमिका प्रमार्जन करके सद्गुरुके सान्निध्यमें सामायिकका अनुष्ठान करे।

जिस साधकको सद्गुरुका योग नहीं मिले वह गुरुके विनयको सुरक्षित रखनेके लिये उनकी स्थापना करके काम चलाये। ऐसी स्थापना करनेके लिए बाजठ आदि उच्च आसनपर अक्ष, चराटक, धार्मिक-पुस्तक अथवा जपमाला आदि रखकर उसमें गुरुपदकी भावना की जाती है। तदर्थ 'स्थापना-मुद्रा' से दाहिना हाथ उसके सम्मुख रखकर तथा बाँये हाथमें मुहपत्ती धारणकर उसको मुखके आगे रखकर प्रथम मङ्गलके रूपमें नमस्कार-मन्त्रका पाठ बोला जाता है। बादमें 'पंचिंदियसुत्तं' (गुरु-स्थापना-सूत्र) बोला जाता है। इस प्रकार आचार्यपदकी स्थापना होने पर सामने रखी हुई वस्तुएँ विधिवत् 'स्थापनाचार्य' माने जाते हैं और उसके पश्चात् जो जो आदेश या अनुज्ञाएँ लेनी हों, वे सब उनके पाससे ली जाती हैं। 'गुरुमहाराजके स्थापनाचार्य' हों तो यह विधि करनेको आवश्यकता नहीं, परन्तु 'स्थापनाचार्य' इस प्रकार रखे हुए होने चाहिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि उनके और साधकके बीच क्रिया करते समय किसी का आना जाना न हो।

सूत्रकी रचनामें बहुश्रुतोंने यथाशक्य रहस्य ठूंसकर भरा है; अतः उसका पाठ करते समय वह शुद्ध रीतिसे बोला जाय और साथ ही साथ उसके अर्थ तथा भावका भी चिन्तन हो यह आवश्यक है। नमस्कार–मन्त्र सामायिकका अङ्ग है। जिन्होंने सामायिककी शोध की, सामायिककी प्ररूपणा की वे अर्हन्त भगवन्त इसमें प्रथम स्थान पर विराजित हैं। सामायिकका अन्तिम साध्य सिद्धावस्था है, अतः सिद्ध भगवन्त इसमें द्वितीय स्थानमें विराजित हैं। बादमें तीन स्थान सामायिककी उत्कृष्ट साधना करनेवाले आचार्य, उपाध्याय तथा साधुओंको प्राप्त हैं। इन सबकी महत्ता सामायिकको साधनाके रूपमें ही है।

मङ्गलरूप 'नमस्कार–सूत्र' बोलनेके बाद 'पंचिंदिय–सुत्त' बोला जाता है। उसमें गुरु–गुणका स्मरण है। ऐसे गुणवाले गुरुके सान्निध्यमें बैठकर मैं सामायिकरूपी आध्यात्मिक–अनुष्ठान कर रहा हूँ, इस विचारसे साधकको महद् अंशमें सान्त्वना मिलती है। गुरुओं-के लिये यह सूत्र मार्गदर्शक है और साधकोंके लिये यह सूत्र आलम्बनरूप है।

इतनी विधि करनेके अनन्तर खड़े होकर गुरुको वन्दन करनेके हेतुसे 'इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए' इतने पद बोले जाते हैं। बादमें चरवलेसे भूमिको प्रमार्जित कर नीचे नमते हुए, मस्तक तथा दोनों हाथ (अञ्जलिपूर्वक) और दोनों जानु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घुटने) इस तरह पाँचों अङ्ग एकत्रित करके, भूमिका स्पर्श करते हुए 'मत्थएण वंदामि' ये पद बोले जाते हैं। वन्दनकी क्रियामें यह पञ्चाङ्ग-प्रणिपात मध्यम प्रकारका वन्दन कहा जाता है।

गुरुको इस प्रकार वन्दन करनेके बाद पुनः खड़े होकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि ?' इन शब्दोंसे ईर्यापथिकी प्रतिक्रमणका आदेश माँगा जाता है। यह 'लघुप्रतिक्रमण' है अथवा प्रतिक्रमणकी बृहद् भावनाका प्रतीकरूप है, इससे उसकी सकारण योजना की गयी है। जो साधक समभावकी साधना करनेको तत्पर हुआ हो, उसको पाप-प्रवृत्तिके प्रति अनासक्ति होनी ही चाहिये और उस तरहकी छोटीसे-छोटी प्रवृत्तिके लिये भी पश्चात्ताप करने को भावना होनी चाहिये। इस आशयसे प्रथम गमनागमनमें हुई जीवहिंसाका पश्चात्ताप करके उसके सम्बन्धमें हुए दुष्कृतकी क्षमा-याचना की जाती है। 'मिच्छा मि दुक्कडं' यह प्रतिक्रमणकी भावनाका बीज है। ये शब्द बोलते समय हृदयमें कँपकँपी होनी चाहिये। कि 'हाय। हाय ! मैंने दुष्टने क्या किया ?' यह नहीं भूलना चाहिये कि—भावनाशून्य मिथ्या दुष्कृत यह वाणीकी विडम्बना है या असत्य प्रलाप है।

मिथ्या-दुष्कृतका उत्तरीकरण कायोत्सर्गद्वारा होता है अर्थात् 'तस्स उत्तरी' सूत्र और 'काउस्सग्ग' सूत्र बोलकर एक छोटीसी कायोत्सर्गकी क्रिया २५ श्वासोच्छ्वास प्रमाणकी की जाती है। साधकको यह कायोत्सर्गकी क्रिया स्पष्टतया समझ लेनी आवश्यक है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थलपर वह प्रतीकरूपमें आयोजित है, परन्तु साधनाके समयमें उसका यथार्थ उपयोग करना उचित है। "कायाको स्थानसे स्थिर करके, वाणीको मौनसे स्थिर करके और मनको ध्यानसे स्थिर करके बहिर्भावमें विचरते हुए आत्माका विसर्जन करना" यह उसकी प्रतिज्ञा है। यह कायोत्सर्ग किया जाय तो उत्तरीकरणका मुख्य हेतु सिद्ध हो। कायोत्सर्गके समय स्मरण किये जानेवाले 'लोगस्स' सूत्रके पद अवश्य ही गम्भीर अध्ययन–मनन माँगते हैं। उत्तरोत्तर अभ्याससे उक्त चिन्तन सहज सम्भव है। तदनन्तर प्रकटरूपमें बोले जानेवाले 'लोगस्स' सूत्र अर्थात् 'चउवीसत्थय' सूत्रका पाठ स्तुति–मंगलरूप है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्तसे कुछ निर्बल बना हुआ हृदय अर्हत् और सिद्ध भगवन्तोंके कीर्तनसे पुनः बलवान् बनता है और सत्प्रवृत्तिरूप आराधनामें उत्साहवान् होता है।

इस क्रियाके पूर्ण होनेके बाद 'मुहपत्ती–पडिलेहण' (मुखवस्त्रिका –प्रतिलेखन) की क्रिया आरम्भ होती है। प्रत्येक क्रिया गुरु-वन्दन और गुरु–आदेशसे करने योग्य होनेसे, यहाँ गुरुको खमासमण प्रणिपातकी क्रियापूर्वक वन्दन किया जाता है और मुहपत्ती पडिलेहनेके लिये 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सामायिक–मुहपत्ती पडिलेहेउं ?' इन शब्दोंसे आज्ञा माँगी जाती है। गुरु उपस्थित हों तो वे कहते हैं 'पडिलेहेह' अर्थात् 'प्रतिलेखना करो!' साधक उस आदेशको शिरोधार्य करते हुए कहता है कि 'इच्छ'–'मैं इसी प्रकार चाहता हूँ।' फिर वह मुहपत्तीकी पडिलेहणा करता है।

यह विधि पूर्ण होनेके पश्चात् खमासमण प्रणिपातकी क्रिया द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु–वन्दन करके सामायिकमें प्रवेश करनेकी आज्ञा माँगी जाती है, उसमें प्रथम 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक संदिसाहुं' इन शब्दोंद्वारा सामायिक करनेकी इच्छा प्रकट कर उसके लिये गुरुका आदेश लेनेकी भावना प्रदर्शित की जाती है, और जब गुरु 'संदिसह' शब्दसे तत्सम्बन्धी आज्ञा दें, तब उसको शिरोधार्य करनेके लिये 'इच्छ' बोलकर पुनः खमासमण प्रणिपातकी क्रियाद्वारा वन्दन कर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक ठाउं ?' इन शब्दोंसे 'सामायिक'में स्थिर होनेका आदेश माँगा जाता है। गुरुकी ओरसे 'ठाएह' शब्दद्वारा आदेश मिल जानेपर 'इच्छ' कहकर खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार–मन्त्रके पाठकी एक बार गणनापूर्वक 'इच्छकारी भगवन् ! पसाय करो सामायिक–दंडक उच्चरावोजी' ऐसी विनति की जाती है। इस विनतिसे गुरु 'सामाइय–सुत्तं' अर्थात् 'करेमि भंते' सूत्रका पाठ बोलते हैं। गुरु यदि सूत्र बोलें तो उस समय साधकको दोनों हाथ जोड़कर कुछ मस्तक झुकाकर शान्तिसे श्रवण करना चाहिये और मध्यम स्वरमें बोलना चाहिये, यानि गुरु प्रतिज्ञा लिवाते हैं और साधक प्रतिज्ञा लेता है।

'प्राण जाय पर प्रतिज्ञा न जाय' यह भावना साधकको दृढ़ रीतिसे हृदयमें धारण करनी चाहिये, क्योंकि साधनाकी सफलताका सर्व आधार उसके निर्वाह अथवा पालन पर निर्भर है। प्रत्येक धार्मिक क्रिया अथवा आध्यात्मिक अनुष्ठान प्रतिज्ञापूर्वक किया जाता है, उसका कारण यह है कि साधकको उसके साध्यका बराबर ध्यान रहे और उससे सम्बन्धित उसका पुरुषार्थ अस्खलित गतिसे चालू रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सामायिककी साधना' करनेके लिए ऊपर कहे अनुसार प्रतिज्ञा ग्रहण करनेके बाद स्थिर आसनपर बैठनेके लिए आज्ञा माँगी जाती है। तदर्थ खमासमण प्रणिपातकी क्रिया करके 'इच्छा० सन्दिसह भगवन्! बेसणे संदिसाहुं ?' अर्थात् हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं बैठनेकी अनुमति माँगता हूँ, इस प्रकार कहा जाता है। गुरु हों तो वे 'संदिसह' कहते हैं, नहीं तो उनकी अनुमति मिली हुई मानकर 'इच्छं' कहकर पुनः खमासमणद्वारा 'इच्छा० संदिसह भगवन्! बेसणे ठाउं ?' अर्थात् हे भगवन्! आपकी इच्छा हो तो मैं बैठकपर स्थिर होऊँ ? ऐसा आदेश माँगा जाता है। गुरु हों तो वे 'ठाएह' कहते हैं। नहीं तो उनकी अनुमति मिली हुई मानकर 'इच्छं' कहनेमें आता है। 'इच्छं' पदका व्यवहार सर्वत्र इस प्रकार समझ लेना चाहिये।

अब 'सामायिक' में स्वाध्यायादि क्रिया मुख्य होनेसे उसका आदेश माँगनेके लिये खमासमण प्रणिपातकी क्रियापूर्वक 'इच्छा० संदिसह भगवन्! सज्झाय (स्वाध्याय) संदिसाहुं ?' इस प्रकार बोला जाता है। गुरु हों तो वे 'संदिसह' कहते हैं और आज्ञाका स्वीकार 'इच्छं' पदद्वारा करके पुनः खमासमण प्रणिपातकी क्रियापूर्वक 'इच्छा० संदिसह भगवन्! सज्झाय करूँ ?' इन शब्दोंसे 'स्वाध्याय'का निश्चित आदेश लिया जाता है। यहाँ स्वाध्याय शब्दसे सूत्रकी वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा तथा मन्त्रजप और ध्यान अभिप्रेत है। गुरु इस प्रकारके स्वाध्यायका आदेश देते हैं, अतः 'इच्छं' कहकर मङ्गलरूप तीन नमस्कार गिनकर 'सामायि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ककी साधना' आरम्भ की जाती है, जो इस समयसे लेकर बराबर दो घड़ी तक अर्थात् ४८ मिनिट पर्यन्त एकसरीखी चाल रखनी चाहिये ।

जितने क्षण समभावमें जाँय वह 'सामायिक' है । फिर भी उसको व्रतकी कोटिमें लानेके लिये एक 'सामायिक साधना' का समय एक मुहूर्त अर्थात् दो पड़ी जितना (४८ मिनिट) निश्चित किया गया है ।

[१२]

सामायिक पारनेकी विधिके हेतु

'सामायिककी साधना' करनेवालेका जीवन–परिवर्तन हो जाता है, वास्तविकरूपमें वह परिवर्तन करनेके लिए ही आयोजित है । मैत्री आदि भावनासे वासित मन कठोरता, कृपणता, मिथ्याभिमान अथवा ममत्वको शीघ्र झेलता नहीं अर्थात् प्रारम्भ किया हुआ सामायिक छूट न जाय यही इष्ट है । ऐसा होने पर भी व्यावहारिक मर्यादाओंके कारण उसकी पूर्णाहुति करनी पड़ती है, जिसकी खास विधि है । तदर्थ प्रथम खमासमण प्रणिपातद्वारा गुरुवन्दन कर ईर्यापथ–प्रतिक्रमण किया जाता है अर्थात् 'इरियावही' सूत्र 'तस्स उत्तरी' सूत्र और 'अन्नत्थ' सूत्रके पाठ बोलकर पचीस श्वासोच्छ्वासके कायोत्सर्गमें स्थिर होकर प्रकट 'लोगस्स' सूत्र बोला जाता है । फिर मुहपत्ती पडिलेहण किया जाता है । तदनन्तर पुनः खमासमण प्रणिपातद्वारा गुरुको वन्दन करके सामायिक पारनेकी–पूर्ण पारनेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये कहा जाता है कि 'इच्छा० संदिसह भगवन् !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक पारूँ ?' इस समय गुरु कहते हैं कि–'पुणो वि कायव्वो' फिर भी करने योग्य है।' उस समय साधक 'यथाशक्ति' शब्दद्वारा अपनी मर्यादा सूचित करता है कि मेरी शक्ति अभी यहीं पूर्णाहुति करने जितनी है। इसके बाद फिर खमासमण प्रणिपात कर, गुरुके समक्ष प्रकट किया जाता है कि इच्छा० संदिसह भगवन् ! सामायिक पार्युं' अर्थात् हे भगवन् ! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिये–मैंने सामायिक पूर्ण किया है।' उस समय गुरु कहते हैं कि 'आयारो न मोत्तव्वो' –आचार नहीं छोड़ना,' अर्थात् सामायिक करना यह तुम्हारा आचार है, अतः उसमें प्रमाद नहीं करना। तात्पर्य यह कि यह साधना एकसे अधिक बार करने योग्य है। प्रतिदिन नियमित करने योग्य है और उसमें एक भी दिन रीता न जाय इसकी ओर लक्ष्य रखना।

इतनी विधिके बाद दाहिना हाथ चरवलेपर रख एक 'नमस्कार' का पाठ अन्त्य मङ्गलके रूपमें बोला जाता है। और 'सामाइय–पारण –गाहा' (सामाइय–वय–जुत्तो) के पाठद्वारा सामायिककी महत्ताका पुनः स्मरण कर, उसमें जो कोई दोष अथवा स्खलना हुई हो उसके लिये हार्दिक दुःख व्यक्त किया जाता है। फिर दाहिना हाथ स्थापना-के समक्ष उलटा रखकर नमस्कारका पाठ एक बार बोला जाता है। इससे 'स्थापनाचार्य' की 'उत्थापना' हुई मानी जाती है। यहाँ 'सामायिक'की विधि पूर्ण होती है। जो एकसे अधिक सामायिक करने की इच्छा रखते हों वे उसकी पूर्णाहुतिकी विधि पूरी न कर फिरसे 'सामायिक' की प्रवेशविधि करते हैं। इस तरह एक साथ तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिकका क्रियाएँ हो सकता हैं और तीसरो बार पारनेकी विधि करना चाहिये।

जो व्यक्ति 'सामायिक' का अनुसरण करता है, वह सुख, शान्ति और सामर्थ्यका लाभ प्राप्त कर सकता है।

[१३]

चैत्यवन्दनकी विधिके हेतु

कोई भी धर्मानुष्ठान गुरु अथवा देवको वन्दन करके उनकी आज्ञा पूर्वक करना चाहिये, इस हेतुसे प्रथम तीन खमासमण प्रणि० की क्रिया की जाती है और चैत्यवन्दन करनेका आदेश माँगा जाता है। और आदेश मिलनेकी स्वीकृतिके रूपमें चैत्यवन्दन प्रारम्भ किया जाता है। धर्मानुष्ठानका आरम्भ मङ्गलाचरणसे होना चाहिये। अतः प्रथम उसमें तीर्थङ्कर भगवन्तोंकी स्तुति–वर्णनरूप ऐच्छिक **चैत्य-वन्दन** बोला जाता है। इस ऐच्छिक **चैत्यवन्दन**द्वारा अनुष्ठाता अनेक भावोंसे **चैत्यवन्दन** कर सकता है। ऐसे किसी भी चैत्यवन्दनकी पूर्णाहुति 'जं किंचि नाम तित्थं' इस सूत्रसे की जाती है। क्यों कि इससे तीनों लोकमें स्थित सकल तीर्थोंकी वन्दना होती है। अर्थात् समस्त विश्वमें स्थित चैत्य और तीर्थ–संस्थाओंके प्रति पूर्ण श्रद्धा व्यक्त की जाती है। इसके बाद 'सक्कत्थय–सुत्त' अर्थात् ('नमो त्थु णं' सूत्र) का पाठ योगमुद्रासे बोला जाता है, उसका कारण अर्हद्देवोंके उत्कृष्ट गुणोंकी आराधना है। अन्य शब्दोंमें कहा जाय तो इसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भावजिन' के प्रति भक्ति–भावनाका अर्घ्य है। इस सूत्रकी अन्तिम गाथाद्वारा तीर्थङ्कर पदकी भूत, वर्तमान और भविष्यकालीन अवस्थाओंको भी वन्दन किया जाता है, जिससे आराध्यके रूपमें इस पदकी महत्ता हृदयमें स्थिर होती है। 'योगमुद्रा' का हेतु जिनेश्वरोंके इन गुणोंमें तल्लीनताका अनुभव करना है। तत् पश्चात् 'सव्वचेइय–वंदण' सुत्तं ('जावंति चेइयाइं' सूत्र)का पाठ सर्व चैत्योंकी पूज्यताको मनमें अङ्कित करता है तथा खमासमण प्रणिपातकी क्रिया और 'सव्वसाहुवंदण' सुत्तं ('जावंत के वि साहू' सूत्र) का पाठ सम्पूर्ण विश्वमें चारित्रकी सुगन्ध फैलाये हुए साधु–मुनिराजोंके प्रति पूज्यभावकी अभिव्यक्ति करता है। चैत्यवन्दनके अधिकारमें यह साधुवन्दन क्यों ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि भिन्न भिन्न भूमिकापर स्थित रहकर आत्मविकासकी साधना करनेवाले ये सन्त पुरुष चैत्यवन्दनरूपी 'श्रद्धायोग' या 'भक्तियोग'की भावनाको दृढ़ करनेमें निमित्तभूत हैं।

इतनी विधिके पश्चात् 'नमोऽर्हत्' सूत्रके मङ्गलाचरणपूर्वक स्तवन बोला जाता है। अनुष्ठाताको यहाँ हृदयके तार झनझनाने चाहिये, क्यों कि 'तोतेके राम' की तरह केवल मुखसे उच्चारण करनेका कोई अर्थ नहीं। भगवद्भजनकी इच्छा, प्रवृत्ति और तल्लीनता ये तीनों ही मङ्गलकारी हैं। चैत्यवन्दनका यह हृदय है, चैत्यवन्दनका यह प्राण है। इस समय भावनाके पूरमें उभार आना ही चाहिये। काव्यकलाके लिये यहाँ स्थान है, सङ्गीतकलाके लिये यहाँ अवकाश है, अभिनयकलाको अवश्य ही उपयुक्त मार्ग मिलता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु एक शर्त यह है कि ये सब अर्हद्–उपासनाकी तल्लीनतासे उद्भूत हुए होने चाहिये।

इसके पश्चात् 'पणिहाण–सुत्त' ('जय वीतराय' सूत्र) के पाठद्वारा हृदयकी शुभ भावनाओंको दृढ़ किया जाता है और अन्तमें 'चेइयवंदण–सुत्त' ('अरिहंत चेइयाणं' सूत्र) द्वारा अर्हच्चैत्योंका आलम्बन स्वीकृत करके कायोत्सर्ग किया जाता है। चैत्यवन्दनकी अन्तिम सिद्धि कायोत्सर्ग और ध्यानद्वारा ही होती है, यह बतलानेके लिये उसका क्रम अन्तिम रखा है। यह कायोत्सर्ग श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा और अनुप्रेक्षा–पूर्वक करना चाहिये, इस बातका सूचन सूत्रके मूल पाठमें ही किया हुआ है।

इस कायोत्सर्ग–ध्यानकी पूर्णाहुति नमुक्कार (नमस्कार–मन्त्र) के प्रथम पदके उच्चारणद्वारा की जाती है और चैत्यवन्दनकी पूर्णाहुति अन्त्य मङ्गलरूप अधिकृत जिनस्तुति अथवा 'कल्याणकंदं थुई' की पञ्चजिनस्तुतिरूप प्रथम गाथा बोलकर, खमासमण प्रणिपातकी वन्दनापूर्वक की जाती है।

श्रीजिनेश्वरके गुणोंका बारबार रटन करनेसे उनकी प्राप्तिके लिये उत्साह बढ़ता है, चित्तमें प्रसन्नता प्रकट होती है और तदर्थ योग्य पुरुषार्थके बलका अनुभव होता है।

शास्त्रोंमें कहे अनुसार श्रावकको कम–से–कम प्रातः, मध्याह्न और सायं इस तरह तीन बार चैत्यवन्दन करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४]

दैवसिक प्रतिक्रमणकी विधिके हेतु

१. विरतावस्थामें की हुई क्रिया पुष्टिकारक और फलदायिनी होती है, अतः प्रतिक्रमणके आदिमें सामायिक ग्रहण किया जाता है।

२. फिर पच्चक्खाण लेनेके लिये गुरुके विनयार्थ मुहपत्ती पडिलेहकर द्वादशावर्त्त–वन्दन किया जाता है। पच्चक्खाण यह छठा आवश्यक है, परन्तु वहाँ तक पहुँचनेमें दिवस–चरिम–प्रत्याख्यानका समय बीत जाता है इसलिये सामायिकके बाद शीघ्र ही पच्चक्खाण किया जाता है।

३. सब धर्मानुष्ठान देव–गुरुके वन्दन–पूर्वक सफल होते हैं, अतः प्रथम यहाँ देववन्दन किया जाता है। चैत्यवन्दनभाष्यमें उसके उसके बारह अधिकार इस प्रकार हैं :—

"नमु जे अई अरिहं लोग सव्व पुक्ख तम सिद्ध जो देवा।
उज्जिंत चत्ता वेआवच्चग अहिगार पढमपया ॥ ४२ ॥
पढमहिगारे बंदे, भावजिणे बीयए उ दव्वजिणे ॥
इगचेइअ–ठवण–जिणे, तइय–चउत्थंमि नामजिणे ॥४३॥
तिहुअण–ठवण–जिणे, पुण पंचमए विहरमाणजिण छट्ठे।
सत्तमए सुयनाणं, अट्ठमे सव्व–सिद्ध–थुई ॥ ४४ ॥
तित्थाहिव–वीर–थुई, नवमे दसमे य उज्जयं (ज्जि)त–थुई।
अट्ठावयाइ इगद(गार) सि, सुदिट्ठिसुर–समरणा चरिमे ॥४५॥

देव–वन्दनके बारह अधिकारोंमें प्रथम पद इस प्रकार समझने–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) नमु० (२) जे अई० (३) अरिहं० (४) लोग० (५) सव्व० (६) पुक्ख० (७) तम० (८) सिद्ध० (९) जो देवा० (१०) उज्जित० (११) चत्ता० (१२) वेआवच्चग०।

प्रथम अधिकार 'नमो त्थु णं' से 'जिअभयाणं' तक गिना जाता है। उसमें भावजिनको वन्दन करता हूँ। दूसरा अधिकार 'जे अ अईआ सिद्धा' से 'वंदामि' तक गिना जाता है, उसमें द्रव्य जिनको वन्दन करता हूँ। तीसरा अधिकार 'अरिहंत चेइआणं' से गिना जाता है, उसमें एक चैत्यमें रहे हुए स्थापनाजिनको मैं वन्दन करता करता हूँ। चौथा अधिकार 'लोगस्स उज्जोअगरे' इन पदोंसे गिना जाता है, उसमें नामजिनको वन्दन करता हूँ।

पाँचवाँ अधिकार 'सव्वलोए अरिहंत चेइआणं' इन पदोंसे आरम्भ होता है, उसमें तीनों भुवनके स्थापना जिनोंको वन्दन करता हूँ। छठा अधिकार 'पुक्खरवरदीवड्ढे' से प्रारम्भ होता है, उसमें मैं विहरमान जिनोंको वन्दन करता हूँ। सातवाँ अधिकार इसी सूत्रके 'तम-तिमिर-पडल-विद्धंसणस्स' पदसे प्रारम्भ होता है, उसमें श्रुतज्ञानको वन्दन करता हूँ। आठवाँ अधिकार 'सिद्धाणं बुद्धाणं' पदोंसे चालू होता है। उसमें सर्व सिद्धोंकी स्तुति करता हूँ।

नौवाँ अधिकार इसी सूत्रके 'जो देवाण वि देवो' पदसे 'तारेइ नरं व नारिं वा' तकका गिना जाता है। उसमें वर्तमान तीर्थके अधिपति श्रीवीरभगवान्‌की स्तुति करता हूँ।

दसवाँ अधिकार इसी सूत्रके 'उज्जित-सेल-सिहरे' पदसे शुरू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, उसमें रैवताचलमण्डन श्रीअरिष्टनेमि भगवान्‌को वन्दन करता हूँ। ग्यारहवाँ अधिकार इसी सूत्रके 'चत्तारि अट्ठ दस दो अ' इस पदसे प्रारम्भ होता है, उसमें अष्टापद–पर्वतपर स्थित चौबीस जिन (प्रतिमा) को वन्दन करता हूँ और बारहवाँ अधिकार 'वेयावच्चगराणं' पदसे चालू होता है, उसमें सम्यग्दृष्टिदेवोंका स्मरण करता हूँ।

देव–वन्दन करनेवालेको ये बारह अधिकार अच्छी तरह समझकर इनके अनुसार वन्दन करनेका लक्ष्य रखना चाहिये।

इसके पश्चात् योगमुद्रासे बैठकर 'सक्कत्थय–सुत्त' अर्थात् 'नमो त्थु' णं सूत्रका पाठ बोला जाता है, वह देववन्दन–अधिकारमें श्रीतीर्थङ्कर भगवन्तको अन्तिम वन्दन समझना।

फिर 'भगवदादिवन्दन' सूत्रद्वारा विद्यमान श्रीश्रमणसङ्घको तथा 'इच्छकारी समस्त श्रावकोंको वन्दन करूँ' इन शब्दोंसे श्रावक–श्राविकाओंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया जाता है।

४. इतनी पूर्वविधि करनेके बाद प्रतिक्रमणमें मन, वचन और कायासे स्थिर होनेके लिये 'इच्छा० देवसिय पडिक्कमणे ठाउं ?' इन पदोंसे प्रतिक्रमणकी स्थापना करनेका आदेश माँगा जाता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो यहाँ प्रतिक्रमणके अनुष्ठानका प्रणिधान किया जाता है; यह आदेश मिलनेपर दाहिना हाथ तथा मस्तक चरवलेपर रखकर, प्रतिक्रमणका बीजरूप 'सव्वस्स वि देवसिअ' सूत्र अर्थात् 'पडिक्कमण–ठवणा सुत्त' बोला जाता है। यहाँ चरवलेपर दाँया हाथ रखते समय तथा मस्तक नीचे झुकाये समय गुरुके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरणस्पर्श करते हों ऐसी भावना रखी जाती है तथा पाप भारसे नीचा झुकता हूँ, ऐसा भी चिन्तन किया जाता है। इस सूत्रका अर्थ यह है कि 'दिनके अन्तर्गत मनकी दुष्ट प्रवृत्तिसे, वाणीकी दुष्ट प्रवृत्तिसे तथा कायाकी दुष्ट प्रवृत्तिसे जिन अतिचारोंका सेवन हुआ हो, उन सबका मेरा पाप मिथ्या हो।' सारे प्रतिक्रमण का यही हेतु है। प्रतिक्रमणमें ये सब वस्तुएँ विस्तारसे कही जाती हैं। अतः इसको बीजक माना जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवन्तके दर्शनमें बीजकके उपन्याससे सर्व अर्थकी सामान्य-विशेषरूपता प्राप्त होती है।

अब सारी क्रियाएँ विरतावस्थामें आनेसे शुद्ध होती हैं इसलिये प्रतिक्रमणकी क्रिया करनेसे पूर्व आवश्यकके रूपमें यहाँ 'सामाइय-सुत्त' अर्थात् 'करेमि भन्ते!' सूत्र बोला जाता है।

५. फिर 'करेमि भन्ते!' सूत्र बोलकर आगे गुरुके समक्ष अतिचारोंका आलोचन (निवेदन) करनेका है, उसकी पहली तैयारीके रूपमें 'अइआरालोअण-सुत्त' 'तस्स-उत्तरी' सूत्र तथा 'अन्नत्थ' सूत्र बोलकर 'अइआर-वियारण' की गाथाओंका काउस्सग्ग किया जाता है।

प्रतिक्रमणका मुख्य हेतु पञ्चाचारकी विशुद्धि है, अतः इस काउस्सग्गमें दिवस-सम्बन्धी पाँचों आचारों में लगे हुए अतिचारोंका सूक्ष्मतासे विचार कर मनमें धारणा की जाती है।[1]

---

१. साधु इस स्थानपर नीचेकी गाथाद्वारा अतिचारोंका चिन्तन करते हैं:—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रमणकी क्रिया देव और गुरुकी विनयके साथ करनी चाहिये। इसलिये दूसरे आवश्यकके रूपमें देवकी विनयमें 'चउवीसत्थय–सुत्त' अर्थात् 'लोगस्स' सूत्र बोलकर चौबीस जिनेश्वरदेवोंको वन्दन किया जाता है।

६. इसके बाद गुरु–विनयरूप गुरुवन्दन करनेकी प्राथमिक तैयारीके रूपमें मुहपत्तीका पचास बोलपूर्वक पडिलेहण किया जाता है। हेयका परिमार्जन करने और उपादेयकी उपस्थापना करनेके लिये यह क्रिया अत्यन्त रहस्यमयी है, अतः इसकी उचित विधि गुरु अथवा पूज्य व्यक्तिके पाससे बराबर जान लेनी और तदनुसार क्रिया करनेमें सावधानी रखनी चाहिये।

गुरु-वन्दनमें पचीस आवश्यकका ध्यान रखना और बत्तीस दोषोंका त्याग करनेके लिये खास उपयोग रखना।

७. गुरुको द्वादशावर्त्तसे वन्दन कर लेनेके पश्चात् चौथे

"सयणासण–न्न–पाणे, चेइअ–जइ–सिज्ज–काय–उच्चारे।
समिई भावण–गुत्ती–वितहायरणे अईआरा ॥"

—शयन, आसन, अन्न–पानी आदि अविधिपूर्वक ग्रहण करनेसे, चैत्यके बारेमें अविधिपूर्वक वन्दन करनेसे, मुनियोंका यथायोग्य विनय न करनेसे, वसति आदि अविधिपूर्वक प्रमार्जन करनेसे, स्त्री आदिसे युक्त स्थानपर रहनेसे, उच्चार–मल–मूत्रका सदोष स्थानमें वर्जन करनेसे, पाँच समिति, बारह भावना और तीन गुप्तिका अविधिपूर्वक सेवन करनेसे, अर्थात् शयन, आसनादि सम्बन्धी क्रियामें विपरीत आचरण होनेसे जो अतिचार लगे हों उनको सँभारना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकमें प्रवेश किया जाता है। उसमें पहले ठीक तरहसे शरीर झुका कर पहले काउस्सग्गमें धारणा किये हुए अतिचारकी आलोचना करनेके हेतुसे 'इच्छा० संदिसह भगवन् ! देवसियं आलोएमि' यह सूत्र बोलकर गुरुके समक्ष आलोचना की जाती है। फिर 'सात लाख' और 'अठारह पापस्थानक' के सूत्र बोले जाते हैं। इसका कारण दिवस-सम्बन्धी दोषोंकी आलोचना करना है। बादमें 'सव्वस्स वि' सूत्र बोला जाता है। उसमें 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् !' ये शब्द गुरुके समक्ष प्रायश्चित्त-याचनाके रूपमें हैं और गुरु 'पडिक्कमेह' शब्दसे 'प्रतिक्रमण' नामक प्रायश्चित्तका आदेश देते हैं[1] तब 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' ये शब्द बोले जाते हैं और प्रतिक्रमणकी विशेष आलोचना करनेके लिए नीचे बैठकर प्रथम माङ्गलिकके लिए नमस्कार गिना जाता है। फिर समताकी वृद्धिके लिये 'करेमि भंते' सूत्र बोला जाता है। बादमें अतिचारोंकी सामान्य आलोचनाके लिये 'अइयारालोयण-सुत्त' बोला जाता है और तदनन्तर वीरासनसे बैठकर 'सावग-पडिक्कमण-सुत्त' बोला जाता है। इस सूत्रके प्रत्येक पदका अर्थ बराबर समझकर उसका चिन्तन करना चाहिये और उसमें प्रदर्शित जिन अतिचारोंका सेवन हुआ हो उनके लिये पश्चात्ताप करना चाहिये। आन्तरिक पश्चात्ताप पवित्रताको प्राप्त करनेका सुविहित मार्ग है, अतः प्रत्येक मुमुक्षुको उसका पूर्ण सावधानीसे अनुसरण करना चाहिये।

---

१. दस प्रकारके प्रायश्चित्तमें प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त दूसरा है। विशेष जानकारीके लिए देखो प्रबोधटीका भाग १, सूत्र ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर गुरुमहाराजके प्रति हुए अपने अपराधोंके क्षमापनके लिये द्वादशावर्त्त–वन्दना करना चाहिये। शास्त्रकारोंने साधुओंको–गुरुको आठ कारणोंसे (प्रसङ्गों पर) वन्दन करनेके लिये कहा है। इस प्रकार: —

"पडिक्कमणे सज्झाये, काउस्सग्ग–वराह–पाहुणए।
आलोयण–संवरणे, उत्तमट्ठे य वंदणयं ॥"

प्रतिक्रमण करते, सज्झाय (स्वाध्याय) करते, कायोत्सर्ग करते, अपराधकी क्षमा माँगते, अतिथि–साधुके आने पर, आलोयण लेते, प्रत्याख्यान करते और अनशन करते, ऐसे आठ प्रसङ्गोंपर द्वादशावर्त्त –वन्दन करना।

फिर. 'अब्भुट्ठिओ हं अब्भितर' के पाठसे गुरुमहाराजको खमाना।

८. प्रतिक्रमण करने पर भी जिन अतिचारोंकी शुद्धि नहीं हुई हो, उनकी शुद्धि करनेके लिये पाँचवें आवश्यकमें प्रवेश किया जाता है। परन्तु यह क्रिया करनेसे पूर्व उपर्युक्त शास्त्र वचनानुसार प्रथम गुरु-को वन्दन किया जाता है और फिर अवग्रहमेंसे पीछे हटकर 'आय-रिय उवज्झाय–सूत्र' बोला जाता है[1] वह यह बतलानेके लिये कि अपनेसे आचार्य, उपाध्याय, स्थविरादिके प्रति जो कषायका सेवन हुआ हो, उससे वापस लौट रहा हूँ। .काउस्सग्गकी सिद्धिके लिये कषायको ऐसी शान्ति उपयुक्त है।

---

१. कुछ आचार्योंके मतसे 'आयरियाइ–खामणासुत्त, तककी विधि 'प्रतिक्रमण आवश्यक' है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर 'करेमि भंते' सूत्र 'इच्छामि ठामि' सूत्र, 'तस्स उत्तरी' सूत्र तथा 'अन्नत्थ' सूत्र बोल कर दो लोगस्सका काउस्सग्ग किया जाता है, उसका हेतु चारित्राचारकी विशुद्धि है। यहाँ काउस्सग्ग करनेसे पूर्व जो सूत्र बोले जाते हैं, उनका अर्थ विचारनेसे चारित्रका शुद्ध स्वरूप समझमें आता है तथा उनमें कौनसी वस्तुएँ अतिचार-रूप हैं, उसका स्पष्ट ध्यान आ जाता है।

बादमें 'लोग्गस्स' तथा 'सव्वलोए अरिहंत–चेइआणं' सूत्र बोलकर एक लोगस्सका काउस्सग किया जाता है, उसका हेतु दर्शना-चारकी विशुद्धि है। फिर 'पुक्खरवरदीवड्ढे' तथा 'सव्वलोए अरिहंत चेइआणं' सूत्र बोलकर एक लोगस्सका काउस्सग्ग किया जाता है, उसका हेतु ज्ञानाचारकी विशुद्धि है।

फिर 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र बोलते हैं उसका हेतु सर्व आचारका निरतिचारावस्थापूर्वक पालन करनेसे उत्कृष्ट फल प्राप्त करनेवाले सर्व सिद्धोंको वन्दन करना है।

इस तरह चारित्राचार दर्शनाचार और ज्ञानाचारकी विशुद्धिके लिये कायोत्सर्ग करनेपर, तथा सिद्ध भगवन्तोंको वन्दन करनेके बाद श्रुतदेवता और क्षेत्रदेवताके आराधनके निमित्त एक–एक नमस्कार-का काउस्सग्ग किया जाता है।

९. फिर नमस्कार गिनकर, मुहपत्तीका पडिलेहण कर, द्वादशावर्त्त–वन्दन किया जाता है। उसमें नमस्कारकी गणना मङ्गलके लिये की जाती है और मुहपत्तीका पडिलेहण तथा द्वादशावर्त्त–वन्दन छट्ठा 'प्रत्याख्यान' आवश्यकके निमित्त किया जाता है। लोकमें भी ऐसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथा है कि राजा अमुक कार्य बतलाये तब वह करनेके बाद प्रणाम करके निवेदित करना। फिर प्रतिक्रमण करनेवाला छहों आवश्यक करनेके स्मरणरूप छः आवश्यक कर लेने का निवेदन करता है और यहाँ षडावश्यकमय प्रतिक्रमणकी क्रिया पूर्ण होती है।

१०. फिर इच्छामो 'अणुसट्ठि' ऐसे वचन बोले जाते हैं, उसका पारिभाषिक अर्थ यह है कि गुरुमहाराजके सब आदेश पूर्ण होनेके बाद अब हितशिक्षाके लिये नया आदेश हो तो हम चाहते हैं। सम्यक्त्व-सामायिकादिकी आरोपण-विधिमें तथा अङ्गादिकके उपदेशमें भी इस प्रकार 'इच्छामो अणुसट्ठि' ऐसा वचन आता है।

फिर 'नमो खमासमणाणं' और 'नमोऽर्हत्०' के मङ्गलाचरण-पूर्वक वर्धमान स्वरसे वर्धमानअक्षरयुक्त श्रीवर्धनानस्वामीकी स्तुति बोली जाती है। उसमें समाचारी ऐसी है कि गुरुमहाराजके एक स्तुति (गाथा) बोलनेके पश्चात् दूसरे वह और शेष स्तुति साध बोलें। परन्तु पाक्षिक प्रतिक्रमणमें गुरुमहाराजका तथा पर्वका विशेष बहुमान करनेके लिये गुरुके तीनों स्तुति बोलनेके बाद सब साधु और श्रावक यह स्तुति पुनः समकालमें उच्चस्वरसे बोलें। यहाँ ऐसा सम्प्रदाय है कि—साध्वियों और श्राविकाओंको 'संसार-दावानल' की तीन स्तुतियाँ बोलनी चाहिये।

फिर 'नमो त्थु णं' सूत्र बोलकर आदेश याचनापूर्वक पूर्वाचार्य-रचित स्तवन बोला जाता है तथा 'सप्तति-शत-जिनवन्दन' बोल-कर भगवान् आदि चारको 'थोभ-वन्दन' किया जाता है तथा दाँया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ चरवलेपर अथवा भूमिपर रखकर 'अड्ढाइज्जेसु' सूत्र बोलते हैं। वह सब पूर्णाहुतिमें देव–गुरुकी वन्दना करनेके लिये समझना।

११. फिर प्रायश्चित्त–विशुद्धिके निमित्त काउस्सग्ग किया जाता है। अतः उसका हेतु स्पष्ट है। काउस्सग्गके बाद बोला जाने-वाला लोगस्सका पाठ मङ्गलरूप है।

१२. बादमें सज्झायका आदेश माँगकर सज्झाय (स्वाध्याय) बोली जाती है। उसके सम्बन्ध में शास्त्रकारोंने कहा है कि—

"बारसविहंमि वि तवे, सब्भिंतर–बाहिरे कुसल–दिट्ठे।
नवि अत्थि नवि अ होही, सज्झाय–समं तवोकम्मं ॥"

सर्वज्ञ–कथित बारह प्रकारके 'बाह्य और अभ्यन्तर तपोंके विषयमें स्वाध्याय समान दूसरा तप–कर्म नहीं है। [न था,] और होगा भी नहीं।'[1]

१३. सज्झायके बाद दुःख–क्षय तथा कर्मक्षयके निमित्त कायोत्सर्ग किया जाता है, अतः उसका हेतु स्पष्ट है। इस काउस्सग्गमें 'शान्ति–स्तव' का पाठ एक व्यक्ति बोलता है और अन्य सुनते हैं, उसमें कितना गूढ रहस्य स्थित है, वह सूत्र–विवरणके प्रसङ्गपर हमने विस्तारसे बतलाया है।

१४. फिर 'सामायिक पारनेकी विधि प्रारम्भ होती है, उसमें लोगस्सका पाठ बोलनेके बाद 'चउक्कसाय' आदि सूत्र बोलकर चैत्यवन्दन किया जाता है। श्रावकको एक अहोरात्रमें सात चैत्यवन्दन

---

१. इसके बादकी बिधि 'प्रतिक्रमण–गर्भ–हेतु' में नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने चाहिये, उनमेंसे अन्तिम चैत्यवदन रात्रिमें सोनेसे पूर्व करना चाहिये, वह यहाँ किया जाता है। बादकी सब क्रियाएँ सामायिक पारनेकी विधिके अनुसार हैं जिनको पहले विस्तारसे बतला चुके हैं।

[१५]

रात्रिक प्रतिक्रमणकी विधिके हेतु

१. प्रथम सामायिक लिया जाता है, उसका हेतु दैवसिक-प्रतिक्रमणके हेतुके अनुसार समझना।

२. फिर कुस्वप्न-दुःस्वप्नके निमित्तसे काउस्सग्ग किया जाता है, उसमें रागादिमय स्वप्नको कुस्वप्न समझना और द्वेषादिमय स्वप्नको दुःस्वप्न समझना। स्वप्नमें स्त्रीको अनुरागद्वारा देखी हो, तो वह दृष्टि-विपर्यास कहलाता है। तदर्थ १०० श्वासोच्छ्वासका काउस्सग्ग करना चाहिये, जो कि 'लोगस्स' सूत्रका 'चंदेसु निम्मलयरा' तकका पाठ चार बार विधिवत् स्मरण करनेसे होता है। और स्वप्नमें अब्रह्मका सेवन हुआ हो, तो उसके निमित्त १०८ श्वासोच्छ्वासका काउस्सग्ग करना चाहिये, जो 'लोगस्स' सूत्रका 'सागरवर-गंभीरा' तकका पाठ चार बार विधिपूर्वक स्मरण करनेसे होता है। फिर 'लोगस्स' सूत्रका पाठ प्रकटरूपमें बोला जाता है, वह मङ्गलरूप समझना। कुस्वप्न-दुःस्वप्नका यह अधिकार मुख्यतया स्त्री-सङ्गसे रहित मुनिराजको लक्ष्य करके कहा गया है और उसके लिये जो कायोत्सर्ग किया जाता है, वह पातककी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्तरूप होनेसे आवश्यकसे अतिरिक्त हैं।

३. सर्व धर्मानुष्ठान देव-गुरुके वन्दन-पूर्वक करनेसे सफल होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, अतः यहाँ प्रथम चैत्यवन्दन किया जाता है और उसमें 'जग-चिंतामणि' सूत्रसे 'जय वीयराय' सूत्र तकके सूत्र बोले जाते हैं। फिर भगवान् आदि चारको वन्दन किया जाता है, अर्थात् देव तथा गुरु दोनोंका वन्दन होता है।

४. दैवसिक प्रतिक्रमणमें सज्झाय अन्तमें की जाती है, और यहाँ प्रारम्भमें की जाती है, उसका कारण यह है कि प्रातःकालीन प्रतिक्रमणके लिये यथोक्त समयकी राह देखना है। सज्झायमें भरत-बाहुबलि आदि महापुरुष तथा सुलसा, चन्दनबाला आदि महासतियोंका प्रभातमें स्मरण किया जाता है, क्यों कि उन्होंने जैसा जीवन बिताया है वह अपने लिये अध्यात्मका ऊँचा आदर्श स्थापित करता है।

५. फिर गुरुकी सुख-साता पूछकर रात्रिकप्रतिक्रमणकी विधिपूर्वक स्थापना की जाती है और दाहिना हाथ चरवला अथवा कटासणा पर रखकर प्रतिक्रमणके बीजकरूप 'सव्वस्स वि राइअ दुच्चिंतिअ०' आदि पद बोले जाते हैं।

६. फिर 'नमो त्थु णं' सूत्र बोला जाता है। वह देव-वन्दन मङ्गलके लिये समझना।

७. फिर 'करेमि भंते' आदि सूत्र बोलकर एक लोगस्सका काउस्सग्ग किया जाता है, वह चारित्राचारकी शुद्धिके लिये समझना। बादमें एक 'लोगस्स' बोल कर एक लोगस्सका काउस्सग्ग किया जाता है, वह दर्शनाचारकी शुद्धिके लिये समझना। फिर 'पुक्खरवरदीवड्ढे' आदि सूत्र बोलकर 'अइयार-वियारण-गाहा' का काउस्सग्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाता है, वह मुख्यतया ज्ञानाचारकी शुद्धिके लिये समझना। 'दैवसिक प्रतिक्रमणमें चारित्राचारकी शुद्धि के लिये दो लोगस्सका काउस्सग्ग किया जाता है और यहाँ एक लोगस्सका काउस्सग्ग क्यों? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि 'दिनकी अपेक्षा रात्रिमें थोड़ी प्रवृत्ति होनेसे दोष अल्प होना सम्भव है।' फिर 'पहले काउस्सग्गमें अतिचारोंका चिन्तन करनेकी अपेक्षा तीसरे काउस्सग्गमें अतिचारका चिन्तन क्यों किया जाता है? इसका उत्तर यह है कि पहले काउस्सग्गमें निद्राका कुछ उदय सम्भवित है, अतः अतिचारोंका पूर्णतया चिन्तन नहीं हो सकता, इसलिये उसका तीसरे काउस्सग्गमें चिन्तन किया जाता है।'

८–९. फिर तीसरे और चौथे आवश्यककी जो क्रिया होती है उसके हेतु दैवसिक प्रतिक्रमणकी विधिके अनुसार समझना।

१०. फिर तीन आचारोंके काउस्सग्गसे भी अशुद्ध रहे हुए अतिचारोंकी एकत्र शुद्धिके लिये तप–चिन्तनका कायोत्सर्ग करना चाहिये। वह नहीं आता हो तो सोलह नमस्कार गिननेकी प्रवृत्ति है, किन्तु वास्तवमें तो तपका चिन्तन करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार समझनी :—

'श्रीवीर भगवान्‌ने छः मासका तप किया था। हे चेतन! वह तप तूं कर सकेगा? तब मनमें उत्तरका चिन्तन करना कि वैसी शक्ति नहीं है और परिणाम नहीं है। फिर अनुक्रमसे एक एक उपवास कम करके विचार करना। ऐसा करते हुए पाँच मासतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आना। फिर एक-एक मास कम करके विचार करना और एक मास तक आना। फिर एक दिन ऊण मासखमण, दो दिन ऊण मासखमण इस प्रकार तेरह दिन बाकी रहें तबतक अर्थात् सत्रह उपवासका विचार करना। फिर 'हे चेतन! तू चौंतास भक्त सोलह उपवास) कर, बत्तीस भक्त कर, तीस भक्त कर' इस प्रकार दो-दो भक्त कम करते हुए चौथ भक्त (एक उपवास) तक विचार करना। और उतनी भी शक्ति न हो तो अनुक्रमसे आयंबिल, निव्वी, एगासण, बियासण, अवड्ढ, पुरिमड्ढ, साड्ढपोरिसा, पोरिसी, नवकारसी-पर्यन्त विचार करना। उसमें जहाँतक करनेकी शक्ति हो अर्थात् वह तप पहले किया हो, वहाँसे ऐसा विचार करे कि 'शक्ति है, पर परिणाम नहीं।' बादमें वहाँसे घटाते-घटाते जो पच्चक्खाण करना हो वहाँ आकर रुके और 'शक्ति भी है और परिणाम भी है' इस तरह विचार करके मनमें दृढ़ निश्चय करके काउस्सग्गको पूरा करना।

११. फिर छठे आवश्यककी क्रिया प्रारम्भ होती है, अतः मुहपत्तीका पडिलेहण करके द्वादशवर्त्त-वन्दन किया जाता है और सर्व तीर्थों को वन्दन करनेके हेतु से 'सकल-तीर्थ-वन्दना' बोली जाती है। बादमें पूर्वचिन्ति पच्चक्खाण किया जाता है। उसमें गुरुके समीप प्रतिक्रमण होता हो तो गुरुके पास, अन्यथा स्वयं ही पच्चक्खाण कर लिया जाता है। और 'सामायिक पच्चक्खाण किया है जी!' ऐसा कहा जाता है। यदि पच्चक्खाण लेना नहीं आता हो तो पच्चक्खाणकी धारणा की जाती है और 'पच्चक्खाण धार लिया है जी!' ऐसा कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. फिर छहों आवश्यक पूर्ण होनेका हर्ष प्रकट करनेके लिए 'इच्छामो अणुसट्ठि' कह कर 'प्राभातिक–स्तुति 'अर्थात्, 'विशाल–लोचन–दलं' सूत्रकी तीन गाथा बोली जाती है, वे मन्द स्वरसे बोलनी, किन्तु उच्च स्वरसे नहीं बोलनी, क्यों कि उच्च स्वरसे बोलनेसे हिंसक जीव जाग उठें और हिंसामें प्रवृत्त हों, उसका निमित्त बननेका प्रसंग आये।

१३. बादमें चार थोय (स्तुति)से देव–वन्दन किया जाता है, तथा चार खमा० प्रणि० देकर भगवान् आदिको थोभ–वंदण किया जाता है, तथा श्रावक 'अड्ढाइज्जेसु' सूत्र बोलते हैं, वह सब मङ्गलके लिये समझना।

श्रावक पोषधमें हो तो यहाँ 'बहुवेल संदिसाहु' और 'बहुवेल –करूँगा' ऐसे आदेश माँगे। स्वतन्त्र श्रावकको ऐसा नहीं करना चाहिए। आदेश माँगनेका कारण यह है कि सब कार्य गुरुमहराजसे पूछकर करना चाहिये।

१४–१५. बादमें श्रीसीमन्धरस्वामी तथा श्रीसिद्धाचलजीके चैत्य-वन्दन किये जाते हैं, वह सामाचारीके अनुसार तथा सामायिकका दो घड़ीका समय पूरा करनेके लिये समझना। इस प्रतिक्रमणमें एक तो 'जग–चिंतामणि' सुत्त से प्रारम्भ होनेवाला और दूसरा 'प्राभातिक स्तुति' इस प्रकार दो चैत्यवन्दनोंके करनेकी प्रवृत्ति है, वह विशेष माङ्गलिकके लिये समझनी।

१६. तदनन्तर सामायिक पूर्ण किया जाता है, उसका हेतु पहले बतला चुके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१६]

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधिके हेतु

दिन और रात्रिके अन्तमें प्रतिदिन प्रतिक्रमण करनेपर भी यदि किसी अतिचारका विस्मरण हुआ हो, अथवा याद करने पर भी भयादिके कारण गुरु-समक्ष उसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो, अथवा मन्द परिणामके कारण उसका सम्यक् प्रकारसे प्रतिक्रमण न हुआ हो, ऐसे अतिचारोंका प्रतिक्रमण करनेके लिये तथा विशेष शुद्धिके लिये पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाता है। कहा है कि—

"जह गहं पइ-दिवसं पि, सोहियं तह वि पव्व संधीसु।
सोहिज्जइ सविसेसं, एवं इहयं पि नायव्वं ॥"

—जैसे घर प्रतिदिन साफ किया जाता है, तो भी पर्वके दिनोंमें उसकी विशेष प्रकारसे सफाई की जाती है, ऐसे यहाँ भी जानना चाहिये।

१. पाक्षिकादि-प्रतिक्रमणमें प्रारम्भकी 'सावग-पडिक्कमण-सुत्त' तककी विधि दैवसिक प्रतिक्रमणके अनुसार की जाती है, अतः उसके हेतु भी तदनुसार समझने चाहिए। इसके पश्चात् शीघ्र ही पक्खी-प्रतिक्रमण प्रारम्भ करनेका हेतु यह है कि पक्खी-प्रतिक्रमण यह चौथा आवश्यक है, अतः उसका यहीं अनुसन्धान हो।

२. फिर गुर्वादिकको खमानेसे ही सर्व अनुष्ठान सफल होते हैं, इसलिये 'अब्भुट्ठिओ हं संबुद्धा! खामणेणं', इत्यादि पाठद्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुर्वादिक सम्बुद्धोंको खमाया जाता है, परन्तु गुर्वादिकके खमानेसे पूर्व द्वादशावर्त्त–वन्दन किया जाता है और वैसा वन्दन करनेसे पूर्व मुहपत्ती पडिलेहना की जाती है। इस प्रकार मुहपत्तीका पडिलेहण करनेवाला व्यक्ति प्रतिक्रमणकी मण्डलीमें गिना जाता है, अन्य नहीं गिने जाते। (इसी उद्देशसे जिसने मुहपत्तीकी प्रतिलेखना नहीं की हो उस व्यक्तिको छींक आये तो उसका बाध नहीं गिनना। ऐसी प्रवृत्ति है।)

३. फिर संक्षेप और विस्तारसे पापकी आलोचना करनेके लिये 'आलोयणा–सुत्त' बोलनेके अनन्तर अतिचार बोले जाते हैं। उनमें किन अतिचारोंका सेवन हुआ है, यह जानकर आलोचना और प्रतिक्रमणके लिये एक व्यक्ति अतिचार बोलता है और अन्य एकाग्र चित्तसे सुनते हैं।

४–५. फिर 'सव्वस्स वि' सूत्र बोलकर सर्व अतिचारोंका प्रतिक्रमण–प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाता है। उसके बाद पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक तपके रूपमें एक, दो और चार उपवास; अथवा दो, चार और छः आयंबिल; अथवा तीन, छः और नौ निव्वी; अथवा चार, आठ और बारह एकाशन; अथवा दो, चार और छः हजार सज्झायके तपका निवेदन किया जाता है। यदि ऐसा तप किया हुआ हो तो 'पइट्ठिओ' बोला जाता है, उसका अर्थ यह है कि 'मैं अभी वैसे तपमें स्थित हूँ', और यदि ऐसा तप शीघ्र ही करना हो तो 'तह त्ति' कहा जाता है। कुछ लोग इस समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ नहीं बोलकर मौन रहते हैं और कुछ लोग 'यथाशक्ति' कहकर उस को अंशतः स्वीकार करते हैं। पापोंका प्रायश्चित करनेके लिये इस तपकी योजना है, अतः वह अवश्य करना चाहिये।

६. फिर प्रत्येक खामणासे सबको खमाया जाता है और उसके पूर्व और पश्चात् विनयके लिये गुरुको द्वादशावर्त्त–वन्दन किया जाता है।

७. से १० फिर 'पक्खीसुत्त' बोलकर श्रुताराधनके उल्लासपूर्वक 'सुयदेवया' थुई कही जाती है। और 'सावग–पडिक्कमण' सुत्त कहकर बाहर लोगस्सका काउस्सग्ग किया जाता है, वह अतिचारोंकी विशेष शुद्धिके लिये जानना।

११. फिर 'इच्छा० अब्भुट्ठिओ हं समत्त (समाप्त)–खामणेणं अब्भिंतर–पक्खियं खामेउं ?' आदि शब्दोंसे खमाया जाता है, वह काउस्सग्ग करते समय शुभ एकाग्रभावसे कोई अपराध याद आये हो तो उनको खमानेके लिये जानना। अथवा यहाँ पाक्षिक प्रतिक्रमणकी समाप्ति होती है, अतः पहले क्षमापनके बाद कुछ अप्रीतिकारी हुआ हो, अथवा अशुद्ध क्रिया हुई हो तो उसके क्षमापनके लिये जानना !

१२. फिर 'सावग–पडिक्कमण' सुत्तसे दूसरी विधि दैवसिक प्रतिक्रमणकी विधिके अनुसार करनी है, अतः उसके हेतु तदनुसार समझने चाहिए।

यहाँ श्रुतदेवताके कायोत्सर्गके स्थानपर भुवनदेवताका कायोत्सर्ग किया जाता है, उसका हेतु यह है कि क्षेत्रदेवताकी निरन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृतिमें भुवनकी क्षेत्रान्तर्गतता होनेसे तत्त्वसे तो भुवनदेवताकी स्मृति प्रतिदिन होती ही है, तो भी पर्वके दिन उनका बहुमान करना।

१३. स्तवनके स्थानपर 'अजिय–संति–थओ' और 'शान्ति-स्तव'के स्थानपर 'बृहच्छान्ति' बोली जाती है, वह पर्वके दिन भावकी विशेष वृद्धिके लिये समझनी।

[१७]

मङ्गल–भावना

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमः प्रभुः।
मङ्गलं स्थूलभद्राद्या, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥ १॥
नमस्कारसमो मन्त्रः, शत्रुञ्जयसमो गिरिः।
वीतरागसमो देवो, न भूतो न भविष्यति॥ २॥
ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः॥ ३॥
अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥ ४॥
पाताले यानि बिम्बानि, यानि बिम्बानि भूतले।
स्वर्गेऽपि यानि बिम्बानि, तानि वन्दे निरन्तरम्॥ ५॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे॥ ६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥ ७ ॥
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ! ॥ ८ ॥
प्रशमरसनिमग्नं दृष्टियुग्मं प्रसन्नं,
वदनकमलमङ्कः कामिनीसङ्गशून्यः ।
करयुगमपि यत्ते शस्त्रसम्बन्धवन्ध्यं,
तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव ॥ ९ ॥
सरसशान्तसुधारससागरं, शुचितरं गुणरत्नमहाकरम् ।
भविकपङ्कजबोधदिवाकरं, प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम्॥१०॥
अद्य मे सफलं जन्म, अद्य मे सफला क्रिया ।
शुभो दिनोदयोऽस्माकं, जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ॥११॥
न हि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागसमो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥१२॥

[१८]

प्रभुके सम्मुख बोलनेके दोहे

प्रभु–दरिसण सुख–सम्पद्रा, प्रभु–दरिसण नवनिध ।
प्रभु–दरिसणथी पामिये, सकलपदारथ सिद्ध ॥ १ ॥
भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान ।
भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान ॥ २ ॥
जीवडा ! जिनवर पूजिये, पूजानां फल होय ।
राम नमे परजा नमे, आण न लोपे कोय ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच कोडीने फूलडे, पाम्या देश अढार ।
राजा कुमारपालनो, वर्त्यो जयजयकार ॥ ४ ॥
प्रभु नामनी औषधि, खरा भावथी खाय ।
रोग शोक व्यापे नहीं, सबि सङ्कट दूर थाय ॥ ५ ॥

[१९]

शत्रुञ्जयको प्रणिपात करते समय बोलनेके दोहे

सिद्धाचल समरुं सदा, सोरठ देश मझार ।
मनुष्य-जन्म पामो करी, बन्दूँ वार हजार ॥ १ ॥
एकेकुं डगलुं भरे, शत्रुञ्जय समुं जेह ।
ऋषभ कहे भव क्रोडनां, कर्म खपावे तेह ॥ २ ॥
सिद्धाचल सिद्धि वर्या, गृहि-मुनिलिङ्ग अनन्त ।
आगे अनन्ता सिद्धशे, पूछो भवि ! भगवन्त ॥ ३ ॥
शत्रुञ्जय गिरि-मण्डणो, मरुदेवानो नन्द ।
युगलाधर्म निवारको, नमो युगादि जिणन्द ॥ ४ ॥
सोरठ देशमां संचर्यो, न चढ्यो गढ़ गिरनार ।
शेत्रुंजी नदी नाह्यो नहीं, एले गयो अवतार ॥ ५ ॥

[२०]

नवाङ्गपूजाके दोहे

जल भरी सम्पुट पत्रमां, युगलिक-नर पूजन्त ।
ऋषभ-चरण-अंगूठडो, दायक भवजल-अन्त ॥ १ ॥
जानु बले काउस्सग्ग रह्या, विचर्या देश-विदेश ।
खड़ा खड़ा केवल लह्यं पूजो जानु नरेश ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकान्तिक वचने करी, वरस्या वरसीदान।
कर-कांडे प्रभु-पूजना, पूजो भवि बहुमान ॥ ३ ॥
मान गयुं दोय अंसथी, देखी वीर्य अनन्त।
भुजाबले भवजल तर्या, पूजो स्कन्ध महन्त ॥ ४ ॥
सिद्धशिला गुण ऊजली, लोकान्ते भगवन्त।
वसिया तिणे कारण भवि, शिर शिखा-पूजन्त ॥ ५ ॥
तीर्थङ्कर-पद-पुण्यथी, त्रिभुवनजन सेवन्त।
त्रिभुवन-तिलक समा प्रभु, भाल तिलक जयवन्त ॥ ६ ॥
सोल पहोर प्रभु देशना, कण्ठे विवर वर्तुल।
मधुर ध्वनि सुरनर सुणे, तिणे गले तिलक अमूल ॥ ७ ॥
हृदय-कमल-उपशम बले, बाल्या राग ने रोष।
हिम दहे वन-खण्डने, हृदय तिलक सन्तोष ॥ ८ ॥
रत्नत्रयी गुण ऊजली, सकल सुगुण विश्राम।
नाभिकमलनी पूजना, करतां अविचल धाम ॥ ९ ॥
उपदेशक नव तत्त्वना, तिणे नव अङ्ग जिणन्द।
पूजो वहुविध रागशुं, कहे शुभवीर मुणिन्द ॥ १० ॥

[२१]

अष्टप्रकारी पूजाके दोहे

१ जल-पूजा

जल-पूजा जुगते करों, मेल अनादि विनास।
जल-पूजा फल मुझ हजो, मागो एम प्रभु पास ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ चन्दन–पूजा

शीतल गुण जेहमां रह्यो, शीतल प्रभु–मुखरङ्ग।
आत्म शीतल करवा भणी, पूजो अरिहा–अङ्ग ॥ २ ॥

३ पुष्प–पूजा

सुरभि अखण्ड कुसुमे ग्रही, पूजो गत सन्ताप।
सुन(न)जन्तु भव्य ज परे, करीए समकित छाप ॥ ३ ॥

४ धूप–पूजा

ध्यान–घटा प्रगटावीए, वामनयन जिन धूप।
मिच्छत्त दुर्गन्ध दूरे टले, प्रगटे आत्मस्वरूप ॥ ४ ॥

५ दीपक–पूजा

द्रव्य दीप सुविवेकथी, करतां दुःख होय फोक।
भाव–प्रदीप प्रगट हुए, वासित लोकालोक ॥ ५ ॥

६ अक्षत–पूजा

शुद्ध अखण्ड अक्षत ग्रही, नन्दावर्त विशाल।
पूरी प्रभु संमुख रहो, टाली सकल जंजाल ॥ ६ ॥

७ नैवेद्य–पूजा

अणाहारी पद में कर्या, विग्रह गई अनन्त।
दूर करी ते दीजिए, अणाहारी शिव सन्त ॥ ७ ॥

८ फल–पूजा

इन्द्रादिक पूजा भणी, फल लावे धरी राग।
पुरुषोत्तम पूजा करी, मागे शिवफल–त्याग ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२२]

प्रभु–स्तुति[1]

(१)

छे प्रतिमा मनोहारिणी दुःखहरी, श्रीवीर जिणन्दनी,
भक्तोने छे सर्वदा सुखकरी, जाणे खोली चान्दनी ।
आ प्रतिमाना गुण भाव धरीने, जे माणसो गाय छे,
पामी सघळां सुख ते जगतनां, मुक्ति भणी जाय छे ॥ १ ॥

(२)

आव्यो शरणे तुमारा जिनवर ! करजो, आश पूरी हमारी,
नाव्यो भवपार भारो तुम विण जगमां, सार ले कोण मारी ?
गायो जिनराज आजे हरख अधिकथी, पर्म आनन्दकारी,
पाये तुम दर्श नासे भव–भय–भ्रमणा, नाथ सर्वे अमारी ॥ १ ॥

(३)

त्हाराथी न समर्थ अन्य दीननो, उद्धारनारो प्रभु,
म्हाराथी नहि अन्य पात्र जगमां, जोतां जडे हे विभु ।
मुक्ति मङ्गल–स्थान तो य मुजने, इच्छा न लक्ष्मी तणी,
आपो सम्यग्रत्न 'श्याम' जीवने, तो तृप्ति थाये घणी ॥ १ ॥

---

१. प्रभु–स्तुति, चैत्यवन्दन, स्तवन आदिमें भाषाकी दृष्टिसे यथाशक्य सुधार किया है, किन्तु छन्दकी दृष्टिसे जो अशुद्धियाँ हैं, उन्हें सुधारने से मूल कलेवर (पाठ) बदल जाता है इसलिये उसमें परिवर्तन नहीं किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४)

सकल–कर्मवारी, मोक्ष–मार्गाधिकारी,
त्रिभुवन–उपकारी, केवलज्ञान–धारी ।
भविजन–नित सेवो, देव ए भक्ति–भावे,
एही ज जिन भजन्ता, सर्व सम्पत्ति पावे ।। १ ।।
जिनवर–पद सेवा, सर्व सम्पत्तिदाई,
निशादन सुखदाई, कल्पवल्ली सहाई ।
नाम–विनाम लही जे, सर्व–विद्या बडाई,
ऋषभ जिनह सेवा, साधनां तेह पाई ।। २ ।।

[२३]

चैत्यवन्दन

(१)

पद्मप्रभु ने वासुपूज्य, दोय राता कहीये ।
चन्द्रप्रभु ने सुविधिनाथ, दो उज्ज्वल लहीये ।। १ ।।
मल्लिनाथ ने पार्श्वनाथ, दो नीला निरख्या ।
मुनिसुव्रत ने नेमिनाथ, दो अंजन सरीखा ।। २ ।।
मोले जिन कञ्चन समा, एवा निज चोवीस ।
धीरविमल पण्डिततणो, ज्ञानविमल कहे शिष्य ।। ३ ।।

(२)

बार गुण अरिहन्तदेव, प्रणमीजे भावे ।
सिद्ध आठ गुण समरतां, दुःख–दोहग जावे ।। १ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचारज–गुण छत्रीश, पचवीश उवज्झाय ।
सत्तावीश साधुना, जपतां शिवसुख थाय ॥ २ ॥
अष्टोत्तर–शत गुण मली, एम समरो नवकार ।
धीरविमल पण्डिततणो, नय प्रणमे नित सार ॥ ३ ॥

श्रीशान्तिनाथका चैत्यवन्दन

(३)

शान्ति जिनेश्वर सोलमा, अचिरा–सुत वन्दो ।
विश्वसेन–कुल–नभमणि, भविजन–सुख–कन्दो ॥ १ ॥
मृगलंछन निज आउखुं, लाख बरस प्रमाण ।
हत्थिणाउर–नयरी–धणो, प्रभुजी गुण–मणि–खाय ॥ २ ॥
चालीश धनुषनो देहडी, समचउरस संठाण ।
वदन–पद्म ज्युं चंदलो, दीठे परम कल्याण ॥ ३ ॥

चौबीस जिनलाञ्छनका चैत्यवन्दन

(४)

ऋषभ–लंछन ऋषभदेव, अजित–लंछन हाथी ।
सम्भव–लंछन घोड़लो, शिवपुरनो साथी ॥ १ ॥
अभिनन्दन–लंछन कपि, क्रौंच–लंछन सुमति ।
पद्म–लंछन पद्मप्रभु, विश्वदेवा सुमति ॥ २ ॥
सुपार्श्व–लंछन साथीओ, चन्द्रप्रभु–लंछन चन्द्र ।
मगर–लंछन सुविधि प्रभु, श्रीवच्छ शीतल जिणन्द ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लंछन खड्गी श्रेयांसने, वासुपूज्यने महिष।
सूवर–लंछन पाये विमलदेव, ललिया ते नामो शिष ॥ ४ ॥
सिंचाणो जिन अनन्तने, वज्र–लंछन श्रीधर्म।
शान्ति–लंछन मरगलो, राखे धर्मनो मर्म ॥ ५ ॥
कुन्थुनाथ जिन बोकड़ो, अरजिन नन्दावर्त।
मल्लि कुम्भ वखाणीए, सुव्रत कच्छप विख्यात ॥ ६ ॥
नमि जिनने नीलो कमल, पामीए पङ्कजमांही।
शङ्ख–लंछन प्रभु नेमजी, दीसे ऊँचे आंही ॥ ७ ॥
पार्श्वनाथने चरण सर्प नीलवरण शोभित।
सिंह–लंछन कंचनतनु, वर्द्धमान विख्यात ॥ ८ ॥
एणी परे लंछन चिन्तवी, ओलखीए जिनराय।
ज्ञानविमल प्रभु सेवतां, लक्ष्मीरतन सूरिराय ॥ ९ ॥

श्रीसिद्धाचलजीका चैत्यवन्दन

(५)

विमल–केवलज्ञान–कमला–कलित, त्रिभुवन हितकरं।
सुरराज–संस्तुत–चरणपङ्कज, नमो आदि जिनेश्वरं ॥ १ ॥
विमल–गिरिवर–शृङ्गमण्डन, प्रवर–गुणगण–भूधरं।
सुर–असुर–किन्नर–कोडि–सेवित, नमो आदि जिनेश्वरं ॥ २ ॥
करत नाटक किन्नरी–गण, गाय जिन–गुण मनहरं।
निर्जरावली नमे अहर्निश, नमो आदि जिनेश्वरं ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्डरीक गणपति सिद्धि साधी, कोडी पण मुनि मनहरं।
श्रीविमल गिरिवर-शृङ्ग सिद्धा, नमो आदि जिनेश्वरं ॥ ४ ॥

निजसाध्य-साधक सुर-मुनिवर, कोडि'नन्त ए गिरिवरं।
मुक्ति-रमणी वर्या रंगे, नमो आदि जिनेश्वरं ॥ ५ ॥

पाताल-नर-सुर-लोकमांही, विमल गिरिवरतो परं।
नहि अधिक तीरथ तीर्थपति कहे, नमो आदि जिनेश्वरं ॥ ६ ॥

विमल गिरिवर-शिखर-मण्डण, दुःख-विहण्डण ध्याइये।
निज शुद्ध-सत्ता-साधनार्थं, परम ज्योति निपाइये ॥ ७ ॥

जितमोह-कोह-विछोह निद्रा, परम-पद-स्थित जयकरं।
गिरिराज-सेवा-करण-तत्पर, पद्मविजय सुहितकरं ॥ ८ ॥

(६)

श्रीसिद्धाचलजीका चैत्यवन्दन

श्रीशत्रुंजय सिद्ध-क्षेत्र, दीठे दुर्गति वारे।
भाव धरीने जे चढे, तेने भवपार उतारे ॥ १ ॥

अनन्त सिद्धनो एह ठाम, सकल तीर्थनो राय।
पूर्व नवाणुं ऋषभदेव, ज्यां ठवीआ प्रभु पाय ॥ २ ॥

सूरजकुण्ड सोहामणो, कवड जक्ष अभिराम।
नाभिराया-कुलमण्डणो, जिनवर करूं प्रणाम ॥ ३ ॥

(७)

श्रीऋषभदेवका चैत्यवन्दन

आदिदेव अलवेसरू, विनीतानो राय।
नाभिराया-कुलमण्डणो, मरुदेवा माय ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचसें धनुषनी देहडी, प्रभुजी परम दयाल ।
चोराशी लख पूर्वनुं, जस आयु विशाल ॥ २ ॥
वृषभ–लंछन जिन वृष–धरु (ए), उत्तम गुण मणिखाण ।
तस पद–पद्म सेवन थकी, लहीए अविचल ठाण ॥ ३ ॥

(८)

श्रीसीमन्धरस्वामीका चैत्यवन्दन

श्रीसीमन्धर ! जगधणी, आ भरते आवो ।
करुणावन्त करुणा करी, अमने वन्दावो ॥ १ ॥
सयल भक्त तुमे धणी, जो होवे मुज नाथ ।
भवोभव हुं छुं ताहरो, नहि मेलुं हवे साथ ॥ २ ॥
सयल सङ्ग छंडी करी, चारित्र लेइशुं ।
पाय तुमारा सेवीने, शिवरमणी वरीशुं ॥ ३ ॥
ए अलजो मुजने घणो, पूरो सीमन्धर देव ।
इहां थकी हुं विनवुं, अवधारो मुज सेव ॥ ४ ॥

(९)

श्रीसीमन्धरस्वामीका चैत्यवन्दन

श्रीसीमन्धर वीतराग, त्रिभुवन तुमे उपकारी ।
श्रीश्रेयांस पिताकुले, बहु शोभा तुमारी ॥ १ ॥
धन्य धन्य माता सत्यकी, जेणे जायो जयकारी ।
वृषभ लंछन बिराजमान, वन्दे नर नारी ॥ २ ॥
धनुष पाँचशें देहडीए, सोहे सोवन वान ।
कीर्तिविजय उवज्झायनो, विनय धरे तुम ध्यान ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०)

श्रीसीमन्धरस्वामीका चैत्यवन्दन

सीमन्धर परमातमा, शिव-सुखना दाता।
पुक्खलवइ-विजये जयो, सर्व जीवना त्राता ॥ १ ॥

पूर्व विदेहे पुण्डरीगिणी नयरीए सोहे।
श्रीश्रेयांस राजा तिहां, भवियणनां मन मोहे ॥ २ ॥

चौद सुपन निर्मल लही, सत्यकी राणी मात।
कुन्थु-अरजिन-अन्तरे, श्रीसीमन्धर जात ॥ ३ ॥

अनुक्रमे प्रभु जनमीआ, वळी यौवन पावे।
मात-पिता हरखे करी, रुक्मिणी परणावे ॥ ४ ॥

भोगवी सुख संसारना, संजम मन लावे।
मुनि-सुव्रत-नमि-अन्तरे, दीक्षा प्रभु पावे ॥ ५ ॥

घातीकर्मनो क्षय करी, पाम्या केवलज्ञान।
वृषभ-लंछने शोभतां, सर्व भावना जाण ॥ ६ ॥

चोराशी जश गणधरा, मुनिवर एक सो कोड़।
त्रण भुवनमां जोवतां, नहि कोई एनी जोड़ ॥ ७ ॥

दश लाख कह्यां केवली, प्रभुजीनो परिवार।
एक समय त्रण कालना, जाणे सर्व विचार ॥ ८ ॥

उदय पेढाल-जिन-अन्तरे, थाशे जिनवर सिद्ध।
जसविजय गुरु प्रणमतां, शुभ वांछित फल लीध ॥ ९ ॥

(११)

नवपदजीका चैत्यवन्दन

सकल-मङ्गल-परम-कमला-केलि-मंजुल-मन्दिरं।
भव-कोटि-संचित-पाप-नाशन, नमो नवपद जयकरं ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिहन्त सिद्ध सूरीश वाचक, साधु दर्शन सुखकरं।
वर ज्ञान पद चारित्र तप ए, नमो नवपद जयकरं॥ २॥

श्रीपाल राजा शरीर साजा, सेवतां नवपद वरं।
जगमांहि गाज्या कीर्तिभाजा, नमो नवपद जयकरं॥ ३॥

श्रीसिद्धचक्र पसाय सङ्कट, आपदा नासे अरं।
वली विस्तरे सुख मनोवांछित नमो नवपद जयकरं॥ ४॥

आंबिल नव दिन देववन्दन, त्रण टंक निरन्तरं।
बे वार पडिक्कमणां पलेवण, नमो नवपद जयकरं॥ ५॥

त्रण काल भावे पूजिए, भवतारकं तीर्थङ्करं।
तिम गुणणुं दोय हजार गणीए, नमो नवपद जयकरं॥ ६॥

इम विधिसहित मन–वचन–काया, वश करी आराधीए।
तप वर्ष साडाचार नवपद, शुद्ध साधन साधीए॥ ७॥

गद कष्ट चूरे शर्म पूरे, यक्ष विमलेश्वर वरं।
श्रीसिद्धचक्र प्रताप जाणी, विजय विलसे सुखभरं॥ ८॥

(१२)

दूजका चैत्यवन्दन

दुविध धर्म जेणे उपदिश्यो, चोथा अभिनन्दन।
बीजे जन्म्या ते प्रभु, भवदुःखनिकन्दन॥ १॥

दुविध ध्यान तुमे परिहरो, आदरो दोय ध्यान।
इम प्रकाश्युं सुमतिजिने, ते चविया बीजदिन॥ २॥

दोय बन्धन राग–द्वेष, तेहने भवि! तजिये।
मुज परे शीतल जिन कहे, बीज दिन शिव भजिये॥ ३॥

जीवाजीव पदार्थनुं, करो नाण सुजाण!
बीज दिन वासुपूज्य परे, लहो केवलनाण॥ ४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय नय व्यवहार दोय, एकान्ते न ग्रहीए।
अरजिन बीज दिने चव्या, एम आगळ कहीए ॥ ५ ॥

वर्तमान चोवीशी ए, एम जिन-कल्याण।
बीज दिने केई पामिया, प्रभु नाण-निर्वाण ॥ ६ ॥

एम अनन्त चोवीशीए, हुआ बहु कल्याण।
जिन उत्तम पद पद्मने, नमतां होय सुख-खाण ॥ ७ ॥

(१३)

ज्ञानपञ्चमीका चैत्यवन्दन

त्रिगड़े बेठा वीर जिन, भाखे भविजन आगे।
त्रिकरण शुं त्रिहुं लोकजन, निसुणो मन रागे ॥ १ ॥

आराधो भली भांतसे, पाँचम अजुआली।
ज्ञान-आराधन कारणे, एहिज तिथि निहाली ॥ २ ॥

ज्ञान विना पशु सारिखा, जणो इणे संसार।
ज्ञान-आराधनथी लह्यं, शिव-पद-सुख श्रीकार ॥ ३ ॥

ज्ञानरहित किरिया कही, कास-कुसुम उपमान।
लोकालोक-प्रकाशकर, ज्ञान एक परधान ॥ ४ ॥

ज्ञानी श्वासोच्छवासमां, करे कर्मनो छेह।
पूर्व कोडो वरसां लगे, अज्ञाने करे जेह ॥ ५ ॥

देश-आराधक क्रिया कही, सर्व-आराधक ज्ञान।
ज्ञानतणो महिमा घणो, अङ्ग पाँचमे भगवान ॥ ६ ॥

पञ्च मास लघुपञ्चमी, जाव जीव उत्कृष्टि।
पञ्च वरस पञ्च मासनी, पञ्चमी करो शुभ दृष्टि ॥ ७ ॥

एकावन हि पञ्चनो, काउस्सग्ग लोगस्स केरो।
उजमणुं करो भावशुं टालो भव-फेरो ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एणी पेरे पञ्चमी आराधीए, आणी भाव अपार।
वरदत्त–गुणमञ्जरी परे, रङ्गविजय लहो सार ॥ ९ ॥

(१४)

अष्टमीका चैत्यवन्दन

महा शुदि आठम दिने, विजया–सुत जायो।
तेम फागण शुदि आठमे, सम्भव चवी आयो ॥ १ ॥
चैत्र वदनी आठमे, जन्म्या ऋषभ जिणन्द।
दीक्षा पण ए दिन लही, हुआ प्रथम मुनिचन्द ॥ २ ॥
माधव शुदि आठम दिने, आठ कर्म कर्यां दूर।
अभिनन्दन चोथा प्रभु, पाम्यां सुख भरपूर ॥ ३ ॥
एहिज आठम ऊजली, जनम्या सुमति जिणन्द।
आठ जाति कलशे करी, न्हवरावे सुर–इन्द ॥ ४ ॥
जन्म्या जेठ वदि आठमे, मुनिसुव्रत स्वामी।
तेम अषाड शुदि आठमे, अष्टमी गति पामी ॥ ५ ॥
श्रावण वदनी आठमे, नमि जन्म्या जगभाण।
तेम श्रावण शुदि आठमे, पासजीनुं निरवाण ॥ ६ ॥
भादरवा वदि आठम दिने, चविया स्वामी सुपास।
जिन उत्तम पद–पद्मने, सेव्याथी शिव–वास ॥ ७ ॥

(१५)

मौनएकादशीका चैत्यवन्दन

शासननायक वीरजी, प्रभु केवल पायो।
संघ चतुर्विध स्थापवा, महासेन वन आयो ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माधव सित एकादशी, सोमल द्विज यज्ञ।
इन्द्रभूति आदे मली, छे एकादश विज्ञ ॥ २ ॥
एकादशसें चउ गुणो, तेहनो परिवार।
वेद अरथ अवलो करे, मन अभिमान अपार ॥ ३ ॥
जीवादिक संशय हरी, एकादश गणधार।
वीरे स्थाप्या वन्दीए, जिनशासन जयकार। ॥ ४ ॥
मल्लिजन्म अर–मल्लि–पास, वर–चरण–विलासी।
ऋषभ अजित सुमति नमि, मल्लि घन-घाती विनाशी॥ ५ ॥
पद्मप्रभ शिववास पास, भवभवना तोड़ी।
एकादशी दिन आपणी, ऋद्धि सघळी जोड़ी ॥ ६ ॥
दश क्षेत्रे तिहुं कालना, त्रणशें कल्याण।
वर्ष अग्यार एकादशी, आराधो वरनाण ॥ ७ ॥
अगियार अङ्ग लखावीए, एकादश पाठा।
पूंजणी ठवणी वींटणी, मसी कागळ ने काठा ॥ ८ ॥
अगियार अव्रत छांडवा ए, वहो पडिमा अगियार।
खिमाविजय जिनशासने, सफल करो अवतार ॥ ९ ॥

(१६)

श्रीपर्युषणा–पर्वका चैत्यवन्दन

पर्व पर्युषण गुणनीलो, नवकल्पी विहार।
चार मासान्तर स्थिर रहे, एही ज अर्थ उदार ॥ १ ॥
अषाड सुदी चउदश थकी, संवत्सरी पचास।
मुनिवर दिन सित्तेरमें, पडिक्कमतां चौमास ॥ २ ॥
श्रावक पण समता धरी, करे गुरुनां बहुमान।
कल्पसूत्र सुविहित मुखे, सांभले थइ एक तान ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनवर चैत्य जुहारीए, गुरुभक्ति विशाल।
प्रायः अष्ट भवान्तरे, वरीए शिव–वरमाल ॥ ४ ॥

दर्पणथी निज रूपनो, जुए सुदृष्टि रूप।
दर्पण अनुभव अर्पणो, ज्ञानरयण मुनि भूप ॥ ५ ॥

आत्मस्वरूप विलोकतां, प्रगट्यो मित्र–स्वभाव।
राय उदाई खामणां, पर्व पर्युषण दाव ॥ ६ ॥

नव वाखण पूजी सुणो, शुक्ल चतुर्थी सीमा।
पञ्चमी दिन वांचे सुणे, होय विराधक नियमा ॥ ७ ॥

ए नहि पर्वे पञ्चमी, सर्व समाणो चोथे ॥।
भवभीरु मुनि मानशे, भाख्युं अरिहा नाथे ॥ ८ ॥

श्रुतकेवली वयणां सुणीए, लही मानव अवतार।
श्रीशुभवीरने शासने, सफल करो अवतार ॥ ९ ॥

[२४]

(१)

स्तवन

श्रीआदिजिनका स्तवन

प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए, जास सुगन्धी रे ! काय।
कल्पवृक्ष परे तास इन्द्राणी–नयन जे भृङ्ग परे लपटाय ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ १ ॥

रोग–उरग तुज नवि नडे, अमृत जेह आस्वाद।
तेहथी प्रतिहत तेहमांनुं, कोई नवि करे, जममां तुम शुं रे वाद ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वगर धोई तुज निर्मली, काया कञ्चन-वान ।
नहीं प्रस्वेद लगार, तारे तुं तेहने, जेह धरे ताहरुं ध्यान ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ ३ ॥

राग गयो तुज मन थकी, तेहमां चित्र न कोय ।
रुधिर आमिषथी राग गयो तुज जन्मथी, दूध-सहोदर होय ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ ४ ॥

श्वासोच्छ्वास कमल समो, तुज लोकोत्तर वात ।
देखे न आहार-निहार चरम-चक्षु-धणी, एहवा तुज अवदात ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ ५ ॥

चार अतिशय मूलथी ओगणीश देवना कीध !
कर्म खप्याथी अग्यार चोत्रीश एम अतिशया, समवायांगे प्रसिद्ध ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ ६ ॥

जिन उत्तम गुण गावतां, गुण आवे निज अङ्ग ।
पद्मविजय कहे एह समय प्रभु पालजो, जेम थाऊं अक्षय अभङ्ग ॥
प्रथम जिनेश्वर० ॥ ७ ॥

(२)

श्रीआदिजिनका स्तवन

माता मरुदेवीनां नन्द ! देखो ताहरी मूरति मारुं मन लोभाणुंजी
के मारुं चित्त-चोराणुं जी ।

करुणानां घर करुणा-सागर, काया-कञ्चन-वान ।
धोरी-लंछन पाउले कांई, धनुष पाँचसे मान....माता० ॥ १ ॥

त्रिगडे बेसी धर्म कहंता, सूणे पर्षदा बार ।
योजनगामिनी वाणी मीठी, वरसन्ती जलधार...माता० ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उर्वशी रूडी अपसराने, रामा छे मनरङ्ग।
पाये नेउर रणझणे कांई, करती नाटारम्भ....माता० ॥ ३ ॥

तुंहि ब्रह्मा, तुंहि विधाता, तुं जगतारणहार।
तुज सरीखो नहि देव जगतमां, अडवडिया आधार....माता० ॥ ४ ॥

तुंहि भ्राता, तुं हि त्राता, तुंहि जगतनो देव।
सुर-नर-किन्नर—वासुदेवा, करता तुज पद सेव....माता० ॥ ५ ॥

श्रीसिद्धाचल तीरथ केरो, राजा ऋषभ जिणंद।
कीर्ति करे **माणेकमुनि** ताहरी, टालो भवभय फंद....माता० ॥६॥

(३)

श्रीआदिजिनका स्तवन

(राग-मारु-करम परीक्षा करण कुंवर चल्यो-ए देशी)

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे, ओर न चाहुं रे कन्त।
रीझ्यो साहेब सङ्ग न परिहरे रे, भांगे सादि-अनन्त-ऋ० ॥१॥

प्रीतसगाई रे जगमां सहु करे रे, प्रीतसगाई न कोय।
प्रीतसगाई रे निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक धन खोय-ऋ० ॥२॥

कोई कंथ कारण काष्ठभक्षण करे रे, मलशुं कन्तने धाय।
ए मेलो नवि कहीए संभवे रे, मेलो ठाम न ठाय-ऋ० ॥३॥

कोई पतिरञ्जन अति घणुं तप करे रे, पतिरञ्जन तन ताप।
ए पतिरञ्जन में नवि चित धर्युं रे, रञ्जन धातु मिलाप-ऋ० ॥४॥

कोइ कहे लीला रे अलख अलख तणीरे, लख पूरे मन आश।
दोष-रहितने लीला नवि घटे रे, लीला दोष विलास-ऋ० ॥५॥

चित्तप्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं रे, पूजा अखण्डित एह।
कपटरहित थई आतम अरपणा रे, **आनन्दघन**-पद-रेह-ऋ० ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४)

श्रीअजितनाथस्वामीका स्तवन

(राग–आशावरी–मारूं मन मोह्युं रे श्रीविमलाचले रे–ए देशी)

पंथडों निहालुं रे बीजा जिन तणो रे, अजित अजित गुणधाम ।
जे तें जीत्या रे तेणे हुं जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुज नाम–पंथ०॥१॥

चरम नयण करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार ।
जेणे नयणे कही मारग जोइए रे, नयण ते दिव्य विचार–पंथ०॥२॥

पुरुष परंपर अनुभव जोवतां रे, अन्ध पलाय ।
वस्तु विचारे रे जो आगमे करी रे, चरण धरण नहि ढाय–पंथ०॥३॥

तर्क विचारे रे वादपरम्परा रे, पार न पहुँचे कोय ।
अभिमत वस्तु रे वस्तुगते कहे रे, ते विरला जग जोय–पंथ० ॥४॥

वस्तु विचारे रे दिव्य नयणतणो रे, विरह पड्यो निरधार ।
तरतम जोगे रे तरतम वासना रे, वासित बोध आधार–पंथ० ॥५॥

काललब्धि लही पंथ निहालशुं रे, ए आशा अवलम्ब ।
ए जन जीवे रे जिनजी ! जाणजो रे, **आनन्दघन**-मत-अम्ब–पंथ०॥६॥

(५)

श्रीअजितनाथस्वामीका स्तवन

प्रीतलड़ी बंधाणी रे अजित जिणंद शुं,
प्रभुपाखे क्षण एक मने न सुहाय जो ।
ध्याननी ताली रे लागी नेहशुं,
जलदघटा जेम शिवसुत वाहन दाय जो—प्रीतलडी० ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेहघेलुं मन म्हारुं रे प्रभु अलजे रहे,
तनमनधन ते कारणथी प्रभु मुज जो।
म्हारे तो आधार रे साहेब रावरो,
अन्तरगतनी प्रभु आगल कहुं गुंज जो—प्रीतलडी० ॥ २ ॥

साहेब ते साचो रे जगमां जाणीए,
सेवकनां जे स्हेजे सुधारे काज जो।
एहवे रे आचरणे केम करी रहुं,
बिरुद तमारुं तारण-तरण-जहाज जो—प्रीतलडी० ॥ ३ ॥

तारकता तुज मांहे रे श्रवणे सांभली,
ते भणी हुं आव्यो छुं दीनदयाल जो।
तुज करुणानी लहेरे रे मुज कारज सरे,
शुं घणुं कहीए जाण आगल कृपाल जो—प्रीतलडी० ॥ ४ ॥

करुणाधिक कीधी रे सेवक ऊपरे,
भवभय भावठ भांगी भक्ति प्रसंग जो।
मनवांछित फलीया रे प्रभु आलम्बने,
कर जोड़ीने **मोहन** कहे मनरंग जो—प्रीतलडी० ॥ ५ ॥

(६)

श्रीसम्भवनाथस्वामीका स्तवन

सम्भवदेव ते धुर सेवो सबेरे, लहो प्रभु-सेवन भेद।
सेवन कारण पहेली भूमिका रे, अभय अद्वेष अखेद-सम्भव० ॥ १ ॥

भय चञ्चलता हो जे परिणामनी रे, द्वेष अरोचक भाव।
खेदप्रवृत्ति हो करतां थाकीये रे, दोष अबोध लखाव-सम्भव० ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरमावर्त[1] हो चरम–करण तथा रे, भव–परिणति–परिपाक ।
दोष टले वळी दृष्टि खुले भली रे, प्राप्ति प्रवचन वाक्–सम्भव०॥३॥
परिचय पातक घातक[2] साधु शुं रे, अकुशल अपचय चेत ।
ग्रन्थ अध्यातम श्रवण मनन करी रे, परिशीलन नय–हेत–सम्भव० ॥४॥
कारण जोगे हो कारज नीपजे रे, एमां कोई न वाद ।
पण कारण विण कारज साधियो रे, ए निज मत उनमाद–सम्भव० ॥५॥
मुग्ध सुगम करी सेवन आदरे रे, सेवन अगम अनूप ।
देजो कदाचित् सेवक याचना रे, **आनन्दघन**–रस–रूप–सम्भव० ॥६॥

(७)

श्रीअभिनन्दनस्वामीका स्तवन

(राग–धनाश्री–सिंधुडा आज निहेजो रे दीसे नाहलो–यह देशी)

अभिनन्दन जिन ! दरिसण तरसीए, दरिसण दुर्लभ देव ।
मत मत भेदे रे जो जई पूछिए, सौ थापे अहमेव–अभि० ॥ १ ॥
सामान्ये करी दरिसण दोहिलुं, निर्णय सकल विशेष ।
मदमें घेर्यो रे अन्धो किम करे ? रवि–शशि–रूप विलेख–अभि० ॥२॥
हेतुविवादे हो चित्त धरी जोइए, अति दुरगम नयवाद ।
आगमवादे हो गुरुगम को नहीं, ए सबलो विषवाद–अभि० ॥ ३ ॥
घाति–डुंगर आडा अति घणा, तुझ दरिसण जगनाथ ।
धोठाई करी मारग संचरूं, सेगुं कोइ न साथ –अभि० ॥ ४ ॥
दरिसण दरिसण रटतो जो फिरूं, तो रण–रोझ समान ।
जेने पिपासा हो अमृतपाननी, किम भांजे विषपान–अभि० ॥ ५ ॥

---

१. अन्तिम पुद्गलपरावर्तन । २. अनिवृत्तिकरण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरस न आवे हो मरण–जीवनतणो, सीझे जो दरिसण काज ॥
दरिसण दुर्लभ सुलभ कृपा थकी, **आनन्दघन** महाराज–अभि०॥६॥

(८)

श्रीविमलनाथस्वामीका स्तवन

(राग–मल्हार : ईडर आंबा आंबली रे, ईडर दाडिम द्राख–यह देशी)

दुःख दोहग दूर टल्या रे, सुख संपदशुं भेट।
धीग धणी माथे कियो रे, कुण गंजे नर खेट—
विमल जिन ! दीठा लोयण आज, म्हारां सिद्धयां वंछित
काज–विमल० ॥ १ ॥

चरण–कमल कमला वसे रे, निर्मल थिर पद देख।
समल अथिर पद परिहरे रे, पङ्कज पामर पेख–विमल० ॥ २ ॥

मुज मन तुझ पद—पङ्कजे रे, लीनो गुण मकरन्द।
रङ्क गणे मन्दरधरा रे, इन्द्र–चन्द्र–नागिन्द–विमल० ॥ ३ ॥

साहेब ! समरथ तू धणी रे, पाम्यो परम उदार।
मन विशरामी वालहो रे, आतमचो आधार—विमल० ॥ ४ ॥

दरिसण दीठे जिनतणुं रे संशय न रहे वेध।
दिनकर–कर–भर पसरतां रे, अन्धकार–प्रतिषे–विमल० ॥ ५ ॥

अमियमरी मूरति नची रे, उपमा न घटे कोय।
शान्तसुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय–विमल० ॥ ६ ॥

एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिनदेव।
कृपा करी मुज दीजिए रे, **आनन्दघन**–पद–सेव–विमल० ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९)

श्री अनन्तनाथस्वामीका स्तवन

(राग–रामगिरि : करखा प्रभाती)

धार तरवारनी सोहिली दोहिलो, चौदमां जिनतणी चरण सेवा ।
धार पर नाचता देख बाजीगरा, मेवना धार पर रहे न देवा–
धार० ॥ १ ॥

एक कहे सेविए विविध किरिया करी, फल अनेकान्त लोचन न देखे ।
फल अनेकान्त किरिया करी बापड़ा, रडवडे चार गतिमांहि लेखे–
धार० ॥ २ ॥

गच्छना भेद बहु नयण निहालतां, तत्त्वनी बात करतां न लाजे ।
उदरभरणादि निज काज करतां थकां, मोह नडीया कलिकाल राजे–
धार० ॥ ३ ॥

वचन निरपेक्ष व्यवहार जूठा कह्यो, वचन सापेक्ष व्यवहार साचो ।
वचन निरपेक्ष व्यवहार संसार फल, सांभलो आदरी कांई राचो–
धार० ॥ ४ ॥

देव गुरु धर्मनी शुद्धि कहो किम रहे ? किम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो ।
शुद्ध श्रद्धान विणु सर्व किरिया करी, छार पर लींपणुं तेह जाणो–
धार० ॥ ५ ॥

पाप नहि कोई उत्सूत्र भाषण जिस्यो, धर्म नहि कोई जगसूत्र सरिखो ।
सूत्र अनुसार जे भविक किरिया करे, तेहनुं शुद्ध चारित्र परिखो–
धार० ॥ ६ ॥

एह उपदेशनो सार संक्षेपथी, जे नरा चित्तमा नित्य ध्यावे ।
ते नरा दिव्य बहुकाल सुख अनुभवी, नियत **आनन्दघन** राज्य पावे–
धार० ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०)

श्रीशान्तिनाथस्वामीका स्तवन

(राग–मल्हार : चतुर चोमासुं पडिक्मो–यह देशी)

शान्ति जिन एक मुझ विनति, सुणो त्रिभुवन–राय रे !
शान्ति स्वरूप किम जाणीए, कहो मन किम परखाय रे–
शान्ति० ॥ १ ॥

धन्य तुं आतम जेहने, एहवो प्रश्न अवकाश रे !
धीरज मन धरी सांभलो, कहुँ शान्ति प्रतिभास रे–शान्ति० ॥ २ ॥

भाव अविशुद्ध सुविशुद्ध जे, कह्या जिनवर देव रे !
ते तेम अवितथ सद्दहे, प्रथम ए शान्तपद तेव रे–शान्ति० ॥ ३ ॥

आगमधर गुरु समकिती, किरिया संवर सार रे !
सम्प्रदायो अवञ्चक सदा, शुचि अनुभव आधार रे–शान्ति० ॥ ४ ॥

शुद्ध आलम्बन आदरे, तजी अवर जंजाल रे !
तामसी वृत्त सवि परिहरे, भजे सात्त्विक शाल रे–सन्ति० ॥ ५ ॥

फल विसंवाद जेहमां नहीं, शब्द ते अर्थ सम्बन्धी रे !
सकल नयवाद व्यापी रह्यो, ते शिव साधन सन्धि रे–शान्ति०॥ ६ ॥

विधि प्रतिषेध करी आतमा, पदारथ अविरोध रे !
ग्रहण विधि महाराजने परिग्रह्यो, ईस्यो आगमे बोध रे–शान्ति०॥ ७ ॥

दुष्टजन संगति परिहरी, भजे सुगुरु सन्तान रे !
जोग सामर्थ्य चित्त भावजे, धरे मुगति निदान रे–शान्ति० ॥ ८ ॥

मान अपमान चित्त सम गणे, सम गणे कनक पाषाण रे !
बन्दक निन्दक सम गणे, ईस्यो होये तुं जाण रे–शान्ति० ॥ ९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व जगजन्तुने सम गणे, गणे तृण मणि-भाव रे !
मुक्ति संसार बेहु सम गणे, मुने भवजलनिधि नाव रे-शान्ति० ॥१०॥

आपणो आतमभाव जे, एक चेतनाधार रे !
अवर सवि साथ संयोगथी, एह निज परिकर सार रे-शान्ति० ॥११॥

प्रभु मुखथी एम सांभली, कहे आतमराम रे !
ताहरे दरिसणो निस्तर्यो, मुज सिध्यां सवि काम रे-शान्ति० ॥१२॥

अहो अहो हुं मुजने कहुं, नमो मुज नमो मुज रे !
अमित फल दान दातारनी, जेहनी भेट थई तुज रे-शान्ति० ॥१३॥

शान्ति सरूप संक्षेपथी, कह्यो निज पर-रूप रे !
आगम मांहे विस्तर घणो, कह्यो शान्ति जिन-भूप रे-शान्ति० ॥१४॥

शांति सरूप एम भावशे, धरी शुद्ध प्रणिधान रे !
आनन्दघन पद पामशे, ते लहेशे बहुमान रे-शान्ति० ॥१५॥

(११)

श्रीशान्तिजिनका स्तवन

शान्ति जिनेश्वर साचो साहिब, शान्ति करण अनुकूलमें
हो जिनजी ! शान्ति० ।

तुं मेरा मनमें तुं मेरा दिलमें, ध्यान धरूँ पलपलमें
साहेबजी ! शान्ति० ॥ १ ॥

भवमां भमतां में दरिसण पायो, आश पूरो एक पलमें
हो जिनजी ! शान्ति० ॥ २ ॥

निर्मल ज्योत वदन पर सोहे, निकस्यो ज्यूं चन्द बादलमें
साहेबजी ! शान्ति० ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरो मन ! तुम साथे लीनो, मीन बसे ज्यूं जलमें
हो जिनजी ! शान्ति० ॥ ४ ॥

जिनरंग कहे प्रभु शान्ति जिनेश्वर, दीठो देव सकलमें
साहेबजी ! शान्ति० ॥ ५ ॥

(१२)

श्रीकुन्थुनाथस्वामीका स्तवन

(राग–गूर्जरी रामकली, अम्बर दे दे मुरारि ! हमारो–यह देशी)

मनडुं किमहि न बाजे हो कुन्थुजिन ! मनडुं किमहि न बाजे ।
जिम जिम जतन करीने राखूं, तिम तिम अलगुं भाजे हो–
कुन्थुजिन० ॥ १ ॥

रजनी वासर वसती ऊजड़, गयण पायाले जाय ।
'सांप खायने मुखडुं थोथुं', एह उरवाणो न्याय हो–
कुन्थुजिन० ॥ २ ॥

मुगतितणा अभिलाषी तपिया, ज्ञान ध्यान अभ्यासे ।
वयरोडुं कांई एहवुं चिंते, नाखे अवले पासे हो–
कुन्थुजिन० ॥ ३ ॥

आगम आगमधरने हाथे, नावे किणविध आंकूं ।
किहां कणे जो हठ करी हटकुं (तो) व्यालतणी परे वांकु हो–
कुन्थुजिन० ॥ ४ ॥

जो ठग कहुं तो ठगता न देखूं, शाहुकार पण नांही ।
सर्वमांहे ने सहुथी अलगुं, ए अचरिज मनमांहि हो–
कुन्थुजिन० ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे जे कहुं ते कान न धारे, आपमते रहे कालुं ।
सुर नर पण्डितजन समझावे, समझे न माहरुं सालुं हो–
कुन्थुजिन० ॥ ६ ॥

में जाण्युं ए लिंग नपुंसक, सकल मरदने ठेले ।
बीजो वाते समरथ छे नर, एहने कोई न झेले हो–
कुन्थुजिन० ॥ ७ ॥

मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं, एह बात नहीं खोटी ।
एम कहे साध्युं ते नवि मानुं, एक हो वात छे मोटी हो–
कुन्थुजिन० ॥ ८ ॥

मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं, (ते) आगमथी मति आणुं ।
आनन्दघन–प्रभु माहरुं आणो, तो साचुं करी जाणुं हो–
कुन्थुजिन० ॥ ९ ॥

(१३)

श्रीपार्श्वनाथजीका स्तवन

अन्तरजामी सुण अलवेसर, महिमा त्रिजग तुम्हारो;
सांभलीने आव्यो हुं तीरे, जन्म–मरण–दुःख वारो ।
सेवक अरज करे छे राज, अमने शिव सुख आपो० ॥ १ ॥

सहुकोना मन वांछित पूरो, चिन्ता सहुनी चूरो ।
एहवुं बिरुद छे राज तमारुं; केम राखो छो दूरो–सेवक० ॥ २ ॥

सेवकने वलवलतो देखी, मनमां महेर न धरशो ।
करुणासागर किम कहेवाशो, जो उपकार न करशो–सेवक० ॥ ३ ॥

लटपटनुं हवे काम नहीं छे, प्रत्यक्ष दरिसण दीजे ।
धूंआडे धीजुं नहि साहिब ! पेट–पड्या पतीजे–सेवक० ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीशंखेश्वर–मण्डन साहिब ! विनतडी अवधारो।
कहे **जिनहर्ष** मया करी मुझने, भवसागरथी तारो–सेवक० ॥ ५ ॥

(१४)

श्रीमहावीरस्वामीका स्तवन

सिद्धारथना रे ! नन्दन विनवुं, विनतडी अवधार ।
भवमण्डपमां रे ! नाटक नाचियो, हवे मुज दान देवार
हवे मुज पार उतार–सिद्धा० ॥ १ ॥

त्रण रतन मुज आपो तातजी ! जेम नावे रे ! सन्ताप ।
दान दियंता रे ! प्रभु कोसर कीसी ? आपो पदवी रे आप ॥
सिद्धा० ॥ २ ॥

चरण–अँगूठे रे ! मेरु कंपावियो, मोड्या सुरनां रे ! मान ।
अष्ट करमना रे ! झगडा जीतवा, दाधां वरसी रे ! दान ॥
सिद्धा० ॥ ३ ॥

शासननायक शिवसुखदायक, त्रिशला कूखे रतन ।
सिद्धारथनो रे ! वंश दीपावियो, प्रभुजी तुमे धन्य ! धन्य !
सिद्धा० ॥ ४ ॥

वाचक–शेखर कीर्तिविजय गुरु, पामी तास पसाय ।
धर्मतणे रस जिन चोवीसमा, **विनयविजय** गुण गाय ॥
सिद्धा० ॥ ५ ॥

(१५)

श्रीसीमन्धरजिनका स्तवन

सुणो चन्दाजी ! सीमन्धर परमातम पासे जाजो,
मुज विनतड़ी प्रेम धरीने एणी पेरे तुमे संभलावजो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे त्रण भुवननो नायक छे, जस चोसठ इन्द्र पायक छे,
ज्ञान–दर्शन जेहने क्षायक छे, सुणो चन्दाजी ! ॥ १ ॥

जेनो कंचन वरणी काया छे, जस धोरी–लंछन पाया छे ।
पुंडरीगिणी नगरीनो राया छे, सुणो चन्दाजी ! ॥ २ ॥

बार पर्षदामांही विराजे छे, जस चोत्रीस अतिशय छाजे छे ।
गुण पांत्रीश वाणीए गाजे छे, सुणो चन्दाजी ! ॥ ३ ॥

भविजनने जे पडिबोहे छे, जस अधिक शीतल गुण सोहे छे ।
रूप देखी भविजन मोहे छे, सुणो चन्दाजी ! ॥ ४ ॥

तुम सेवा करवा रसियो छुं, पण भरतमां दूर वसियो छुं ।
महा–मोहराय–कर फसियो छुं, सुणो चन्दाजी ! ॥ ५ ॥

पण साहिब चित्तमां धरियो छुं, तुम आणा–खड्ग कर ग्रहियो छुं ।
तब कांइक मुजथी डरियो छुं, सुणो चन्दाजी ! ॥ ६ ॥

जिन उत्तम पूंठ हवे पूरो, कहे **पद्मविजय** थाऊँ शूरो ।
तो वाधे मुज मन अति नूरो, सुणो चन्दाजी ! ॥ ७ ॥

(१६)

श्रीसीमन्धरजिनका स्तवन

पुक्खलवइ–विजये जयो रे ! नयरी पुंडरीगिणी सार ।
श्रीसीमन्धर साहिबा रे ! राय श्रेयांसकुमार—
जिणन्दराय ! धरजो धर्मसनेह ॥ १ ॥

मोटा–नाना–अन्तरो रे ! गिरुआ नवि दाखन्त ।
ससि–दरिसण सायर वधे रे ! कैरव–वन विकसन्त ।
जिणन्दराय ! धरज्यो धर्मसनेह ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठाम–कुठाम न लेखवे रे! जग वरसन्त जलधार।
कर दोय कुसुमे वासिये रे! छाया सवि आधार—
जिणन्दराय! धरज्यो धर्मसनेह ॥ ३ ॥

राय ने रङ्क सरीखा गणे रे! उद्द्योते ससि–सूर।
गङ्गा जल ते बिहु तणा रे! ताप करे सवि दूर—
जिणन्दराय! धरज्यो धर्मसनेह ॥ ४ ॥

सरिखा सहुने तारवा रे! तिम तुमे छो महाराज!
मुज शुं अन्तर किम करो रे! बांह्य ग्रह्यानी लाज—
जिणन्दराय! धरज्यो धर्मसनेह ॥ ५ ॥

मुख देखी टीलुं करे रे! ते नवि होय प्रमाण।
मुजरो माने सवि तणो रे! साहिब! तेह सुजाण—
जिणन्दराय! धरज्यो धर्मसनेह ॥ ६ ॥

वृषभ–लंछन माता सत्यकी रे! नन्दन रुक्मिणी कन्त।
वाचक जस इम विनवे रे! भय–भञ्जन भगवन्त–
जिणन्दराय! धरज्यो धर्मसनेह ॥ ७ ॥

(१७)

श्रीसिद्धाचलजीका स्तवन

विमलाचल नितु वन्दीए, कीजे एहनी सेवा।
मानुं हाथ ए धर्मनो, शिव–तरु–फल लेवा–विमला० ॥ १ ॥

उज्ज्वल जिन–गृह–मण्डली, तिहां दीपे उत्तंगा।
मानुं हिमगिरि विभ्रमे, आई अम्बर–गंगा–विमला० ॥ २ ॥

कोई अनेरुं जग नहीं, ए तीरथ तोले।
इम श्रीमुख हरि आगले, श्रीसीमन्धर बोले–विमला० ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे सघलां तीरथ कर्यां, जात्रा फल कहीए।
तेहथी ए गिरि भेटतां, शतगणुं फल लहीए–विमला० ॥ ४॥
जनम सफल होय तेहनो, जेह ए गिरि वन्दे।
सुजसविजय सम्पद लहे, ते नर चिर नन्दे–विमला० ॥ ५ ॥

(१८)

द्वितीयाका स्तवन

(देशी–सुरती महिनानी)

सरस वचन रस वरसती, सरस्वती कला भण्डार।
बीजतणो महिमा कहूं, जिम कह्यो शास्त्र मोझार ॥ १ ॥
जम्बूद्वीपना भरतमां, राजगृही उद्यान।
वीर जिणन्द समोसर्या, वन्दन आव्या राजन ॥ २ ॥
श्रेणिक नामे भूपति, बेठा बेसण–ठाय।
पूछे श्रीजिनरायने, द्यो उपदेश महाराय ॥ ३ ॥
त्रिगडे बेठा त्रिभुवनपति, देशना दीये जिनराय।
कमल–सुकोमल–पाँखडी, इम जिन–हृदय सोहाय ॥ ४ ॥
शशि–प्रगटे जिम ते दिने, धन्य ते दिन सुविहाण।
एक मने आराधतां, पामे पद निर्वाण ॥ ५ ॥

ढाल दूसरी

(अष्टापद अरिहन्ताजी–यह देशी)

कल्याणक जिनना कहूं, सुण प्राणीजी रे !
अभिनन्दन अरिहन्त ए भगवन्त, भविप्राणीजी रे !
माघ शुदि बीजने दिने, सुण प्राणीजी रे !
जन्म्या प्रभु सुखकार, हरख अपार, भविप्राणीजी रे ! ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुपूज्य जिन बारमां, सुण प्राणीजी रे !
एहि ज तिथे थयुं नाण, सकल विहाण, भविप्राणीजी रे !
अष्ट कर्म चूरण करी, सुण प्राणीजी रे !
अवगाहन एक वार, मुक्ति मोझार, भविप्राणीजी रे ! ॥ २ ॥

अरनाथ जिनजी नमुं, सुण प्राणीजी रे !
अष्टादशमा अरिहंत, ए भगवन्त, भविप्राणीजी रे !
उज्ज्वल तिथि फागण भली, सुण प्राणीजी रे !
च्यवीआ जिनवर सार, सुन्दर नार, भविप्राणीजी रे ! ॥ ३ ॥

दशमा शीतल जिनेसरु, सुण प्राणीजी रे !
परम पदनी ए वेल, गुणनी गेल, भविप्राणीजी रे !
वैशाख वदी बीजने दीने, सुण प्राणीजी रे !
मूक्यो सर्वे साथ, सुर-नरनाथ, भविप्राणीजी रे ! ॥ ४ ॥

श्रावण सुदनी बीज भली, सुण प्राणीजी रे !
सुमतिनाथ जिनदेव, च्यवीआ देव, भविप्राणीजी रे !
एणी तिथिए जिनजी तणां, सुण प्राणीजी रे !
कल्याणक पञ्च सार, भवनो पार, भविप्राणीजी रे ! ॥ ५ ॥

ढाल तीसरी

जगपति जिन चोवीशमे रे लाल !
ए भाख्यो अधिकार ।
श्रेणिक आदे सहु मल्या रे लाल !
शक्ति तणे अनुसार ॥

रे भविकजन भाव धरी ने सांभलो रे ।
आराधो धरी हेत[1] । ॥ १ ॥

---

१. इस प्रकारकी गणनामें विवक्षा ही प्रमाण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोय वरस दोय मासनी रे लाल !
आराधो धरी खन्त, रे भविकजन !
उजमणो विधिशुं करो रे लाल !
बीज ते मुक्ति महन्त, रे भविकजन ! ॥ २ ॥

मार्ग मिथ्या दूरे तजो रे लाल !
आराधो गुण थोक, रे भविकजन !
वीरनी वाणी सांभलो रे लाल !
उछरंग थयो बहु लोक, रे भविकजन ! ॥ ३ ॥

एणी बीजे केई तर्या रे लाल !
वली तरशे केई निःशङ्क, रे भविकजन !
शशि सिद्धि अनुमानथी रे लाल !
शैल नागधर अङ्क, रे भविकजन ! ॥ ४ ॥

अषाड सुदि दशमी दिने रे लाल !
ए गायो स्तवन रसाल, रे भविकजन !
नवलविजय सुपसायथी रे लाल !
चतुरने मङ्गल-माल, रे भविकजन ! ॥ ५ ॥

कलश

एम वीर जिनवर सयल-सुखकर, गायो अति उलट भरे,
अषाड उज्ज्वल दशमी दिवसे, संवत अढार अठोत्तरे।

बीज-महिमा एम वर्णव्यो, रही सिद्धपुर चोमास ए !
जेह भाविक भावे सुणे गावे तस घरे लील-विलास ए ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१९)

ज्ञानपंचमीका स्तवन

सुत सिद्धारथ भूपनो रे! सिद्धारथ भगवान।
बार पर्षदा आगले रे! भाखे श्रीवर्धमान-
रे भवियण चित्तधरो,
मन-वचन-काय अमायो रे! ज्ञानभक्ति करो ॥ १ ॥

गुण अनन्त आतम तणा रे! मुख्य पणे तिहां दोय।
तेहमां पण ज्ञान ज वडुं रे! जिणथी दंसण होय-
रे भवियण० ॥ २ ॥

ज्ञाने चारित्र गुण वधे रे! ज्ञाने उद्योत-सहाय।
ज्ञाने स्थविरपणुं लहे रे! आचारज उवज्झाय-
रे भवियण० ॥ ३ ॥

ज्ञानी श्वासोश्वासमां रे! कठिन करम करे नाश।
वह्नि जेम ईंधण दहे रे! क्षणमां ज्योति प्रकाश-
रे भवियण० ॥ ४ ॥

प्रथम ज्ञान पछी दया रे! संवर मोहविनाश।
गुणस्थानक पगथालीए रे! जेम चढे मोक्ष आवास-
रे भवियण० ॥ ५ ॥

मइ-सुअ-ओहि-मणपज्जवा रे! पञ्चम केवलज्ञान।
चउ मूंगा श्रुत एक छे रे! स्वपर-प्रकाश निदान-
रे भवियण० ॥ ६ ॥

तेहनां साधन जे कह्यां रे! पाटी पुस्तक आदि।
लखे लखावे साचवे रे! धर्मी धरी अप्रमाद-
रे भवियण० ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिविध आशातना जे करे रे ! भणतां करे रे अन्तराय ।
अन्धा बहेरा बोबडा रे ! गूंगा पांगुला थाय–
रे भवियण० ॥ ८ ॥

भणतां गणतां न आवडे रे ! न मले वल्लभ चीज ।
गुणमञ्जरी–वरदत्त परे रे ! ज्ञान विराधन बीज–
रे भवियण० ॥ ९ ॥

प्रेमे पूछे पर्षदा रे ! प्रणमी जगगुरु–पाय ।
गुणमञ्जरी–वरदत्तनो रे ! करो अधिकार–पसाय–
रे भवियण० ॥ १० ॥

(२०)

अष्टमीका स्तवन

श्रीराजगृही शुभ ठाम, अधिक दिवाजे रे,
विचरंता वीर जिणन्द, अतिशय छाजे रे;
चोत्रीश अने पांत्रीश, वाणीगुण लावे रे,
पाउं धार्या वधामणो जाय, श्रेणिक आवे रे. ॥ १ ॥

तिहां चोसठ सुरपति आवी, त्रिगडुं बनावे रे,
तेमां बेसीने उपदेश, प्रभुजी सुणावे रे;
सुर नर ने तिर्यंच, निज निज भाषा रे,
तिहां समजीने भवतीर, पामे सुख खासा रे. ॥ २ ॥

तिहां इन्द्रभूति गणधार, श्रीगुरु वीरने रे,
पूछे अष्टमीनो महिमाय, कहो प्रभु अमने रे;
भाखे वीर जिणन्द, सुणो सहु प्राणी रे,
आठमदिन जिन–कल्याण, धरो चित्त आणी रे. ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२१)

ढाल दूसरी

श्रीऋषभनु जन्म-कल्याण रे !
वली चारित्र लह्यु भले वाण रे !
त्रीजा सम्भव च्यवन कल्याण रे !
भवि तुमे ! अष्टमी तिथि सेवो रे !
ए छे शिववधू वरवानो मेवो रे-भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ १ ॥
श्रीअजित-सुमति जिन जन्म्यां रे !
अभिनन्दन शिवपद पाम्यां रे !
च्यव्या सातमा जिनगुणग्राम-भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ २ ॥
वीशमां मुनिसुव्रत स्वामी रे !
नमि नेमि जन्म्या गुण धामी रे !
वर्या मुक्तिवधु नेमस्वामी-भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ ३ ॥
पार्श्वनाथजी मोह-महंता रे !
इत्यादिक जिन गुणवन्ता रे !
कल्याणक मुख्य कहेतां-भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ ४ ॥
श्रीवीर जिणन्दनी वाणी रे !
निसुणी समज्या भवि प्राणी रे !
आठम दिन अति गुण खाणी-भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ ५ ॥
अष्ट कर्म ते दूर पलाय रे !
एथी अडसिद्धि अडबुद्धि थाय रे !
ते कारण सेवो चित्त लाय-भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ ६ ॥
श्री उदयसागर गुरुराया रे !
जस शिष्य विवेक ध्याया रे !
तस **न्यायसागर** गुण गाया, भवि तुमे ! अष्टमी० ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२२)

दीवालीका स्तवन

मारे दीवाली थई आज, प्रभुमुख जोवाने,
सर्यां सर्यां रे सेवकना काज, भवदुःख खोवाने।
महावीरस्वामी मुगते पहोंच्या, गौतम केवलज्ञान रे!
धन्य अमावास्या धन्य दीवाली, महावीर प्रभु निरवाण–
जिनमुख जोवाने ॥ १ ॥

चारित्र पाली निरमलुं रे, टाल्यां विषम–कषाय रे!।
एवा मुनिने वन्दीए जे, उतारे भवपार–जिन० ॥ २ ॥

बाकुल वहोर्या वीरजिने, तारी चन्दनबाला रे!।
केवल लई प्रभु मुगते पहोंच्या, पाम्या भवनो पार–जिन० ॥ ३ ॥

एवा मुनिने वन्दीए जे, पंचज्ञानने धरता रे!।
समवसरण दई देशना प्रभु, तार्या नरने नार–जिन० ॥ ४ ॥

चोवीशमा जिनेश्वरूरे, मुक्तितणा दातार रे!।
कर जोडी कवि एम भणे प्रभु! दुनिया फेरो टाल–जिन० ॥ ५ ॥

(१)

स्तुतियाँ

श्रीआदिजिनकी स्तुति

आदि–जिनवर राया, जास सोवन्न–काया,
मरुदेवी माया, धोरी–लंछन पाया।
जगस्थिति निपाया, शुद्ध चारित्र पाया,
केवलसिरि–राया, मोक्षनगरे सिधाया ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवि जिन सुखकारी, मोह–मिथ्या निवारी,
दुरगति दुःख भारी, शोक–सन्ताप वारी।
श्रेणी क्षपक सुधारी, केवलानन्त धारी,
नमीए नर–नारी, जेह विश्वोपकारी ॥ २ ॥

समवसरण बेठा, लागे जे जिन मीठा,
करे गणप पइट्ठा, इन्द्र–चन्द्रादि दोठा।
द्वादशाङ्गी वरिट्ठा, गूंथतां टाले रिट्ठा,
भविजन होय हिट्ठा, देखी पुण्ये गरिट्ठा ॥ ३ ॥

सुर समकितवन्ता, जेह रिद्धे महन्ता,
जेह सज्जन सन्ता, टाळीए मुज चिन्ता।
जिनवर सेवन्ता, विघ्न वारे दूरन्ता,
जिन उत्तम थुणन्ता, **पद्मने** सुख दिन्ता ॥ ४ ॥

(२)

श्रीशान्तिनाथकी स्तुति

वन्दो जिन शान्ति, जास सोवन्न–कान्ति,
टाले भव–भ्रान्ति, मोह–मिथ्यात्व–शान्ति।
द्रव्य-भाव-अरि-पान्ति, तास करतां निकान्ति,
धरतां मन खान्ति, शोक–सन्ताप वान्ति ॥ १ ॥

दोय जिनवर नीला, दोय रक्त रंगोला,
दोय धोला सुशीला, काढता कर्म–कीला।
न करे कोई हीला, दोय श्याम सलीला,
सोल स्वामीजी पीला, आपजो मोक्ष–लीला ॥ २ ॥

जिनवरनी वाणी, मोह–वल्ली–कृपाणी,
सूत्रे देवाणी, साधुने योग्य जाणी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थे गुंथाणी, देव–मनुष्य–प्राणी।
प्रणमो हित आणी, मोक्षनी ए निशाणी ॥ ३ ॥
वागेसरी देवी, हर्ष हियडे धरेवी,
जिनवर–पय–सेवी, सार श्रद्धा वरेवी।
जे नित्य समरेवी, दुःख तेहना हरेवी,
पद्मविजय कहेवी, भव्य–संताप खेवी ॥ ४ ॥

(३)

श्रीशङ्खेश्वर–पार्श्वजिन स्तुति

संखेश्वर पासजी पूजीए, नरभवनो लाहो लीजीए।
मनवांछित पूरण सुरतरु, जय वामा सुत अलवेसरु ॥ १ ॥
दोय राता जिनवर अतिभला, दोय धोला जिनवर गुण नीला।
दोय लीला दोय शामल कह्या, सोले जिन कञ्चन वर्ण लह्या ॥ २ ॥
आगम ते जिनवर भाखियो, गणधर ते हइडे राखियो।
तेहनो रस जेणे चाखियो, ते हुओ शिवसुख साखियो ॥ ३ ॥
धरणीधर राय पद्मावती, प्रभु पार्श्वतणा गुण गावती।
सहु सङ्घना सङ्कट चूरती, **नयविमल**ना वांछित पूरती ॥ ४ ॥

(४)

श्रीमहावीर जिनकी स्तुति

जय ! जय ! भवि हितकर वीर जिनेश्वर देव,
सुरनरना नायक, जेहनी सारे सेव।
करुणारस–कन्दो वन्दो, आनन्द, आणी,
त्रिशला–सुत सुन्दर, गुणमणि केरो खाणी ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस पञ्च कल्याणक, दिवस विशेष सुहावे,
पण थावर नारक, तेहने पण सुख थावे।
ते च्यवन-जन्म-व्रत, नाण अने निरवाण,
सवि जिनवर केरां, ए पांचे अहिठाण ॥ २ ॥

जिहां पञ्च-समिति-युत, पञ्च-महाव्रत सार,
जेहमां परकाश्या, वली पञ्च व्यवहार।
परमेष्ठी-अरिहन्त, नाथ सर्वज्ञने पार,
एह पञ्च पदे लह्यो, आगम अर्थ उदार ॥ ३ ॥

मातङ्ग सिद्धाई, देवी जिन-पद सेवी,
दुःख-दुरित उपद्रव, जे टाले नित मेवी।
शासन-सुखदायी, आई! सुणो अरदास,
श्रीज्ञानविमल-गुण, पूरो वांछित आस ॥ ४ ॥

(५)

श्रीसीमन्धर जिनकी स्तुति

श्रीसीमन्धर जिनवर, सुखकर साहिब देव,
अरिहन्त सकलनी, भाव धरी करुं सेव।
सकलागम-पारग-गणधर-भाषित-वाणी,
जयवन्ती आणा, **ज्ञानविमल** गुण खाणी ॥ १ ॥

(६)

श्रीसीमन्धर स्वामीकी स्तुति

महाविदेह क्षेत्रमां सीमन्धर स्वामी, सोनानुं सिंहासनजी,
रूपानां त्यां छत्र बिराजे, रत्न मणिना दीवा दीपेजी।
कुमकुम वरणी त्यां गहुंली बिराजे, मोतीना अक्षत सारजी,
त्यां बेठा सीमन्धर स्वामी, बोले मधुरी वाणीजी ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केसर चन्दन भर्या कचोलां, कस्तूरी बरासोजी,
पहेली पूजा अमारी होजो, ऊगमते प्रभातेजी ॥ १ ॥

(७)

श्रीसिद्धचक्रकी स्तुति

जिन शासन–वांछित–पूरण देव रसाल,
भावे भवी भणीए, सिद्धचक्र गुणमाल।
त्रिहुं काले एहनी, पूजा करे ऊजमाल,
ते अजर–अमर–पद, सुख पामे सुविशाल ॥ १ ॥

अरिहन्त, सिद्ध वन्दो, आचारज उवज्झाय,
मुनि दरिसण नाण, चरण तप ए समुदाय।
ए नवपद समुदित, सिद्धचक्र सुखदाय,
ए ध्याने भविनां, भवकोटि दुःख जाय ॥ २ ॥

आसो चैतरमां, शुदि सातमथी सार,
पूनम लगी कीजे, नव आंबिल निरधार।
दोय सहस गणणुं, पद सम साडा चार,
एकाशी आयम्बिल, तप आगम अनुसार ॥ ३ ॥

श्रीसिद्धचक्रनो सेवक, श्रीविमलेश्वर देव।
श्रीपालतणी परे, सुख पूरे स्वयमेव।
दुःख दोहग्ग नावे, जे करे एहनी सेव,
श्रीसुमति सुगुरुनो, **राम** कहे नित्यमेव ॥ ४ ॥

(८)

श्रीसिद्धाचलकी स्तुति

पुण्डरीकगिरि महिमा, आगममां प्रसिद्ध,
विमलाचल भेटी, लहीए अविचल रिद्ध।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चम गति पहोंच्या, मुनिवर कोडा कोड,
एणे तीरथ आवी, कर्म विघातक छोड ।। १ ।।

(९)

श्रीशत्रुञ्जयकी स्तुति

श्रीशत्रुञ्जय तीरथ सार, गिरिवरमां जेम मेरु उदार,
ठाकुर राम अपार;
मन्त्रमांही नवकार ज जाणु, तारामां जेम चन्द्र वखाणुं,
जलधर जलमां जाणुं ।
पंखीमांहे जिम उत्तम हंस, कुलमांहे जिम ऋषभनो वंस,
नाभि तणो ए अंस;
क्षमावन्तमां श्रीअरिहन्त, तपशूरा मुनिवर महन्त,
शत्रुञ्जयगिरि गुणवन्त ।। १ ।।
ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दा, सुमतिनाथ मुख पूनम चन्दा,
पद्मप्रभु सुखकन्दा;
श्रीसुपार्श्व चन्द्रप्रभु सुविधि, शीतल श्रेयांस सेवो बहु बुद्धि,
वासुपूज्य मति शुद्धि ।
विमल अनन्त धर्म जिन शान्ति, कुंथु अर मल्लि नमुं एकांति,
मुनिसुव्रत शिव पांति;
नमि नेमि पास वीर जगदीश, नेम विना ए जिन त्रेवीश,
सिद्धगिरि आव्या ईश ।। २ ।।
भरतराय जिन साथे बोले, कहो स्वामी ! कुण शत्रुंजय तोले ?
जिननुं वचन अमोले;
ऋषभ कहे सुणो भरतजी राय, 'छ'–री' पालतां जे नर जाय,
पातक भूको थाय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पशु पंखी जे इण गिरि आवे, भय त्रीजे ते सिद्ध ज थावे, अजरामर पद पावे;

जिन मतमां शेत्रुंजे वखाण्यो, ते में आगम दिलमांहि आण्यो, सुणतां सुख उर ठायो ॥ ३ ॥

सघपति भरतेसर आवे, सोवन तणा प्रासाद करावे, मणिमय मूरत ठावे;

नाभिराया मरुदेवी माता, ब्राह्मी–सुन्दरी ब्हेन विख्याता, मूर्ति नवाणुं भ्राता ।

गोमुख यक्ष चक्रेश्वरी देवी, शत्रुंजय सार करे नित मेवी, तपगच्छ ऊपर हेवी;

श्रीविजयसेन सूरीश्वर राया, श्रीविजयदेवसूरि प्रणमी पाया, **ऋषभदास** गुण गाया ॥ ४ ॥

(१०)

बीजकी स्तुति

दिन सकल मनोहर, बीज दिवस सुविशेष,
रायराणा प्रणमे, चंद्रतणी जिहां रेख ।
तिहां चन्द्र विमाने, शाश्वता जिनवर जेह,
हुं बीजतणे दिन, प्रणमुं आणी नेह ॥ १ ॥

अभिनन्दन चन्दन, शीतल शीतलनाथ,
अरनाथ सुमति जिन, वासुपूज्य शिवसाथ ।
इत्यादिक जिनवर, जन्मज्ञान–निरवाण,
हूं बीजतणे दिन, प्रणमुं ते सुविहाण ॥ २ ॥

प्रकाश्यो बीजे, दुविध धर्म भगवन्त,
जेम विमल कमल होय, विपुल नयन विकसन्त ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम अति अनुपम, जिहां निश्चय-व्यवहार,
बीजे सवि कीजे, पातकनो परिहार ॥ ३ ॥
गजगामिनी कामिनी, कमल-सुकोमल चीर,
चक्रेश्वरी केसर, सरस सुगन्ध शरीर।
करजोड़ी बीजे, हुं प्रणमुं तस पाय,
एम **लब्धिविजय** कहे, पूरो मनोरथ माय ॥ ४ ॥

(११)

पञ्चमीकी स्तुति

श्रावण शुदि दिन पञ्चमीए, जन्म्या नेम जिणन्द तो,
श्याम वरण तनु शोभतुं ए, मुख शारद को चन्द तो।
सहस वरस प्रभु आउखुं ए, ब्रह्मचारी भगवन्त तो,
अष्ट करम हेला हणी ए, पहोता मुक्ति महन्त तो ॥ १ ॥
अष्टापद पर आदि जिन ए, पहोंता मुक्ति मोझार तो,
वासुपूज्य चम्पापुरी ए, नेम मुक्ति गिरनार तो।
पावापुरी नगरीमां वली ए, श्रीवीरतणुं निर्वाण तो,
सम्मेतशिखर वीश सिद्ध हुआ ए, शिर वहुं तेहनी आण तो ॥ २ ॥
नेमनाथ ज्ञानी हुआ ए, भाखे सार वचन तो,
जीवदया गुण-वेलडी ए, कीजे तास जतन तो।
मृषा न बोलो मानवी ए, चोरी चित्त निवार तो,
अनन्त तीर्थङ्कर एम कहे ए, परिहरीए परनार तो ॥ ३ ॥
गोमेध नामे यक्ष भलो ए, देवी श्रीअम्बिका नाम तो,
शासन सान्निध्य जे करे ए, करे वली धर्मनां काम तो।
तपगच्छ-नायक गुणनीलो ए, श्रीविजयसेनसूरिराय तो,
ऋषभदास पाय सेवंता ए, सफल कर्यो अवतार तो ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१२)

अष्टमीकी स्तुति

मङ्गल आठ करी जस आगल, भावधरी सुरराजजी,
आठ जातिना कलश करीने, न्हवरावे जिनराजजी।
वीर जिनेश्वर जन्ममहोत्सव, करतां शिवसुख साधेजी,
आठमनुं तप करतां अम घर, मङ्गल-कमला वाधेजी ॥ १ ॥

अष्टकर्म-वयरी-गज-गंजन, अष्टापद परे बलियाजी,
आठमें आठ स्वरूप विचारे, मद आठे तस गलियाजी।
अष्टमी गति पहोंतां जे जिनवर, फरस आठ नहि अंगजी,
आठमनुं तप करतां अम घर, नित्य नित्य वाधे रंगजी ॥ २ ॥

प्रतिहारज आठ बिराजे, समवसरण जिनराजेजी,
आठमे आठमो आगम भाखो भविजन संशय भांजेजी।
आठ जे प्रवचननी माता, पाले निरतिचारोजी,
आठमने दिन अष्ट प्रकारे, जीवदया चित धारोजी ॥ ३ ॥

अष्ट प्रकारी पूजा करीने, मानवभव-फल लीजेजी,
सिद्धाईदेवी जिनवर सेवी, अष्ट महासिद्धि दीजेजी।
आठमनुं तप करतां लीजे, निर्मल केवल नाणजी,
धीरविमल कवि सेवक **नय** कहे, तपथी कोडि कल्याणजी ॥ ४ ॥

(१३)

एकादशीकी स्तुति

एकादशी अति रूअडी, गोविन्द पूछे नेम,
किण कारण ए पर्व मोटुं, कहोने मुझशुं तेम।
जिनवर-कल्याणक अति घणां, एकसोने पचास,
तेणे कारण ए पर्व मोटुं, करो मौन उपवास ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगियार श्रावक तणी पडिमा, कही ते जिनवर देव,
एकादशी एम अधिक सेवो, वनगजा जिम रेव।
चोवीश जिनवर सयल-सुखकर, जेसा सुरतरु चंग,
जेम गंग निर्मल नीर जेहवो, करो जिनशुं रंग॥ २॥

अगियार अंग लखावीए, अगियार पाठां सार,
अगियार कवली वींटणां, ठवणी पूंजणी सार।
चाबखी चंगी विविध रंगी, शास्त्रतणे अनुसार,
एकादशी एम ऊजवो, जेम पामीए भवपार॥ ३॥

वर-कमल-नयणी कमल-वयणी, कमल सुकोमल काय,
भुजदण्ड चण्ड अखण्ड जेहने, समरतां सुख थाय।
एकादशी एम मन वशी, गणी हर्ष पण्डित शिष्य
शासनदेवी विघन निवारे, संघ तणां निशदिन॥ ४॥

पर्युषणकी स्तुति

(१४)

बरस दिवसमां अषाढ-चोमासुं, तेहमां वली भादरवो मास,
आठ दिवस अतिखास;
पर्व पजूसण करो उल्लास, अट्ठाइधरनो करवो उपवास,
पोसह लीजे गुरु पास।
वड़ा कल्पनो छट्ठ करीजे, तेह तणो वखाण सुणीजे,
चौद सुपन वांचीजे;
पडवेने दिवसे जन्म वंचाय, ओच्छव महोच्छव मङ्गल गवाय,
वीर जिणेसर राय॥ १॥
बीजे दिने दीक्षा अधिकार, सांझ—समय निरवाण विचार,
वीर तणो परिवार;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रीजे दिने श्रीपार्श्व विख्यात, वली नेमिसरनो अवदात,
बली नवभवनी बात ।

चोवीशे जिन अन्तर तेवीश, आदि जिनेश्वर श्रीजगदीश,
तास वखाण सुणीश;

धवल मङ्गल गीत गहुंली करीए, वली प्रभावना नित अनुसरीए,
अट्ठम तप जय वरीए ॥ २ ॥

आठ दिवस लगे अमर पलावो, तेह तणो पडहो वजडाओ
ध्यान धरम मन भावो;

संवत्सरी-दिन-सार कहेवाय, संघ चतुर्विध भेलो थाय,
बारसा-सूत्र सुणाय ।

थिरावली ने सामाचारी, पट्टावली प्रमाद निवारी,
सांभलजो नरनारी;

आगम सूत्रने प्रणमीश, कल्पसूत्रशुं प्रेम धरीश,
शास्त्र सर्व सुणीश ॥ ३ ॥

सत्तरभेदी जिनपूजा रचावो, नाटक केरा खेल मचावो,
विधिशुं स्नात्र भणावो;

आडम्बरशुं दहेरे जईए, संवत्सरी पडिक्कमणुं करीए,
संघ सर्वने खमीए ।

पारणे साहम्मिवच्छल कीजे, यथाशक्तिए दान ज दीजे,
पुण्य भण्डार भरीजे;

श्रीविजयक्षेमसूरि गणधार, जसवन्तसागर गुरु उदार,
जिणंदसागर जयकार ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१५]

पर्युषणकी स्तुति

पुण्यनुं पोषण पापनुं शोषण, पर्व पजूसण पामीजी,
कल्प धरे पधरावो स्वामी, नारी कहे शिष नामीजी।
कुंवर गयवर खन्ध चढावी, ढोल निशान वगडावोजी,
सद्गुरुसंगे चढते रंगे, वीर—चरित्र सुणावोजी ॥ १ ॥

प्रथम वखाण धर्म सारथि पद, बीजे सुपनां चारजी,
त्रीजे सुपन पाठक बली चौथे, वीर जनम अधिकारजी।
पांचमें दीक्षा छट्ठे शिवपद, सातमें जिन त्रेवीशजी,
आठमे धिरावली संभलावे, पिउडा पूरो जगीशजी ॥ २ ॥

छठ्ठ अठ्ठम अठ्ठाई कीजे, जिनवर चैत्य नमीजेजी,
वरसी पडिक्कमणुं मुनिवन्दन संघ सकल खामीजेजी।
आठ दिवस लगे अमर प्रभावनां, दान सुपात्रे दीजेजी,
भद्रबाहु–गुरु वचण सुणीने, ज्ञान सुधारस पीजेजी ॥ ३ ॥

तीरथमां विमलाचल गिरिमां, मेरु महीधर नेमजी,
मुनिवर मांही जिनवर म्होटा, परव पजूसण तेमजी।
अवसर पामी साहम्मिवच्छल, बहु पकवान वडाईजी,
खीमाविजय जिनदेवी सिद्धाई, दिन दिन अधिक वधाईजी ॥ ४ ॥

(२६)

सज्झाय

(१)

क्रोधके विषयमें

कडवां फल छे क्रोधनां, ज्ञानी एम बोले ।
रीसतणो रस जाणीए, हलाहल तोले-कडवां० ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधे क्रोड पूरवतणुं, संजम फल जाय।
क्रोध सहित तप जे करे, ते तो लेखे न थाय ॥ २ ॥

साधु घणो तपीओ हतो, धरतो मन वैराग।
शिष्यना क्रोध थको थयो, चण्डकोसियो नाग ॥ ३ ॥

आग उठे जे घरथको, ते पहेलुं घर बाळे।
जलनो जोग जो नवि मले, तो पासेनुं परजाळे ॥ ४ ॥

क्रोध तणी गति एहवी, कहे केवलनाणी।
हाणि करे जे हेतनी, जाळवजो एम जाणी ॥ ५ ॥

उदयरतन कहे क्रोधने, काढजों गले साही।
काया करजो निर्मली, उपशम रसे नाही ॥ ६ ॥

(२)

मानके विषयमें

रे जीव! मान न कीजिए, माने विनय न आवे रे!
विनय विना विद्या नहि, तो किम समकित पावे रे? ॥ १ ॥

समकित विण चारित्र नहि, चारित्र विण नहि मुक्ति रे।
मुक्तिनां सुख छे शाश्वतां, तो किम लहीए जुक्ति रे ॥ २ ॥

विनय बड़ो संसारमां, गुणमां अधिकारी रे।
माने गुण जाये गली, प्राणी जो जो विचारी रे ॥ ३ ॥

मान कर्युं जो रावणे, तो ते रामे मार्यो रे।
दुर्योधन गर्वे करी, अन्ते सवि हार्यो रे ॥ ४ ॥

सूकां लाकडां सारीखो, दुःखदायी ए खोटो रे।
उदयरत्न कहे मानने, देजो देशवटो रे ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३)

मायाके विषयमें

समकितनुं मूल जाणीएजी, सत्य वचन साक्षात् ।
साचामां समकित वसेजी, मायामां मिथ्यात्व–
रे प्राणी ! म करीश माया लगार ॥ १ ॥

मुख मीठो जूठो मने जी रे ! कूड़–कपटनो रे कोट ।
जीभे तो जी–जी करे जी रे ! चित्तमां ताके चोट–
रे प्राणी ! म करीश माया लगार ॥ २ ॥

आप गरजे आघो पडेजी रे ! पण न धरे रे ! विश्वास ।
मनशुं राखे आंतरोजी रे ! ए मायानो पास–
रे प्राणी ! म करीश माया लगार ॥ ३ ॥

जेहशुं बांधे प्रीतडीजी रे ! तेहशुं रहे प्रतिकूल ।
मेल न छंडे मनतणोजी रे ! ए मायानुं मूल–
रे प्राणी ! म करीश माया लगार ॥ ४ ॥

तप कीधो माया करोजी रे ! मित्रशुं राख्यो भेद ।
मल्लि जिनेश्वर जाणजोजी रे ! तो पाम्या स्त्रीवेद–
रे प्राणी ! म करीश माया लगार ॥ ५ ॥

उदयरत्न कहे सांभलोजी रे ! मेलो मायानो बुद्ध ।
मुक्तिपुरी जावा तणो जी रे ! ए मारग छे शुद्ध—
रे प्राणी ! म करीश माया लगार ॥ ६ ॥

(४)

लोभके विषयमें

तुमे लक्षण जो जो लोभनां रे ! लोभे मुनिजन पामे क्षोभना रे !
लोभे डाह्या–मन डोल्या करे रे, लोभे दुर्घट पंथे संचरे रे !
तुमे लक्षण० ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तजे लोभ तेनां लऊं भामणां रे! वली पाय नमी करूं खामणां रे!
लोभे मर्यादा न रहे केहनी रे! तुमे संगत मेलो तेहनी रे!
तुमे लक्षण० ॥ २ ॥

लोभे घर मेली रणमां मरे रे! लोभे उच्च ते नीचुं आदरे रे!
लोभे पाप भणी पगलां भरे रे! लोभे अकारज करतां न ओसरे रे!
तुमे लक्षण० ॥ ३ ॥

लोभे मनडुं न रहे निर्मलुं रे! लोभे सगपण नासे वेगलुं रे!
लोभे न रहे प्रीति ने पावठुं रे! लोभे धन मेले बहु एकठुं रे!
तुमे लक्षण० ॥ ४ ॥

लोभे पुत्र पोते पिता हणे रे! लोभे हत्या-पातक नवि गणे रे!
ते तो दामतणा लोभे करी रे! ऊपर मणिधर थाए मरी रे!
तुमे लक्षण० ॥ ५ ॥

जोतां लोभनो थोभ दीसे नहि रे! एवुं सूत्र-सिद्धान्ते कह्युं सही रे!
लोभे चक्री सुभूम नामे जुओ रे! ते तो समुद्रमां डूबी मुओ रे!
तुमे लक्षण० ॥ ६ ॥

एम जाणीने लोभने छंडजो रे! एक धर्मशुं ममता मंडजो रे!
कवि **उदयरत्न** भाखे मुदा रे! वंदुं लोभ तजे तेहने सदा रे!
तुमे लक्षण० ॥ ७ ॥

(९)

आठ मदकी सज्झाय

मद आठ महामुनि वारिये, जे दुर्गतिना दातारो रे!
श्रीवीर जिणंद उपदिश्यो, भाखे सोहम् गणधारो रे!
मद आठ० ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हांजी **जातिनो मद** पहेलो कह्यो, पूर्वे हरिकेशीए कीधो रे !
चण्डाल तणे कुल उपन्यो, तपथी सवि कारज सीधो रे !
मद आठ० ॥ २ ॥

हांजी **कुलमद** बीजे दाखीए, मरिची भवे कीधो प्राणी रे !
कोडाकोडी-सागर-भवमां भम्यो, मद म करो इम जाणी रे !
मद आठ० ॥ ३ ॥

हांजी **बलमद**थी दुःख पामोआ, श्रेणिक-वसुभूति-जीवो रे !
जई भोगव्या दुःख नरकतणां, बमू पाडतां नित रीवो रे !
मद आठ० ॥ ४ ॥

हांजी सनतकुमार नरेसरु, सुर आगल **रूप** वखाण्युं रे !
रोम-रोम काया बगड़ी गई, **मद** चोथानुं ए टाणुं रे !
मद आठ० ॥ ५ ॥

हांजी मुनिवर संयम पालतां, **तपनो मद** मनमां आयो रे !
थया कूरगडु ऋषिराजिया, पाम्या तपनो अन्तरायो रे !
मद आठ० ॥ ६ ॥

हांजी देश दशारणनो धणी (राय), दशार्णभद्र अभिमानी रे !
इन्द्रनी **रिद्धि** देखी बूझिओ, संसार तजी थयो ज्ञानी रे !
मद आठ० ॥ ७ ॥

हांजी स्थूलभद्र **विद्या**नो कर्यो, **मद** सातमो जे दुःखदायी रे !
श्रुत पूरण-अर्थ न पामीओ, जुओ मानतणी अधिकाई रे !
मद आठ० ॥ ८ ॥

राय सुभूम षट्खण्डनो धणी, **लाभनो मद** कीधो अपार रे !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हय–गय–रथ सब सागर गल्युं, गयो सातमी नरक मोझार रे!
मद आठ० ॥ ९ ॥

इम तन–धन–जोबन राज्यनो, न करो मनमां अहंकारो रे!
ए अथिर असत्य सवि कारमुं, विणसे बहु वारो रे!
मद आठ० ॥ १० ॥

मद आठ निवारो व्रतधारो, पालो संयम सुखकारी रे!
कहे **मानविजय** ते पामशे, अविचल पदवी नरनारी रे!
मद आठ० ॥ ११ ॥

(२७)

छन्द तथा पद

(१)

कलश

(छप्पय)

नित जपिये नवकार, सार सम्पति सुखदायक,
सिद्ध मन्त्र ए शाश्वतो, एम जल्पे श्रीजगनायक।
श्रीअरिहन्त सुसिद्ध, शुद्ध आचार्य भणीजे,
श्रीउवज्झाय सुसाधु, पञ्च परमेष्ठी थुणीजे।
नवकार सार संसार छे, **कुसललाभ** वाचक कहे,
एक चित्ते आराधतां, विविध ऋद्धि वंछित लहे, ॥ १ ॥

(२)

श्रीनमस्कार–माहात्म्य

समरो मन्त्र भलो नवकार, ए छे चौद पूरवनो सार।
एना महिमानो नहि पार, एनो अर्थ अनन्त उदार॥
समरो मन्त्र····॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखमां समरो दुःखमां समरो, समरो दिन ने रात ।
जीवतां समरो मरतां समरो, समरो सौ संघात ।।
समरो मन्त्र····।। २ ।।

जोगी समरे भोगी समरे, समरे राजा–रंक ।
देवो समरे दानव समरे, समरे सौ निःशंक ।।
समरो मन्त्र····।। ३ ।।

अड़सठ अक्षर एना जाणो, अड़सठ तीरथ सार ।
आठ सम्पदाथी परमाणो, अडसिद्धि दातार ।।
समरो मन्त्र····।। ४ ।।

नवपद एनां नव निधि आपे, भवभवनां दुःख कापे ।
वीरवचनथी हृदये व्यापे, परमातम–पद आपे ।।
समरो मन्त्र····।। ५ ।।

(३)

श्रीगौतमस्वामीका छन्द

वीर जिणेसर केरो शिष्य, गौतम नाम जपो निशदिस ।
जो कीजे गौतमनुं ध्यान, तो घर विलसे नवे निधान ।।१।।

गौतम नामे गयवर चडे, मनवांछित हेला सांपडे ।
गौतम नामे नावे रोग, गौतम नामे सर्व संयोग ।।२।।

जो वैरी विरुआ वंकड़ा, तस नामे नावे ढूकडा ।
भूत–प्रेत नवि खंडे प्राण, ते गौतमना करूं वखाण ।।३।।

गौतम नामे निर्मल काय, गौतम नामे वाधे आय ।
गौतम जिनशासन शणगार, गौतम नामे जय जयकार।।४।।

शाल–दाल–सुरसा–घृत–गोल, मनवांछित कापड–तंबोल ।
घर सुघरणी निर्मल चित्त, गौतम नामे पुत्र विनीत ।।५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम उदयो अविचल भाण, गौतम नाम जपो जगजाण ।
म्होटां मन्दिर मेरु समान, गौतम नामे सफल विहाण ॥६॥

घर मयगल-घोडानी जोड, वारु पहोंचे वंछित कोड ।
महीयल माने म्होटा राय, जो पूजे गौतमनां पाय ॥७॥

गौतम प्रणम्या पातक टले, उत्तम नरनी संगत मले ।
गौतम नामे निर्मल ज्ञान, गौतम नामे वाधे वान ॥८॥

पुण्यवन्त अवधारो सहु, गुरु गौतमना गुण छे बहु ।
कहे लावण्य-समय कर जोड, गौतम तूठे सम्पत्ति क्रोड ॥९॥

(४)

सोलह सतियोंका छन्द

आदिनाथ आदे जिनवर वन्दी, सफल मनोरथ कीजिए ।
प्रभाते उठी मंगलिक कामे, सोले सतीनां नाम लीजिए ॥
आदि० ॥ १ ॥

बालकुमारी जगहितकारी, ब्राह्मी भरतनी बहेनडो ए ।
घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोले सतीमां जे वडी ए ॥
आदि० ॥ २ ॥

बाहुबल—भगिनी सतीय शिरोमणि, सुन्दर नामे ऋषभसुता ए ।
अंकस्वरूपी त्रिभुवनमांहे, जेह अनुपम गुणजुता ए ॥
आदि० ॥ ३ ॥

चन्दनबाला बालपणाथी, शियलवती शुद्ध श्राविका ए ।
अडदना बाकुले वीर प्रतिलाभ्या, केवल-लही व्रत-भाविका ए ॥
आदि० ॥ ४ ॥

उग्रसेन-धुआ-धारिणी-नंदिनी, राजिमति नेम-वल्लभा ए ।
जोबन-वेशे कामने जीत्यो, संयम लइ देवदुल्लभा ए ॥
आदि० ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्च-भरतारो पांडव-नारो, द्रुपद-तनया वखाणो ए।
एकसो आठे चोर पुराणा, शियल-महिमा तस जाणीए ए॥
आदि० ॥ ६ ॥

दशरथ नृपनी नारो निरुपम, कोशल्या कुलचन्द्रिका ए।
शियल-सलूणी राम-जनेता, पुण्यतणो परनालिका ए॥
आदि० ॥ ७ ॥

कौशांबिक ठामे शतनिक नामे, राज्य करे रंग राजीओ ए।
तस घर घरणी मृगावती सती, सुरभुवने जस गाजीओ ए॥
आदि० ॥ ९ ॥

सुलसा साची शियले न काची, राची नहि विषयारसे ए।
मुखडुं जोतां पाप पलाये, नाम लेतां मन उल्लसे ए॥
आदि० ॥ ९ ॥

राम रघुवंशी तेहनी कामिनी, जनकसुता सीता सती ए।
जग सहु जाणे धीज करंता, अनल शीतल थयो शियलथी ए॥
आदि० ॥ १० ॥

काचे तांतणे चालणी बांधी, कूवा थकी जल काढियुं ए।
कलङ्क उतारवा सती सुभद्राए, चम्पा-बार उघाडियुं ए॥
आदि० ॥ ११ ॥

सुर-नर-वन्दित शियल अखण्डित, शिवा शिवपद-गामिनी ए।
जेहने नामे निर्मल थईए, बलिहारी तस नामनी ए।
आदि० ॥ १२ ॥

हस्तिनागपुरे पाण्डुरायनी, कुन्ता नामनी कामिनी ए।
पाण्डवमाता दशे दशार्हनी, ब्हेन पतिव्रता पद्मिनी ए॥
आदि० ॥ १३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—शीलवती नामे शीलव्रतधारिणी, त्रिविधे तेहने वंदीए ए।
नाम जपन्ता पातक जाए, दरिसण दुरित निकंदीए ए॥
आदि० ॥ १४ ॥

निषधा नगरी नलह नरिंदनी, दमयन्ती तस गेहनी ए।
सङ्कट पडतां शियल ज राख्युं, त्रिभुवन कीर्ति जेहनी ए॥
आदि० ॥ १५ ॥

अनङ्ग–अजिता जग–जन–पूजिता, पुष्पचूला ने प्रभावती ए।
विश्व–विख्याता कामित–दाता, सोलमी सती पद्मावती ए॥
आदि० ॥ १६ ॥

वीरे भाखी शास्त्रे साखी, **उदयरत्न** भाखे मुद्दाए।
वहाणुं वातां जे नर भणशे, ते लहेशे सुखसम्पदा ए॥
आदि० ॥ १७ ॥

(५)

चिदानन्दजी कृत पद

(राग–हितशिक्षाका)

पूरव पुण्य–उदय करी चेतन ! नोका नरभव पाया रे। पूरव ए टेक।
दीनानाथ दयाल दयानिधि, दुर्लभ अधिक बताया रे।
दश दृष्टान्ते दोहिलो नरभव, उत्तराध्ययने गाया रे॥ पूरव० ॥ १ ॥
अवसर पाया विषय रस राचत, ते तो मूढ कहाया रे।
काग उड़ावण काज विप्र जिम, डार मणि पछताया रे। पूरव० ॥ २ ॥
नदी–घोल–पाषाण न्याय कर, अर्धवाट तो आया रे।
अर्ध सुगम आगल रह तिनकुं, जिनने कछु घटाया रे। पूरव० ॥ ३ ॥
चेतन चार गतिमें निश्चे, मोक्षद्वार ए काया रे।
करत कामना सुर पण याको, जिनकुं अनर्गल माया रे। पूरव० ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोहणगिरि जिम रत्नखाण तिम, गुण सहु यामें समाया रे।
महिमा मुखसें वरणत जाकी, सुरपति मन शंकाया रे॥ पूरव०॥ ५॥
कल्पवृक्ष सम संयमकेरो, अतिशीतल जिहाँ छाया रे।
चरण करण गुण–धरण महामुनि, मधुकर मन लोभाया रे। पूरव०॥ ६॥
या तन विण तिहु काल कहो किन, साचा सुख निपजाया रे।
अवसर पाय न चूक **चिदानंद,** सद्गुरु यूं दरसाया रे॥ पूरव०॥ ७॥

(६)

श्रीआनन्दघनजी कृत पद

(राग–आशावरी)

आशा औरनकी क्या कीजे, ज्ञान–सुधारस पीजे। आशा०॥ टेक॥
भटके द्वार द्वार लोकनके, कूकर आशाधारी।
आतम–अनुभव–रसके रसिया, उतरे न कबहु खुमारी॥ आशा०॥ १॥
आशादासी करे जे जाये, ते जन जगके दासा।
आशादासी करे जे नायक, लायक अनुभव–प्यासा॥ आशा०॥ २॥
मनसा प्याला प्रेम–मसाला, ब्रह्म–अग्नि परजाली।
तन भाठी अवटाई पीये कस, जागे अनुभव लाली॥ आशा०॥ ३॥
अगम पियाला पियो मतवाला, चिन्हे अध्यातम वासा॥
आनन्दघन चेतन व्हे खेले, देखे लोक तमासा॥ आशा०॥ ४॥

(२८)

आरतियाँ

(१)

जय ! जय ! आरती आदि जिणंदा,
नाभिराया मरुदेवीको नंदा·····जय ! जय ! !।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहेली आरती पूजा कीजे,
नरभव पामीने ल्हावो लीजे····जय ! जय ! ! ॥ १ ॥

दूसरी आरती दीन–दयाला,
धूलेवमण्डन प्रभु जग–उजियाला····जय ! जय ! ! ।
तीसरी आरती त्रिभुवन देवा,
सुर–नर–इन्द्र करे तोरी सेवा···जय ! जय ! ! ॥ २ ॥

चौथी आरती चउगति चूरे,
मनवांछित फल शिवसुख पूरे····जय ! जय ! ! ।
पंचमी आरती पुण्य–उपाया,
मूलचन्द रिखव–गुण गाया····जय ! जय ! ! ॥ ३ ॥

(२)

अपसरा करती आरती जिन आगे,
हां रे जिन आगे रे जिन आगे ।
हां रे ए तो अविचल सुखडां मागे,
हां रे नाभिनन्दन पास····अ····॥ १ ॥

ता थेइ नाटक नाचती पाय ठमके,
हां रे दोय चरणमां झांझर झमके ।
हां रे सोवन घुघरडी घमके,
हां रे लेती फुदडो बाल····अ····॥ २ ॥

ताल मृदंग ने वांसली डफ वीणा,
हां रे रूडा गावंती स्वर झीणा ।
हां रे मधुर सुरासुर नयणां,
हां रे जोती मुखडुं निहाल····अ····॥ ३ ॥

धन्य मरुदेवा माताने पुत्र जाया,
हां रे तोरी कंचन वरणी काया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हां रे में तो पूरब पुण्ये पाया,
हां रे देख्यो तेरो देदार.....अ....॥ ४ ॥

प्राणजीवन परमेश्वर प्रभु प्यारो,
हां रे प्रभु सेवक हुं छुं तारो।
हां रे भवोभवनां दुखडां वारो,
हां रे तुमे दीनदयाल.....अ...॥ ५ ॥

सेवक जाणी आपनो चित्त धरजो,
हां रे मारी आपदा सघळी हरजो।
हां रे **मुनिमाणेक** सुखियो करजो,
हां रे जाणी पोतानो बाल....अ....॥ ६ ॥

(२९)

मङ्गल–दीपक

(१)

दीवो रे! दीवो मंगलिक दीवो।
आरती उतारण बहु चिरं जीवो; दीवो रे! ॥ १ ॥

सोहामणुं घर पर्व–दीवाली।
अम्बर खेले अमराबाली, दीवो रे! ॥ २ ॥

देपाल भणे एणे कुल अजुआली।
भावे भगते विघ्न निवारी; दीवो रे! ॥ ३ ॥

देपाल भणे इणे ए कलिकाले।
आरती उतारी राजा कुमारपाले; दीवो रे! ॥ ४ ॥

अम घर मंगलिक तुम घर मंगलिक।
मंगलिक चतुर्विध संघने होजो; दीवो रे! ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

चारो मंगल चार आज, चारो मंगल चार।
देख्यो दरस सरस जिनजीको, शोभा सुन्दर सार ॥ आज० ॥ १ ॥
छिनुंछिनुंछिनुं मनमोहन चरचो, घसी केसर घनसार ॥ आज० ॥ २ ॥
विविध जाति के पुष्प मंगावो, मोगर लाल गुलाल। आज० ॥ ३ ॥
धूप उखेवो ने करो आरती, मुख बोलो जयकार। आज० ॥ ४ ॥
हर्ष धरी आदीश्वर पूजो, चौमुख प्रतिमा चार। आज० ॥ ५ ॥
हैये धरी भाव भावना भावो, जिम पामो भवपार। आज० ॥ ६ ॥
सकलचन्द सेवक जिनजीको, आनंदघन उपकार। आज० ॥ ७ ॥

(३०)

छूटे बोल

मार्गानुसारीके ३५ बोल.

१ न्यायसम्पन्न–विभव–न्यायसे धन प्राप्त करना। स्वामि–द्रोह करके, मित्रद्रोह करके, विश्वास दिलाकर ठगनेसे, चोरी करके, धरोहर आदिमें बदलकर आदि निन्द्य काम करके धन प्राप्त नहीं करना।

२ शिष्टाचार–प्रशंसा–उत्तम पुरुषोंके आचरणकी प्रशंसा करनी।

३ समान कुलाचारवाले किन्तु अन्य गोत्रीके साथ विवाह–सम्बन्ध करना।

४ पाप–कार्यसे डरना।

५ प्रसिद्ध देशाचारके अनुसार वर्तन करना।

६ किसीका अवर्णवाद बोलना नहीं–किसीकी निन्दा नहीं करनी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७ जिस घरमें प्रवेश और निर्गमन–निकलने के मार्ग अनेक न हों तथा जो घर अति गुप्त और अति प्रकट न हो और पड़ौसी अच्छे न हों ऐसे घरमें नहीं रहना।

८ अच्छे आचरणवाले पुरुषोंकी संगति करनी।

९ माता तथा पिताकी सेवा करनी–उनका सर्व प्रकारसे विनय करना और उनको प्रसन्न रखना।

१० उपद्रववाले स्थानका त्याग करना–लड़ाई दुष्काल आदि आपत्तिजनक स्थान छोड़ देना।

११ निन्दित कार्यमें प्रवृत्त नहीं होना–निन्दाके योग्य कार्य नहीं करने।

१२ आवकके अनुसार खर्च रखना। आमदानी के अनुसार खर्च करना।

१३ धनके अनुसार वेश रखना। आमदानी के अनुसार वेशभूषा रखनी।

१४ आठ प्रकारके बुद्धिके गुणोंका सेवन करना। उन आठ गुणों के नामः—

१ शास्त्र सुननेकी इच्छा। २ शास्त्र सुनना। ३ उनका अर्थ समझना। ४ उनको याद रखना। ५ उनमें तर्क करना। ६ उनमें विशेष तर्क करना। ७ सन्देह नहीं रखना। ८ यह वस्तु ऐसी ही है, ऐसा निश्चय करना।

१५ नित्य धर्मको सुनना। (जिससे बुद्धि निर्मल रहे।)

१६ पहले किया हुआ भोजन पच जाय, तब नया भोजन करना।

१७ जब सच्ची (वास्तविक) भूख लगे तब खाना, किन्तु एकबार खा लेनेके बाद शीघ्र ही मिठाई आदि आयी हुई देख कर लालचसे खानी नहीं, क्यों कि अजीर्ण हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ धर्म, अर्थ और काम इन तीनों वर्गों को साधना ।

१९ अतिथि और गरीब आदिको अन्नपानादि देना ।

२० निरन्तर अभिनिवेश रहित रहना । किसीको पराभव करने की इच्छा करके अनीतिके कार्यका आरम्भ नहीं करना ।

२१ गुणी पुरुषोंका पक्षपात करना–उनका बहुमान करना ।

२२ निषिद्ध देश कालका त्याग करना । राजा तथा लोकद्वारा निषेध किये हुए देश कालमें जाना नहीं ।

२३ अपनी शक्तिके अनुसार कार्यका आरम्भ करना ।

२४ पोषण करने योग्य जैसे कि माता–पिता–स्त्री–पुत्रादिका भरण–पोषण करना ।

२५ व्रतसे युक्त और ज्ञानमें बड़े ऐसे पुरुषोंका पूजन करना–सन्मान करना ।

२६ दीर्घदर्शी बनना–कोई भी कार्य करने से पूर्व दीर्घदृष्टि डालना, उसके शुभाशुभ परिणामका विचार करना ।

२७ विशेषज्ञ होना । प्रत्येक वस्तुकी वास्तविकता समझकर अपने आत्माके गुणदोषोंकी खोज करना ।

२८ कृतज्ञ होना–किये हुए उपकार और अपकारका समझनेवाला होना ।

२९ लोकप्रिय बनना–विनयादि गुणोंसे लोकप्रिय बनना ।

३० लज्जालु होना–लाज और मर्यादामें रहना ।

३१ दयालु बनना–दयाभाव रखना ।

३२ सुन्दर आकृतिवान् बनना–क्रूर आकृतिका त्याग करके सुन्दर आकृति रखनी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३ परोपकारी बनना–दूसरोंका उपकार करना।

३४ अन्तरङ्गारिजित् बनना–काम, क्रोध, लोभ, मान, मद तथा ईर्षा इन छः अन्तरङ्ग शत्रुओंको जीतना।

३५ वशीकृतेन्द्रियग्राम होना-इन्द्रिय समूह को वश करना–सर्व इन्द्रियोंको वश करनेका अभ्यास करना।

श्रावकके २१ गुण

१ अक्षुद्र, २ रूपवान, ३ शान्त प्रकृतिवान्, ४ लोकप्रिय, ५ अक्रूर, ६ पापभीरु, ७ अशठ, ८ दाक्षिण्यवान्, ९ लज्जालु, १० दयालु, ११ मध्यस्थ–सौम्यदृष्टि, १२ गुणरागी, १३ सत्कथाख्य, १४ सुपक्षयुक्त, १५ दीर्घदर्शी, १६ विशेषज्ञ, १७ वृद्धानुगामी, १८ विनयी, १९ कृतज्ञ, २० परहितार्थकारी, २१ लब्धक्षय।

भावश्रावकके ६ लिङ्ग

१ व्रत और कर्म करनेवाला हो, २ शीलवान् हो, ३ गुणवान् हो, ४ ऋजु व्यवहारवाला हो, ५ गुरु–शुश्रूषावाला हो और ६ प्रवचन कुशल हो।

भावश्रावकके १७ लक्षण

नीचे लिखी नौ वस्तुओंका सच्चा स्वरूप समझ कर उसके अनर्थसे दूर रहे :—

(१) स्त्री, (२) इन्द्रियाँ, (३) अर्थ (पैसा), (४) संसार, (५) विषय, (६) तीव्र आरंभ, (७) घर, (८) दर्शन, (९) गड्डलिका प्रवाह (देखादेखी)।

(१०) आगम पुरस्सर प्रवृत्ति करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) यथाशक्ति दानादि प्रवृत्ति करे।

(१२) विधिका जानकार बने।

(१३) अरक्तद्विष्ट–राग–द्वेष न करे।

(१४) मध्यस्थ–कदाग्रह–हठ न रखे।

(१५) असम्बद्ध–धन, स्वजन आदिमें भावप्रतिबन्ध–रहित रहे।

(१६) परार्थकामोपभोगी–दूसरेके आग्रहसे शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्शका उपभोग करे।

(१७) निरासक्त भावसे गृहवास पालनेवाला बने।

(३१)

श्रावकके प्रतिदिन धारने योग्य

१४ नियम

"सचित्त–दव्व–विगई–वाणह–तंबोल–वत्थ–कुसुमेसु।
वाहण–सयण–विलेवण–बंभ–दिसि–ण्हाण–भत्तेसु ॥"

१ सचित्त–नियम–श्रावक को मुख्य वृत्तिसे सचित्तका त्यागी होना चाहिये, तथापि वैसा न बन सके तो वहाँ सचित्तका परिणाम निश्चित करना कि इतने संचित्त द्रव्यों से अधिक मुझे त्याग है। अचित्त वस्तु वापरनेसे चार प्रकारके लाभ होते हैं—(१) सर्व सचित्तका त्याग होता है, (२) रसनेन्द्रिय वशमें हो जाती हैं, (३) कामचेष्टाकी शान्ति होती है और (४) जीवोंकी हिंसासे बच सकते हैं।

२ द्रव्य–नियम—(दव्व)–आजके दिन मैं इतने 'द्रव्योंसे' अधिक उपयोगमें न लूँगा, ऐसा नियम लेनेको 'द्रव्य नियम' कहते हैं। यहाँ 'द्रव्य' शब्दसे परिणामके अन्तरवाली वस्तु ग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनी चाहिये। जैसे कि–खीचड़ी, लड्डू, बड़े और पापड़। किन्हींके मतसे नामान्तर, स्वादान्तर, रूपान्तर और परिणामान्तर द्वारा द्रव्यकी भिन्नता निश्चित होती है।

३ विकृति–नियम—विकृतियाँ दस हैं:—(१) मधु, (२) मांस, (३) मक्खन, (४) मदिरा, (५) दूध, (६) दही, (७) घृत, (८) तेल, (९) गुड़, और (१०) बड़े (तली हुई वस्तुएँ)। इनमेंसे प्रथम चारका सम्पूर्ण त्याग और अन्यका शक्तिश: त्याग करना विकृति-नियम है। विकृति त्यागके साथ उन प्रत्येकका नीवियाता···· का भी त्याग होता है। और वैसा करनेकी इच्छा नहीं हो तो नियम लेते समय ही धार लिया जाता है कि 'मुझे विकृतिका त्याग है पर उसमें नीवियाताकी यतना है।

४ उपानह–नियम—आजके दिन इतने जूतोंसे अधिक जूते नहीं पहनूँ, ऐसा जो नियम वह 'उपानह–नियम'। इसमें उपानह शब्दसे चप्पल, बूँट, पावडी, मोजे आदि सब साधन समझने चाहिये।

५ तंबोल–नियम—चार प्रकारके आहारमेंसे स्वादिम आहार–अर्थात् तंबोल। उसमें पान, सुपारी, तज, लवङ्ग, इलायची आदिका समावेश होता है। इसका दिवस–सम्बन्धीपरिमाण करना वह 'तंबोल–नियम'।

६ वस्त्र–नियम—पहननेके तथा ओढ़नेके वस्त्रोंका दिवस-सम्बन्धी परिमाण निश्चित करना वह–'वस्त्र–नियम'।

७ पुष्पभोग–नियम—मस्तकपर रखने योग्य, गलेमें पहननेके योग्य, हाथमें लेकर सूँघने योग्य आदि फूलों तथा उनसे निर्मित वस्तु जैसे कि–फूलकी शय्या, फूलके तकिये, फूलके पंखे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फूलकी जाली, फूलके गजरे, फूलकी कलगी, फूलके हार–तुर्रे, तेल, इत्र आदिका परिमाण निश्चित करना वह 'पुष्पभोग–नियम'।

८ वाहन–नियम—रथ, हाथी, घोड़ा, ऊँट, खच्चर, पालकी गाड़ा–गाड़ी, टमटम–तांगा, सायकल, मोटर, रेल्वे, आगबोट, ट्राम, बस, विमान आदि एक दिनमें इतने से अधिक नहीं वापरना, निश्चय करना वह 'वाहन–नियम'।

९ शयन–नियम—खाट, खटिया, कुर्सी, कोच, गादी, तकिया, गदला, गोदड़ा, तथा पाट प्रमुखका दिवस–सम्बन्धी नियम करना, वह 'शयन–नियम'।

१० विलेपन–नियम—विलेपन तथा उबटनके योग्य द्रव्य–जैसे कि चन्दन, केशर, कस्तूरी, अबीर, अरगजा तथा पीठी आदि द्रव्योंके परिमाणका दिवस–सम्बन्धी नियम करना, वह 'विलेपन–नियम'।

११ ब्रह्मचर्य–नियम–दिनमें अब्रह्मका सेवन नहीं करना। वह श्रावकके लिये वर्ज्य है। तथा रात्रिकी यतना करनी आवश्यक है, उसके परिमाणका नियम करना, वह 'ब्रह्मचर्य–नियम'।

१२ दिग्–नियम—भावना और प्रयोजनके अनुसार दसों दिशाओंमें जाने–आनेका परिमाण वह 'दिग्–नियम'।

१३ स्नान–नियम–दिनमें इतनी बारसे अधिक नहीं नहाना तत्सम्बधी नियम–'स्नान–नियम'। यहाँ श्रीजिनेश्वरादिकी भक्ति आदिके निमित्तसे स्नान करना पड़े तो उसमें नियमका बाध नहीं होता।

१४ भक्त-नियम–दिवस–सम्बन्धी आहारका परिमाण निश्चित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना वह भक्त-नियम। इस व्रतका पालन स्व-अपेक्षासे करना चाहिये। कुटुम्ब या ज्ञाति आदिके निमित्तसे घरपर आहारादि बनाने पड़े तो, उसकी इसमें छूट है।

तदुपरान्त निम्नलिखित नियम भी अधिक धारण किये जाते हैं :—

१ **पृथ्वीकाय**–मिट्टी कितनी वापरनी।

२ **अप्काय**–पीने, नहाने, धोने आदिमें कुछ कितना पानी वापरना।

३ **तेउकाय**–चूला, दीपक, भट्ठी, सिगड़ी आदि कितने उपयोगमें लेना।

४ **वायुकाय**–पंखे आदिका कितना उपयोग करना।

५ **वनस्पतिकाय**–वनस्पतिकी कितनी वस्तुओंका उपयोग करना।

१ **असि**–तलवार, छुरी, चाकू आदि कितने हथियार वापरने।

२ **मषी**–दावात, कलम, कूंची, होल्डर, बरू, पेन्सिल आदि कितने वापरने।

३ **कृषि**–हल, हँसिया, आदि खेती के औजार कितने वापरने।

इन प्रत्येक वस्तुका प्रातः नियम धारण किया हो, उसका सायङ्कालको विचार करना। उनमेंसे यदि नियमके अतिरिक्त उपयोग हुआ हो तो गुरु महाराजके पास आलोचना कर आज्ञानुसार प्रायश्चित्त करना। नियमानुसार उपयोग हुआ हो, तो वह विचार लेना और थोड़ी वस्तु वपरायी हो, तो शेष नहीं वपरायी हुई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षात् उपयोगसे लगनेवाले कर्मदोषसे बच गयो है, अतः उतना लाभ हुआ मानना। इस प्रकार नियम विचारनेको 'नियम संक्षेप किये' कहते हैं।

(३२)

सत्रह प्रमार्जना

खमासमण तथा वन्दन करते समय सत्रह स्थानकी प्रमार्जना करनी आवश्यक है। वह इस प्रकार :—दाहिने पैरसे कमरके नीचे-के पाँव-पर्यन्त पीछेका सारा भाग, पीछेका कमरके नीचेका मध्य-भाग, दाँये पाँवके नीचेका पिछले पाँवतकका ार्व भाग इन तीनोंका चरवलेसे प्रमार्जन करना। उसी प्रकार दाँया पाँव, मध्यभाग और बाँया पाँव इन तीनोंके आगेके भागका भी पाँवतक प्रमार्जन करना, इस तरह छः। नीचे बैठते समय तीन बार भूमि पूँजनी, ऐसे नौ। फिर दाहिने हाथमें मुहपत्ती लेकर उससे ललाटकी दाँयी ओरसे प्रमार्जन करते हुए सारा ललाट, सारा बाँया हाथ, और नीचे कोनी तक, इसके पश्चात् इसी प्रकार बाँये हाथमें मुहपत्ती लेकर बाँयी ओरसे पूँजते हुए सारा ललाट, सारा दाहिना हाथ और नीचे कोनी तक, वहाँसे चरवलेको डण्डोको मुहपत्तीसे पूँजना। ऐसे ग्यारह फिर तीनबार चरवलेके गुच्छपर पूँजना और उठते समय तीनबार अवग्रहसे बाहर निकलते समय कटासणपर पूँजना, ऐसे सत्रह प्रमार्जन कहे गये हैं।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	४	इच्छाकार	इच्छकार
,,	११	इच्छाकार	इच्छकार
२०	७	कम्माण	कम्माणं
२२	१२	अरिहंताण	अरिहंताणं
२७	१०	कित्तिइस्स	कित्तइस्सं
२८	५	कमको	कर्मको
,,	२२	वाचक	वाचिक
४२	८	जयतु	जयंतु
,,	१३	बिहुं	बिहुं
४३	९	जगननाह	जगहनाह
४५	७	करो	करोड़
,,	२५	ऐरावत	ऐरवत
४६	१२	ऐरावत	ऐरवत
४९	६	सारहीण	सारहीणं
,,	१०	मुत्ताण	मुत्ताणं
५१	११	सिद्ध	सिद्धि
५३	३	सिद्धगति	सिद्धिगति
५९	५	रहते हुए	रहता हुआ
,,	१२	रहते हुए	रहता हुआ मैं
,,	,,	रहते हुओंका	रहे हुओंको
६०	५	ऐरावत	ऐरवत
,,	१३	ऐरावत	ऐरवत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	६	वि-ही	वि-भी
,,	७	संथुआ	संथुओ
,,	१७	तुह-आपका	तुह-आपके
६४	८	ही	भी
,,	१६	अपनी बोधि—अपना सम्यक्त्व	बोधि-सम्यक्त्व
७०	१३	निरवसग्ग	निरुवसग्ग
१०५	१२	सब्भिंतरे	सब्भिंतर
११३	४	तं किंचि	जं किंचि
,,	५	कारण हुई।	कारण हुई।
			आसायणारु—आशातनासे
११५	१५	खामेसि	खामेमि
११६	२३	तेजकाय	तेउकाय
११७	१	वायुकाय	वाउकाय
,,	१९	लेनेके	देनेके
११९	२१	लेनेके	देनेके
१२०	१८	तहे	तह
१२१	२०	अभ्यन्तर	अभ्यन्तर
१२२	६	कारणे	करणे
,,	१२	० मिंदिएहि	० मिंदिएहिं
१२५	१७	सामयिक	सामायिक
१२६	११	आयरिय	आयरियं
१३२	१५	अणुव्वये	अणुव्वए
,,	१९	अणुव्वेय	अणुव्वए
१४३	२२	सच्चित्त	सच्चित्ते
,,	२३	चउत्थ	चउत्थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४६	१८	काइअस्सा	काइअस्स
,,	१९	माणसिअस्सा	माणसिअस्स
,,	२१	काइअस्सा	काइअस्स
१४७	१	माणसिअस्सा	माणसिअस्स
१४८	१८	समद्दिट्ठी	सम्मद्दिट्ठी
१४८	२०	जइ वि हु	जइ वि
१५०	१३	मूलमें	मूलके
१५२	१३	सभरिआ	संभरिआ
१५४	२	जिनके	जितने
१५५	२	ऐरावत	ऐरवत
,,	१८	बोलंतु	वोलंतु
१५७	१	तनह	तरह
१५८	५	दुगंछिउं सम्मं	दुगंछिउं
१६२	७	त्रस्त	त्रस
,,	१८	अदृष्टवस्तु	अदत्तवस्तु
१६५	५	बहोरनेका	बहोरानेका
१६९	२	राइअ	राइअं
१७२	५	रखना	रखा
१७३	१६	चित्ता	चित्तो
१७९	१७	श्रीवर्धमानके लिये	श्रीवर्धमानको
१८३	९	अपूर्वचन्द्रकी	अपूर्वचन्द्रको
१९६	११	कनिष्ठ उपासकोंका	उपासक प्राणियोंका
१९७	२	कनिष्ठ उपासकोंका	उपासक प्राणियोंका
,,	११	च कुरु	कुरु
१९९	२	फट्‌ा	फट्
२०१	७	पापसे	पाससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	१२	करता है।	करे।
२११	७	दिंतु सुह	दिंतु सुहं
२१२	१४	मनककुमार	मनककुमार, कालिकसूरि, शाम्बकुमार, प्रद्युम्नकुमार
२१५	८	वृद्धि हो'	बुद्धि हो'
२३३	४	आज्ञासे	संमतिसे
,,	१३	की थी	की थी यह भी बताया।
२४२	७	तओ	तवो
,,	११	भाषा	भासा
२४३	२५	परोवयरो	परोवयारो
२४४	२२	प्रचारके	प्रकारके
२४६	६	बत्तीश	बत्रीस
,,	,,	नमूं	नमुं
,,	७	तीजे	बीजे
,,	१४	सौ	सो
,,	,,	बहोत्तर	बहोंतेर
,,	१५	एकसौ	एकसो
,,	१६	सौ	सो
,,	१७	सातसै	सातसे
,,	,,	सब	सवि
,,	१९	एकसौ	एकसो
,,	२०	आठ	साठ
२४७	१	बत्तीस	बत्रीसें
,,	२	त्रणसै	त्रणसें
२४८	२	साठ	आठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४९	१४	अन्तरिक्षपार्श्वनाथ	अन्तरिक्षपार्श्वनाथ वरकाणा पार्श्वनाथ
२५०	३	करानेवाले हैं,	करानेवाले हैं, तथा जो बाह्य एवं अभ्यतंर तप में उद्यत हैं,
,,	१०	विरहमाण	विहरमाण
,,	१८	मंते	भंते
२५१	५	करोमि	करेमि
२५६	३	श्रवण	श्रमण
२५७	१८	महामुणिणं	महामुणीणं
२६०	१८	सागरी	सागारी
२६४	१३	दूसरेको	दूसरेके
२६६	१२	मल	मूल
२६७	११	जिन-पन्नत्तं	जिण-पन्नत्तं
२७४	३	डॅपच्चक्खाण ।	पच्चक्खाण ।
,,	२३	अक्खित्तविवेगेणं	उक्खित्तविवेगेणं
२८०	१९	ससित्वेण	ससित्थेण
२८१	२३	अनभोग	अनाभोग
२८२	१४	प्रत्याकार	प्रत्ययाकार
,,	१६	पारिष्ठापनिकार	पारिष्ठापनिकाकार
,,	,,	महत्ताकार	महत्तराकार
२८९	१६	प्रत्याख्यानमें	जिस प्रत्याख्यान में
२९२	४	०गणस्तेषां	०गणैस्तेषां
,,	२२	निस्मयाहृत°	विस्मयाहृत°
२९९	५	देनेवाला	देनेवाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०१	१२	साधुको	साधुकी
३०३	५	धमापदेश	धर्मोपदेश
३०४	२	तनोत्वमितानि	तनोत्वभिमतानि
३११	२०	वाक्-ज्योत्स्ना	वाग्-ज्योत्स्ना
३१४	२१	महामोद	महामोह
३४२	१६	धतं	धंत
३४३	१८	सोम,	सोमं,
,,	२०	तिअस-वह°	तिअस-वइ°
३४६	५	स्तुति	स्तुत
३४७	१७	वंदिय	वंदियं
,,	२३	परओ	पचओ
३५९	११	दियस्सा	वंदियस्सा
,,	१३	पिंडयआहिं	पिंडियआहिं
,,	१२	जिटट्ा	जिट्ठा
३६३	१७	सुलक्षणा	सुलंछणा
३६५	२	नंदिं	सुहनंदिं
३८५	१६	श्रीसघ	श्रीसंघ
३८७	५	श्रीपार्श्वनाथाय	श्रीपार्श्वनाथाय स्वाहा
३९४	१९	'सौँ ह्रीँ नमः'	'सौँ ह्रीँ नमः'
३९६	१४	गरुढो	गरूडो
३९७	९	दूरिआरि	दुरिआरि
३९८	१९	जिणचन्दो	जिणचंदो
४७९	४	मंदरे	मंदर
,,	११	जिन-जुअलं	जिण-जुअलं
४७९	१६	मम व	मम य
,,	१९	पडइ	पढइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१२	५	कदाचिदपयासि	कदाचिदुपयासि
४१४	१	विवृद्धशोभ,	विवृद्धशोभं,
,,	३	पर्यल्लसन्नख	पर्युल्लसन्नख
,,	५	°रभूज्जनेंद्र	°रभूज्जिनेंद्र
४१७	१	त्वामुद्वहति	त्वामुद्वहन्ति
,,	१५	वरमात्म°	परमात्म°
४१८	२०	चेतनोऽपि	सचेतनोऽपि
४१९	४	तनुध्रुव°	तनुर्ध्रुव°
,,	११	निपस्य	नीपस्य
,,	२१	भृद्भ्रय-द्वक्त्र	भृद्भ्रयदवक्त्र
४२०	२	भुवताधिप	भुवनाधिप
,,	३	°द्विधुतान्य	°द्विधूतान्य
४२१	७	त्वद्विब	त्वद्बिंब
४२५	२	पंचहि	पंचहिं
,,	३	अट्ठाविहो	अट्ठविहो
४२७	३	मन्या	मान्या
४२८	१५	वुद्धि	बुद्धि
,,	१६	कीधा	कीधो
४२९	९	क्रीधी	कीधी
,,	१३	ओळवो	ओळवी
,,	२०	चोदश	चौदश
,,	२०	पर्वतिथिना	पर्वतिथिना नियम
४३४	१०	वाहेरथी	बाहेरथी
४३५	१९	गुणवत	गुणवंत
४३६	६	कामभागा°	कामभोगा°
,,	२२	भाग्यं	भाग्युं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४५	१४	माह	मोह
४५०	१८	दिवस से	दिवस में
४५१	१५	तातले	तोतले
४५३	११	आजानते	अजानते
४५४	१२	कुड	कुंड
,,	१६	वितिगिच्छाः—	वितिगिच्छाः—
४५५	६	दुक्कड	दुक्कडं
४६०	१६	आडी-कम्मे	भाडी कम्मे
४७०	११	करने	करनेकी
,,	१८	अध्यवसाओकी	अध्यवसायोंकी
४७२	८	दीनोंको	दोनोंको
४७३	२	पक कर	पकडकर
,,	२०	कु र	कुगुरु
४७६	२०	बतयाया	बतलाया
४८२	१	नवोऽर्हत्	नमोऽर्हत्
४८८	१३	दुःस्वप्नके	दुःस्वप्नके
,,	१७	कुसुममिण	कुसुमिण
४९०	८	राइयो	राइओ
४९४	१४	भगवान्	भगवन्
४९५	२	खामेडं	खामेउं
,,	३	एक (अंतो) पक्खस्स मिल	मिल
४९६	१६	पारसे	पारने
४९८	२	पढनी	पढानी
४९८	४	पढनी	पढानी
,,	६	क्षुद्रापद्रव	क्षुद्रोपद्रव
,,	८	सगर	सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९९	१	दहिना	दाहिना
,,	५	चडव्विहार	चउव्विहार
५०२	१	पडिलेहादेमि	पडिलेहावेमि
,,	१७	स्त्रबके	सबके
५०३	१३	हास-सुत्त	हाण-सुत्त
५०७	९	परठनकर	परठवकर
५०९	४	उपाधि-मुहपत्ती	उपधिमुहपत्ती
५२०	२०	परिवर्तना	परावर्तना
५२१	६	दो पड़ी	दो घड़ी
५२५	३	वीतराय	वीयराय
५२८	२१	झुकाये	झुकाते
५३४	११	श्रीवर्धनानस्वामीकी	श्रीवर्धमानस्वामीकी
५४३	९	बाहर	बारह
५४५	२२	राम	राज
५४६	१२	पूछो	पूजो
,,	१६	एले	एळे
५४८	६	सुन (न)	सुम
५४९	५	खोली	खीली
५५०	९	साधना	साधतां
,,	१७	मोले	सोले
,,	,,	निज	जन
५५१	९	निज	जिन
५५१	१०	खाय	खाण
५५२	२	ललिया	मलिया
,,	१३	जणो	जाणो
,,	१८	कोडो	कोडी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६०	७	वाखण	वखाण
,,	९	समाणो	समाणी
५६१	१८	मरुदेवीनां	मरुदेवीना
५६३	८	अन्ध	अन्धो अन्ध
,,	९	ढाय	ठाय
५६६	६	दूर	दूरे
,,	७	धीग	धींग
,,	१७	प्रतिषे	प्रतिषेध
,,	१८	अमियमरी	अमियभरी
,,	,,	नचीरे	रचीरे
५६७	५	मेवना	सेवना
,,	१३	जूठा	जूठो
५६८	१०	तेव रे	सेव रे
,,	१४	वृत्त	वृत्ति
,,	,,	सन्ति	शान्ति
,,	१८	महाराजने	महाजने
,,	१९	सुगुबु	सुगुरु
५७०	१२	उरवाणो	उखाणो
५७२	१२	दाधां	दीधां
५७३	११	धरियो छुं	धरियो छे
,,	,,	ग्रहियो छुं	ग्रहियो छे
५७३	१२	डरीयो छुं	डरियो छे
५८०	२४	विवेक	विवेके
५८७	५	सघपति	संघपति
५९२	१४	वचण	वयण
,,	१५	नेमजी	जेमजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९३	४	थको	थको
५९६	८	बमू	बूम
५९८	७	जाण	जाणो
५९९	१७	सुन्दर	सुन्दरी
६००	७	शतनिक	शतानिक
६०१	१०	मुद्दाए	मुदाए
६०२	१७	चिन्हे	चीन्हे
६०९	१५	परिणाम	परिमाण
,,	१६	संचित्त	सचित्त
,,	१८	हैं,	है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org